"भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का अनुशीलन"

"BHANWAR SINGH SAMAUR KE GADDHYA SAHITYA KA ANUSHILAN"

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच.डी.(हिन्दी)

उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

कला संकाय

शोधार्थी

भानीराम मेघवाल

शोध–निर्देशिका

डॉ. सुश्री लीला मोदी

शोध–केन्द्र

राजकीय जानकी देवी बजाज स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय,

कोटा, (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

2018

(Certificate to be given by the Supervisor)

C E R T I F I C A T E

I feel great pleasure in certifying that the thesis entitled **"Bhanwar Singh Samaur Ke Gaddhya Sahitya Ka Anushilan"**by **Bhani Ram Meghwal** under my guidance. He/She has completed the following requirements as per Ph.D regulations of the University.

(a) Course work as per the university rules.

(b) Residential requirements of the university (200 days)

(c) Regularly submitted annual progress report.

(d) Presented his work in the departmental committee.

(e) Published/accepted minimum of one research paper in a referred research journal,

I recommend the submission of thesis.

Dr. Leela Modi

Date: ***Name and Designation***

of Supervisor

कार्यालय प्राचार्य, राजकीय जानकी देवी बजाज स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, कोटा, (राज.)

Date 01.02.2018

Department of Hindi

PRE-SUBMISSION SEMINAR CERTIFICATE

This is to certify that-

1. A pre-submission seminar for Ph. D. Thesis was held on 01.02.2018 in the department of Hindi, Govt. J.D.B. Girls PG. College, Kota.
2. In this seminar Bhani Ram Meghwal, Research scholar in the Department of Hindi, gave a presentation on his Topic भंवर सिह सामौर के गद्य साहित्य का अनुशीलन.
3. All the members present in the meeting appreciated the presentation given by Bhani Ram Meghwal.
4. On behalf of all the members we recommend the thesis to be submitted for the dgree of Ph. D.

Supervisor HOD Hindi Principal

Govt. J.D.B. PG. Girls College, Kota. Govt. J.D.B. PG. Girls College, Kota

''श्री गणेशाय नमः''

गणपति परिवारं चारुकेयरहारं।

गिरिधरवरसारं योगिनी चक्रचारभ।।

भव–भय–परिहारं दुःख दारिद्रय–दुरं।

गणपतिमभिवन्दे वक्रतण्डावतारम्।।

जो अपने समस्त परिवार के साथ सुशोभित हैं, जिह्वोंने केयर (बाँहों के आभूषण) और मोती की माला धारण कर रखी है, जो कृष्ण के समान श्रेष्ठ बल से युक्त एवं साक्षात् वक्रतुण्ड के अवतार माने जाते हैं, जो सांसारिक भय, दुःख दरिद्रता को हरने वाले भगवान् गणपति की मैं वन्दना करता हूँ।

रूपरेखा

प्रथम अध्याय– भंवर सिंह सामौर का व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व

चारण समाज की प्रमुख परम्पराएं, वंश भास्कर का स्वर्णिम पृष्ठ : सामौर के कुल की गौरव गाथा, सामौर का वंश वृक्ष, भंवर सिंह सामौर का जन्म एवं माता पिता, हस्त रेखा विशेषज्ञ की भविष्यवाणी, शिक्षा एवं नियुक्ति, विवाह, परिवार, गुरुजन, सहपाठी साथी, चरित्रिक विशेषताएं– श्रेष्ठ शिक्षक, बहुमुखी प्रतिभा के धनी, लेखक निर्देशक एवं अभिनेता, सादा जीवन : सार्वमांगलिक परिकल्पना के काव्यकार, स्पष्ट मृदुभाषी श्रेष्ठ वक्ता, साहसी निडर एवं दृढ़संकल्पी, आस्थावान : देवी उपासक, नई सोच नई दृष्टि के जनक, साहित्य में शब्द यज्ञ के सारथी, भंवर सिंह सामौर के सन्दर्भ में विविध विद्वानों के कथन, जीवन परिस्थितियां, चारणों की जुझारु परंपरा, सामाजिक परिवेश, परिवेश एवं प्रभाव, सम्मान। भंवर सिंह सामौर का कृतित्त्व–साहित्य सृजन की प्रेरणा, गद्य साहित्य का सृजन संसार, लोक पूज्य देवियां, चारण बड़ी अमोलक चीज, युगान्तरकारी संन्यासी, राजस्थानी शक्ति काव्य, शेखावाटी के यशस्वी चारण, चूरु मंडल के यशस्वी चारण, आऊवा का धरना, प्राचीन राजस्थानी काव्य, हमारे साहित्य निर्माता रावत सारस्वत, शंकरदान सामौर, मरण–त्यूंहार, संस्कृति री सनातन दीठ, लोक नीति काव्य, साहित्येत्तर कार्य, अनुवाद आदि।

द्वितीय अध्याय– आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य और भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का वैशिष्टय

आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य का स्वरूप और विकास, भंवर सिंह सामौर की गद्य दृष्टि, हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा, हिन्दी गद्य का उद्भव एवं विकास, प्रारम्भिक गद्य रचनाएं, भारतेन्दु युग में गद्य का विकास, द्विवेदी युग मे गद्य

का विकास, हिन्दी निबन्ध विधा का विकास– भारतेन्दु युग (1873 ई.– 1900 ई.), द्विवेदी युग (1900 ई.– 1920 ई.), शुक्ल युग (1920 ई.– 1940 ई.), शुक्लोत्तर युग (1940 ई के उपरान्त), हिंदी साहित्य का जीवनी–साहित्य, भंवर सिंह सामौर की गद्य दृष्टि– सामाजिक दृष्टि, सेवाकार्य, युवाओं की समस्याएँ एवं समाधान, उपेक्षित वृद्धों को सम्मान, जन्मदात्री, पोषणकर्मी को आश्रय, पशुपालन युग के प्रतीक पुरूष, समाज के सारथी, समाज एवं सत्ता के सेतु, लोकहित में समाज निर्माण, चारण समाज अमूल्य रत्न, धार्मिक दृष्टि– धर्म एवं सम्प्रदाय, धर्माचार्य, आध्याात्मिक दृष्टि, मनुष्य केवल मनुष्य, संगठन में आस्था और विश्वास, अहिंसा मार्ग के हिमायती शैक्षिक दृष्टि– अज्ञानता का विरोध, लोक साक्षरता एक अभियान, अनुवाद की महत्ता, आर्थिक दृष्टि, स्वास्थ्य जीवन में सर्वोपरि, नैतिकता व्यक्तित्व का मूलाधार, आदर्श मानवीय जीवन का नियामक, वैज्ञानिक तर्क शक्ति, वैचारिक सार, सांस्कृतिक दृष्टि– ईश्वर के प्रति आस्थिक भाव, गंगाजल की पावनता, गोदान जीविका का आधार राजनीतिक दृष्टि– राजा से भी महान् कविराजा, व्यंग्यात्मकता, स्वतंत्रता के प्रति दृष्टि, गुलामी व स्वतंत्रता में भेद, हर सांस देश हित में, भय से मुक्ति, सामरिक चिंतन, जीवदया भाव, प्रकृति संरक्षक, वृक्षों की रक्षा, दूर दृष्टि, वसुधैव कटुम्बकम् भाव।

तृतीय अध्याय– भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का कथ्य में जीवन दर्शन एवं समाज– धर्मावतार : युगान्तरकारी संन्यासी, जीवन का मूल मंत्र प्रेमभाव, सहज सेवा दर्शन, सहज सेवायोग, लोकसेवा, कंचनमुक्ति, मोक्ष, निष्काम भाव से लोक संग्रह, अभिनव प्रयोग : गंगाजल वितरण, अभिनव प्रयोग : गोदान उत्सव, सर्वे भवन्तु सुखिनः, प्रकृति चित्रण–सहज प्राकृतिक जीवन, प्राकृतिक जीवन शैली, नीलगाय की रक्षा, कुरजा पक्षियों की रक्षा, पिल्लों की रक्षा, मुर्गों की रक्षा, उँटनियों की रक्षा, पशुपालन व कृषि कार्य को महत्ता, मॉरीशस जलपरियों का देश, रेती के प्राकृतिक बिछौने का देश, स्वर्ग की रचना का प्रेरक मॉरीशस, बारा राष्ट्रीय उद्यान एवं मर्चीशन प्रपात का प्राकृतिक सौंदर्य, राष्ट्रीयता– जन्मभूमि से प्रेम, स्वतन्त्रता की रक्षा,

अठ्ठारह सौ सत्तावन का क्रांतिवीर : शंकरदान सामौर, राजस्थानी शक्ति काव्य, युद्ध नायक : शेखावाटी के यशस्वी चारण, वीर प्रसूता भूमि : शेखावाटी, स्वतंत्रता संग्राम का आगाज : चूरू मंडल के यशस्वी चारण, शौर्य रूपी संजीवनी शक्ति के प्रेरक : चूरू के योद्धा, आत्मोत्सर्ग की पावन भूमि : आऊवा, प्राचीन राजस्थानी काव्य का परिचय, रावत सारस्वत का अद्वितीय व्यक्तित्व व कृतित्व, पुस्तक : सबसे बड़ा स्मारक, रावत सारस्वत की स्मृति में किए गए कार्य, व्यंग्य– प्रेम के नाम से पापाचार, मैकाले की शिक्षा : गुलामी में खींची लकीर, धर्माचार्य : तोते, अपनी–अपनी डफली और अपना–अपना राग, आधुनिक बोध–भारतीय चिंतन एवं क्रिया में युगांतर, विश्व शांति की कामना, वर्तमान विज्ञान पर आधुनिक बोध, तुलनात्मक आधुनिक बोध, हर व्यक्ति का कर्म महान्, लोक पूज्य देवियां : आधुनिक बोध की प्रतिनिधि, समकालीन चिंतन धाराएँ एवं विमर्श– लोक साक्षरता का महायज्ञ, समकालीन चिंतन, समकालीन चिंतन और युद्ध–काव्य, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, समकालीन चिंतन : मरण–त्यूंहार, सैनिकों को नई दृष्टि व प्रेरणा प्रदान करना, समकालीन विमर्श : मानव चेतना, नवोदित कवियों को प्रेरणा, संगठन शक्ति की महत्ता, नूतन प्रेरणा, सर्वधर्म आदर, सांस्कृतिक सनातन दृष्टिकोण, सांस्कृतिक परम्परा, मीडिया की चुनौती, विमर्श : प्रवासी भारतीयों की पुण्य भूमि भारत, आज की युवापीढ़ी की छटपटाहट, सेवा संगठन एक मौसम, संगठन की समाप्ति आत्महत्या, सांस्कृतिक वर्षा, तत्परता, परहित कामना, भारत एक आध्यात्मिक देश, निर्भय होकर कर्म करें, वृद्धावस्था का समाधान, सेवा कार्यों के मूल आधार, संस्कार सिंचन, एक–एक रुपया प्रति परिवार से सेवा कार्य, काल चेतना।

चतुर्थ अध्याय– भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का शिल्प

भाषा वैशिष्ट्य, शैली, शिल्प परिभाषा एवं स्वरूप, गद्य साहित्य का शैलीगत अध्ययन, शैली का स्वरूप, वर्णनात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, संवादात्मक शैली, काव्यात्मक शैली, वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग, आँचलिकता, पूर्वदीप्ति, साक्षात्कार

शैली, रचना प्रक्रिया, राजस्थानी भाषा का प्रयोग, संस्कृत भाषा के वाक्य, शब्द विधान, संस्कृत शब्द(तत्सम् शब्द), अंग्रेजी शब्द, फारसी शब्द, अरबी शब्द, तुर्की शब्द, पुर्तगाली शब्द, द्विरुक्त शब्द, ध्वन्यार्थक शब्द, जोड़े के साथ आये सादृश्य शब्द, विशेषण, कहावतें(लोकोक्तियां), मुहावरों का प्रयोग, काव्य पंक्तियाँ/गीत, वाक्य विन्यास, हिन्दी–अंग्रेजी वाक्य, पूर्ण अंग्रेजी वाक्य, घोषणाओं से युक्त वाक्य।

पंचम अध्याय–भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में जीवन मूल्य

मानव मूल्यों का पारिभाषिक विवेचन, मानव मूल्यों में परिवर्तन, जीवन मूल्य का अर्थ एवं समानार्थी शब्द, मूल्य शब्द की व्युत्पत्ति, संस्कृत विद्वानों की मूल्य विषयक मान्यताएँ, पाश्चात्य विद्वानों की मूल्य विषयक मान्यताएँ, हिन्दी विद्वानों की मूल्य विषयक मान्यताएँ, मूल्य और जीवन मूल्य, मूल्य और मानव मूल्य, मूल्य और तथ्य, मूल्य और आदर्श, मूल्य और नॉर्म, मूल्य और वर्जनाएँ, मूल्य और नैतिकता, जीवन मूल्य : अभिप्राय, जीवन मूल्य व परिभाषा, जीवन मूल्य, स्वरूप और महत्त्व, जीवन–मूल्य : संरचना और प्रभावक आधार, जैविक आधार, शारीरिक संरचना, मूल प्रवृत्तियाँ– संवेग, प्रेरणा, सहानुभूति, अभिरुचि, तर्क, पराजैविक आधार, सामाजिक आधार, प्राकृतिक आधार, मानविकी आधार–धर्म, दर्शन, विज्ञान, शिक्षा, साहित्य और कला, जीवन मूल्यों का वर्गीकरण और संक्रमण–मूल्यों का वर्गीकरण, जैविक मूल्य (शारीरिक मूल्य), पराजैविक मूल्य(सामाजिक तथा मानविकी मूल्य), पराजैविक सामाजिक मूल्य, पराजैविक मानवीय मूल्य, मूल्यों का वर्ग संक्रमण, जीवन मूल्य और साहित्य, साहित्य और जीवन मूल्यों का परस्पर संबन्ध, साहित्यिक मूल्यों की रचना प्रक्रिया पर जीवन मूल्यों का प्रभाव, जीवन मूल्यों के संक्रमण पर साहित्य–प्रदत्त मूल्यों का प्रभाव, साहित्य और मूल्य सम्बन्ध : विभिन्न विद्वानों के अनुसार, गद्य और जीवन मूल्य, सामौर के गद्य साहित्य में जीवन मूल्य– आदर्शवादिता, राष्ट्रीयता, सामाजिकता, नारी स्वाभिमान, आतिथ्य सत्कार, नैतिकता।

षष्ठ अध्याय– भंवर सिंह सामौर का गद्य साहित्य में योगदान

गद्य साहित्य लेखन, निबंध लेखन, जीवनी लेखन, राजस्थानी भाषा साहित्य, गद्य साहित्य लेखन में योगदान, लोक देवी साहित्य : लोक पूज्य देवियां, चारण देवियों की ऐतिहासिक परम्परा, समाज में लोक देवियों की भूमिका एवं महत्त्व, सामाजिक शक्ति का निर्माण एवं प्रतिनिधित्व, चारण समाज, राष्ट्र निर्माण में चारणों का योगदान, चारण का शाब्दिक अर्थ, चारणों का भौगोलिक विस्तार, चारणों के मुख्य भेद, नरहा, अवसूरा, चौराड़ा, मारू, चऊवा, गाडण, तुंबेल (तमिल), वाचा, मीसण, गाघड़ा, रेढ़ा, भांचलिया, नइया, घांघणिया, बीजल, रांणगिया, मेहडू, म्हादा, रोहड़िया, रतनू, देवी के उपासक, शक्ति आदोलन का इतिहास राजस्थानी शक्ति काव्य, राजस्थानी शक्ति काव्य, विश्व साहित्य में बेजोड़, पशुपालन युग का विकास, मूल मंत्र : पुरुषार्थ एवं लोकहित, प्रकृति संरक्षण का महत् संदेश, शेखावाटी के चारणों के साहित्य का इतिहासःशेखावाटी के यशस्वी चारण, अद्वितीय राष्ट्र प्रेम, चूरु के चारण साहित्य का इतिहास चूरु मंडल के यशस्वी चारण, चूरू मंडल के यशस्वी चारण, प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के आंदोलन का इतिहास : आऊवा का धरना, संपादित शक्ति आदोलन का इतिहास प्राचीन राजस्थानी काव्य, निबंध लेखन में योगदान, चारण बड़ी अमोलक चीज (निबंध संग्रह) जीवनी लेखन में योगदान, युगान्तरकारी संन्यासी (जीवनी), स्वतन्त्रता का महत्त्व, हमारे साहित्य निर्माता रावत सारस्वत (जीवनी), मीणा जाति का इतिहास, राजस्थानी भाषा साहित्य में योगदान, शंकरदान सामौर (जीवनी), मरण–त्यूंहार, संस्कृति री सनातन दीठ, लोक नीति काव्य, साहित्येत्तर कार्य, अनुवाद, वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग।

उपसंहार

शोध संक्षेपण

आधार ग्रंथ सूची

संदर्भ ग्रंथ सूची

प्रकाशित शोध पत्र–पत्रिकाएँ

Candidate's Declaration

I, hereby, certify that the work, which is being presented in the thesis, entitled **"Bhanwar Singh Samaur Ke Gaddhya Sahitya Ka Anushilan"**in partial fulfillment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of Philosophy, carried under the supervision of **Dr. Leela Modi** and submitted to the (University Department of Hindi, **J.B.D. GOVT. PG. WOMEN COLLEGE, KOTA** (Research Center), University of Kota, Kota represents my ideas in my own words and where others ideas or words have been included. I have adequately cited and referenced the original sources. The work presented in this thesis has not been submitted elsewhere for the award of any other degree or diploma from any Institutions. I also declare that I have adhered to all principles of academic honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea/data/fact/source in my submission. I understand that any violation of the above will cause for disciplinary action by the University and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited or from whom proper permission has not been taken when needed.

(Signature)

Bhani Ram Meghwal

Date:________

This is to certify that the above statement made by **Bhani Ram Meghwal** (**Enrolment No-RS/1425/13, Date 10.08.2015**) is correct to the best of my knowledge.

Date:________

Dr. Leela Modi

(Research Supervisor (s))

(University Department of Hindi/ (J.B.D. GOVT. PG. WOMEN COLLEGE, KOTA)

प्राक्कथन

प्राक्कथन

प्रस्तुत शोध–प्रबंध भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का अनुशीलन पर अध्ययन करने का प्रयास है। यह शोध प्रबन्ध गद्य साहित्य के अनुशीलन में विद्यमान जीवन मूल्यों का प्रमाािणित तथ्य है।

मैं मध्यम परिवार में जन्मा हूँ। बचपन से ही गणतंत्र, स्वतंत्रता दिवस व अन्य अवसरों पर हमारे क्षेत्र में शंकरदान सामौर का देश को आजाद कराने में दिये गए आत्म बलिदान, गाथाओं और गीतों को सुनता आया हूँ। मैं अपनी विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयी शिक्षा के दौरान ही हमारे क्षेत्र के भंवर सिंह सामौर के नाम एवं प्रसिद्धि से परिचित था। चूरू की एक सड़क का नाम रावत सारस्वत मार्ग है। उनके नाम से प्रति वर्ष होने वाले साहित्यिक आयोजन के बारे में समाचार पत्रों में पढ़ता रहा हूँ। बचपन से ही मेरी रुचि गद्य साहित्य पढ़ने में थी। गद्य साहित्य में वर्णित महापुरुषों के प्रेरक प्रसंग मुझे प्रभावित करते रहे हैं। स्नातकोत्तर शिक्षा के बाद मेरा मन इस ओर आकृष्ट हुआ कि मैं इन प्रसिद्ध व्यक्तियों के विशिष्ठ कार्यों एवं योगदान पर शोध कार्य करूँ। पीएच.डी. शोध का सन्दर्भ उपस्थित होते ही मेरे सामने विषय चयन का प्रश्न खड़ा हुआ तब मैंने सुनिश्चित किया कि शोधकार्य गद्य साहित्य पर ही करना है। मैंने आदरणीया डॉ. लीला मोदी के निर्देशन में शोधकार्य करने का निश्चय किया। मैंने आपसे आग्रह किया कि हिन्दी के गद्य साहित्य से सम्बंधित मुझे कोई विषय सुझाए। मैं अपने क्षेत्र के साहित्यकारों के साहित्य पर एवं अनछुए नवीन विषय पर शोध करना चाहता हूँ। तब आपने मुझे भंवर सिंह सामौर के साहित्य के बारे में जानकारी दी। विषय चर्चा के दौरान मेरे मानस में बचपन से हृदय पर पड़ी छाप के पृथक–पृथक निशान शंकरदान सामौर, भंवर सिंह सामौर, रावत सारस्वत मार्ग व संस्थान के कार्य एक ही सूत्र में गूथने लगे और इस विषय पर शोधकार्य करने की इच्छा

बलवती हो गई। मैंने भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का अनुशीलन विषय का चयन करने का दृढ़ संकल्प किया। डॉ. लीला मोदी के मार्गदर्शन से इस विषय पर शोध–कार्य पूर्ण किया।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को अध्ययन की सुविधा के लिए छः अध्यायों में इस प्रकार विभाजित किया गया है–

प्रथम अध्याय में भंवर सिंह सामौर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के प्रत्येक आयामों का तथ्यपरक तटस्थता से विवेचन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य और भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का वैशिष्टय के अंतर्गत आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य का स्वरूप और विकास एवं भंवर सिंह सामौर की गद्य दृष्टि को सप्रमाण दर्शाया गया है।

तृतीय अध्याय में भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य के कथ्य को विविध आयामों एवं दृष्टिकोणों से विश्लेषित व विवेचित किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य के शिल्पगत वैशिष्टय का विस्तृत एवं गहन विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

पंचम अध्याय में भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में निहित जीवन मूल्यों और साहित्य में उनकी प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला गया है,

षष्ठ अध्याय में भंवर सिंह सामौर का गद्य साहित्य में योगदान को प्रस्तुत किया गया है।

उपसंहार में अध्यायों का सार प्रस्तुत किया गया है। अंत में आधार ग्रंथ सूची एवं संदर्भ ग्रंथ सूची दी गई है।

प्रस्तुत शोध में आदर्शात्मक, वैज्ञानिक, यथार्थवादी, साक्षात्कार एवं आधुनिक शोध विधियों की अनेक पद्धतियों का सहारा लिया गया है। मेरे द्वारा किया गया शोध कार्य भावी अध्येताओं के मार्गदर्शन हेतु प्रस्तुत है, जो उनके लिए उपयोगी होगा एवं शोध श्रृंखला में एक कड़ी सिद्ध होगा। विशेष रूप से हिन्दी साहित्य के गद्य साहित्य की नवीन एवं मौलिक विषयवस्तु में एक महत्त्वपूर्ण योगदान होगा, ऐसी मेरी आशा है।

आभार

प्रस्तुत पीएच.डी. शोधप्रबंध की पूर्ण करने के लिए मैं सर्वप्रथम उन मनीषियों को नमन करता हूँ, जिनको विधाता ने एक अधिक मानवीय, अधिक सुंदर, प्रेमपूर्ण, मतभेदों रहित, विभाजन रहित, संवेदनशील, सहानुभूतिपूर्ण और उच्चतर समरस पर आधारित दुनियाँ और संसार निर्मित करने की प्रेरणा दी। जिनकी असीम कृपा से ही मैं अपना यह कार्य पूर्ण करने का प्रयास कर पाया हूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के लिए मैं अपनी शोध मार्गदर्शिका डॉ. लीला मोदी (विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजकीय वाणिज्य कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा) एवं संयोजक हिन्दी, कोटा विश्वविद्यालय कोटा के प्रति अपने हृदयतल की असीम गहराइयों से आभारी व कृतज्ञ हूँ, जिनके अत्यधिक स्नेह, सहयोग, प्रोत्साहन, प्रेरणा व मार्गदर्शन से ही यह शोध–प्रबंध संभव हो पाया, क्योंकि वे हिन्दी साहित्य की सभी शाखाओं व उपशाखाओं के गहरे ज्ञान से अधिकृत हैं। आपने अपनी सूक्ष्म एवं मर्मग्राहिणी दृष्टि प्रदान कर मुझे इस अछूते विषय पर क्रमबद्ध रूप से शोध विवेचन करने में सक्षम बनाया। वास्तव में आपकी दार्शनिक दृष्टि विश्लेषण दक्षता, अवधारणा, स्पष्टता तथा अभिव्यक्ति की मधुरता से ही मेरे ज्ञान का विकास और उन्नयन हुआ। इस दृष्टि से मैं सदैव आपका ऋणी रहूँगा। मुझे आपका जो विश्वसनीय सहारा रहा, वह मेरे भावी जीवन में भी अविस्मरणीय रहेगा, क्योंकि मैंने एक तरह से आपके साथ उठते–बैठते आपके स्वयं के पुत्र जैसा ही दर्जा प्राप्त कर लिया है। आपकी सतत प्रेरणा एवं प्रोत्साहन ही मेरा सम्बल रहा है। अतः आपका ऋणनिर्देश शब्दों में व्यक्त करना संभव नहीं है। मैं जीवनभर इस ऋण में बंधा रहकर ही अपने जीवन को सार्थक मानता रहूँगा।

प्रस्तुत शोध के लिए मैंने मेरे पीएच.डी शोध हेतु पंजीकरण के समय कोटा विश्वविद्यालय के तात्कालिक कुलपति प्रो. मधु शर्मा जी के प्रति अत्यंत आभारी हूँ, क्योंकि उनकी सद्पेक्षा से ही इस कार्य का संपूर्ण होना संभव है।

परिवार हमारे सभी प्रकार के संस्कारों की प्रथम पाठशाला है। अतः इस दृष्टि से मैं अपने माता–पिता श्री रामेश्वर लाल मेघवाल तथा श्रीमती बिमला देवी को अपने जीवन की प्रत्येक उपलब्धि समर्पित करता हूँ। मैं अपने अनुज भाई तोलाराम व ढुकल राम का भी हृदय से आभारी हूँ जिह्नोंने समय–असमय प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मुझे सहयोग प्रदान किया।

मैं अपनी अतिप्रिय पत्नी पुष्पा व मेरी आँखों की पुतलियां व जान से भी प्यारी पुत्रियां प्रिया व अलका को भुला नहीं सकता, जिन्होंने अपनी प्यारी–सी मुस्कान से हमेशा मेरा आत्मविश्वास बढ़ाया है। साथ ही इस शोध–प्रबंध को पूरा करने के लिए प्रेरित करती रही हैं।

मैं प्रस्तुत शोध–प्रबंध के लिए अध्ययन सामग्री एकत्रित करने की दृष्टि से कोटा शहर के विभिन्न विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों के पुस्तकालय प्रभारियों व उनके कर्मचारियों को भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। जिन्होंने मुझे सहयोग प्रदान किया।

मैं भंवर सिंह सामौर के प्रति अपने हृदय के गहनतम तल से आभारी व कृतज्ञ हूँ, जिनके अत्यधिक स्नेह, सहयोग, प्रोत्साहन, प्रेरणा व मार्गदर्शन से यह शोध संभव हो पाया है। व्यक्तिगत रूप से मिलने पर मुझे आपके व्यक्तित्व एवं गद्य साहित्य के अनुशीलन के बारे में बहुत सी जानकारी प्राप्त हुई हैं। आपकी सहृदयता, प्रतिभा, अंतर्दृष्टि, विदित ज्ञान, निरप्रेक्षता और निर्वेयक्तिकता का गूढ़ समन्वित ज्ञान मुझे सहज ही मिल गया।

मैं रावत सारस्वत संस्थान चूरू के सचिव श्री दूलाराम सहारण, रावतजी के पुत्र श्री सुधीर सारस्वत, साहित्यकार श्री श्याम गोइन्का के साथ उन सभी क्षेत्रीय साहित्यकारों मनीषियों का भी आभारी हूँ। जिन्होंने इस नवीन विषय पर शोध

सामग्री संकलन एवं जानकारी देकर मेरी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सहायता की है।

इस स्पष्ट, कुशल, कम्प्यूटराईज्ड टंकण के लिए श्री पवन कुमार पुत्र श्री पेमाराम जी को भी धन्यवाद देता हूँ, जिनके अथक प्रयत्नों से मैं इस शोध–प्रबंध को पूरा करने में समक्ष हो पाया हूँ।

इस शोध–प्रबंध में जिन विद्वानों और विशेषज्ञों की रचनाओं से कण–कण बटोरकर मैंने अपना यह शोध–प्रबंध पूरा किया, उनके प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ। मैं स्वीकार करता हूँ कि इस शोध–प्रबंध में जो कुछ भी उत्कृष्ट है, वह सब मेरी मार्गदर्शिका डॉ. लीला मोदी की ही देन है और जो कुछ त्रुटियाँ हैं, उनका दायित्व मेरा है फिर भी मैं आश्वस्त हूँ कि विशेषज्ञगण उनको नजर अंदाज करेंगे और भविष्य में भी शोधरत् रहने के लिये मेरे को संकल्प बल प्रदान करेंगे।

अंत में मैं यह शोध–प्रबंध मेरे श्री गुरू के चरणों में अर्पित करता हूँ, जिनकी कृपा और अशीर्वाद से मुझे यह शोध लिखने की शक्ति मिली। मैं स्कंदपुराण के इस श्लोक के साथ इस व्यक्त भावना के साथ समाप्त करता हूँ।

यस्य स्मरण मात्रेण, ज्ञान मुत्पद्यते स्वयम्।

य एव सर्वसम्प्राप्ति, तस्मैश्री गुरूवे नमः।।

(भानीराम मेघवाल)

शोधार्थी

वार :

दिनांक

विषय—सूची

क्रं. सं.	विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या
(अ)	प्रमाण पत्र	
(ब)	रुपरेखा	**I-VII**
(ब)	प्राक्कथन	**IX-XIII**
अध्याय—1	भंवर सिंह सामौर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	**1 से 57**
अध्याय—2	आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य और भंवर सिंह सामौर की गद्य साहित्य का वैशिष्ट्य	**58 से 122**
अध्याय—3	भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का कथ्य	**123 से 184**
अध्याय—4	भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का शिल्प	**185 से 237**
अध्याय—5	भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में जीवन मूल्य	**238 से 294**
अध्याय—6	भंवर सिंह सामौर का गद्य साहित्य में योगदान	**295 से 351**
उपसंहार		**352 से 366**
शोध संक्षेपण		**367 से 381**
आधार ग्रंथ सूची		**382**
संदर्भ ग्रंथ सूची		**383 से 387**
प्रकाशित पत्र पत्रिकाएँ		**388 से 402**

प्रथम अध्याय

भंवर सिंह सामौर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

व्यक्तित्व

जन्म एवं शिक्षा

जीवन परिस्थितियां

सामाजिक परिवेश

परिवेश व प्रभाव

सम्मान

कृतित्व

लेखन की प्रेरणा

साहित्यिक कृतित्व

गद्य साहित्य

पद्य साहित्य

साहित्येत्तर कृतित्व

प्रथम अध्याय

भंवर सिंह सामौर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

हिन्दी साहित्य में समय–समय पर ऐसे युगदृष्टा साहित्यकार जन्म लेते रहे हैं, जिन्होंने उत्कृष्ट साहित्य की सृजना द्वारा सम्पूर्ण समाज और मानवता का हित करना ही अपने जीवन का उद्देश्य माना है। वे हिन्दी गद्य साहित्य में एक अमिट छाप छोड़ते हैं। साहित्यकार का जीवन और उनकी साहित्यिक कृतियों का गहरा सम्बन्ध होता है। यद्यपि एक लेखक के व्यक्तित्व का परिचय उसकी रचनाओं में प्रतिबिंबित होता है, तथापि उसका रचनाओं से अलग भी अपना संसार होता है। एक अनुसंधाता को किसी एक साहित्यकार के अध्ययन में उसके व्यक्तित्व का अध्ययन इसलिए महत्त्वपूर्ण होता है कि एक साहित्यकार के व्यक्तित्व की सम्पूर्ण जानकारी यथा उसकी आदतें, उसके शौक, उसकी वृत्ति–प्रकृति, उसकी विचारधारा आदि किसी एक स्थान पर उपलब्ध नहीं हो पाती है। किसी भी साहित्यिक कृति को जानने से पहले यह आवश्यक हो जाता है कि साहित्यकार के जीवन सम्बंधी पहलुओं पर प्रकाश डाला जाए। साहित्यकार के रचना संसार पर उनकी व्यक्तिगत अनुभूति का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। साहित्यकार का व्यक्तित्व अपने–अपने परिवेश के अनुरूप विकसित होता है।

एक सामान्य पाठक की भांति अनुसंधाता में भी साहित्यकार के व्यक्तित्व को लेकर जिज्ञासा होती है इसी जिज्ञासा के परिणाम स्वरूप लेखक का बचपन शिक्षा–दीक्षा जीविका आदि बातें देखी जाती हैं। लेखक की कालावधि में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिस्थितियां भी महत्त्वपूर्ण होती हैं। इन परिस्थितियों का लेखक की सृजन प्रक्रिया पर बहुत प्रभाव पड़ता है। अपने जीवनकाल में प्राप्त अनुभवों से लेखक का निजी एवं साहित्यिक व्यक्तित्व आकारबद्ध होता है। इसी कारण जीवन का साहित्य एवं समाज आदि से सम्बंध स्थापित होता है। लेखक

प्राप्त अनुभवों का सृजनात्मक चिन्तन करता है। इस संदर्भ में डब्ल्यू. एच हड़सन ने कहा है- "A great book is born of the brain and heart of its outhor. He has put himself into its page. They part of his life and are instinet with his individuality"[1]

साहित्यकार की अनुभव सम्पन्नता से उसकी जीवन दृष्टि तथा कलादृष्टि भी विकसित होती है। जीवन में प्राप्त अनुभवों से रचनाकार के व्यक्तित्व को आकार प्राप्त होता है। उसी का प्रतिबिम्ब उसके साहित्य में पड़ता है। इसीलिए किसी भी साहित्यकार के व्यक्तित्व का अध्ययन करना महत्त्वपूर्ण बन जाता है। किसी भी साहित्यकार के साहित्य को सच्चे अर्थों में जानना है तो उनके व्यक्तित्व का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक बन जाता है।

भंवर सिंह सामौर आधुनिक युग में हिन्दी साहित्य के महान् साहित्यकार हैं। आप चारण कुल परम्परा के उज्ज्वल नक्षत्र हैं। आपको हिन्दी साहित्य की लेखन परम्परा विरासत में मिली है। आपने राजस्थानी और भारतीय दोनों संस्कृतियों के महत्त्व को आगे बढ़ाया है। आपको यदि दोनों संस्कृतियों का प्रकाश स्तम्भ कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। आप भारतीय और राजस्थानी संस्कृति के प्रकाश स्तम्भ हैं जिसके उजाले से अतीत आलोकित है और भविष्य आभावान रहेगा।

चारण समाज की प्रमुख परम्पराएं

चारण समाज में ''तीन बातें परम्परा के रूप में चलती आई हैं। एक कवि और भक्त परम्परा, दूसरी देवी अवतार परम्परा और तीसरी सत्याग्रह धरने की परम्परा। सत्याग्रह की परम्परा अद्वितीय है।''[2] सत्य के आग्रह की परम्परा भी धरने, सत्याग्रह एवं झंवर (जौहर) के रूप में प्रारम्भ से ही मिलती है। इन तीनों परम्पराओं का मूल मंत्र था–

''धर जाताँ ध्रम पलटतां, त्रिया पड़ँताँ ताव।

औ तीनूँ दिन मरण रा, कूण रंक कुण राव।।

अर्थात् धरती पर जब संकट आये, स्त्रियों की इज्जत पर संकट आये, मनुष्यता मानव धर्म पर संकट आये तो चाहे वह राजा हो चाहे रंक, सभी अपने प्राण देकर भी इन तीनों संकटों को टालते हैं। जीते जागते ये संकट नहीं आने देते हैं।''[3] चारणों की जीभ पर सरस्वती का निवास है, जो सत्य का मर्म बखानती है जिस वंश की शक्तियां संसार की रक्षा करती हैं। इन चारणों के मुख में चारों वेद निवास करते हैं।''[4] इसी जुझारु चारण परम्परा की जानी मानी विरासत के उत्तराधिकारी है भंवर सिंह सामौर।

वंश भास्कर का स्वर्णिम पृष्ठ : सामौर के कुल की गौरव गाथा

सामौर के वंशज वचनों के पालक, सत्यवादी रहे हैं। सामौर के विरुद से सम्मानित हरसूर सामौर के प्रति समकालीन शासक, सामन्त और सामान्य जन बहुत अधिक प्रेमभाव, श्रद्धाभाव और सम्मान का भाव रखते थे।

वीर रसावतार महाकवि सूर्यमल्ल मिसण ने अपनी कालजयी कृति 'वंश भास्कर' में हरसूर सामौर और उनकी अगली पीढ़ियों का विस्तारपूर्वक इतिहास प्रस्तुत किया है। बम्बावदा के राजा बंगदेव के पुत्र देवसिंह हाड़ा ने हरसूर सामौर की मदद से बूँदी को जीतकर अपने पिता को भेंट किया। हाड़ा कुल का पहला बारहठ हरसूर सामौर था। इनके पुत्र श्यामदास दूरदर्शी गुणवान विद्वान था। इन्हें आदर देने हेतु राजा ने अपने कंधे पर पाँव रखवाकर हाथी पर सवारी हेतु चढ़ाया।

भंवर सिंह सामौर चरणों की सामौर समुदाय के चारण हैं। इनके वंशजों का बम्बावदा, बूँदी, छापर और द्रोणपुर में शासन स्थापित करने में बहुत बड़ा योगदान रहा है। बम्बावदा बूँदी के हाड़ा चौहानों में इनके वंशजों हरसूर, श्यामदास, लोहट,

धीर और केशवदास का बहुत अधिक मान सम्मान था। ये सब वहाँ के बारहठ राजदरबारी कवि थे। अठ्ठारह सौ सत्तावन की क्रांति का वीर जन कवि शंकरदान सामौर भंवर सिंह सामौर के पूर्वज थे।

सामौर का वंश वृक्ष

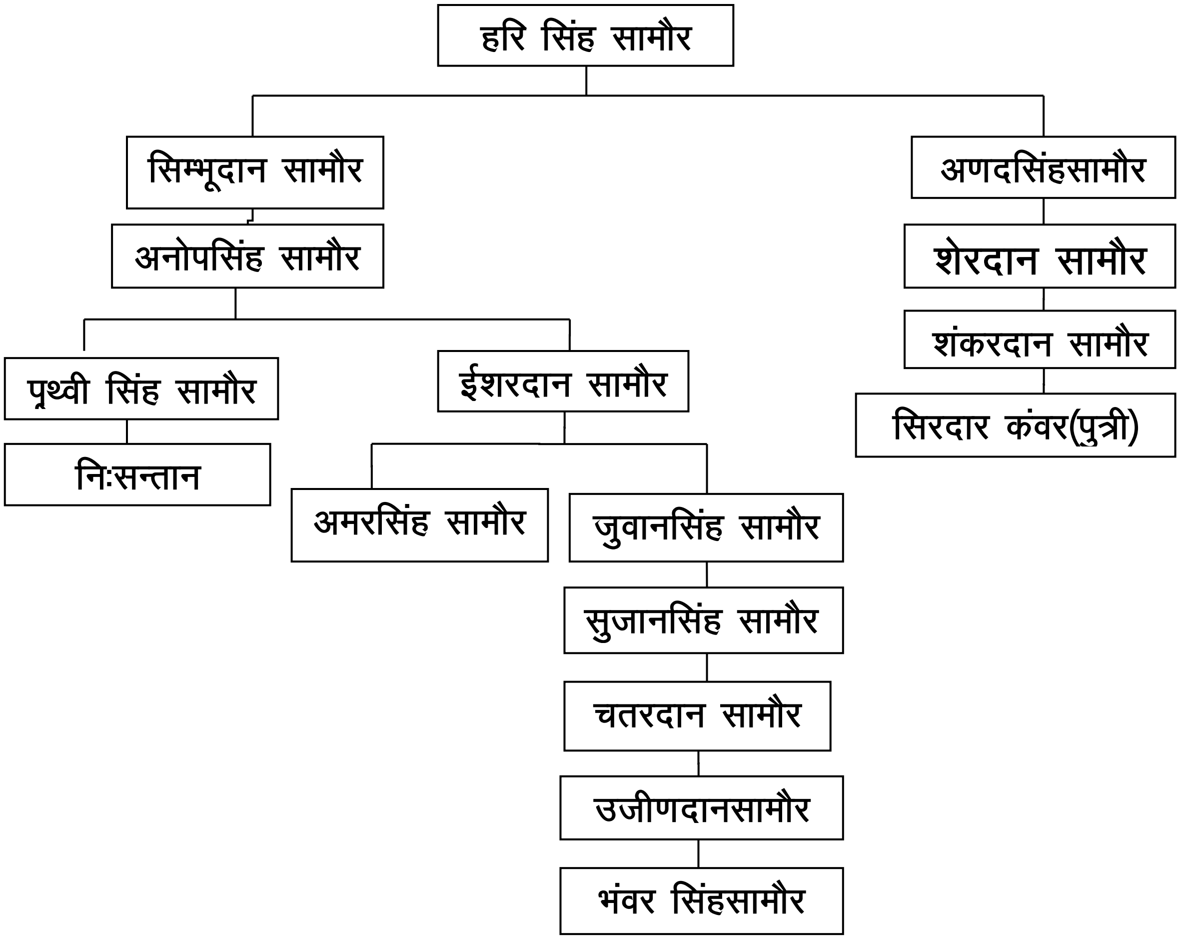

भंवर सिंह सामौर का जन्म एवं माता पिता

भंवर सिंह सामौर का जन्म चूरू जिले की सुजानगढ़ तहसील के बोबासर गाँव में 15 अगस्त 1943 ई. को हुआ। इनके पिता श्री उजीणदान सामौर और माता

नान्हीं कंवर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। इनके जन्म से पूरे परिवार में हर्ष की लहर दौड़ गई।

हस्त रेखा विशेषज्ञ की भविष्यवाणी

जिस समय भंवर सिंह का जन्म हुआ था उन्हीं दिनों जयपुर के जाने माने हस्त रेखा विशेषज्ञ कविरतन हिंगलाजदान कविया और उनके पुत्र कलजी (कल्याणदान) खरकड़ी(झुंझुनूं) आये हुए थे। उन्होंने भंवर सिंह सामौर की हस्त रेखा देखकर बताया कि इनके हाथ में विद्या की रेखा बलवती है। यह विद्याओं का पारखी व महान् विद्वान बनेगा। यह सुनकर लोगों में हँसी की लहर दौड़ गई। वे तालियाँ बजा कर हँसने लगे और कहा कि इस लड़के के हाथ में तो ऊँट और ऊँटनी को चराने की रेखा होनी चाहिए थी। इसके दादा जी चतरदान सामौर के घर सौ ऊँट–ऊँटनियों का समूह है। यह तो जीवन भर ऊँट और ऊँटनियों की देखभाल में जीवन व्यतीत करेगा।

शिक्षा एवं नियुक्ति

भंवर सिंह सामौर ने प्रारम्भिक पाँच वर्ष अपने गाँव और ननिहाल में व्यतीत किये। शिक्षा दिलाने के लिए सामौर को उनके मामाजी दरियाई दान जी अपने साथ खरकड़ी(झुंझुनूं) ले गए। उन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा भागीरथ जी शर्मा से ग्रहण कर कक्षा पाँच उत्तीर्ण की। हाई स्कूल सुजानगढ़ की पीसीबी हाई स्कूल से उत्तीर्ण किया। महाराजा कॉलेज जयपुर से बी.ए. का अध्ययन पूर्ण किया। इस प्रकार सामौर ने संस्कारों की शिक्षा ग्रहण की। आपको स्नातकोत्तर के उत्तरार्द्ध में मैरिट के लिए अध्येतावृत्ति मिलती थी। आप एम. ए. उत्तरार्द्ध में प्रथम श्रेणी से उतीर्ण हुए। आपका कॉलेज व्याख्याता में चयन हुआ और राजकीय लोहिया महाविद्यालय चूरू में नियुक्ति दी गई।

विवाह

सामौर का विवाह बठोठ (सीकर) में हुआ। उनके ससुर नंदलाल सिंह कविया जो सैन्ट्रल रेलवे में सर्विस करते थे। उनकी शिक्षित पुत्री सौभाग्यकांक्षिणी कुसुम कंवर के साथ सम्पन्न हुआ।

परिवार

भंवर सिंह सामौर के घर तीन पुत्रियों और एक पुत्र ने जन्म लिया। सबसे बड़ी पुत्री भारती सामौर एम. ए, पीएच. डी., संस्कृत की वरिष्ठ अध्यापिका है। दूसरी पुत्री आरती सामौर एम. ए, एल. एल. बी., पीएच. डी., विज्ञान की वरिष्ठ अध्यापिका है। तीसरी पुत्री गीता सामौर एम. ए., पीएच. डी., राजस्थान विश्वविद्यालय में हिन्दी के असिस्टेंट प्रोफेसर पद पर कार्यरत है। पुत्र मानसिंह सामौर एम. एस. सी., पीएच. डी., विज्ञान के वरिष्ठ शिक्षक है। इस प्रकार पुत्र–पुत्रियों की शिक्षा–दीक्षा को देखकर सामौर की धर्मपत्नी कुसुम कंवर की कर्तव्यनिष्ठा, दूरदृष्टि शिक्षा के प्रति जागरुकता को जाना जा सकता है। यह कार्य कर्तव्य परायण स्त्री की पहचान है।

गुरुजन

प्रारम्भिक शिक्षा के समय खरकड़ी में उन्हें भैरु प्रसाद जी जैसे शिक्षा शास्त्री, विद्याओं में पारंगत, दीक्षित गुरुवर का सानिध्य मिला। भैरु प्रसाद जी ने उनमें शिक्षा के प्रति लगन की भावना जागृत की। संस्कारों की शिक्षा भागीरथ जी शर्मा से ग्रहण की। मास्टर साहब मांगीलाल जी, कन्हैयालाल सेठिया, गिरीश जी मिश्र और नथमल जी से काव्यपाठ का ज्ञान मिला। महाराजा कॉलेज में हिन्दी साहित्य का अध्ययन तत्कालीन हिन्दी के विद्वान डॉ. देवराज उपाध्याय से किया। प्रो. आर. एस. कपूर साहब से इतिहास का अध्ययन किया और अर्थशास्त्र की पढ़ाई प्रो. जी. आर. शर्मा के निर्देशन में की। अगस्त क्रांति के अग्रदूत जयप्रकाश नारायण द्वारा युवाओं से

खादी पहनने का आह्वान किया तब से सामौर ने खादी को अपनाया और आज यह उनके जीवन शैली का अभिन्न अंग बन चुकी है। जयप्रकाश नारायण ने अपने सम्पूर्ण जीवन भंवर सिंह सामौर पर आशीर्वाद बनाए रखा।

सहपाठी साथी

डॉ. गोरधनसिंह शेखावत, डॉ. किरण नाहटा, कल्याण सिंह शेखावत, आशुतोष गुप्त, तेजसिंह जोधा, नंद भारद्वाज, जीवणसिंह मानवी आदि भंवर सिंह सामौर के विश्वविद्यालयी जीवन के सहपाठी साथी हैं। आकाशवाणी जयपुर के कवि सम्मेलन में उनकी जान पहचान रेवतदान चारण, शक्तिदान कविया और भीम पांडिया से हुई।

चरित्रिक विशेषताएं

श्रेष्ठ शिक्षक

राजकीय लोहिया महाविद्यालय चूरू में सामौर का आगमन उनके जीवन के नये अध्याय की शुरुआत थी। उनके जीवन को नया आयाम मिला, क्योंकि राजकीय लोहिया कॉलेज की पहचान राजस्थान के गिने चुने नामी कॉलेजों में की जाती है। उस जमाने में सामौर की एक श्रेष्ठ शिक्षक के रूप में पहचान इस बात से हो जाती है कि उस समय लोहिया कॉलेज में हनुमानगढ़, सीकर, झुंझुनूं, गंगानगर, श्रीडूंगरगढ़, सरदारशहर, हिसार, लुहारु से विद्यार्थी पढ़ने के लिए चूरू आते थे।

अगस्त 1996 तक सामौर ने राजकीय लोहिया महाविद्यालय में कॉलेज व्याख्याता के रूप में सरकारी सेवाएं दी। उसके बाद पदोन्नति होकर प्राचार्य के रूप में टोंक, रतनगढ़, तारानगर में एक–एक वर्ष सेवाएं प्रदान की। उनके बाद सामौर राजकीय लोहिया महाविद्यालय चूरू के प्राचार्य बनकर आये। 31 अगस्त 2001 को यहीं से सेवानिवृत्त हुए। आज भी आपको एक श्रेष्ठ शिक्षक के रूप में याद किया जाता है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी

भंवर सिंह सामौर द्वारा हिन्दी और राजस्थानी भाषा में किए गए मौलिक और संपादित कार्य की प्रशंसा समस्त राजस्थान में की जाती है। आप पिछले 50 वर्षों से हिन्दी और राजस्थानी साहित्य के गद्य–पद्य अनुवाद और सम्पादन कार्य में तल्लीन हैं। सामौर हिन्दी साहित्य अकादमी नई दिल्ली के राजस्थानी परामर्श मण्डल के सदस्य भी रहे हैं। राजस्थानी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अकादमी बीकानेर की कार्यकारिणी समिति के सदस्य रहे हैं। राजस्थान राज्य धरोहर सरंक्षण एवं प्रोन्नति प्राधिकरण के संस्थापक सदस्य रहे हैं। महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय अजमेर की हिन्दी पाठयक्रम समिति के आप सदस्य और संयोजक रहे हैं। लोक संस्कृति शोध संस्थान नगरश्री चूरू की राजस्थानी भाषा अभियान समिति के संस्थापक अध्यक्ष हैं। राजस्थानी साहित्य एवं संस्कृति जनहित प्रन्यास के संस्थापक ट्रस्टी, प्रयास संस्थान चूरू के आप संस्थापक सरंक्षक हैं। चारण साहित्य शोध संस्थान, अजमेर के आप मानद निदेशक रूपायन सस्थांन बोरूदा की कार्य समिति के सदस्य बीकानेर जोधपुर और उदयपुर विश्वविद्यालयों में राजस्थानी पाठ्यक्रम समिति के सदस्य लोहिया कॉलेज और विधि कॉलेज चूरू की विकास समिति के सदस्य भी आप रहे हैं। आप अखिल भारतीय चारण महासभा के महामंत्री पद पर सुशोभित हैं। इनके अलावा अनेक संस्थाओं से आप जुड़े रहे हैं तथा लोक भारती भवन बोबासर के आप संयोजक पद पर विराजमान हैं।

लेखक निर्देशक एवं अभिनेता

छात्रावास अधीक्षक भूरदान जी बारहठ ने छात्रावास में उत्सव तथा समारोह में नाटक खेलने की नई परंपरा की शुरुआत की। उन्होंने कहा कि विद्यार्थी ही नाटक लिखेंगे मंचन करेंगे और नाटक में विभिन्न प्रकार की भूमिका निभायेंगे। नाटक लेखन की जिम्मेदारी भंवर सिंह सामौर को सौंप दी। भंवर सिंह सामौर ने

अमर शहीद क्रांतिकारी प्रतापसिंह बारहठ के जीवन चरित पर आधारित एक नाटक 'मैं नाम नहीं बताऊंगा' की रचना की। इस नाटक का निर्देशन किया एवं क्रान्तिकारी केसरी सिंह बारहठ की भूमिका भी स्वयं भंवर सिंह सामौर ने निभाई। नाटक की रचना निर्देशन एवं मंचन हेतु भंवर सिंह सामौर की बहुत प्रशंसा की गई। यहीं से सामौर को कविकर्म करने के लिए अंतःप्रेरणा ने प्रोत्साहित किया।

सादा जीवन : सार्वमांगलिक परिकल्पना के काव्यकार

भंवर सिंह सामौर एक सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक और औपनिषदिक आभा के रचनाधर्मी हैं। वे भारतीय प्रज्ञा के प्रतिनिधि गद्यकार और सार्वमांगलिक परिकल्पना के काव्यकार हैं। हिन्दी नवलेखन में वे एक गरिमामय अभिजात शैली के प्रवर्तक सिद्ध हुए हैं। सामौर का व्यक्तित्व उनकी साहित्यिक शैली बनता गया। क्रमशः अद्वितीयता की खोज से सामाजिक सरोकारों से सरलता और स्वतंत्र लेखन की खोज में सदैव आगे बढ़ते हुए संलग्न हैं।

स्पष्ट मृदुभाषी श्रेष्ठ वक्ता

भंवर सिंह सामौर भाषण कला में दक्ष हैं। सामौर की भाषण शैली को जनमानस बड़े ही चाव से सुनते हैं और सुनने के लिए आतुर रहते हैं। 8–9 जनवरी 2005 में कोलकाता में हुए अखिल भारतीय राजस्थानी समारोह में जो मृदुभाषी स्पष्ट और श्रेष्ठ भाषण दिया था उसको लोगों ने बड़े ही चाव से सुना। डॉ. किरण नाहटा ने राजस्थानी गंगा पत्रिका में इस भाषण को शब्दशः प्रकाशित किया। इसी प्रकार हैदराबाद में आयोजित अखिल भारतीय राजस्थानी सम्मेलन का भाषण सुनकर राजस्थान विधानसभा अध्यक्षा श्रीमती सुमित्रा सिंह ने मंत्र मुग्ध होकर सामौर को बधाईयां प्रेषित की। जयपुर में हुए प्रथम अन्तराष्ट्रीय राजस्थानी सम्मेलन में सामौर के भाषण की प्रशंसा राना अमेरिका के प्रतिनिधि ने की। इस भाषण को शब्दशः अकादमी की जागती जोत पत्रिका में प्रकाशित किया।

सामौर जब बोलते हैं, तो तथ्यों और उदाहरणों के द्वारा परम्परा भाषा साहित्य, संस्कृति एवं इतिहास को वर्तमान के लिए प्रासंगिक बनाकर इतने मनोहारी रूप से प्रस्तुत करते हैं कि श्रोता मंत्र मुग्ध होकर सुनता ही चला जाता है। इस बात का अन्दाजा इस उदाहरण से लगाया जा सकता है। कैलाश आश्रम महुवा, गुजरात में अस्मिता पर्व के अवसर पर सामौर ने राजस्थानी लोक वाङ्मय विषय पर अपना व्याख्यान दिया तो मोरारी बापू ने एक घण्टे तक मंत्र मुग्ध होकर भाषण को सुना था।

साहसी निडर एवं दृढ़संकल्पी

भंवर सिंह सामौर न तो अवसरवादी हैं और न ही ढुलमुल नीति वाले हैं। आप दृढ़संकल्पी हैं वे अपनी धारणाओं को चट्टान मानते हैं। जहाँ अन्य साहित्यकार अपने साहित्य के बहाने जीवन की अनेक स्थितियों का अंकन करते हैं, वहीं सामौर जी गद्य साहित्य की समग्र चेतना को कतिपय संकेत, सूत्रों, प्रतीकों में व्यक्त कर जाते हैं। आप प्रखर वक्ता एवं अच्छे निडर लेखक हैं। आप अपने गद्य साहित्य में सृजन परंपरा की पार्श्विक सांस्कृतिक गरिमा और प्रगत्युन्मुखी चेतना को प्रमुखता से अभिव्यक्त करते हैं। आपके गद्य साहित्य में विभिन्न देशों की प्रकृति और लोकजीवन का उदार लेकिन अविरल मानवतावादी दृष्टि से किया हुआ भाव–भीना चित्रण हिन्दी के गद्य साहित्य में उनका शीर्ष गरिमा बोध है और दूसरे पर आधुनिक जीवन की प्रतीक रेखावत स्थिति संकट बोध। उनकी मानवतावादी निडर और साहसिक दृष्टि अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं तक जाती है। आपने मानवीय संबंधों में लोकमंगल और सांस्कृतिक संदर्भों की व्याख्या करते हुए समय की महत्ता प्रतिपादित की है। आपका साहित्य ही इस प्रभाव से सरोबार है।

आस्थावान : देवी उपासक

भंवर सिंह सामौर एक आस्थावादी साहित्यकार हैं। आपने अपने जीवन में अनेक उतार चढ़ाव देखे हैं। आप ईश्वर में आस्था और विश्वास रखते हैं। आप की इस आस्था को आपके द्वारा सम्पादित 'राजस्थानी शक्ति काव्य' एवं रचित कृति 'लोक पूज्य देवियां' में देखा जा सकता है, जिसमें विभिन्न क्षेत्रों में प्रसिद्ध देवियों के प्रति आस्थाओं को अभिव्यक्ति मिली है। आपकी ईश्वर के प्रति आस्था को इस शक्ति काव्य में झलक के रूप में देखा जाता है। आप दैवीय शक्ति में विश्वास करते हैं।

नई सोच नई दृष्टि के जनक

सामौर कहते हैं कि वैचारिकता और प्राणता दोनों के बिना मनुष्य की कल्पना असम्भव है, इनमें से कोई भी यदि चुकने लग जाये तो मानव चेतना ऐसे उतार के दौर से गुजरने लगती है, जिससे उबरना मुश्किल हो जाता है। जीवन की अपनी एक अदम्य गूढ़ प्राण शक्ति है, उसके गूढ़ नियमों से वैज्ञानिक बुद्धि क्या पार पा सकती है? जीवन की प्राण ऊर्जा का अपना एक निजी सत्य है, जैसे बुद्धि का है। जीवन की प्राण शक्ति एक जीवन प्रक्रिया है। भोगे हुए यथार्थ को सूक्ष्म के धरातल पर ग्रहण करने पर एक विशेष दृष्टि उत्पन्न होती है जो चिन्तन परक होती है। ऐसा चिंतन–मनन आगे चलकर दर्शन बन जाता है। जीवन के गूढ़ सत्यों से परिचित उसके क्षण जन्म लेते नये विधानों को जानने वाला और नई अभिव्यक्ति देने वाला पथ प्रर्दशक बन जाता है।

साहित्य में शब्द यज्ञ के सारथी

भंवर सिंह सामौर अपनी रचनाओं के शब्दयज्ञ में संलग्न हैं। आप व्यक्ति को संस्कारित कर मनुष्य बनाने में लगे हुए हैं। आपका यह पूर्ण विश्वास है कि समस्त

जीवमात्र के लिए किए गए शब्द यज्ञ का नाम ही साहित्य है। शब्द द्वारा किया गया साहित्यकार का यह यज्ञ चेतना विकास की यात्रा की प्रक्रिया है, जो देश और काल दोनों का अतिक्रमण कर जाती है। शब्द उच्चारित होने को ही आप यज्ञ कहते हैं, लेकिन सार्थक शब्द के उच्चारण, चेतना के साधक प्रकाशक शब्द के उच्चारित होने में न जाने कितनी साहित्यकार की तपस्या संचित होती रहती है, तभी यह यज्ञ प्रक्रिया सम्पन्न होती है। आपके अनुसार स्वयं मेघ, संज्ञा से क्रिया प्रायः कठिनाई से ही बना करते हैं और उसके लिए वर्षों–वर्षों से वंचित तक रह जाना पड़ता है। शब्द के क्षेत्र में यह याज्ञिक वर्षा वर्षों से नहीं हुई है। ऐसे शब्द यज्ञ के कर्ता साहित्यकार आधुनिक काल में तो ओझल हैं। आप साहित्य के मंत्र हो जाने को ही साहित्य की सार्थकता मानते हैं। जब आप से पूछा जाता है कि क्या मंत्र और साहित्य का प्रयोजन एक ही है तो उनका जबाब हाँ में होता है।

सामौर के गद्य साहित्य की शब्दावली संकीर्णताओं से पूर्णतः मुक्त है। आप काल की अवधारणा का चक्राकार और उसकी गति को वृत्ताकार मानते हैं। भारतीय अवधारणा के अनुसार काल सीधी रेखा में संचरित नहीं होता बल्कि उसकी गति वृत्ताकार है। मगर वैज्ञानिक और भारतीय दृष्टि से देखे तो आपकी सारी गद्य साहित्यिकता अर्थवान लगती है।

भंवर सिंह सामौर के सन्दर्भ में विविध विद्वानों के कथन

समकालीन साहित्यकार, इतिहासकार और सामाजिक कार्यकर्ता सामौर के सन्दर्भ में अपने भाव गद्य और पद्य में विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में व्यक्त करते हैं, जिससे आपके कृतित्व और व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जा सकता है।

विजयदान देथा ने गुरुदास भारती को लिखे पत्र में सामौर के संदर्भ में लिखा–''कल भंवर सिंह सामौर संयोग से यहाँ आये हुए थे। मेरे रंग–ढंग और चाल–चलन, रहन–सहन को देखकर उन्होंने आश्चर्य किया होगा। वे जल्दी ही वापस लौट गए।

उनसे ज्यादा समय तक वार्तालाप नहीं हो सकी। आपके गुरुवर सामौर वास्तव में गुरु पद के योग्य है। उनका तन्दुरुस्त शरीर, गठीला बदन और बिना किसी छल रहित, कपट रहित अन्तःकरण वे जैसे दिखते हैं, वैसे ही करते हैं अर्थात् उनकी करनी और कथनी में अंतर नहीं है। सामौर के संदर्भ में कहते हैं कि किसी की आँख में डालने पर भी किरकिरी नहीं बनते हैं अर्थात् सभी के साथ सामंजस्य स्थापित कर आगे बढ़ने वाले साहित्यकार ही नहीं बल्कि समाज सेवी भी हैं।'' जोधपुर के सिद्धकरण जुगतावत बणसूर भंवर सिंह सामौर की पुस्तकों की प्रतिक्रिया स्वरूप लिखते हैं–

''जननी हरखी जनम दे, किया विसाई काज।

सोध देख सामौर री, सांचो हरख समाज।

भंवर भलां ही थूं भण्यौ, सांचै मन सामौर।

ओळखांण जाती अखण, कसर न राखी कोर।

खांप ख्यात लिखतां खप्यो, जबर लगायो जोर।

हरख हिये में हां हुयो, म्हारै सांचै मन सामौर।

शेखावाटी संग चूरू , जोगा चारण जोय।

सोध करी सामौर थे, हुई न किण सूं होय।

सामौरां हिय सुरसती, पूरी आंठू पोर।

देस भगत दातार दिल, शंकर जी सामौर।

भाग भला उण भोम रा, जठै जोगा जलमै जोर।

सारांइ बोबासर सिरै, समझ भर्‌या सामौर।

आखिर दूहो आखतां, कहूं भंवर कर कोड़ ।

लिखतो रहजे लाडला, चाह न दीजे छोड़।''

इसी प्रकार चारण चिंतन के सम्पादक महोदय शुभकरण देवल भंवर सिंह सामौर की पुस्तकों का साहित्यिक विश्लेषण करने के उपरान्त लिखते हैं–

''घटा मेघ ज्यूं गाजणी, जिण री कविता जोर।

दाखूं शंकर दूसरो, सुकवि भंवर सामौर।''

नारायणपुर (अलवर) के रघुवीर सिंह जागृत भंवर सिंह सामौर के सन्दर्भ में कहते हैं–

''पूर्व कर्म प्रभाव से, प्रकट भये पुर जोर।

करणां दे री अति कृपा, सोहरा थे सामौर।''

डॉ. शेरसिंह बीदावत अपने भाव प्रकट करते हुए कहते हैं–

''बोबासर बहुगुणं धरा, शंकर कवि सिरमौर।

उणी एळ में जलमिया, सिंह भंवर सामौर।

जलम्या भण्या भणाविया, ठसकै सूं इण ठौड़।

सुरसत रा सुत भंवर सिंह , सामौरां सिर मौड़।

मुळकै पण बोलै नहीं, बोलै बात सटीक।

खादी सादी पैरणी, मिनख पणै री लीक।

मेहाई रिच्छ्या करै, सुरसत री आसीस।

बोबासर रा भंवर सिंह , जीवौ लाख बरीस।''

अस्त अलीखां मलकाण भंवर सिंह सामौर बाबत बताते हैं–

''चूरू आग्यो चाल, परतख पोथ्यां लाव सूं।

जाबक झोळै घाल, हाजर होस्यूं भंवर जी।

हूयो घणो पण हरख, खूड़ मांय थे खुद मिल्या।

परतख कीधी परख, मोती कूंत मराल ज्यूं।''

खारी(जोधपुर) के कान्हदान बारहठ भंवर सिंह सामौर की प्रशंसा में लिखते हैं–

''धोती धारी वेस में, मोती जिसड़ो मन्न।

तन छोटो मनड़ो बड़ो, रंगभंवर सिंह धन्न।

दीखतड़ो दुबळो दिखै, क्रस्ण तणै रंग रूप।

गाढ़ा गुणां रा मानवी, अन्तस घणो सरूप।

आव भगत इंसानियत, बोलत बयण अमोल।

भंवर सिंह रै वेस में, गाँधी वाळो घोळ।

सामौरां सिरमौर थे, शंकर बंस सुजांण।

कीरत ऊजळ थे करी, अपणायत अप्रमाण।

शंकर पद चिह्न सांपरत, ऊँचै उसूलां आप।

गुण विसेस भंवरेस घण, ओरां सूं अणमाप।

जस शंकर जाहर कियौ, कलमां लिखदी क्रोड़।

पूरवज नाम प्रकासियौ, सामौरां सिर मोड़।''

लोक संस्कृति शोध संस्थान नगरश्री चूरू के संस्थापक अध्यक्ष सुबोध कुमार अग्रवाल भंवर सिंह सामौर को सरस्वती पुत्र कहकर जन्मसिद्ध साहित्यिक संस्कारों सहित हिन्दी और राजस्थानी के नये साहित्यिक सृजन में सबसे अलग छवि रखने वाले, चारण साहित्य के सुप्रसिद्ध व्याख्याकार मानते हैं।

धर्मपाल आर्य(वेद पथिक) मेरठ लिखते हैं–

''श्री वर्य भंवर सामौर जगत में ख्याति प्राप्त इंसान बने।

भारत के साहित्य जगत की अनुपम ये पहचान बने।''

वेद पथिक श्री भंवर सिंह सामौर शब्द की व्याख्या इस प्रकार करते हैं–

''श्री– श्रीमुख सरल सत्य संजीता।

भं– भंवर राग सम भव्य संगीता।

व– वरेण्य वीर व्रत शिष्ट विनीता।

र– रमण भ्रमण रमते श्री रामा।

सिं– सियाराम शुभ काज सुदामा।

ह– हँस–हँस नित ह्रदय हँसावें।

सा– सादर सरल शुचि सुख सरसावें।

मौ– मौन ममता मम मनहर वाणी।

र– रक्षा रक्षित रक्षक जग प्राणी।''

वेद पथिक भंवर सिंह सामौर शब्द की पुनः व्याख्या इस प्रकार करते हैं–

''भं – भंगिमा भ्रम की हटाए जा।

व – वरेण्य वरदान तू पाए जा।

र – रत रह रहीम ओर राम में।

सिं –सिंह की दहाड़ तू लगाए जा।

ह – हम और हमारी समता बड़ी।

सा – साम गान गीत तू गुनगुनाए जा।

मौ – मौत को भी मात दे अमरत्व से।

र – रवि बन के ओम तू गुनगुनाए जा।''

डॉ. राजेन्द्र बारहठ शोध अधिकारी राजकीय महाविद्यालय ओसियां (जोधपुर)भंवर सिंह सामौर के लिए लिखते हैं–

''कविता शक्तिदान री, ख्यात दीठ सामौर।

नाटक अर्जुन देव रा, दीठा न दूजा और।।''

रामावतार शर्मा **'कह साथी सुन मीत'** नामक अपनी पुस्तक (पृष्ठ संख्या–79,80) में भंवर सिंह सामौर के संदर्भ में अपने विचार इस प्रकार प्रकट करते हैं–

''राजस्थानी के धणी, भंवर सिंह सामौर।

मायड़ भासा की करी, ये सेवा पुरजोर।

ये सेवा पुरजोर, कि वक्ता धारदार हैं।

कवि लेखक के संग, कि ऊँचे व्यंग्यकार हैं।

कह साथी रच दीन, पुस्तकें अदभुत न्यारी।

प्रोफेसर श्रीमान्। आपकी महिमा भारी।

दूर निकट सब जानते, भंवर सिंह सामौर।

इनके दर्शन के लिए, मन में उठे हिलौर।

मन में उठे हिलौर, आप में धैर्य समाया।

उच्च पदों को पाय, अह्म का भाव न आया।

कह साथी सुन मीत, इन्हें मुस्काते पाया।

बस कर चूरू आप, नगर को धन्य बनाया।

मायड़–भाषा पुरुष की, बड़ी बनी पहचान।

सर्व क्षेत्र में कर रहे, इनका बहु सम्मान।

राजस्थानी शीश, आपने शिखर चढ़ाया।

कह साथी है बहुत, सादगी ममता वाले।

इनसे मिलकर मिले, हृदय को बहुत उजाले।''

डॉ. सत्यनारायण व्यास कहते हैं–

''चित चढ़ियो चित्तौड़, चूरू कीनी चाकरी।

काळजिया री कोर, सिंघ भंवर सामौर सा।''

जीवन परिस्थितियां

चारणों की जुझारु परंपरा

अतीत से चली आ रही चारणों की जुझारु परंपरा का खून सामौर की रग–रग में बसा हुआ है। तागा, धागा, तेलिया, धरणा, झंवर आदि एवं चारणों का तो रोटी और खून का सा सम्बंध माना जाता है। आपने चारणों के इस रिश्ते 'रोटी और खून का रिश्ता' को गहराई से समझा और गहराई से जाना।

चारणों की प्राणवायु : कविता

भंवर सिंह सामौर ने कविता को चारणों की सांस अर्थात् प्राण मानकर स्वीकार किया है। आपका मानना है कि यदि प्राण नहीं है तो शरीर का क्या महत्त्व है। प्राणविहीन शरीर शव है। इसी प्रकार यदि कविता नहीं तो चारण नहीं अर्थात् कविता के बिना चारणों का कोई महत्त्व नहीं है। अतः चारणों की प्राणवायु कविता कर्म है।

सामाजिक परिवेश

स्नातक की परीक्षा देने के बाद जैसे ही भंवर सिंह सामौर घर पर अपने गाँव बोबासर आये तो उन्हें पता चला कि उनकी शादी की रस्म अतिशीघ्र ही पूरी होने वाली है। उनके जीवन में यह एक अदभुत ही संयोग था। नियति का खेल भी निराला होता है। जन्म, पढ़ाई, और सगाई का संयोग। सामौर के दादा–दादी और माता–पिता ने निर्णय लिया कि सामौर की शादी पढ़ी लिखी युवती के साथ की जायेगी। उनका फैसला था कि पढ़े–लिखे भंवर के लिए पढ़ी–लिखी भंवराणी लाएंगे। सामौर की सगाई बठोठ(सीकर) में की गई अर्थात् सामौर का ससुराल बठोठ(सीकर) था, लेकिन उनके श्वसुर नंदलाल सिंह कविया सैन्ट्रल रेलवे में सर्विस करते थे। वे छुट्‌टी पर आये हुए थे और अपनी पुत्री के लिए योग्य वर की तलाश में थे, उन्होंने सगाई करके विवाह की तारीख निश्चित कर दी। भंवर सिंह सामौर के दादाजी चतरदान सामौर ने नंदलाल सिंह से मजाक करते हुए कहने लगे कि नंदलाल जी आपकी पुत्री ने तो उम्र भर नल का पानी पीया है और हमारे सुजानगढ़ में तो पानी पीने के लिए भी नहीं है, नल की बात तो बहुत दूर की। आपने अपनी पुत्री को इस भूखे प्यासे रेगिस्तान की धरा के सुजानगढ़ के बोबासर गाँव में शादी करने की क्यों सोची? इस पर हँसते हुए सामौर के ससुर नंदलाल सिंह ने जबाब दिया कि मैं अपनी पुत्री का विवाह सुयोग्य और पढ़े–लिखे युवक से करना चाहता हूँ। पानी का क्या हैं? पानी की तो मैं बोगी(टेंकर) भिजवा सकता हूँ, किन्तु इतने अच्छे लड़के को ही अपनी पुत्री दूंगा।

इस प्रकार बड़े ही लाड़ प्यार और शान शौकत से उन्हें दुल्हे के रूप में सजाया गया। बारात ऊँट और घोड़ों पर सवार होकर गाड़ियों से बीठोठ(सीकर) पहुँची। गाँव के लोग चतरदान सामौर के जो हम उम्र थे आपस में हँसने लगे, एक दूसरे को कहने लगे कि पढ़ी–लिखी पोते की बहू चतरदान लाया है, उसे अब सांसारिकता का भान होगा। पढ़ी–लिखी लड़की ग्रामीण परिवेश में जीवन कैसे

व्यतीत करेगी? लेकिन उनकी धर्मपत्नी ने यहाँ की क्षेत्रीय भाषा व समस्त गृहकार्य सीख लिए।

परिवेश एवं प्रभाव

भंवर सिंह सामौर ने राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर हिन्दी विभाग से स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की एवं शोध कार्य भी किया। यहीं डॉ. माताप्रसाद गुप्त, डॉ. सत्येन्द्र, डॉ. सरनामसिंह शर्मा 'अरुण', डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित, डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, डॉ. मूलचंद सेठिया, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा, डॉ. भानावत, डॉ. शम्भूसिंह मनोहर और प्रो. कृपाशंकर तिवाड़ी जैसे एक से बढ़कर एक महान विद्वानों को सानिध्य मिला। इस समय को सामौर अपने जीवन का सुनहरा समय मानते हैं।

राजस्थान विश्वविद्यालय के उपकुलपति मोहनसिंह सामौर के साहित्यिक योगदान का पीठ थपथपाकर सम्मान करते थे। उसी समय जयपुर आकाशवाणी के प्रोग्राम में सामौर के कार्यक्रम आने शुरू हो चुके थे। डॉ. सम्पूर्णानंद जी राजस्थान के राज्यपाल ने मेधावी विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करने एवं उन्हें अपनी प्रतिभा को उचित प्लेटफार्म देने के खास हिमायती थे। राम मनोहर लोहिया मुझे कहते थे कि आप तो साहित्य रचना का कार्य करते रहो क्योंकि यह कार्य व्यक्ति को अमरत्व प्रदान करता है, अभूतपूर्व बनाता है। इसके साथ वे मुझे कहते थे कि आपके लिए इलेक्शन नहीं बल्कि सलेक्शन का रास्ता अति उत्तम है। पढ़ाई के दिनों में सामौर पर नाथ सम्प्रदाय के श्रद्धानाथ जी महाराज, रविनाथ जी महाराज और बैजनाथ जी महाराज का आशीर्वाद वरदान स्वरूप रहा अर्थात् साहित्य लेखन और पढ़ाई में भी नाथ पंथ के योगदान को सामौर जी आज भी अविस्मरणीय बताते हैं।

विश्वविद्यालयी पढ़ाई के दौरान सामौर का सम्पर्क हिन्दी के पुरोधा डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी से हुआ। सामौर बताते हैं कि परशुराम की प्रतीक्षा नामक ओज गुण की कविता मैंने एक साहित्यिक समारोह में रामधारी सिंह दिनकर के मुँह से

सुनी तो मुझे पता चला कि काव्य पाठ क्या होता है? और मैंने ओज गुण का साकार रूप देखा और पहचाना।

भंवर सिंह सामौर ने अपने अनुभवों को साझा करते हुए बताया कि मैंने सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय को काव्य पाठ करते देखा तो जो अज्ञेय का काव्य पढ़ते समय नीरसता व्याप्त हो जाती थी अर्थात् उनका साहित्य समझ में नहीं आता था, तो वो ही साहित्य जब अज्ञेय के मुँह से सुना तो उनकी भाषा, वाणी हृदय में समा गई। तब आपको समझ में आया कि भाव विचारों में और विचार भावों में कैसे बदलते हैं? डॉ. रामविलास शर्मा, बलदेव उपाध्याय विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के जब सामौर सम्पर्क में आये तो न सिर्फ ज्ञान में वृद्धि हुई बल्कि आपकी साहित्य साधना में भी श्रीवृद्धि हुई।

सम्मान

भंवर सिंह सामौर द्वारा साहित्य और समाज सेवा के क्षेत्र में किए गए उल्लेखनीय कार्यों के लिए अनेक संस्थाओं द्वारा उन्हें विभिन्न पुरस्कारों और अलंकारों से नवाजा गया है।

1. मोरारी बापू द्वारा भंवर सिंह सामौर को 'अस्मिता पर्व सम्मान' से उल्लेखनीय साहित्यिक लेखन के लिए सम्मानित किया गया।

2. राजस्थानी भाषा साहित्य एवं संस्कृति अकादमी बीकानेर द्वारा संस्कृति सम्मान।

3. राजस्थानी भाषा साहित्य एवं संस्कृति अकादमी बीकानेर द्वारा 'भाषा सेवा सम्मान'।

4. माधव शर्मा स्मृति संस्थान चूरू का 'मरुधर रा मोती' सम्मान से अंलकृत।

5. हिन्दी साहित्य संसद चूरू के द्वारा 'साहित्य सेवा स्वर्ण' पदक से सम्मानित।

6. लोक संस्कृति शोध संस्थान नगरश्री चूरू का 'साहित्य सेवा सम्मान'।

7. राजस्थानी सांस्कृतिक परिषद चूरू का 'संस्कृति पुरुष सम्मान'।

8. राजस्थान सरकार द्वारा 'साहित्य सेवा सम्मान'।

9. सरस्वती साहित्य संस्था परलीका द्वारा 'परलीका सम्मान' से अंलकृत।

10. जूनागढ सम्मेलन का 'सौराष्ट्र भूमि सम्मान'।

11. झालावाड़ चारण उत्कर्ष ट्रस्ट सुरेन्द्र नागर का 'सरस्वती सम्मान'।

12. मारवाड़ चारण सभा जोधपुर का 'समाज रत्न' सम्मान।

13. सम्भागीय चारण सभा जयपुर का 'साहित्य समाज सेवा' सम्मान।

14. श्री करणी सेवा मण्डल उदयपुर का 'कविराज सांवलदान आसिया' सम्मान।

15. चूरू 'केशरी' सम्मान।

16. राजस्थान पत्रिका 'कर्णधार' सम्मान।

17. मण्डलीय चारण सभा बीकानेर का 'समाज रत्न' सम्मान।

18. 'रामगोपाल गिरधारी लाल सर्राफ' अंलकरण।

19. सम्पति संस्थान का साहित्य सेवा सम्मान।

20. राजस्थान पैंशनर समाज द्वारा 'रजत सरस्वती प्रतिभा' सम्मान अंलकरण।

21. साकार संस्थान का 'पंडित भरत व्यास सम्मान'।

22. जैमिनी अकादमी द्वारा 'आचार्य सम्मान' से सम्मानित।

अतः सामौर चारण साहित्य परम्परा में एक ऐसे उज्ज्वल नक्षत्र के रूप में सामने आते हैं, जिनका साहित्य और संस्कृति की श्रीवृद्धि में अमूल्य योगदान है। आपको मिला सम्मान अंलकरण और साहित्यिक कृतियां इस बात की साक्षी हैं।

भंवर सिंह सामौर का कृतित्व

भंवर सिंह सामौर हिन्दी साहित्य के ख्याति प्राप्त साहित्यकार हैं। सामौर द्वारा अब तक हिन्दी और राजस्थानी में कई पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं जिसमें से हिन्दी की सात और राजस्थानी की छह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और अन्य प्रकाशनाधीन हैं। सामौर के कृतित्व पर कालखण्ड का प्रभाव भी स्पष्टतः देखा जा सकता है क्योंकि जिस कालखण्ड में लेखक सृजन करता है उससे वह अनिवार्य रूप से प्रभावित होता है। सामौर के साहित्य की नींव संस्कृति पर ही खड़ी होती है। भाषा और संस्कृति मनुष्य की प्रथम आवश्यकता होती है। सामौर के गद्य साहित्य में भारतीय सभ्यता और संस्कृति की झलक देखी जा सकती है।

साहित्य सृजन की प्रेरणा

भंवर सिंह सामौर स्नातक में पढ़ते थे उस समय वे जयपुर के श्री करणी चारण छात्रावास में सृजनशीलता के धनी छात्रावास अधीक्षक जयसिंह कविया समस्यापूर्ति अभ्यास करवाते, जो आपके लिए एक नवीन अनुभव था, क्योंकि इसमें कविया तरह–तरह की कविताओं के माध्यम से साहित्य सृजन करवाते थे। इन्हीं की प्रेरणा से आपने साहित्य सृजन की ओर अपने कदम बढ़ाए, जो अनवरत हैं। आपका इसी समय 'कविपूजक राजस्थान' नामक आलेख जब महाराजा कॉलेज की पत्रिका में प्रकाशित हुआ, तो रावत सारस्वत और चंद्रसिंह बिरकाली ने इनके आलेख को

पढ़कर अपने पास बुलाया। उन्होंने ही सबसे पहले सामौर की कविता 'धरा सिंणगार चावै है' मरुवाणी नामक पत्रिका में प्रकाशित की।

महाराजा कॉलेज में पढ़ते समय वहाँ के सुरम्य वातावरण ने सामौर की जीवन शैली को ही बदल डाला। यहाँ हिन्दी के पुरोधा विद्वान डॉ. देवराज उपाध्याय का आपको सानिध्य मिला। आपको काव्य सृजन की परम्परा अपने दादाजी चतरदान जी सामौर और पिता श्री उजीणदान जी सामौर से विरासत में ही मिली थी। ऐसे में जयपुर के महाराजा कॉलेज में डॉ. देवराज उपाध्याय, कल्याणसिंह राजावत, भूरदान जी बारहठ जैसे लोगों के सानिध्य और साहित्यिक मार्गदर्शन ने सोने में सुहागे का काम किया। उन्होंने आपके सृजन संसार में चार चाँद लगा दिए।

जब छात्रावास अधीक्षक के पद पर भूरदान जी बारहठ आये तो उन्होंने छात्रावास में नाटक लेखन की नई शैली का आगाज किया, जिसमें नाटक लेखन की जिम्मेदारी भंवर सिंह सामौर को सौंपी गई। आपने 'मैं नाम नहीं बताउंगा' नामक नाटक अमर शहीद क्रांतिकारी प्रतापसिंह बारहठ के जीवन पर आधारित था का सृजन किया और छात्रावास में इसका मंचन किया गया। लोगों ने इस नाटक की संवाद शैली की खूब प्रशंसा की। सामौर स्वयं ने इस नाटक में क्रान्तिकारी केसरी सिंह बारहठ की भूमिका निभाई।

सामौर ने एम ए हिन्दी से हिन्दी विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से उत्तीर्ण की। तब सामौर डब्ल्यु. यू. एस. छात्रावास जो कि विश्वविद्यालय में स्थापित था, में रहने लगे। यहाँ रहते हुए इन्होंने डॉ. माताप्रसाद गुप्त, डॉ. सत्येंद्र, डॉ. सरनाम सिंह शर्मा अरुण, डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित, डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, डॉ. मूलचंद सेठिया, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा, डॉ. भाणावत, डाॕ. शम्भूसिंह मनोहर और प्रोफेसर कृपाशंकर तिवाड़ी जैसे हिन्दी के प्रबुद्ध पुरोधा साहित्यकार गुरुजनों से अध्ययन किया। इन महान पुरोधाओं ने आपका साहित्य सृजन का मार्ग प्रशस्त

किया। राजस्थान विश्वविद्यालय के उपकुलपति मोहनसिंह जब भी छात्रावास आते थे, तो आपकी कविता को सुनकर गदगद हो जाते थे और आपके साहित्य को सम्मान की दृष्टि से देखते थे तथा आपको विभिन्न पर्वों पर सम्मानित कर साहित्य सृजन की ओर प्रेरित करते थे। तत्कालीन राज्यपाल डॉ. सम्पूर्णानन्द भी इनके साहित्य को पढ़ते थे, क्योंकि आपके साहित्यिक कार्यक्रम आकाशवाणी पर भी आने लग गये थे। आपके कार्यक्रमों को देखकर राममनोहर लोहिया आप को साहित्य सृजन के लिए प्रेरित करते थे। सामौर बताते हैं कि यह समय उनके जीवन का सबसे सुनहरा काल था, जिसमें मैनें साहित्य सृजन की ओर कदम बढ़ाए।

गद्य साहित्य का सृजन संसार

साहित्य और शिक्षा जगत में जाना माना नाम है भंवर सिंह सामौर। आप पिछले पचास वर्षों से हिन्दी व राजस्थानी में कविता, गद्य, अनुवाद एवं संपादन में संलग्न हैं। आपकी प्रमुख रचनाओं में लोक पूज्य देवियां, चारण बड़ी अमोलक चीज (निबंध संकलन), युगान्तकारी सन्यासी, शंकरदान सामौर, राजस्थानी शक्ति काव्य, चूरू मण्डल के यशस्वी चारण, मरण त्यूंहार (युद्ध कविताओं का संकलन) आदि का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है–

लोक पूज्य देवियां

भंवर सिंह सामौर की प्रथम कृति के रूप में लोक पूज्य देवियां नामक पुस्तक 1987 ई. में चारण साहित्य शोध संस्थान, अजमेर द्वारा प्रकाशित की गई। यह पुस्तक राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, दिल्ली, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश आदि राज्यों में खूब चर्चित रही। इस पुस्तक के प्रारम्भ में देवी पूजा की अवधारणा लोक शास्त्र और विज्ञान का विकास विषय पर गहन विवेचन प्रस्तुत किया गया है, फिर देवियों से संबधित साहित्य का विस्तृत विवेचन किया गया है। देवी हिंगलाज से लेकर बांकल देवी, खूबड़ देवी, आवड़ देवी, खोड़ियार देवी, गुली देवी, अम्बा देवी, बिरवड़ी

देवी, देवल देवी, लाछां देवी, लाल बाई–फूल देवी, केसर बाई, करणी देवी, बैचरा देवी, बीरी देवी, मांगल देवी, सैणी देवी, नांगल देवी, कामेही देवी, सांई नेहड़ी, माल्हण देवी, राजल देवी, गीगाय देवी, मोटवी देवी, चांपल देवी, अणदू बाई, चंदू बाई, साबेई देवी, राण बाई, शीलां देवी, देमां देवी, सुन्दर बाई, मांगल देवी, जैत बाई, सोन बाई, पुनसरी देवी, जीवणी देवी, जांन बाई, जाहल देवी, बोधी बाई, बाईस देवियाँ, बाछल देवी, सोन बाई, धांन बाई, पूनां देवी, काग बाई, इन्द्र कंवर बाई, सोनल देवी आदि अब तक इस परम्परा में अवतरित देवियों का परिचय दिया गया है। इसके साथ ही इन लोक देवियों से संबंधित रम्मतों का वर्णन भी इस साहित्य में परिचय के रूप में दिया गया है।

चारण देवियों के अतीत से जुड़कर हम हमारे ही भविष्य से जुड़ने का उपक्रम कर रहे हैं। इन चारण देवियों की ऐतिहासिक परम्परा हमारे सामाजिक संघर्ष का आत्म विश्लेषण है। इस पुस्तक में चारण देवियों को एक ऐसी ही निरंतर संघर्षशील सामाजिक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसके माध्यम से समाज गतिशील होता है। हमारा युग इन देवियों के समय से भी ज्यादा विध्वंसकारी दबाव से ग्रस्त है। इसलिए आज हम संघर्ष के द्वारा इस स्थिति में परिवर्तन के लिए इन चारण देवियों के चरित्र की रोशनी में इस आशा से झांकना चाहते हैं कि इन देवियों के संघर्ष की किरणें हमारे संघर्ष की निराशा के अंधकार को आलोकित करेंगी।

इन देवियों से संबंधित अधिकतर ऐतिहासिक घटनाएं सामान्य एवं समान लगती हैं पर भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में घटित होकर भिन्न–भिन्न परिणाम प्रस्तुत करती हैं। समाज में उनकी भूमिका का महत्त्व उनके संघर्ष का स्मरण करने वाले व उसके प्रति श्रद्धा रखने वाले बहुसंख्यक लोगों के कारण है। इन देवियों ने अपने युग की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति देते हुए बताया कि तुम्हारी जरूरतें क्या हैं? तथा उन्हें किस प्रकार पूरी करनी हैं? इन्होंने जो कुछ लोकहित के

कार्य किए वे युग चेतना के प्रतीक बने। इसी कारण ये देवियां चमत्कारों के कारण महान् नहीं बल्कि अपने आत्म बल के कारण महान् बनी तथा उसी आत्मबल से मनुष्यता को जागृत कर उसे प्रसारित भी किया।

आज के आलोक में ही बीते युग की देवियां हमारी श्रद्धा का केन्द्र बन सकी हैं और उनके अतीत के आलोक ने ही हमारे वर्तमान को आलोकित किया है। अतीत के संघर्ष को आज के मनुष्य के लिए सरल बनाना और आज के समाज को उस संघर्ष से जोड़कर आत्मविश्वासी बनाना ही इन देवियों की लीलाओं का मर्म है।

समाज की स्थिरता जीवन की पवित्रता और मनुष्य की नीतिमत्ता का आधार स्तम्भ ये देवियां हैं। समुद्र से भी बड़े संकट के सामने ये जूझी हैं। अनेक कष्ट एवं यातनाएं झेली हैं। सांसारिक अग्नि ज्वाला को अपने रक्त के छींटों से बुझाकर संतप्त समाज को शीतलता प्रदान करने वाली ये देवियां शील, स्वधर्म एवं पवित्रता के लिए मौत के सामने भी कठोर से कठोर अनुष्ठान करती हैं। इन देवियों ने बड़े से बड़े राज्यों के साथ बलवान से बलवान समूहों के साथ, सामाजिक रूढ़ियों के साथ अन्याय के हर प्रसंग के साथ निर्भय होकर संघर्ष किया, जूझी पर कभी पीछे हटने का नाम नहीं लिया। संस्कृति की रक्षा के लिए चले आ रहे हजारों वर्षों के इस शक्ति आंदोलन का संक्षिप्त परिचय ही इस पुस्तक का मूल उद्देश्य है।

चारण बड़ी अमोलक चीज

चारण बड़ी अमोलक चीज नामक पुस्तक का सम्पादन भंवर सिंह सामौर ने फतेह सिंह मानव के साथ किया। इस पुस्तक का प्रकाशन चारण साहित्य शोध संस्थान अजमेर द्वारा 1989 ई. में किया गया। इस पुस्तक में गजानन महतपुरकर का आलेख 'मनीषी समर्थदानः राष्ट्रीय पत्रकारिता' नाम से पुस्तक के प्रारम्भ में ही है। फतेह सिंह मानव का 'राजस्थान का अपूर्व इतिहासकार : बारहठ कृष्णसिंह', लक्ष्मणदान घांघणिया का 'युद्ध और कविता का सिपहसालार : करणीदान कविया',

फतेहसिंह मानव का 'सिद्ध भगवद भक्त : अलूनाथ जी कविया', फतेहसिंह मानव का 'संतकवि : ओपाजी आढ़ा', फतेहसिंह मानव का 'राजिया के सोरठे और उनके रचयिता श्री कृपाराम खिड़िया', बद्रीदान गाडण का 'चारण बड़ी अमोलक चीज', डॉ. आनंद मंगल वाजपेयी का 'स्वाभिमान के प्रतीक : दुरसा जी आढ़ा', बद्रीदान गाडण का 'कल्याणदास गाडण और उनका नागदमन', डॉ. कुसुम माथुर का 'कलम का बांका : बांकीदास आसिया' और प्रोफेसर शंकर सहाय सक्सेना का 'अप्रतिम क्रान्तिवीर : जोरावर सिंह बारहठ' नामक आलेख संकलित कर संपादित किये गए हैं। इन आलेखों में यह स्पष्ट किया गया है कि चारण साहित्य ही हमें सिखाता है कि स्वतन्त्रता की रक्षा हेतु हमें लड़ना भी पड़ता है, मरना भी पड़ता है। इस परम्परा का इन कवियों ने जीवंत बनाए रखा है।

चारण साहित्य शोध संस्थान अजमेर के अध्यक्ष ओंकारसिंह लखावत ने बताया कि चारण साहित्य शोध संस्थान की स्थापना के पीछे अहम् उद्देश्य यह था कि राजस्थानी के प्राचीन विलुप्त और अर्वाचीन साहित्य पर शोध एवं प्रकाशन की व्यवस्था हो। उत्कृष्ट उद्बोधनात्मक साहित्य के रचनाकार और उनकी रचनाएं आम पाठक को उपलब्ध हो सके। इस दिशा में संस्थान अपने सीमित साधनों के बावजूद लगातार प्रयत्नशील है।

चारण साहित्य पुस्तक माला का यह चौथा पुष्प सुधी पाठकों के समक्ष रखते हुए मुझे हर्ष हो रहा है। पिछले वर्ष से संस्थान के फीचर सेवा संभाग द्वारा जारी चारण वार्ता पुस्तकाकार रूप में आपके सामने आए यही इच्छा इस प्रकाशन के पीछे रही है। समय–समय पर राजस्थान के साहित्यकारों द्वारा लिखित आलेखों का यह संग्रह चारण रचनाकारों के जीवनवृत्त एवं उनके कृतित्व की सामान्य जानकारी प्रदान करने में सक्षम है। इन आलेखों को पढ़ने के बाद यदि किसी पाठक के मन में किसी रचनाकार को पूरा पढ़ने की लालसा जगे तो संस्थान में उपलब्ध साहित्य उनकी यह ज्ञान पिपासा शांत कर सकेगा और हमारा यह प्रयास सफल होगा। सभी

प्रकाशनों में सरल भाषा के प्रयोग के पीछे भी यही मंशा रही कि गाँव–गाँव और ढांणी–ढांणी तक ये ग्राह्य हो सके।

''भंवर सिंह सामौर द्वारा लिखित लोक पूज्य देवियां इस पुस्तकमाला के प्रथम पुष्प के रूप में और उसके बाद श्री करणी माँ की 600वीं जयन्ती के अवसर पर डॉ. चन्द्रप्रकाश देवल द्वारा संपादित माताजी रा छन्द प्रकाशित की गई। तीसरे पुष्प के रूप में राजस्थानी एवं ब्रजभाषा के विद्वान श्री अक्षयसिंह रत्नू की अक्षय केसरी प्रताप चरित्र राजस्थानी एवं हिन्दी के विद्वान संपादक हृदय श्री फतेहसिंह मानव एवं भंवर सिंह सामौर द्वारा संपादित इस पुस्तकमाला का यह चतुर्थ पुष्प 'चारण बड़ी अमोलकचीज' के साथ संस्थान अपने चौथे स्थापना दिवस 9 जून 1989 को आपके हाथों समर्पित करने किया है। संस्थान आलेखकारों का आभारी है जिन्होंने श्रम साध्य कार्य कर इसे सफल बनाया।''[6]

युगान्तरकारी संन्यासी

प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली के द्वारा भंवर सिंह सामौर द्वारा लिखित पुस्तक युगान्तरकारी संन्यासी 1993 ई. में प्रकाशित की गई। इस पुस्तक का लोकार्पण मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री अनिरुद्ध जगन्नाथ के कर कमलों से मॉरिशस में हुआ। यह पुस्तक शासन सत्ता से कोसों दूर रहकर सेवा की महिमा स्थापित करने वाले स्वामी कृष्णानंद सरस्वती के द्वारा मॉरिशस में किये गए कार्यों पर आधारित है। मॉरीशस में कृष्णानन्द स्वामी को महात्मा गाँधी के रूप में उनके किए गए कार्यों के फलस्वरूप याद किया जाता है। मॉरीशस प्रवासी भारतीयों का प्रथम देश है जो 12 मार्च, 1992 को स्वतंत्र हुआ। उसका प्रशासन तंत्र भारतीयों के हाथों में आया। सन् 1956 ई. से ही स्वामी जी का प्रवासी भारतीयों में काम करने का क्षेत्र बन गया था। मॉरीशस स्वामीजी की कर्मभूमि और प्रयोगभूमि है। आजाद होने पर मॉरीशस के घर–घर में उस दिन दीपावली मनाई गई। वह दिन अभूतपूर्व था। लोग अपने मित्रों

को अपने घर में आमंत्रित करते थे तथा साथ बैठकर खा–पी रहे थे। उस दिन लोगों ने डेढ़ सौ वर्षों की गुलामी के बाद प्रथम बार स्वतन्त्र देश की वायु में साँस लिया था।

स्वामी कृष्णानंद सरस्वती की महिमा का उल्लेख मॉरीशस में उनकी याद में बनाया गया ढाई एकड में बना स्मारक साक्षी है। इस पुस्तक की प्रस्तावना पूर्व राजदूत इन्दुप्रकाश सिंह द्वारा लिखी गई है। इस पुस्तक के विविध अध्यायों में स्वामी जी की समझ में आ गया कि क्या करना है, प्रार्थना आन्दोलन प्रार्थना का इतिहास एवं स्वरूप, मॉरीशस में युगान्तर, धार्मिक सेवा शिविर, प्रारम्भिक विफलता, समस्त देश में संगठन, शिविर संगठन का स्वरूप, नव जागृति, सरकार और विरोधियों में सनसनी, विरोधी दल के व्यर्थ प्रयास, श्री रामनारायण राय से मुलाकात, मॉरीशस की स्वतन्त्रता के चुनाव, अफ्रीका में प्रचार कार्य, सेवा शिविर का विघटन, ह्यूमन सर्विस ट्रस्ट की स्थापना, नवयुवतियों का संगठन, सरिता मक्खन का सफल सत्याग्रह, स्वामी कृष्णानंद सेवा आश्रम एवं महिला आश्रम की स्थापना, रामायण और गीता का वितरण, अफ्रीकी भारतीयों का आकर्षण मॉरीशस, मॉरीशस में महात्मा गाँधी के चित्रों का वितरण, मॉरीशस में प्रथम अफ्रीकी भारतीयों का सम्मेलन, सम्मेलनों का तांता, री यूनियन द्वीप में कार्य, डॉक्टरों की सेवा युनिट, मॉरीशस में बाम्बे सेवा युनिट, ब्रिटेन के राजदूत ने स्वामी जी का जन्मदिन मनाया, अभिनव प्रयोग और साक्षात्कार नाम से सम्पूर्ण विवरण विवेचित है।

राजस्थानी शक्ति काव्य

सन् 1999 ई. में साहित्य अकादमी नई दिल्ली ने राजस्थानी शक्ति काव्य के नाम से सामौर द्वारा सम्पादित पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तक का पुनर्मुद्रण सन् 2015 ई. में किया गया है। इस पुस्तक का प्रकाशन, सम्पादन स्वतन्त्रता की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर खास तौर से किया गया था। इस पुस्तक में भक्ति आंदोलन

की तरह ही शक्ति आंदोलन का इतिहास विस्तार से वर्णित है। इस पुस्तक में लगभग 160 कवियों की रचनाओं को स्थान दिया गया है। इस पुस्तक का मुखबंद भूमिका 38 पृष्ठों की हिन्दी भाषा के गद्य में है, जो कि सराहनीय ही नहीं बल्कि आपके बहुमुखी व्यक्तित्व को प्रकट करता है। यह उच्चकोटि का गद्य है।

अत्याचारी शासन व्यवस्था को उखाड़कर सदाचारी शासन व्यवस्था की स्थापना में इन देवियों की महत्ती भूमिका रही है। अन्याय व अनीति को इन देवियों ने कभी नहीं स्वीकारा। स्वकर्म में पुरुषार्थ ही इन देवियों का मूल मंत्र था। किसी भी व्यक्ति व समाज के अधिकारों की रक्षा के लिए बलवान से बलवान सत्ताधीशों के जुल्मों का व जुल्म करने वालों का इन्होंने अन्त किया। आवश्यकता पड़ने पर आत्म बलिदान देकर भी जुल्म रोके व निरभिमान बने रहकर लोकहित साधा।

शेखावाटी के यशस्वी चारण

सन् 2001 ई. में लोक भारती भवन बोबासर ने भंवर सिंह सामौर द्वारा रचित शेखावाटी के यशस्वी चारण नामक पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तक में सीकर और झुंझुनूं जिलों के चारण साहित्य का इतिहास वर्णित है। चारण साहित्य के पुरोधा रावत सारस्वत चाहते थे कि हर गाँव हर ढाणी के चारणों के साहित्य का शाखावार विवरण तैयार किया जाए। इसी को ध्यान में रखते हुए आपने इस परम्परा को आगे बढ़ाने एवं सारस्वत के सपने को साकार करने के लिए इस पुस्तक की रचना की है। आपने इस पुस्तक के प्रारम्भ में चारण परम्परा का विस्तार से विवेचन किया है। इसके बाद शेखावाटी में चारणों की शाखाओं और उनके गाँव के नाम का विस्तृत विवेचन किया है। इसके अंतर्गत रोहड़िया बारहठों में बीठू, मकस, किसनावत, जागावत, पल्हावत और हड़वेचों के इतिहास को विस्तार से विवेचित किया है। इसी प्रकार खिड़िया, कविया, नांधू, दधवाडिया, देवल, गूहड, रतनू, सांदू, गाडण, किनिया, सिढायच, मूहड़, लालस, मैहंगु, काछेला इत्यादि शाखाओं को दिए

गए ताम्रपत्र, पट्टा, परवाना आदि के आधार पर प्रमाणित कर उनके इतिहास का वर्णन किया है। इस पुस्तक के परिशिष्ट में ताम्रपत्र, पट्टा और राज्य अभिलेखागार के चित्र दिए गए हैं।

देश के इतिहास को गौरवपूर्ण सार्थकता देने में चारणों का भी योगदान कम नहीं है। आप कहते हैं कि चारण साहित्य पर कार्य करते समय एक बात समझ में आई कि चारणों पर शोधपूर्ण दृष्टि से सामग्री संकलन का कार्य करने की महत्ती आवश्यकता है। इसी क्रम में मैंने जब यह कार्य हाथ में लिया तो सर्वप्रथम अपने ही जिले चूरू से कार्य प्रारंम्भ किया। उसके बाद निकट के ही जिलों सीकर व झुंझुनूं का कार्य हाथ में लिया। इसी प्रकार हर जिले पर शोध कार्य करके पुस्तक तैयार की जाए तो कार्य की प्रामाणिकता बनी रहती है। यह कार्य बहुत ही दुष्कर व श्रम साध्य है।

चूरू मंडल के यशस्वी चारण

भंवर सिंह सामौर ने 2002 में चूरू मंडल के यशस्वी चारण नामक कृति की रचना की। इस कृति का प्रकाशन सन् 2002 ई. में लोक भारती भवन, बोबासर ने किया। इस पुस्तक में चूरू जिले के चारण साहित्य का इतिहास वर्णित है। इस पुस्तक के प्रारम्भ में चारण परम्परा की विस्तृत जानकारी वर्णित है। चूरू जिले के चारणों के साहित्यकारों का तहसीलवार वर्णन गाँव सहित दिया गया है। इस पुस्तक में चूरू जिले के यशस्वी चारणों का साहित्य, शिक्षा, विज्ञान, शास्त्र आदि क्षेत्रों में प्राप्त विभिन्न उपलब्धियों पर विभिन्न शाखाओं यथा सामौर मेहडू, गाडण, सिंढ़ायच, नांधू, आढ़ा, मीसण, खिड़िया, बीठू, मोखा, चाहड़ौत, आसावत, लखावत, कविया, लालस, दधवाडिया, रतनू, जगट, सूंघा को विभिन्न शासकों, सामन्तों, राजाओं, जागीरदारों द्वारा प्रदत ताम्रपत्र पट्टे, परवाने, फरमान और राज्य अभिलेखागार के आधार पर प्रमाणित इतिहास का इस पुस्तक में वर्णन किया गया है।

भंवर सिंह सामौर बताते हैं कि चारण साहित्य पर काम करते समय यह बात सामने आई कि चारणों के इतिहास की जानकारी समग्र रूप में उपलब्ध नहीं है। इसी संदर्भ में काम करने के लिए सर्वप्रथम चूरू मण्डल के चारणों के इतिहास का काम हाथ में लिया। चूरू की धरती सरस्वती नदी के प्रवाह क्षेत्र में आती थी। वेदों की ऋचाएं भी इसी धरती पर रची गई हैं। यह क्षेत्र महाभारत काल में कुरु जांगल प्रदेश के नाम से विख्यात रहा है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से कुरु शब्द से ही चूरू शब्द बना है। जांगल का प्रतीक जांगलू नामक गाँव बीकानेर के पास आज भी मौजूद है।

चूरू मण्डल का यह क्षेत्र चारणों के लिए भी ऐतिहासिक एवं साहित्यिक महत्त्व वाला रहा है। चूरू मण्डल के चारणों से संबंधित विवरण से अनेक नवीन जानकारियां प्राप्त होती है। राजस्थानी साहित्य का प्राचीन काव्य अचलदास खींची री वचनिका इसी क्षेत्र के दस्सूसर गाँव के शिवदास गाडण द्वारा रची गई थी। इस काव्य की सबसे प्राचीन प्रति भी दस्सूसर गाँव के निकट स्थित पड़िहारा गाँव में लिखी गई थी।

आसा बारहठ को क्रोड़ पसाव की एवज में कर्मसिंह द्वारा अपना पुत्र तक भेंट करने की घटना इसी मण्डल में घटित हुई थी और इसी घटना से अभिभूत होकर आसा बारहठ ने अपने जीवन का उत्तरार्द्ध इस मण्डल में व्यतीत किया। भक्त कवि केसवदास गाडण को भी अपने जीवन का उत्तरार्द्ध इसी मण्डल में बिताने का सुयोग मिला था।

शंकर बारहठ को भी सवा क्रोड़ पसाव इसी मण्डल में प्राप्त हुआ था। शंकर बारहठ ने इसी पुरस्कार के बाद इसी धरती को अपनाकर इसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित की।

चारण कवियों में सर्वप्रथम कविराजा का खिताब प्राप्त करने वाले हेम सामौर भी इसी मण्डल के थे। सिद्ध अलूनाथ कविया ने भी इसी क्षेत्र को अपने चरणों से कृतार्थ किया था। वे जहाँ रहे उस गाँव की पहचान ही उनके नाम से ज्ञापित हुई तथा वह गाँव अलू कविया री नीमड़ी के नाम से ही प्रसिद्ध हो गया। अकबर का अंतरंग सभासद लक्खा बारहठ भी इसी धरती के गाँव धीरदेसर को प्राप्त कर यही का हो गया। लखा के पुत्र भक्तकवि नरहरिदास का विवाह इसी धरती की पुत्री नारायणी देवी(गणेशदास सामौर की पुत्री व कविराजा हेम सामौर की बहिन) के साथ हुआ था।

कविराजा करणीदान कविया जैसे महान कवि का भी इसी मण्डल की धरती से अंतरंग संबंध रहा है। वे वर्षों तक चूरू में रहे थे। विदेशी आक्रान्ता कामरान को ललकार कर भागने को मजबूर करने वाली घटना भी इसी मण्डल के साथ जुड़ी हुई है और उस ऐतिहासिक घटना का साक्षी रूप में छंद रचने वाले सूजा बीठू भी इसी क्षेत्र के कवि थे।

गाडण गौवर्धन जैसे योद्धा कवियों ने भी इसी धरती को यशस्वी बनाया था। दक्षिण के बड़े युद्ध में इनके सत्ताइस घाव लगे थे। मान रतनू ने इसी धरती की प्रतिष्ठा के लिए अपने प्राण न्यौछावर किये थे। लूणकरण कविया ने भी इसी धरती की इज्जत के लिए प्राणोंत्सर्ग किया था।

अठ्ठारह सौ सत्तावन की क्रांति के समय भी यहाँ के चारणों की भूमिका यशस्वी रही है। अठ्ठारह सौ सत्तावन के क्रांतिवीर जनकवि शंकरदान सामौर की भूमिका तो इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। तांत्या टोपे को मुसीबत के वक्त शरण देने वाले पृथ्वीसिंह सामौर भी इसी मण्डल के यशस्वी सपूत थे।

इन्हीं सब जानकारियों को प्राचीन सन्दर्भों से जोड़कर यह पुस्तक तैयार की गई है। वेदों पुराणों से लेकर अद्यावधि तक प्राप्त पुस्तकों, पट्टों, परवानों, ताम्र पत्रों

एवं साक्षी के छंदों का उपयोग प्रमाण के रूप में पुस्तक में वर्णित प्रसंगों के साथ किया गया है। इसी संदर्भ में गौरव के साथ यह कहा जा सकता है कि देश के वीर योद्धाओं के शौर्य एवं साहस को जागृत व जीवित रखने हेतु इस क्षेत्र के चारणों ने योद्धा एवं कविरूप में समान भाव से योद्धाओं के शौर्य को जीवित रखा व उन वीर गाथाओं को काव्य रूप में प्रस्तुत कर इतिहास की अभूतपूर्व सामग्री समाज को दी। उन्होंने एक नई साहित्यिक एवं जीवन शैली देकर योद्धाओं के स्वतंत्रता संग्राम को इतिहास में अमर कर दिया। हमलावरों की अजेयता की धाक से निराश समाज को यहाँ के चारणों ने अपने युद्ध कौशल एवं काव्य कौशल के बल से आशावान बनाकर संजीवनी शक्ति प्रदान की।

आऊवा का धरना

भंवर सिंह सामौर द्वारा रचित कृति आऊवा का धरना लोक भारती भवन बोबासर द्वारा सन् 2005 ई. में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में विक्रमी संवत 1643 में आऊवा(मारवाड़ जंक्शन) में हुए धरने का सम्पूर्ण इतिहास वर्णित है। इस पुस्तक में धरने का अर्थ, स्वरूप, आऊवा का धरना, आऊवा धरने पर चंद्रप्रकाश देवल की नई कविताएं आऊवा धरने पर रचित ऐतिहासिक पुस्तकों का मूल विवरण राजस्थान एवं गुजरात में हुए धरनों का संक्षिप्त परिचय नाम से विवरण इस पुस्तक में विस्तृत रूप से वर्णित है। इस पुस्तक में राजस्थानी की कविताओं का अनुवाद वर्णित होने से पुस्तक की सरलता सहजता और लोकप्रियता में चार चांद लग गये हैं।

आऊवा का धरना विश्व इतिहास की वह ऐतिहासिक घटना है जिसने लोक के इतिहास में अपनी अमिट छाप छोड़ी है। इस घटना का उल्लेख तो सभी इतिहासकारों ने किया है लेकिन उसे प्रचलन में सूचना देने से ज्यादा महत्त्व नहीं दिया है। इसीलिए आप बताते हैं कि इस धरने का सिलसिलेवार विवरण देने के लिए यह पुस्तक तैयार की गई है। इसी संदर्भ में धरना शब्द के अर्थ एवं स्वरूप का

विवरण भी प्रस्तुत किया गया है। इस धरने से संबंधित साहित्य भी प्रचुर मात्रा में लिखा गया तथा लिखा जाता रहा है जिसका भी इस पुस्तक में यथा स्थान उपयोग किया गया है। आऊवा धरने पर मिलने वाली सामग्री का विस्तार से विवरण देने का प्रयास किया गया है। यह सामग्री राजस्थान व गुजरात में यत्र तत्र बिखरी पड़ी हैं इसे संकलित कर यहाँ प्रस्तुत किया गया है। इस पर अभी और भी शोध की आवश्यकता है।

पुस्तक का कथानक इस प्रकार है– ''आऊवा का धरना ज्यादा मशहूर है जो सम्वत् 1643 में मोटा राजा उदयसिंह जी की नीतियों के विरुद्ध दिया गया था। इसका सबब था कि 20 वर्ष पहले जब राव चन्द्रसेन जी ने जोधपुर का किला मुगलों को सौंपा तो जनाने को सिवाने के पहाड़ों में भेज दिया था रास्ते में एक रथ के बैल थक गये। पास ही एक चारण कुआँ चला रहा था। राज के नौकर उसके बैल रथ में जोतने के लिए ले आए। चारण गाँव में जाकर कुछ आदमी लाया। उन्होंने आते ही रथ से बैल खोल लिए और रथ उलट दिया। जिससे मोटा राजा की माँ का हाथ टूट गया। उस वक्त तो प्राणों की पड़ी हुई थी। हाथ को कौन पूछता था। मगर सम्वत् 1640 में मोटा राजा को वापस जोधपुर मिलने पर जब जनाना काफिला पहाड़ों से वापस आया तो माँ जी ने उनको हाथ दिखाकर कहा कि और तो जो मुसीबत गुजरी सो गुजरी। मगर जिस चारण ने रथ उलटकर मेरा हाथ तोड़ा है, वह हरगिज माफी के काबिल नहीं है। अतः मोटा राजा ने उसकी जमीन जब्त कर दी। जिन चारणों ने उस चारण की सिफारिश की थी, वह भी अपने–अपने शासन खो बैठे। इससे चारणों में हलचल मच गई। सम्वत् 1642 के अंत में राजाजी दक्खन से सोजत आये और वहाँ जो शासन उनके बड़े भाई राम और राम के बेटे कल्ला को दिये हुए थे, वे भी जब्त कर लिए तब ग्यारह हजार चारणों ने गाँव आऊवा में चाँदी(तागा) करने के वास्ते इकठ्ठे होकर महादेवजी के मन्दिर पर धरना दिया। क्योंकि वहाँ ठाकुर चम्पावत गोपालदास ने उनसे कहा था

कि और तो मुझसे कुछ मदद नहीं हो सकती। मगर मैं तुम्हारी चांदी करवा दूँगा। राजाजी ने यह खबर सुनकर सोजत के अक्खाजी बारहठ को समझाने के वास्ते भेजा। मगर आऊवा पहुँचकर वह भी अपनी बिरादरी में शामिल हो गया। तब राजाजी ने उसके वास्ते एक बड़ा कटार भेजकर कहलवाया कि 'और तो गले घालकर मरेंगे और तुम गुदा में घालकर मरना।' फिर फौज को हुक्म दिया कि जाकर चारणों को सजा दे। मगर चाम्पावत गोपालदास ने चारणों को तसल्ली देकर कहा कि मैं फौज से लडूँगा, तुम अपना काम करो।

चारणों ने पहले तो सीरा बनाकर खूब खाया और फिर रात भर जोगमाया के गीत गाकर तड़के ही अक्खाजी के ढोली गोयंद को मंदिर के शिखर पर चढ़ाया। जब सूरज की किरणें फूटे तो ढोल बजा देना। मगर गोयंद ने ऐसी बात के लिए कि जिससे ग्यारह हजार चारणों की जान जाती हो इसलिए ढोल नहीं बजाया और सूरज के निकलते ही गले मे छुरी खाकर अपने को नीचे गिराया। तब सब चारण छुरी और कटारी लेकर मन्दिर में गये। किसी ने गला काटकर अपना खून महादेवजी पर छिड़का। किसी ने अपना सिर चढ़ाया। कोई पेट में कटारी मारकर मरा। कोई जख़्म खाकर गिरा। सारा मंदिर खून से भर गया। सात आदमी तो उसी वक्त मर गये। उनमें अक्खाजी भी था। जब तक कि यह चांदी हुई चम्पावत गोपालदास अपने भाई बेटों समेत फौज का रास्ता रोके खड़ा रहा, मगर फौज नहीं आई। क्योंकि राजाजी ने चारणों को खुद मरते देखकर फौज नहीं भेजी। मगर गोपालदास ने कहलवाया कि तुमने चारणों को चांदी में मदद दी इसलिए मेरी अमलदारी से चले जाओ। गोपालदास दो लाख का पट्टा छोड़कर चारणों समेत बीकानेर के राजा रायसिंह के पास चला गया और उसके भाई पृथ्वीराज ने अकबर बादशाह से सिफारिश करके चारणों के शासन फिर से बहाल करा दिये।

इस पुस्तक का निमित्त बना है आऊवा धरना स्थल पर उस घटना की स्मृति को चिर स्थाई बनाने वाला ऐतिहासिक स्मारक सत्याग्रह उद्यान जिसे श्री

ओंकारसिंह लखावत ने अपने सांसद विकास कोष से बीस लाख रुपये खर्च कर यह स्मारक तैयार करवाया है। चार सौ अठ्ठारह वर्ष पूर्व घटित इस घटना को आज भी लोक ने अपने मन से दूर नहीं किया है। यह हमारे समाज के लोक इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना है। इसी दृष्टि से इसे प्रस्तुत भी किया गया है।

आऊवा का धरना विश्व इतिहास की विश्रुत घटना है। इसके संबंध में इतिहास ग्रन्थों में चालू चर्चा अवश्य मिलती है। कहीं फुट नोट के रूप में तो कहीं फुटकर जानकारी के रूप में विवरण मिलता है। अभी तक कोई ऐसी पुस्तक नहीं मिलती जिसमें युग चेतना के सबल संवाहक इस धरना परंपरा की व्यवस्थित जानकारी विवेचन के साथ प्रस्तुत की गई हो। धरना विषयक अब तक सामने आई जानकारियां दो प्रकार की है। प्रथम, धरने से संबंधित रचनाएं एवं स्मारक स्थान पर हस्तलिखित प्रतियों व देवलियों, स्मारकों के रूप में समकालीन व बाद के काव्य प्रेमियों द्वारा संकलित कर सहेजे गए तथा जन साधारण ने उसे लोकमुख पर धारण कर जीवित रखा। द्वितीय, इतिहासकारों ने भी इस आऊवा धरने पर प्रसंग आने पर संक्षिप्त पाद टिप्पण या विवरण दिया है।

चारणों की दृष्टि में धरना कोई सामान्य कर्म नहीं था। इस परंपरा को निरन्तरता देने के लिए चारणों ने काव्य रचे। इन काव्यों से लोगों में वीरता एवं उत्साह का ऐसा संचरण हुआ कि देश एवं देश का इतिहास गौरवान्वित हो गया। लोगों ने अन्याय एवं अत्याचार का न केवल सामना किया अपितु उन अत्याचारियों को धरने के बल धूल भी चटाई। इसके लिए शक्ति आराधना का काव्य भी रचा गया। इसी काव्य ने लोगों को मृत्यु के भय से मुक्त किया। यही इस काव्य की सार्थकता है। इसीलिए चारणों ने धरना स्थल पर मृत्यु के वरण को श्रेष्ठ कर्म माना। ऐसे मरण को उत्सव व अनुष्ठान का रूप दिया। इसी दर्शन के बल पर पीड़ित, दलित तथा निरुपाय समाज भयमुक्त होकर धरना स्थल पर जूझने की आकांक्षा लेकर बड़ी से बड़ी राजशक्ति से लोहा लेने को तत्पर रहा।

इस पुस्तक का मूल प्रयोजन यह है कि लोग जानें कि इतिहास की किसी घटना को कैसे समझा जाए? क्योंकि तथ्य कुछ और होता है, कारण कुछ और होता है व परिणाम कुछ और होता है। घटना के इतिहास होने या नहीं होने से कोई खास फर्क नहीं पड़ता है। आऊवा के धरने की छोटी से छोटी घटना भी इतिहास की बड़ी से बड़ी घटना से भी बड़ी है। लेकिन इस घटना की ऐतिहासिक व्याख्या तक पहुँच पाना आसान नहीं है। इतिहास घटनाओं के प्रमाण चाहता है। लेकिन प्रमाण इतिहास को खंड–खंड कर देता है, क्योंकि प्रमाण का खंडन किया जा सकता है। आज मोटा राजा तो इतिहास के किसी अंधेरे कोने में अज्ञातवास भोग रहा है, पर आऊवा धरने की घटना से जुड़े साहित्यकारों का बलिदान आज भी जीवित है। इसीलिए वे सब साहित्यकार अभूतपूर्व हैं जबकि उनका समकालीन सर्वोच्च पदासीन मोटा राजा भूतपूर्व बन कर रह गया है। साहित्य एवं इतिहास के इस सूक्ष्म भेद को समझकर ही हम आऊवा धरने के सही संदेश तक पहुँच सकते हैं। इतिहास के प्रत्येक युग में अनेक घटनाएं घटित होती हैं उनके प्रमाणीकरण की समस्या सबसे जटिल होती है। हम जानते हैं कि केन्द्रीय नेतृत्व द्वारा विवश होकर पद त्याग करने वाला मुख्यमंत्री भी अस्वस्थता या अन्य कारण का बहाना बनाकर पद से हटता है। जबकि वास्तविक अर्थ में तो उसे हटाया जाता है। इस घटना की तथ्यात्मक व्याख्या क्या इतिहास द्वारा हो सकती है?

राजस्थान के सामन्ती इतिहास की यह वह घटना है जिसके कारण राजा के आदेश के खिलाफ सत्य के आग्रह की रक्षा हेतु सैंकड़ों सृजनधर्मी बुद्धिजीवियों ने राजधानी से दूर एक छोटे से स्थान आऊवा गाँव में अपना आत्मोत्सर्ग किया व आऊवा को विश्व विख्यात बना दिया। इसीलिए आऊवा सृजनधर्मियों का तीर्थ स्थल बन गया। तत्कालीन कवियों के सामने सत्ता के दो चरित्र थे। एक चरित्र तो विदेशी आक्रांताओं के आश्रय के सहारे पनप रहा था। दूसरा स्वतंत्र रूप में पनपना चाहता था। कवि किसका साथ दे? तो कवि तो निश्चय ही स्वातंत्र्य चेतना का ही पक्ष

लेगा। इसमें जोखिम जानते हुए भी चारण कवियों ने उचित का ही पक्ष लिया तथा इतिहास के कलुश को अपने रक्त के छींटों से धो दिया। अनुचित सत्ताधारी के नाम को ही लोक में अवाच्य बना दिया। मोटा राजा के उत्तराधिकारी द्वारा चारण कवियों को पुनः मारवाड़ में लाने की घटना भी इस बात की पुष्टि करती है कि उस लोक निंदा से नया राजा छुटकारा पाना चाहता था। अतः हम कह सकते हैं कि आऊवा का धरना कोई साधारण जागीर की बहाली का मामला नहीं था। जागीरें एवं सम्मान मिलने छिनने का अन्तहीन सिलसिला तो कवियों के सामने सदा से ही रहा है। यह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए सृजनधर्मियों द्वारा लड़ा गया स्वतंत्रता की रक्षा का संग्राम था। कविता को जीवित रखने के लिए कलमकार की अस्मिता की रक्षा के लिए किया गया उत्सर्ग था।

इसलिए आऊवा धरने का तात्कालिक कारण कुछ भी बन गया हो। मूल बात तो सत्ताधारी के अवचेतन में वही चंद्रसेन वाला प्रश्न खटक रहा था। इसीलिए यह आऊवा धरने का प्रसंग आज भी उतना ही प्रासंगिक है। आज भी मोटे राजाओं की कोई कमी नहीं है। नाम बदल गए हैं। पद बदल गए हैं। यह बात हर सत्ता संगठन पर आज भी लागू होती है। इसीलिए आज भी यह प्रसंग साहित्यकारों, चिन्तकों व लोकजन को उद्वेलित करता है।

इस घटना के चार सौ अठ्ठारह वर्ष बाद ये कविताएं देने का औचित्य यह है कि मोटा राजा कविता का विरोधी था। आज का कवि भी यह सवाल उठाता है कि हम किसके पक्ष में खड़े हैं? तथा हमें किसके पक्ष में खड़ा होना चाहिए? क्योंकि यह प्रश्न तो हर युग में रहा है तथा रहेगा। इसी संदर्भ में अक्खा बारहठ के बलिदान के प्रसंग को लेना चाहिए। वह कवियों को समझाने के लिए धरना स्थल पर गया था पर समस्या की गंभीरता को समझ खुद मर कर अमर हो गया। जीवित रहता तो अन्य लोगों की तरह लांछित होता।

भंवर सिह सामौर बताते हैं कि हमारे पूर्वजों की विचार भूमि के रूप में आऊवा का धरना स्थल तो चिह्नित है ही। इस संदर्भ में जब मैंने देश के जाने माने साहित्यकार डॉ. चंद्रप्रकाश देवल से चर्चा की तो उन्होंने आऊवा धरने से संबंधित अपनी कविताएं सुनाई। तब मुझे पुस्तक के औचित्य की बात तुरन्त समझ में आ गई तथा मैंने उनके द्वारा रचित कविताओं को इस पुस्तक में सम्मिलित करने का निर्णय लिया। लोक स्मरण एवं पुस्तक से बड़ा कोई स्मारक नहीं होता। स्मारक स्थल पर तो लोक को जाना पड़ता है, जो सबके लिए संभव नहीं है पर लोक मानस तक इस स्मारक का विचार बीज पहुँचाने के लिए यह पुस्तक तैयार की गई है जो लोक की चेतना में सोए बीज को अंकुरित करती है। इसी कारण यह पुस्तक लोक चेतना के प्रतीक आऊवा गाँव एवं आऊवा की भूमि के बलिदानी सृजनधर्मियों एवं उनके सहयोगियों को ही समर्पित की गई है। आगे अन्य धरनों का भी विवरण दिया गया है।

प्राचीन राजस्थानी काव्य

भंवर सिंह सामौर द्वारा सम्पादित पुस्तक प्राचीन राजस्थानी काव्य राजस्थानी भाषा साहित्य एवं संस्कृति अकादमी, बीकानेर द्वारा सन् 2006 ई. में प्रकाशित हुई। इस समय डॉ. देव कोठारी राजस्थानी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अकादमी, बीकानेर के अध्यक्ष एवं भंवर सिंह सामौर इस अकादमी के कार्य समिति सदस्य थे। डॉ. कोठारी ने सामौर से आग्रह किया कि समग्र रूप से प्राचीन राजस्थानी काव्य की समस्त धाराओं के संग्रह का सृजन किया जाए एवं उसमें उन विद्वानों की विद्वता का पूर्ण विवरण वर्णित किया जाए। इसी आग्रह को ध्यान में रखते हुए सामौर जी ने प्राचीन राजस्थानी काव्य नामक पुस्तक का सम्पादन किया। इस पुस्तक में उद्योतन सूरी, शालिभद्र सूरी, प्रज्ञा तिलक सूरी, चन्दबरदाई, ढोला मारू रा दूहा, पदमनाभ, श्रीधर, नरपति नाल्ह, शिवदास गाडण, बीठू सूजा, ईश्वरदास बारहठ, पृथ्वीराज राठौड़, दुरसा आढ़ा, समयसुन्दर, जसनाथ, जांभोजी, मीराबाई, बहादुर

दाढ़ी, सायांजी झुला, तेजोजी सामौर, कील्ह सामौर, कान्ह बारहठ, मेहा गोदारा, अलुजी कविया, शंकर बारहठ, चांपसिंह सामौर, जिनहर्ष, कुंभकरण सांदू आदि की रचनाएं संकलित हैं। सम्पादकीय में राजस्थानी काव्य का विस्तार से वर्णन करके इस पुस्तक की सौंदर्य वृद्धि में चार चाँद लगा दिये हैं। इस पुस्तक में इन कवियों की प्रामाणिक कृतियों से लोकजन का परिचय आपने करवाया है।

हमारे साहित्य निर्माता रावत सारस्वत

भंवर सिंह सामौर द्वारा लिखित पुस्तक हमारे साहित्य निर्माता रावत सारस्वत का प्रकाशन जब सन् 2009 ई. में एकता प्रकाशन चूरू से हुआ, तो आपके गद्य साहित्य की श्रीवृद्धि हुई। आजादी के बाद राजस्थानी भाषा की मान्यता को लेकर जो आंदोलन हुए हैं, उनमें आंदोलनकारियों में रावत सारस्वत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रावत सारस्वत ने संस्था से अधिक अकेले ने ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया । सारस्वत ने 1953 ई. में राजस्थानी भाषा प्रचार सभा की स्थापना कर राजस्थानी भाषा के महत्त्व पर पुरजोर कार्य किया। उनके इस कार्य में आचार्य रामनिवास हारीत, चंद्रसिंह बिरकाली, रानी लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत, चौधरी कुम्भाराम आर्य ने महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान कर अपनी उपस्थिति दर्ज की। इस पुस्तक में परम्परा एवं व्यक्तित्व, रावत सारस्वत का युग, बहुआयामी व्यक्तित्व, महत्त्व एवं मूल्यांकन अध्यायों में विभाजित कर साहित्यिक शैली में वर्णित किया गया है। इस पुस्तक के परिशिष्ट में रावत सारस्वत के लेखन की बानगी का स्वरूप प्रदान करने वाले आलेख, कविताएं, अनुवादित अंश प्रकाशित है। आप बताते हैं कि रावत सारस्वत का स्मरण करते हैं तो उनकी स्मृतियों के चित्र फिल्मी रील की तरह आँखों के सामने घूम जाते हैं। बात सन् 1959–60 की है। मैंने हायर सैकण्डरी उत्तीर्ण करने के बाद जयपुर के महाराजा कॉलेज में प्रवेश लिया। प्राचार्य आर. एस. कपूर साहब का व्यक्तित्व अविस्मरणीय था। उन्होंने मुझे इतिहास पढ़ाया। डॉ. देवराज उपाध्याय से हिन्दी साहित्य का अध्ययन करने का अवसर मिला। डॉ. गिरिराज शर्मा ने अर्थशास्त्र

पढ़ने का अवसर मिला। महाराजा कॉलेज मैगजीन के नाम से कॉलेज की वार्षिक पत्रिका निकलती थी। उस वर्ष की पत्रिका के लिए डॉ. देवराज उपाध्याय ने मुझे एक लेख तैयार करने के लिए कहा मैंने कविपूजक राजस्थान शीर्षक से आलेख तैयार कर डॉ. उपाध्याय को दिया। उन्हें पसंद आया। उसे कॉलेज पत्रिका में छाप दिया। लोगों ने उसे खूब पसंद किया।

इसी आलेख के बहाने रावत सारस्वत जी से मिलने का संयोग बना। उन्होंने डॉ. उपाध्याय से कहकर मुझे मिलने के लिए बुलाया। मैं प्रथम बार उनसे मिलने लिए मीरा मार्ग वाले उनके बंगले पर पहुँचा। वे स्वयं मिले। वे न तो मुझे पहचानते थे तथा न ही मैं उन्हें पहचानता था। बातचीत से परिचय हुआ तो उन्होंने कहा आइये बैठिए। आपकी तो प्रतीक्षा थी। डॉ. देवराज उपाध्याय आपकी प्रशंसा कर रहे थे। उन्होंने आपका आलेख छापा है। डॉ. उपाध्याय आसानी से किसी की प्रशंसा नहीं करते। फिर गाँव का परिचय हुआ तो अठ्ठारह सौ सतावन के क्रांतिवीर जनकवि शंकरदान सामौर का उन्होंने अनायास ही स्मरण किया। फिर बोले अपन तो एक ही धोरों की धरती के जाये जन्में हैं। फिर कहा सुजानगढ़ में साहित्य का माहौल अच्छा है। महाराजा कॉलेज की मैगजीन में किसी ग्रामीण पृष्ठभूमि वाले छात्र का प्रथम वर्ष में ही आलेख छपना बड़ी बात है। साथ ही आपने राजस्थानी साहित्य की उसके ऐतिहासिक संदर्भ में पहचान करवाकर जोरदार कार्य किया है। आगे उन्होंने सलाह दी अब आप राजस्थानी में लिखना शुरू कीजिए। राजस्थानी को आप जैसे नए युवा लेखकों की बहुत जरूरत है। आने वाला समय आप लोगों का है। हम तो नींव के पत्थर है। आप लोगों को ही इस नींव पर राजस्थानी का भवन खड़ा करना है।

प्रथम मुलाकात में ही रावतजी ने मुझे अपने प्रभाव क्षेत्र में ले लिया। फिर मैंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। आज भी मुझे स्मरण है, उन्होंने मुझे डॉ.

मोतीलाल मेनारिया का राजस्थानी भाषा और साहित्य का इतिहास दिया एवं कहा इसे पढ़ें। इससे आपकी जानकारी बढ़ेगी। उनके यहाँ अच्छी पुस्तकों का अच्छा संग्रह था। उन्होंने चुन चुनकर मुझे पढ़ने के लिए पुस्तकें दी। यह क्रम जब तक मैं जयपुर रहा तब तक चलता रहा। मोतीलाल मेनारिया, चंद्रसिंह बिरकाली, रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत, मनोहर शर्मा, सुमनेश जोशी एवं कर्पूरचंद्र कुलिश जैसे लेखकों से विद्यार्थी काल में ही मिलने का संयोग रावत सारस्वत के ही यहाँ हुआ।

''कविता लिखने के लिए भी उन्होंने ही आग्रह किया तथा बताया कि कविता की दशा और दिशा कैसी है? 'धरा सिंणगार चावै है' कविता सर्वप्रथम मरुवाणी में प्रकाशित कर उन्होंने शाबासी दी। फिर तो यह क्रम चल पड़ा। कविताएं छपती रही। फिर मैं लोहिया कॉलेज चूरू में व्याख्याता बन कर सरकारी सेवा में आ गया। वे मुझे सेमीनारों समारोहों में बुलाने लगे। पत्रवाचन भी करवाते। मेरा उनसे संपर्क सदैव बना रहा।''[11]

मैं दिसम्बर, 1989 ई. में उनसे मिलने गया। वह पलंग पर बरामदे में सो रहे थे। मुझे देखकर बैठे हो गये। आँखों में चमक आ गयी। पूछा समाचार मिल गया क्या? मैंने कहा इसीलिए तो आया हूँ। फिर बैजनाथजी पंवार के समाचार पूछे तथा कहा बैजनाथजी भी राजस्थानी आंदोलन के नींव के पत्थर हैं। मैंने उन्हें धैर्य बंधाते हुए कहा आप चिन्ता न करें। आपका लगाया वृक्ष आगे घेर घुमेर वृक्ष बनेगा। हम आपके बताए मार्ग पर चलते रहेंगे। तब तक चलते रहेंगे जब तक मंजिल नहीं मिल जाती। सुनकर बहुत प्रसन्न हुए।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले शुरू हुआ अखिल भारतीय राजस्थानी सम्मेलन, दिनाजपुर जिस प्रकार ऐतिहासिक गिना जाता है, उसी प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राजस्थानी आंदोलन का रावत सारस्वत द्वारा किया गया कार्य ऐतिहासिक रहा। एक व्यक्ति किस प्रकार संस्था गठित कर काम कर गया, यह देखना हो तो

रावत सारस्वत द्वारा किया गया राजस्थानी आंदोलन का काम देखना चाहिए। सन् 1953 में राजस्थान भाषा प्रचार सभा का जयपुर में विधिवत गठन कर काम प्रारंभ किया। उनके सहयोगी बने आचार्य रामनिवास हारीत, चंद्रसिंह बीरकाली, रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत, चौधरी कुम्भाराम आर्य। सारे देश में राजस्थानी समर्थकों की एक टीम बन गई।

राजस्थानी भाषा प्रचार सभा का कार्यालय बनीपार्क में अपने घर में प्रारंभ किया। निरन्तर 24 घण्टे वे सभा के कार्य में लगे रहते। बैठते, सोते एवं चलते वे इसी धुन में लगे रहते। उन्होंने राजस्थानी आंदोलन का प्रारम्भ दो दिशाओं में किया। एक तो लोगों का राजस्थानी से जोड़ने के लिए राजस्थानी की परीक्षाएं समस्त देश में शुरू की। इसमें उन्हें खूब सफलता मिली। हजारों लोग परीक्षाओं में सम्मिलित होते। दूसरा राजस्थानी लेखकों की टीम खड़ी करने के लिए राजस्थानी की पत्रिका 'मरुवाणी' प्रारंभ की। मरूवाणी राजस्थानी की वह उल्लेखनीय पत्रिका बनी जिसने राजस्थानी लेखन को नया आयाम दिया। इस कार्य ने ही रावत सारस्वत को महावीर प्रसाद द्विवेदी का दर्जा दिलाया।

रावत सारस्वत राजस्थानी आंदोलन को खड़ा करने के लिए अकेले ही जीवट से जूझते रहे। उन्होंने संपादन व अनुवाद का कार्य भी संभाला। खुद तो लगे ही, अन्य लोगों को भी इस काम में लगाया। आधुनिक राजस्थानी के महल को खड़ा करने के लिए प्राचीन राजस्थानी साहित्य को आधार बनाया। इसके लिए प्राचीन नामी गद्य–पद्य ग्रंथों का संपादन किया। साथ ही देश दुनिया में क्या लिखा जा रहा है, यह बताने के लिए अनुवाद का काम हाथ में लिया। दूसरे लेखकों द्वारा भी अनुवाद करवाए।

उनकी इतिहास की दृष्टि की भी कोई तुलना नहीं। मीणा इतिहास उनकी आदिम इतिहास की पीठिका कहा जा सकता है। शब्द चर्चा में भी उनकी गहरी पैठ

थी। पत्रिका मरुभारती में इस संदर्भ में उनके कई आलेख छपे। शब्दों के सांस्कृतिक अर्थों के विश्लेषण में उनका कोई सानी नहीं। रावत सारस्वत अच्छे कवि थे। उन्हें लिखने का समय ही नहीं मिला। कविता की एक पुस्तक 'बखत रै परवाण' अंतिम समय में छपी।

राजस्थानी के ऐसे सपूत रावत सारस्वत उम्र बहुत कम लाए। चूरू के इस राजस्थानी सपूत की स्मृति में चूरू के लोगों ने उनके ऋण से उऋण होने के लिए एक आयोजन उनके जन्म दिवस के अवसर पर 22 जनवरी को करना शुरू किया। चूरू की एक सड़क का नामकरण श्री रावत सारस्वत मार्ग किया गया। उनकी स्मृति में राजस्थानी में काम करने वाले को प्रतिवर्ष सम्मानित करने का निश्चय किया गया। प्रतिवर्ष स्मारिका भी निकाली जाती है।

इसी संदर्भ में श्री बैजनाथजी पंवार चाहते थे कि रावत सारस्वत की स्मृति में कोई स्थाई कार्य हो। इस हेतु राजस्थान के उभरते युवा लेखक दुलाराम सहारण पर दृष्टि गई। एक संस्था गठित कर उसके सचिव का कार्य दुलाराम सहारण को सौंपा गया। भंवर सिंह सामौर अध्यक्ष और बैजनाथ पंवार सरंक्षक बने। अन्य युवा साथियों को दुलाराम सहारण ने अपने साथ लिया। इसी प्रकार बात में से बात निकलकर उनके नाम से एक पुरस्कार की स्थापना की गई। रावतजी के पुत्र सुधीर सारस्वत आगे आए। इसी क्रम मे स्थाई रूप से उनके नाम से चूरू के विश्वविख्यात गोइन्का परिवार के साहित्यकार श्याम गोइन्का द्वारा स्थापित कमला गोइन्का फाउन्डेशन द्वारा रावत सारस्वत पत्रकारिता पुरस्कार की घोषणा ऐतिहासिक है।

स्मारकों में सबसे बड़ा स्मारक पुस्तक ही होता है। अन्य स्मारक तक तो व्यक्ति को चलकर जाना पड़ता है, पर पुस्तक स्वयं व्यक्ति के हाथों तक पहुँचती है। इसी दृष्टि से रावत सारस्वत पर समग्र रूप से यह पुस्तक तैयार की गई।

शंकरदान सामौर

सन् 1995 ई. में भंवर सिंह सामौर की पुस्तक 'शंकरदान सामौर' के नाम से प्रकाशित हुई। इस पुस्तक को साहित्य अकादमी नई दिल्ली द्वारा भारतीय साहित्य का निर्माता की सीरीज में प्रकाशित किया गया। इस पुस्तक में अठ्ठारह सौ सतावन की क्रांति का क्रांतिवीर और ओज के जन कवि शंकरदान सामौर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का वर्णन है। इस पुस्तक में परम्परा और जीवन चरित, राज और समाज, रचनाएं, युगबोध, महिमावान जनकवि के नाम से शंकरदान सामौर के कृतित्व एवं व्यक्तित्व का विवेचन किया गया है। परिशिष्ट में कविताओं की बानगी और उनके सन्दर्भ दिये गए हैं। यह पुस्तक सम्पूर्ण भारत में चर्चा का विषय रही।

देश के इतिहास में वीरता और बलिदान हेतु राजस्थान भारत में ही नहीं बल्कि विश्व में अपनी अद्भुत मिसाल रखता है। राजस्थान की धरती का कण–कण वीरता के रंग में रंगा हुआ है। राजस्थान की धरती पर बना झोपड़ा भी देश भक्तों की यादगार का गर्व धारण किए हुए मिलता है। सामौर साहब ने बताया है कि मेरे दादाजी चतरदान जी सामौर बचपन में हमें एक दोहा जो शंकर दान सामौर द्वारा रचित था, सुनाते थे–

"थिन झुंपड़ियां रा धणी, भुज थां भारथ भार।

हो थेही इण मुलक रा, सांचकला सिणगार।।"[7]

तब उस बचपन में हम इसका भावार्थ नहीं जानते थे, लेकिन यह दोहा मुझे बचपन में ही कंठस्थ हो गया था, लेकिन आज जब इस दोहे की याद आती है, तो विचार करते–करते भावार्थों की परत दर परत खुलती जाती है और मन करता है कि इस एक दोहे पर ही एक पुस्तक लिख दूं। इसी दोहे से प्रेरित होकर भंवर सिंह सामौर ने 'शंकरदान सामौर' नामक कृति की रचना की।

चारण बलिदान परम्परा की इसी जोत ज्वाला के प्रतीक प्रातः स्मरणीय स्वतन्त्रता के निर्भीक दीवाने शक्ति पुत्र शंकरदान सामौर थे। शंकरदान सामौर का जन्म छोटे से गाँव बोबासर (सुजानगढ़) में हुआ। शंकरदान सामौर ने अपनी कृषि कार्य में तल्लीनता के बल पर इतना बड़ा कार्य कर दिखाया कि वे स्वतन्त्रता संग्राम की लड़ाई में प्रथम साके की अगुवानी करने के साक्षी बने। आज शंकरदान सामौर को विभिन्न पर्वों व त्योहारों पर गीतों में भी गाया जाता हैं।

भंवर सिंह सामौर ने बताया कि इस पुस्तक को मैंने शंकरदान सामौर के चरणों में अर्पित की है। इस पुस्तक में उनसे जुड़ी हुई बातों और कविताओं को मैंने अपने पिता श्री उजीणदान सामौर से सुनकर वर्णित की है। परम पूज्य स्वामी श्री कृष्णानन्द जी महाराज और सरस्वती की असीम कृपा व आग्रह से इस पुस्तक को अतिशीघ्र ही तैयार कर लिया। यह पुस्तक मैंने रावत सारस्वत के विशेष आग्रह पर तैयार की।

मरण–त्यूंहार

सन् 1965 ई. में पाकिस्तान ने भारत पर हमला किया। युद्ध के नायक थे प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री। लाहौर तक तिरंगा फहरा दिया गया। इस अवसर पर युद्ध की कविताओं का संकलन जीवन कविया के साथ मिलकर भंवर सिंह सामौर ने तैयार किया। यह संकलन राजस्थान विश्वविद्यालय के उपकुलपति मोहन सिंह मेहता को पंसद आया। इसकी भूमिका राजस्थान के राज्यपाल सम्पूर्णानंद ने लिखी। मेहता जी ने प्रस्तावना लिखी। डा. मथुरालाल शर्मा(पूर्वकुलपति), विधानसभा अध्यक्ष रामनिवास मिर्घा, डा. सत्येन्द्र, नरोतम दास स्वामी, आनन्द प्रकाश दीक्षित, सरनाम सिंह अरुण, हीरालाल माहेश्वरी ने सम्मतियां लिखकर उसे प्रतिनिधि संकलन बताया।

युद्ध और सृजन ऐसा प्रतीत होता है, मानों दोनों परस्पर विरोधी हैं। युद्ध अपनी सम्पूर्ण विध्वंसात्मक विभीषिका को लिए सृजन के प्रतिरोध में खड़ा हुआ है। शांति के क्षणों में किये गये साहित्य सृजन में शास्त्रीय मानदण्डों की ओर बढ़ने का यत्न तथा सौन्दर्य एवं कलागत पूर्णता की प्रवृत्ति लक्षित होती है। इसके ठीक विपरीत युद्धकालीन सृजन में उत्तेजन सशक्त भाव प्रवाह होता है और मनोबल को निरन्तर ऊँचे धरातल पर रखने की क्षमता तथा विरोधी तत्वों के ध्वंसावशेषों पर नव्य सृजन का मुक्त उद्घोष। युद्ध मानव जीवन में आद्यन्त एक प्रश्न चिह्न के रूप में ही उपस्थित हुआ है। चिन्तन के शैशव से ही मानव मनीषी इस समस्या पर अपने विचार अभिव्यक्त करते रहे हैं। दार्शनिकों ने शुष्क सैद्धान्तिक रूप में ही परीक्षण किया तो समाज सुधारक ने इसे अभिशाप या कभी वैमनस्य को तिरोहित करने के लिए वरदान कहकर छोड़ दिया। परन्तु कवि जो जन मन का प्रतिनिधि होता है, जिसके कण्ठ में युग वाणी प्राप्त कर मुखरित हो उठता है, मानव जीवन के सौख्य तथा शान्ति के क्षणों को कम्पित कर विनष्ट कर देने वाले युद्ध के विषय पर मनन कर अपनी सशक्त भावधारा को काव्य के कलेवर में व्यक्त करता है। प्रत्येक देश में कवि या कलाकार वहाँ के बुद्धिजीवी वर्ग में गिना जाता है अतः युद्ध की संकटापन्न घड़ियों में उसका दायित्व सीमा पर जूझने वाले सैनिक से कम नहीं होता। वह देश के आन्तरिक मोर्चे पर जन मन की शक्ति को प्रेरित कर त्याग देशप्रेम, वीरत्व प्रभृति उदात्त भावनाओं को सजग रखता है।

पिछले दिनों पश्चिमी सीमान्त पर शत्रु ने हमारे अस्तित्व को ललकारते हुए युद्ध की घोषणा की। इस पर प्रतिक्रिया स्वरूप सम्पूर्ण देश सभी पारस्परिक मतभेदों को विस्मृत कर चुनौती का प्रत्युत्तर देने के लिए हुंकार उठा। युद्ध को पुनीत पर्व के रूप में देखने वाले राजस्थान का साहित्यकार युद्ध की ललकार को सुन कर प्रत्युत्तर दिये बिना निश्चेष्ट कैसे बना रहता? उसकी प्रेरक, ओजस्विनी वाणी वीरता एवं शौर्य के अभिनन्दन हेतु तत्पर हुई। भारतीय सेना ने आक्रांता के अदम्य माने जाने वाले पैटन टैंकों व साईबर जैट विमानों को मिट्टी के खिलौनों की भांति ध्वस्त

कर वीरता के इतिहास में स्वर्णपृष्ठ लिखा। अद्भुत था सूरमाओं का रण कौशल। विजय–वरण के साथ ही भारतवर्ष के लम्बे और विविधता भरे इतिहास में एक बहुत गौरवान्वित अध्याय की वृद्धि हुई है। इन परिस्थितियों में साहित्यकार का दायित्व और भी बढ़ गया था। भारत शांति का उपासक रहा है, परन्तु आत्मरक्षार्थ स्वाधीनता तथा सिद्धान्तों के अस्तित्व की अक्षुण्णता के लिए किये जाने वाले युद्ध में भारतीय जन मानस को आदर्शों के प्रति जागरुक रखना भारतीय साहित्यकारों का ही कर्तव्य था। वे साहित्य के माध्यम से देश को नई प्रेरणा देकर राष्ट्र के प्रति गौरव भावना के प्रसार से जन मन तथा सीमा पर खाई में जूझने वाले सैनिकों को नई दृष्टि प्रदान कर मूल्यवान कार्य कर सकते हैं।

कविता क्रम निर्वाह में हमने शैलीगत आधार को ही ग्रहण किया प्रारम्भ में पुरानी परम्परावादी शैली के अंतर्गत दोहों व डिंगल गीतों को स्थान दिया है, इसके बाद राजस्थानी की आधुनिक शैली की छन्दबद्ध कविताएं और गीत हैं, तदुपरान्त अतुकान्त कवियों का स्थान है। अन्त में परिशिष्ट के रूप में राजस्थानी साहित्य परम्परा और युद्ध प्रवाह के अंतर्गत हमनें राजस्थानी साहित्य में युद्ध संबंधी चिन्तन को स्पष्ट करने का यत्न किया है, जो कि मरण–त्यूंहार की पूर्वपीठिका के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। इस कृति के आवरण पृष्ठ पर रामगोपाल विजयवर्गीय कृत चित्र मरण–त्यूंहार की मूल भावना प्रतिबिम्बित है।

संस्कृति री सनातन दीठ

इस पुस्तक का प्रकाशन विकास प्रकाशन, बीकानेर द्वारा सन् 2016 ई. में किया गया है। भंवर सिंह सामौर प्रणीत यह पुस्तक राजस्थानी निबन्धों का संग्रह है। इस पुस्तक में संस्कृति के महत्त्व एवं समाज में उसके योगदान को रेखांकित किया गया है। संस्कृति की सनातन दीठ ही व्यक्ति और उसके जीवन को वर्तमान,

भूत और भविष्य को एक साथ जीवित रखने में सहायक है। संस्कृति ही मानव जीवन का सांस्कृतिक आइना है जो उसका मार्ग प्रशस्त करती है। सनातन की दीठ के दो अर्थ है, प्रथम वर्तमान में जीवित रहते हुए अतीत से जुड़कर भविष्य के सुनहरे सपनों को उत्साह के साथ संजोये रखना तथा प्रकृति के साथ उत्साहित जीवन व्यतीत करना। दूसरा संस्कृति ही मनुष्य और उसके समाज व देश का आधार स्तम्भ होती है। संस्कृति की बदौलत ही मनुष्य आकाश की भांति विस्तार पाता है। अपना मान–सम्मान, कीर्ति यश प्राप्त करता है। संस्कृति की सनातन दीठ के कारण ही मनुष्य अपनी सनातन परम्परा से जुड़ा रहता है। संस्कृति का अपना कोई आकार नहीं होता है, वह तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है।

सांस्कृतिक परम्परा की उत्पति का रहस्योद्‌घाटन करना ही सामौर का उद्देश्य है। भारतीय उपमहाद्वीप की संस्कृति ईरान, ईराक, ईण्डोनेशिया तक फैली हुई है। सांस्कृतिक उपमहाद्वीप का हृदय स्थल भारत को माना जाता है। भारत में राजस्थान के पुष्कर, अजमेर स्थित ब्रह्मा के मंदिर के सन्दर्भ में मान्यता है कि ब्रह्म ने यही से सृष्टि की रचना की थी। वैसे भी विश्व की सबसे प्राचीनतम पर्वत श्रृंखला अरावली को ही माना जाता है। इसकी साक्षी सरस्वती नदी किनारे पनपी सरस्वती घाटी सभ्यता एवं संस्कृति में मिली वस्तुएं हैं। सरस्वती नदी के किनारे ही वेदों की रचना हुई।

इस पुस्तक में राजस्थानी भाषा, साहित्य अर संस्कृति की प्रासंगिकता, छन्दां री प्रासंगिकता, संस्कृति री सनातन दीठ, बिरखा थारा कितरा नाम, राजस्थानी लोक साहित्य में परम्परावां अर संस्कार, आजादी रै संग्राम रो राजस्थानी साहित्य, संस्कृति री मीडिया री चुनौती, आड़ावलै रो अनमी जौधार, वर्तमान सांस्कृतिक संकट अर रचना करम, राजस्थानी लोक कलावा अर लोक संगीत, आजादी री लड़ाई रो पहलो साको आदि प्रमुख निबन्ध संग्रह है।

लोक नीति काव्य

इस पुस्तक का जिला साक्षरता समिति चूरू के द्वारा ढाका ऑफसेट, झुंझुनूं से सन् 2004 ई. में प्रकाशन किया गया। लोकतांत्रिक व्यवस्था में लोक को साक्षर करने के लिए लोक साहित्य का महत्त्व स्वयं सिद्ध है। लोक साहित्य लोगों का पाठ्यक्रम होता है। इसी के सहारे लोक जीवन अपनी मंजिल की और बढ़ता है। जहाँ कहीं भी बाधा आती है, वहाँ यह लोक साहित्य अंधेरे में प्रकाश की किरण के समान मार्ग दिखाता है।

इस काव्य में चूरू मण्डल के लोकनीतिकारों का काव्य विशेष रुप से संकलित किया गया है। साथ ही इस जनपद में लोक मुख पर अवस्थित आस पास के जनपदों का लोक साहित्य भी संकलित किया गया है। खासतौर पर सीकर जनपद का लोक साहित्य संकलित किया गया है। सीकर जनपद के लोक प्रिय जनकवि कृपाराम खिड़िया के सोरठे इस संकलन में सम्मिलित किये गए हैं। साहित्य से जुड़कर कृपाराम खिड़िया का सेवक राजिया अमर हो गया। राजिया को सम्बोधित इन सोरठों के बाद राजस्थानी में संबोधन काव्य की एक निराली परम्परा चली जो आज भी अनवरत है। इस संकलन को पुस्तक रूप में संग्रहित करते समय यह ध्यान रखा गया कि महात्मा गाँधी पुस्तकालयों के माध्यम से यह लोगों के हाथों में जाएगा। इसलिए सरल राजस्थानी भाषा के लोक शिक्षण से जुड़े लोक प्रचलित काव्य को इसमें स्थान दिया गया है।

साहित्येत्तर कार्य

लोक भारती भवन बोबासर, चूरू के माध्यम से भंवर सिंह सामौर ने पुस्तकालय आंदोलन चलाया, कोई भूखा नहीं सोये, समाज सेवा शिविरों की शुरूआत की। इन कार्यों की राजस्थान सरकार ने प्रशंसा की और इसका विस्तार सम्पूर्ण राजस्थान में किया ।

राजस्थानी लोक वाचिक परम्परा के संरक्षण हेतु आपने राष्ट्रीय साहित्य अकादमी नई दिल्ली और रूपायन संस्थान बोरून्दा के सहयोग से 3 मार्च से 7 मार्च 2002 में एक राष्ट्रीय कार्यशाला का आयोजन लोक भारती भवन बोबासर में किया। इस कार्यशाला में 21 घण्टे की सीडी सैट और लगभग डेढ़ घण्टे की एक फिल्म भी बनाई गई। जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर के इलेक्ट्रॉनिक मीडिया रिसर्च सेन्टर और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के सहयोग से लोक भारती भवन बोबासर के नाम पर परम्परा की 'जीवन्त विरासत का प्रतीक' नाम से एक डोक्यूमेन्ट्री फिल्म भी आपने बनवाई थी। यह फिल्म संसार भर में चर्चित रही। लोक भारती भवन बोबासर के माध्यम से आपने राजस्थान और गुजरात के लगभग 50 गाँव और शहरों में पुस्तकालय स्थापना के लिए पुस्तकों के सैट वितरित किये हैं। आपने राजस्थानी रसधार के नाम से दो खण्डों में राजस्थानी दोहे सम्पादित किए हैं। एक पुस्तक दूहा कथा कोश नाम से सम्पादित की है।

अनुवाद

सामौर ने भर्तृहरि के श्रृंगार शतक का राजस्थानी भाषा में सिणगार सतक नाम से अनुवाद किया है। गुजरात के सुप्रसिद्ध गुजराती कवि जयन्त पाठक की कविता की पुस्तक 'अनुनय' का राजस्थानी भाषा में 'अरज' नाम से अनुवाद किया है। गुजराती कवि जगदीश जोशी की पुस्तक 'वमल नां वन' का राजस्थानी में 'वमल रा वन' नाम से अनुवाद कर आपने राजस्थानी कवियों में अपनी ख्याति अर्जित की।

सामौर का राजस्थानी निबन्धों का संकलन राजस्थानी संस्कृति री सनातन दीठ में राजस्थानी संस्कृति, संस्कृति को मीडिया की चुनौती, राजस्थानी लोग कलाएं एवं लोक संगीत राजस्थानी साहित्य की सांस्कृतिक विरासत, राजस्थानी संस्कृति की

लोक चेतना, छन्दों की प्रासंगिकता और वर्षा तुम्हारे कितने नाम आदि निबंध संकलित हैं।

भंवर सिंह सामौर के हिन्दी साहित्य में निबंधों का संकलन 'राजस्थानी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना' नाम से प्रकाशनाधीन है। इस पुस्तक में राजस्थानी वात साहित्य, राजस्थानी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना, गोगाजी एवं उनकी लोकगाथा, राजस्थानी वात साहित्य में कथानक रूढ़िया, राजस्थानी साहित्य का प्रवृत्यात्मक मूल्यांकन, राजस्थानी साहित्य में लोक चेतना, राजस्थानी वात साहित्य एवं हिन्दी कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, वीर सतसई में प्रयुक्त वीर तत्व के प्रतीक वैण सगाई अंलकार, डिंगल गीत हमारे विद्यालय और राजस्थानी भाषा, नाथपंथ की समाज को देन, हमारा समय और साहित्य की चुनौतियां वर्तमान सांस्कृतिक संकट और रचना कर्म राजस्थान के रंगमंच की स्थिति और समस्याएं कविपूजक राजस्थान, वंशावली परम्परा आदि निबंध संकलित हैं।

भंवर सिंह सामौर के यात्रा वृत्तांत और संस्मरण भी बहुत ही लोकप्रिय हैं। कोलकाता यात्रा वृत्तांत, हैदराबाद यात्रा वृत्तांत, हरिद्वार यात्रा वृत्तांत, गुजरात यात्रा वृत्तांत और आबू पर्वत का यात्रा वृत्तांत अत्यंत ही मार्मिक है। इन यात्रा वृत्तांतों को पढ़ते समय पाठक ऐसा महसूस करता है कि मानों स्वयं उसी यात्रा में तल्लीन हैं। आपके संस्मरण लोकप्रिय ही नहीं बल्कि मंत्र मुग्ध कर देने वाले हैं।

सामौर जिस प्रकार गद्य में अपनी छाप रखते हैं ठीक उसी प्रकार पद्य में भी विशिष्ट पहचान रखते हैं। आपकी कविताएं इतनी सटीक है कि लोगों के कंठों का हार बन चुकी हैं। कई कविताएं तो लोकोक्ति बन गई है। आपकी कविताओं के दो संकलन है, प्रथम कोई कियां ही और दूसरी घर परिवार। इन कविता संकलनों में समाज, राजनीति, धर्म आदि की विद्रूपताओं पर सार्थक व्यंग्य किया गया है। आप

अपनी कविता के माध्यम से पाठक श्रोता के हृदय को झकझोर कर रख देते हैं तथा अपने भावों को पाठक एवं श्रोता को हृदयगम कराकर आत्मनुभूत करा देते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1- An Introducation in the Study of Literature- W.H.Hudson Page-15

2. युगान्तरकारी सन्यासी– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 19

3. आऊवा का धरणा– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 7

4. शंकरदान सामौर– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 17

5. चारण बड़ी अमोलक चीज– भंवर सिंह सामौर, (प्रकाशकीय पृष्ठ)

6. संस्कृति री सनातन दीठ– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 90

7. राजस्थानी शक्ति काव्य– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 15

8. शेखावाटी के यशस्वी चारण– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 38

9. चूरू मण्डल के यशस्वी चारण– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 33

10. हमारे साहित्य निर्माता रावत सारस्वत– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 8

11. लोकनीति काव्य– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 6

12. प्राचीन राजस्थानी काव्य– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 39

द्वितीय अध्याय

आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य और भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का वैशिष्टय

आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य का स्वरूप और विकास

भंवर सिंह सामौर की गद्य दृष्टि

द्वितीय अध्याय

आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य और भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का वैशिष्टय

(क) आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य का स्वरूप और विकास

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा

अतीत के तथ्यों का वर्णन–विश्लेषण, जो कालक्रमानुसार किया गया हो, इतिहास कहलाता है। इतिहास के प्रति वस्तुपरक दृष्टिकोण जिसमें तर्कपूर्ण शैली एवं गवेषणात्मक पद्धति को लिया गया हो, उसे वैज्ञानिक रूप प्रदान करता है, जबकि इतिहास के प्रति आत्मपरक दृष्टिकोण एवं ललित शैली उसे कलात्मक रूप देते हैं। इतिहास लेखन के प्रति भारतीय दृष्टिकोण सदैव आदर्शमूलक एवं अध्यात्मवादी रहा है। जिसमें सत्य के साथ शिव और सुन्दर का समन्वय करने की ओर ध्यान केन्द्रित रहा है। महाभारतकार ने इतिहास को ऐसा पूर्ववृत माना है जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष अर्थात् पुरुषार्थ चतुष्टय का उपदेश देता है तो पुराणकार महापुरुषों के चरितगान को इतिहास के रूप में स्वीकार करता है। भारत का प्राचीन इतिहासकार सत्य शोधन तक सीमित नहीं रहा वह उसे शिवं और सुन्दरं रूप देने का प्रयास करता रहा। परिणामतः उसने इतिहास में कला एवं नीति को समाविष्ट कर उसे शुद्ध ऐतिहासिकता से वंचित कर दिया। दूसरी ओर पाश्चात्य इतिहासकार प्रायः यथार्थवादी, वस्तुपरक दृष्टिकोण अपनाने पर बल देते हैं। युनानी विद्वान हिरोदोतस ने इतिहास के चार लक्षण निर्धारित किए हैं–

1. इतिहास वैज्ञानिक विद्या है, अतः इसकी पद्धति आलोचनात्मक होती है।
2. यह मानविकी के अन्तर्गत आता है, अतः मानव जाति से सम्बन्धित है।
3. इसके तथ्य, निष्कर्ष प्रमाण पर आधारित होते हैं।
4. यह अतीत के आलोक में भविष्य पर प्रकाश डालता है।

पाश्चात्य इतिहास दर्शन विकासवादी दृष्टिकोण को मान्यता देता है। डार्विन का विकासवाद प्राणीशास्त्र पर, मार्क्स का विकासवाद अर्थशास्त्र पर, स्पेंसर का विकासवाद भौतिकशास्त्र पर लागू होता है। भले ही कुछ लोग विकासवादी सिद्धान्त के विरोधी रहे हैं, किन्तु सत्य यह है कि विकासवाद के बिना इतिहास को समझा नहीं जा सकता। साहित्य के इतिहास में हम रचनाओं का अध्ययन ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में करते हैं। साहित्य के इतिहास को समझने के लिए तत्कालीन परिस्थितियों का अध्ययन आवश्यक है, साथ ही इनके रचयिताओं की परिस्थितियों एवं मनोभावों को जानना भी आवश्यक है। आचार्य शुक्ल साहित्य के इतिहास को जनता की चित्तवृत्ति का इतिहास मानते हैं। जनता की चित्तवृत्ति तत्कालीन परिस्थितियों से परिवर्तित होती है, अतः साहित्य का स्वरूप भी इन परिस्थितियों के अनुरूप बदलता है। शुक्ल जी की यह धारणा है कि ''साहित्य का इतिहास कवियों का वृत संग्रह न होकर साहित्य की प्रवृत्ति का इतिहास होता है। विभिन्न कालखण्डों की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप साहित्य में जो प्रवृत्तियाँ परिवर्तित होती हैं, उन्हीं के सन्दर्भ में कवियों की रचनाओं का अध्ययन किया जाना चाहिए।''[1]

इतिहास के प्रति भारतीयों का दृष्टिकोण भले ही आदर्श प्रेरित रहा हो, किन्तु पाश्चात्य विद्वानों ने यथार्थ को महत्व देते हुए इतिहास को गवेषणा, खोज एवं अनुसंधान का स्वरूप प्रदान करते हुए इसमें वैज्ञानिकता का समावेश किया है। इटेलियन विद्वान विको यह स्वीकार करता है कि इतिहास का सम्बन्ध न केवल अतीत से होता है, न वर्तमान से। इतिहास का निर्माता स्वयं मनुष्य है और मनुष्य चाहे तो जिस युग का हो उसकी मूलभूत प्रवृत्तियाँ एक सी रहती हैं। इतिहासकार को अतिरंजना एवं अतिशयोक्ति से बचना चाहिए। वस्तुतः इतिहासकार अतीत को वर्तमान से जोड़ने का प्रयास करता है। कलिंगवुड के अनुसार इतिहास दर्शन का सम्बन्ध न तो अपने आप में अतीत से होता है न ही अतीत के बारे में इतिहासकार के विचारों से बल्कि उसका सम्बन्ध इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध से होता है।

इतिहासकार अपने वर्तमान का अन्तःसम्बन्ध अतीत से जोड़ने का प्रयास करता है। इतिहासकार वर्तमान के झरोखों से अतीत को देखने का प्रयास करता है। ई. एच. कार के अनुसार ''अतीत की घटनाओं को क्रमबद्धता देकर कारण और प्रभाव के क्रम से रखना ही इतिहास है। कारण–कार्य शृंखला में गुथकर ही तथ्य ऐतिहासिक बनते हैं। जब किसी तथ्य की अन्य तथ्यों से साथ संगत खोज ली जाती है, उसके सही सन्दर्भ का पता चल जाता है तो वह ऐतिहासिक तथ्य बन जाता है। इतिहासकार की प्रतिभा बिखरे हुए तथ्यों में निहित संगति के सूत्र खोज लेती है।''[2]

जर्मन चिन्तक भी इस तथ्य को मान्यता देते हैं कि साहित्य के इतिहास की व्याख्या तद्युगीन चेतना के आधार पर की जानी चाहिए। मार्क्सवादी आलोचक द्वन्द्वात्मक भौतिक विकासवाद, वर्ग संघर्ष और आर्थिक परिस्थितियों को सभी साहित्यिक प्रवृत्तियों के मूल में स्वीकार करते हुए अपने एंकाकी दृष्टिकोण का परिचय देते हैं। आई. ए. रिचर्ड्स जैसे विद्वानों ने काव्य शैली पक्ष की व्याख्या मनोविज्ञान एवं अर्थविज्ञान के आधार पर की है। कारलाईल के अनुसार ''किसी राष्ट्र के काव्य का इतिहास वहाँ के धर्म, राजनीति और विज्ञान के इतिहास का सार होता है। काव्य के इतिहास में लेखक को राष्ट्र के उच्चतम लक्ष्य, उसकी क्रमागत दिशा और विकास को देखना अत्यन्त आवश्यक है। इससे राष्ट्र का निर्माण होता है।''[3] साहित्य के इतिहास लेखन में युगीन परिवेश की महत्ता पर भारतीय विचारकों ने पर्याप्त बल दिया है। डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त के अनुसार ''साहित्य के क्षेत्र में सृजन शक्ति साहित्यकार की नैसर्गिक प्रतिभा, सांस्कृतिक परम्पराओं, युगीन चेतना और क्रिया–प्रतिक्रिया से प्रेरित होकर गतिशीलता प्राप्त करती है।''[4]

उक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि साहित्य का अध्ययन–विश्लेषण युगीन चेतना एवं साहित्यकार की वैयक्तिक प्रवृत्तियों के परिपेक्ष्य में किया जाना चाहिए। हिन्दी साहित्य के इतिहास दर्शन के अन्तर्गत निम्न तथ्यों का समावेश किया जा सकता है–

1. साहित्यकार की प्रतिभा और व्यक्तित्व का अध्ययन
2. युगीन चेतना का अध्ययन
3. साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं का अध्ययन
4. साहित्यकार की नैसर्गिक प्रतिभा एवं परम्परा का द्वन्द्व एवं उसके स्रोत का अध्ययन
5. साहित्यकार द्वारा अभीष्ट की प्राप्ति

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन का वास्तविक सूत्रपात 19 वीं शताब्दी से माना जाता है। यद्यपि मध्यकाल में रचित वार्ता साहित्य यथा– चौरासी वैष्णवन की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, भक्तमाल आदि में अनेक कवियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय मिल जाता है, किन्तु इतिहास लेखन के लिए जो कालक्रमानुसार वर्णन अपेक्षित होता है, उसका नितान्त अभाव इन वार्ता ग्रन्थों में है, अतः इन्हें साहित्य का इतिहास ग्रन्थ नहीं माना जा सकता। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों में जो उल्लेखनीय है, उनका संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है–

1. गार्सा–द–तासी– हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा का सूत्रपात भी किसी हिन्दी भाषी व्यक्ति द्वारा न होकर फ्रेंच विद्वान गार्सा–द–तासी द्वारा रचित 'इस्त्वार द ला लितरेत्यूर ऐन्दुई ऐन्दुस्तानी' नामक ग्रन्थ से हुआ जिसकी रचना दो भागों में की गई है। इसके प्रथम भाग का प्रकाशन सन् 1839 ई. में और द्वितीय भाग का प्रकाशन सन् 1847 ई. में हुआ। यह फ्रेंच भाषा में लिखा गया हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास ग्रन्थ है। इसमें हिन्दी और उर्दू के अनेक कवियों का विवरण वर्णनाक्रम में प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही इस ग्रन्थ में कवियों के रचनाकाल का निर्देश भी किया गया है।
2. शिवसिंह सेंगर– हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन परम्परा में दूसरी महत्त्वपूर्ण कृति शिवसिंह सेंगर द्वारा रचित 'शिवसिंह सरोज' है। इसका प्रकाशन सन् 1883 ई. में

हुआ। इस साहित्यिक इतिहास ग्रन्थ में लगभग एक हजार छोटे–बड़े कवियों का जीवन–चरित, उनकी साहित्यिक कृतियां एवं कविता के उदाहरण प्रस्तुत किए गए है। इस इतिहास ग्रन्थ में तत्कालीन समय तक उपलब्ध हिन्दी कविता सम्बन्धी जानकारी को एक स्थान पर एकत्र करने का सराहनीय प्रयास किया गया है, जिसका परवर्ती साहित्य इतिहासकारों ने उपयोग करके इतिहास ग्रन्थों की रचना की है।

3. सर जार्ज ग्रियर्सन– सन् 1888 ई. में सर जार्ज ग्रियर्सन ने 'द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' नामक साहित्यिक इतिहास ग्रन्थ का प्रकाशन एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की पत्रिका के विशेषांक के रूप में करवाया। अनेक विद्वानों ने सही अर्थों में इसे हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास ग्रन्थ माना है। इस ग्रन्थ में पहली बार कवियों और लेखकों को कालक्रमानुसार वर्गीकृत कर उनकी प्रवृत्तियों को उजागर किया गया है। यद्यपि यह इतिहास ग्रन्थ अंग्रेजी भाषा में लिखा गया है फिर भी इस ग्रन्थ में संस्कृत, अरबी–फारसी, उर्दू, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के कवियों को स्थान न देकर केवल हिन्दी के साहित्यकारों को स्थान देकर ग्रियर्सन ने परवर्ती इतिहासकारों के लिए कवि चुनने का मार्ग प्रशस्त किया है। ग्रियर्सन ने युगीन प्रवृत्तियों एवं परिस्थितियों का विवेचन करते हुए भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का महत्त्वपूर्ण काल मानते हुए उसे स्वर्ण युग की संज्ञा से नवाजा है।
4. मिश्र बन्धु– हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में मिश्र बन्धुओं द्वारा रचित 'मिश्र बन्धु विनोद' ग्रन्थ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस ग्रन्थ की रचना चार भागों में की गई है जिसमें प्रथम तीन भाग सन् 1913 ई. में तथा चौथा सन् 1914 ई. में प्रकाशित हुए थे। यह विशालकाय ग्रन्थ है जिसमें लगभग पाँच हजार कवियों का विवरण दिया गया है। इस इतिहास ग्रन्थ में पहली बार काल विभाजन का समुचित प्रयास किया गया है। मिश्र बन्धुओं ने सारे रचनाकाल को आठ कालखण्डों में विभक्त किया है तथा विभिन्न कालखण्डों के कवियों का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत करते हुए उनके साहित्यिक महत्त्व को उजागर किया है। मिश्र बन्धुओं ने तुलनात्मक पद्धति का अनुसरण करते हुए कवियों की श्रेणियां बनाने का प्रयास भी किया है।

5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल– हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थकारों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का नाम सर्वोपरि है। उन्होंने सन् 1929 ई. में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ हिन्दी शब्द सागर की भूमिका के रूप में लिखा जिसे बाद में स्वतन्त्र पुस्तक का रूप दिया गया। आचार्य शुक्ल ने युगीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में साहित्यिक प्रवृत्तियों के विकास की जो बात कही वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उन्होंने अपने इतिहास में सर्वत्र इसी धारणा के अनुरूप प्रत्येक कालखण्ड की युगीन परिस्थितियों का सम्यक् विवेचन करते हुए तत्कालीन काव्य प्रवृत्तियों की चर्चा की है। आचार्य शुक्ल का दूसरा महत्त्वपूर्ण योगदान काल विभाजन के सम्बन्ध में है। उन्होंने हिन्दी साहित्य के लगभग नौ सौ सालों के साहित्य इतिहास को चार कालों में विभक्त कर प्रवृत्ति के आधार पर नामकरण किया है–

1. आदिकाल (वीरगाथा काल, संवत् 1050–1375 वि.)
2. पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल, संवत् 1375–1700 वि.)
3. उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल, संवत् 1700–1900 वि.)
4. आधुनिक काल (गद्यकाल, संवत् 1900–1984 वि.)

आचार्य शुक्ल नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के धनी थे। उनमें प्रौढ़ विवेचना शक्ति एवं वैज्ञानिक दृष्टि थी इसलिए वे एक ऐसे इतिहास ग्रन्थ की रचना कर सके जो अपने क्षेत्र में मील का पत्थर साबित हुआ है। परवर्ती साहित्य इतिहास लेखकों की कृतियों का मूल आधार शुक्ल जी का इतिहास ही बनता रहा है और उन कृतियों का मूल्यांकन भी शुक्ल जी के इतिहास को मापदण्ड बनाकर किया जाता रहा है। काल विभाजन, इतिहास दर्शन, नामकरण का सुस्पष्ट आधार, रचनाओं का साहित्यिक मूल्यांकन आदि शुक्ल के साहित्य इतिहास ग्रन्थ की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

6. डॉ. रामकुमार वर्मा– डॉ. राकुमार वर्मा ने हिन्दी साहित्य के इतिहास को दो भागों में प्रकाशित करने की योजना को क्रियान्वयन करने का प्रयास किया है। इनमें से एक भाग 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' सन् 1938 ई. में प्रकाशित हो चुका

है जिसमें 693 ई. से लेकर 1693 ई. तक के कालखण्ड को विवेचित किया गया है। इनके इतिहास ग्रन्थ लेखन का मुख्य आधार कुछ मतान्तरों के बाद शुक्ल का इतिहास ग्रन्थ ही रहा है। वर्मा ने अपने इतिहास ग्रन्थ में कवियों के मूल्यांकन में सहृदयता का परिचय दिया है। उनकी सुबोधता, सरलता एवं शैली की कलात्मकता के कारण यह ग्रन्थ अधिक लोकप्रिय रहा है। इसका दूसरा भाग अभी तक अप्रकाशित होने के कारण अधूरा है।

7. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी– हिन्दी साहित्य जगत् में आचार्य शुक्ल के बाद हजारी प्रसाद द्विवेदी की मान्यताओं को साहित्य के मनीषियों ने नतमस्तक होकर सहर्ष स्वीकार किया है। डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त द्विवेदी के सन्दर्भ में लिखते हैं कि ''वे वस्तुतः पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने आचार्य शुक्ल की अनेक धारणाओं और स्थापनाओं को चुनौती देते हुए उन्हें सबल प्रमाणों के आधार पर खण्डित किया।..... जहाँ तक ऐतिहासिक चेतना व पूर्व परम्परा के बोध की बात है, निश्चय ही आचार्य द्विवेदी हिन्दी के सबसे अधिक सशक्त इतिहासकार हैं।''[5] द्विवेदी द्वारा रचित साहित्य इतिहास ग्रन्थ– हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, हिन्दी साहित्य का आदिकाल प्रमुख है।

8. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास– नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा सौलह खण्डों में सम्पादित साहित्य इतिहास ग्रन्थ है। यह विशाल ग्रन्थ किसी एक व्यक्ति विशेष की रचना न होकर शताधिक साहित्य इतिहासकारों के सामूहिक प्रयास का प्रतिफल है। इसका प्रत्येक खण्ड अलग–अलग विद्वानों द्वारा तैयार किया गया है अतः शैली की एकरूपता नहीं रह पायी है। इसका स्थूल ढांचा आचार्य शुक्ल के इतिहास ग्रन्थ पर ही आधारित है।

9. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त– 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' नामक इतिहास ग्रन्थ लिखकर गुप्त जी ने हिन्दी साहित्य इतिहास लेखन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इस ग्रन्थ में साहित्येतिहास के विकासवादी सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा करते हुए उसके आलोक में हिन्दी साहित्य की नूतन व्याख्या प्रस्तुत की गई है। लेखक के अनुसार ''विगत तीस–पैंतीस वर्षों में हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में पर्याप्त अनुसंधान

कार्य हुआ है, जिनसे बहुत सी ऐसी नयी सामग्री, नये तथ्य और नये निष्कर्ष प्रकाश में आए हैं जो आचार्य शुक्ल के वर्गीकरण–विश्लेषण आदि के सर्वथा प्रतिकूल पड़ते हैं।''[6] आवश्यकता इस बात की है कि इन शोध निष्कर्षों के अनुरूप हम इतिहास को नवीन मानते हुए नवीन रूप में प्रस्तुत करें और पुरानी मान्यताओं से चिपके न रहें।

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की यह परम्परा निरन्तर चल रही है। अनेक विद्वानों ने जहाँ समग्रतः हिन्दी साहित्य के इतिहास से सम्बन्धित रचनाएं प्रस्तुत की हैं, वहीं कुछ अन्य विद्वानों ने उसके किसी एक पक्ष को लेकर अनुसंधान किए हैं। अनेक शोध प्रबन्ध और रचनाएं भी प्रस्तुत की हैं, जो अनेक विवादास्पद प्रश्नों एवं समस्याओं का समाधान करने में सहायक सिद्ध हुई है। जिनमें से कुछ का विवरण निम्नानुसार है–

1. डॉ. धीरंन्द्र वर्मा– हिन्दी साहित्य
2. डॉ. भागीरथ मिश्र– हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास
3. मोतीलाल मेनारिया– राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा
4. डॉ. टीकमसिंह तोमर– हिन्दी वीर काव्य
5. डॉ. नगेन्द्र– रीतिकाव्य की भूमिका
6. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय– आधुनिक हिन्दी साहित्य
7. पण्डित महेशदत्त शुक्ल– हिन्दी काव्य संग्रह
8. डॉ. नलीन विलोचन शर्मा– हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन
9. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी– हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास
10. ब्रज रत्न दास– खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास

हिन्दी गद्य का उद्भव एवं विकास

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास के चतुर्थ खण्ड को गद्य की प्रधानता के कारण ही नामकरण गद्यकाल रखा था। आचार्य शुक्ल का मत

है कि बल्लभाचार्य के पुत्र गोसांई विट्ठलनाथ जी ने 'शृंगार रस मण्डन' नामक एक ग्रन्थ ब्रजभाषा में लिखा था जिसकी भाषा अपरिमार्जित एवं अव्यवस्थित है। इसके उपरान्त 'वार्ता साहित्य' की रचना गद्य में हुई। यद्यपि अब तक शताधिक वार्ताग्रन्थ प्राप्त हो चुके हैं पर महत्त्वपूर्ण दो ही ग्रन्थ हैं–

1. चौरासी वैष्णवन की वार्ता
2. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

इन दोनों वार्ता ग्रन्थों के रचयिता मूल रूप में बल्लभाचार्य जी के पौत्र गोसांई गोकुलनाथ हैं, जिन्हें अनुयाइयों ने विस्तार देकर ग्रन्थ का मूल रूप प्रदान किया है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में बल्लभाचार्य के शिष्यों और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में गोसांई विट्ठलनाथ के शिष्यों का जीवनवृत्त है। बल्लभ सम्प्रदाय का वार्ता साहित्य गोसांई विट्ठलनाथ और गोसांई गोकुलनाथ के वचनामृत पर आधारित है जिसे लिपिबद्ध करने का कार्य श्रीकृष्ण भट्ट, कल्याण भट्ट और हरिराय ने किया। हरिराय की गणना ब्रजभाषा गद्यकारों में सबसे ऊपर की जाती है। कथात्मक और तथ्य निरूपक दोनों प्रकार का गद्य हरिराय ने लिखा है। वार्ता साहित्य प्रायः प्रचारपरक, शिक्षात्मक और सोद्देश्य है। उसकी भाषा में तत्सम और अर्द्धतत्सम शब्दों की बहुलता है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' सत्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध में लिखी गई जबकि 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' औरंगजेब के काल की है। नाभादास द्वारा रचित 'अष्टयाम' पुस्तक ब्रजभाषा गद्य में है जिसमें भगवान राम की दिनचर्या का वर्णन है।

प्रारम्भिक गद्य रचनाएं

प्रारम्भिक गद्य रचनाओं का वर्णन निम्नानुसार है–

	रचना का नाम	रचयिता	रचनाकाल
1.	श्रृंगार रस मण्डन	गोसांई विट्ठलनाथ	–
2.	चौरासी वैष्णवन की वार्ता	गोकुलनाथ	17 वीं शताब्दी का उतरार्द्ध
3.	दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता	गोकुलनाथ	17 वीं शताब्दी का उतरार्द्ध
4.	अष्टयाम	नाभादास	1603 ई.
5.	अगहन माहात्म्य	वैकुण्ठमणि शुक्ल	1627 ई.
6.	वैसाख माहात्म्य	वैकुण्ठमणि शुक्ल	1627 ई.
7.	नासिकेतोपाख्यान	सदल मिश्र	1703 ई.
8.	वैताल पचीसी	सुरति मिश्र	1710 ई.

गद्य लिखने की परिपाटी का सम्यक प्रचार न होने के कारण ब्रजभाषा गद्य का पूरा विकास नहीं हो सका। वार्ताग्रन्थों में उसका परिष्कृत एवं सुव्यवस्थित रूप उपलब्ध होता है किन्तु आगे चलकर काव्य की जो टीकाएं लिखी गई उनमें गद्य का रूप बहुत अशक्त और अव्यवस्थित रहा। जानकीप्रसाद द्वारा रचित रामचन्द्रिका की भाषा भी अशक्त और अव्यवस्थित है।

खड़ीबोली गद्य की महत्त्वपूर्ण पुस्तक गंग कवि द्वारा रचित 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' है। इसकी रचना सम्राट अकबर के समय हुई थी। 1741 ई. में रामप्रसाद निरंजनी ने 'भाषा योगवाशिष्ठ' नाम का गद्य ग्रन्थ साफ–सुथरी खड़ी बोली में लिखा। जिसे देखकर पता चलता है कि मुंशी सदासुखलाल और लल्लूलाल से साठ साल पहले भी खड़ीबोली गद्य का परिमार्जित रूप था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रामप्रसाद निरंजनी को ही प्रथम प्रौढ़ गद्य लेखक माना है। फोर्ट विलियम कॉलेज के हिन्दी–उर्दू अध्यापक जान गिलक्राइस्ट के आदेश से लल्लूलाल ने खड़ी बोली गद्य में प्रेम सागर की रचना की थी। इसी कॉलेज के सदल मिश्र ने भी कॉलेज अधिकारियों की प्रेरणा से खड़ी बोली गद्य में नासिकेतोपाख्यान की रचना की। मुंशी

सदासुखलाल 'नियाज' ने श्रीमद्‌भगवत पुराण का अनुवाद हिन्दुओं की बोलचाल की शिष्ट भाषा में 'सुखसागर' की रचना गद्य के रूप में ही की थी।

हिन्दी गद्य के इन चार प्रारम्भिक लेखकों में से इंशा की भाषा सबसे अधिक चटकीली, मुहावरेदार और चलती हुई भाषा है। इंशा रंगीन और चुलबुली भाषा द्वारा अपना लेखन कौशल दिखाना चाहते थे। आचार्य शुक्ल ने मुंशी सदासुखलाल को विशेष महत्त्व दिया। इन चारों लेखकों का रचनाकाल मोटे तौर पर 1800 ई. के आसपास है, अतः हिन्दी गद्य का उद्‌भव भी 1800 ई. के आसपास से समझना चाहिए। विलियम केरे जो एक ईसाई धर्म प्रचारक था, ने बाइबिल का हिन्दी और उर्दू में अनुवाद करवाया। इस अनुवाद का गद्य सरल और सीधा है तथा इसमें चलती हुई भाषा का प्रयोग किया गया है।

हिन्दी–उर्दू के इस संघर्षकाल में राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द और राजा लक्ष्मणसिंह हिन्दी के पक्षधर बनकर सामने आए। सितारेहिन्द की लिखी पुस्तकें– आलसियों का कीड़ा, राजा भोज का सपना, इतिहास तिमिरनाशक, मानव धर्म का सार, उपनिषद सार, भूगोल हस्तामलक आदि हिन्दी गद्य साहित्य की अनमोल थाती है। राजा लक्ष्मण सिंह ने 1861 ई. में आगरा से 'प्रजा हितैषी' नामक समाचार पत्र और 1862 ई. में 'अभिज्ञान शाकुन्तम्' का अनुवाद सरस एवं विशुद्ध हिन्दी में प्रकाशित किया। शकुन्तला नाटक की भाषा देखकर अंग्रेज विद्वान फ्रेडरिक पिन्काट बहुत प्रसन्न हुए और इस नाटक का परिचयात्मक विवरण देते हुए बहुत सुन्दर लेख लिखा।

आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानद सरस्वती ने भी राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश की रचना हिन्दी गद्य में ही की और आर्य समाज का सारा काम हिन्दी में करने पर बल दिया था। आर्य समाज ने हिन्दी गद्य साहित्य के विकास में अनेक शिक्षण संस्थाएं खोली तथा अनेक पत्र–पत्रिकाओं, उपदेशों, प्रवचनों, शास्त्रार्थों आदि के अनुवाद ग्रन्थों के माध्यम

से हिन्दी के प्रचार–प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। आर्य समाज ने निश्चय ही हिन्दी गद्य साहित्य को समृद्ध कर उसे नवीन गति प्रदान की।

भारतेन्दु बाबू हरिशचन्द्र से पहले हिन्दी गद्य की दो शैलियां विद्यमान थी– एक तो उर्दू–फारसी के शब्दों से युक्त खिचड़ी हिन्दी भाषा जिसका प्रतिनिधित्व शिवप्रसाद सितारेहिन्द कर रहे थे तो दूसरी ओर संस्कृत शब्दों से युक्त विशुद्ध हिन्दी थी जिसका प्रतिनिधित्व राजा लक्ष्मणसिंह कर रहे थे। भारतेन्दु जी ने अपनी भाषा के लिए मध्यम् मार्ग को अपनाया।

भारतेन्दु युग में गद्य का विकास

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के गद्य साहित्य के विकास में भारतेन्दु का योगदान अविस्मरणीय है। सही अर्थों में हिन्दी गद्य के जनक बाबू भारतेन्दु हरिशचन्द्र ही हैं। उनकी भाषा में न तो सदासुखलाल की तरह भाषा का पंडिताऊपन है, न लल्लूलाल का ब्रजभाषापन और न सदल मिश्र का पूरबीपन है। भारतेन्दु ने भाषा संस्कार करते हुए पद्य की ब्रज भाषा का भी परिस्कार किया। भारतेन्दु ने हिन्दी साहित्य को नवीन मार्ग दिखलाया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि ''हमारे जीवन और साहित्य के बीच जो विच्छेद बढ़ रहा था, उसे भारतेन्दु ने दूर किया। हमारे साहित्य को नये–नये विषयों की ओर प्रवृत्त करने वाले हरिशचन्द्र ही हुए हैं।''[7]

भारतेन्दु जी मंजी हुई परिस्कृत भाषा सामने लाए जो हिन्दी साहित्य की ही नहीं बल्कि हिन्दी भाषी जनता की बोली थी, अतः जो भाषा को लेकर विवाद चल रहा था वह बहुत कुछ हद तक सुलझ गया। इन्होंने अल्प समय में ही हिन्दी साहित्यकारों का एक मण्डल बना लिया था जिसे 'भारतेन्दु मण्डल' के नाम से जाना जाता है। इस मण्डल में पं. प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', ठाकुर जगमोहन सिंह और पं. बालकृष्ण भट्ट प्रमुख थे।

भारतेन्दु युग में गद्य का प्रारम्भ नाटकों से हुआ। भारतेन्दु ने बंगला के नाटक 'विद्यासुन्दर' का हिन्दी में अनुवाद किया था। नाटकों को रंगमंच पर प्रस्तुत करने का कार्य भी सबसे पहले भारतेन्दु मण्डल के लेखकों ने ही किया था। ये लोग स्वयं नाटकों में अभिनय करते थे। भारतेन्दु ने पं. शीतलाप्रसाद त्रिपाठी के 'जानकी मंगल' नाटक में अभिनय किया था, जिसे देखने के लिए काशी नरेश ईश्वरी नारायण सिंह पधारे थे। पं. प्रतापनारायण मिश्र ने एक नाटक में अभिनय करने के लिए अपने पिता से मूंछ मुड़वा लेने की आज्ञा भी मांगी थी।

भारतेन्दु युग में अनेक अच्छे निबन्धकार भी हुए जिन्होंने विविध विषयों पर निबन्ध लिखे। राजनीति, समाज, देश, ऋतु, पर्व, त्योहार, जीवन चरित्र तथा अन्य अनेक विषयों पर इस काल में निबन्ध लिखे गए। बंग भाषा के अनुकरण पर हिन्दी में उपन्यासों की ओर झुकाव इस काल में देखा जा सकता है। हिन्दी का पहला उपन्यास लाला श्री निवास दास द्वारा 'परीक्षा गुरु' भी इसी काल की देन है। इसके बाद राधाकृष्णदास ने 'निस्सहाय हिन्दू' और पं. बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान एक सुजान' नामक उपन्यासों की रचना की।

भारतेन्दु ने अपने अल्प जीवनकाल में ही माँ भारती के भण्डार में अभूतपूर्व श्रीवृद्धि की। वे बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। उनके द्वारा लिखित गद्य साहित्य का विवरण निम्नानुसार है–

1. मौलिक नाटक– वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चन्द्रावली नाटिका, विषस्य विषमौषधम्, भारत दुर्दशा, नीलदेवी, अन्धेर नगरी, प्रेम जोगिनी, सती प्रताप(अधूरा)
2. अनूदित नाटक– विद्या सुन्दर, पाखण्ड विडम्बन, धनंजय विजय, कर्पूर मंजरी, मुद्राराक्षस, सत्य हरिशचन्द्र, भारत जननी, दुर्लभ बन्धु, रत्नावली।
3. उपन्यास– हम्मीर हठ, रामलीला, सुलोचना, शीलवती, सावित्री चरित्र।
4. निबन्ध– सबै जाति गोपाल की, मित्रता, सूर्योदय, कुछ आप बीती कुछ जग बीती, जयदेव, बंग भाषा की कविता
5. इतिहास ग्रन्थ– कश्मीर कुसुम, बादशाह दर्पण।

भारतेन्दु जी के नाटकों, निबन्धों, उपन्यासों में विषय वैविध्य था। चन्द्रावली नाटिका में प्रेम के आदर्श का निरूपण है तो नीलदेवी ऐतिहासिक नाटक है। भारत—दुर्दशा में देश की दशा का चित्रण है तो विषस्य—विषमौषधम् में देशी रजवाड़ों के षड्यंत्रों का पर्दाफाश किया गया है। प्रेम जागिनी में धार्मिक पाखण्ड का चित्रण है। इस काल की कविता में भक्ति भावना, शृंगारिकता के साथ—साथ स्त्री शिक्षा, समाज सुधार, राष्ट्रीयता आदि का बेजोड़ संगम है। इस युग के अन्य लेखकों ने भी अपने समाचार पत्र—पत्रिकाओं एवं रचनाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों, मिथ्याचारों, अन्धविश्वासों पर कुठाराघात किया है।

द्विवेदी युग मे गद्य का विकास

भारतेन्दु युग यदि आधुनिक काल का प्रवेश द्वार है तो द्विवेदी युग उसका विस्तृत प्रांगण जहाँ उन प्रवृत्तियों को विकसित एवं पल्लवित होने का अवसर प्राप्त हुआ जो भारतेन्दु युग में प्रारम्भ हुई थी। विशेषतः भारतीय जनमानस में स्वदेशानुराग एवं नवजागरण के जो बीज भारतेन्दु युग में अंकुरित हुए थे, वे द्विवेदी युग में पूर्ण पल्लवित होकर सामने आ गए। उन्नीसवीं शताब्दी का अन्त होते—होते भारतेन्दुकालीन समस्या पूर्ति एवं नीरस तुकबन्दियों से सहृदय विमुख होने लगे तथा लम्बे समय से काव्य भाषा के रूप में व्यवहृत ब्रजभाषा का आकर्षण भी अब लुप्त होने लगा और उसका स्थान खड़ी बोली हिन्दी ने ले लिया। महावीर प्रसाद द्विवेदी सन् 1903 ई. में सरस्वती पत्रिका के सम्पादक बने। इस पत्रिका के माध्यम से इन्होंने कवियों को नायिका भेद जैसे विषयों को छोड़कर विविध विषयों पर कविता लिखने की प्रेरणा दी, काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा को त्यागकर खड़ी बोली का प्रयोग करने का सुझाव दिया जिससे गद्य और पद्य की भाषा एक हो सके। द्विवेदीजी ने 'कवि कर्तव्य' जैसे निबन्धों द्वारा कवियों को उनके कर्तव्य का बोध कराते हुए अनेक दिशा निर्देश दिए जिससे विषय वस्तु, भाषा शैली, छन्द योजना आदि अनेक दृष्टियों से काव्य में नवीनता का समावेश हुआ। द्विवेदी ने भाषा

संस्कार, व्याकरण शुद्धि, विराम चिह्नों के प्रयोग द्वारा हिन्दी को परिनिष्ठित रूप प्रदान करने का प्रशंसनीय कार्य किया। उन्होंने सरस्वती पत्रिका में ऐसे लेखों को प्रकाशित किया जिन्होंने नवजागरण की लहर को प्रसारित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

खड़ी बोली को परिमार्जित करने, संस्कारित करने तथा व्याकरणिक शुद्धता प्रदान करने में सरस्वती पत्रिका का अविस्मरणीय योगदान है। आचार्य द्विवेदी के भाषा परिष्कार पर टिप्पणी करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि– ''खड़ी बोली के पद्य विधान पर द्विवेदी जी का पूरा–पूरा असर पड़ा। बहुत से कवियों की भाषा शिथिल और अव्यवस्थित होती थी। द्विवेदी जी ऐसे कवियों की भेजी हुई कविताओं की भाषा आदि दुरस्त करके सरस्वती पत्रिका में छापा करते थे। इस प्रकार कवियों की भाषा साफ होती गई और द्विवेदी जी के अनुकरण में अन्य लेखक भी शुद्ध भाषा लिखने लगे।''[8]

हिन्दी निबन्ध विधा का विकास

हिन्दी की अन्य गद्य विधाओं की तरह ही हिन्दी निबन्ध विधा का विकास भी भारतेन्दु युग से ही प्रारम्भ होता है। इस काल में भारतीय समाज में एक नई चेतना का विकास हो रहा था। पढ़े लिखे लोग अपने विचारों को स्वच्छन्दतापूर्वक एक निजीपन लिए हुए ढंग से स्वतंत्र रूप में व्यक्त करने में लगे थे। इस समय तक हिन्दी की अनेक पत्र–पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगी थी, जिनमें हरिशचन्द्र चन्द्रिका, उदन्त मार्तण्ड, ब्राह्मण, प्रदीप, बनारस अखबार, सार–सुधानिधि आदि महत्त्वपूर्ण थी। इन समाचारपत्रों एवं पत्रिकाओं में विविध विषयों पर जो विचार व्यक्त किए जाते थे, उन्हें ही हिन्दी निबन्ध का प्रारम्भिक रूप कहा जा सकता है। इस युग के निबन्धकारों ने साधारण से साधारण और गम्भीर से गम्भीर विषयों पर निबन्धों की रचना की। सामाजिक, राजनीतिक, गतिविधियों पर स्वच्छन्द रूप से विचार व्यक्त

करते हुए इन्होंने हिन्दी निबन्ध को विकास के पथ पर अग्रसर किया। संक्षेप में हिन्दी निबन्ध के विकास को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है–

1. भारतेन्दु युग (1873 ई.– 1900 ई.)
2. द्विवेदी युग (1900 ई.– 1920 ई.)
3. शुक्ल युग (1920 ई.– 1940 ई.)
4. शुक्लोत्तर युग (1940 ई. के उपरान्त)

भारतेन्दु युग(1873 ई.– 1900 ई.)–यह हिन्दी निबन्ध विधा की विकास यात्रा का प्रारम्भिक चरण माना जाता है। इस काल के निबन्ध विषय एवं शैली की दृष्टि से विविधतापूर्ण हैं। भारतेन्दु ने इतिहास, राजनीति, समाज, धर्म, यात्रा, प्रकृति वर्णन एवं व्यंग्य विनोद जैसे विषयों पर निबन्ध विधा में लेखनी चलाई। अपने सामाजिक निबन्धों में उन्होंने सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किए तो राजनीतिक निबन्धों में अंग्रेजी राज्य पर तीखे व्यंग्य किए। भारतेन्दु जी ने अंग्रेज स्त्रोत, पांचवे पैगम्बर, स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन, लेवी प्राण लेवी आदि निबन्ध लिखे हैं।

बालकृष्ण भट्ट ने वर्णनात्मक, भावात्मक, विचारोत्तेजक निबन्ध लिखे हैं। उनका 'चन्द्रोदय' निबन्ध भावात्मक है तो वहीं 'मुग्ध माधुरी' में विचार एवं भावना का सन्तुलित समन्वय दिखाई देता है।

पं. प्रताप नारायण मिश्र ने अपनी पत्रिका 'ब्राह्मण' में व्यंग्य एवं मनोरंजन प्रधान निबन्ध लिखे हैं। इन्होंने भौं, पेट, दांत, नाक आदि पर विनोदपूर्ण शैली में निबन्ध लिखे हैं।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'आनन्द कादम्बिनी' नामक साहित्यिक मासिक पत्रिका में अलंकारिता, कृत्रिमता एवं चमत्कारप्रियता से युक्त निबन्ध लिखे हैं।

बालमुकुन्द गुप्त ने 'शिवशम्भू का चिट्ठा' नाम से लॉर्ड कर्जन को सम्बोधित करते हुए जो निबन्ध लिखे हैं उनमें भारतवासियों की राजनीतिक विवशता का कच्चा चिट्ठा पेश किया गया है।

रामचरण गोस्वामी ने अनेक निबन्ध सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार करने के उद्देश्य से लिखे हैं। 'यमपुर की यात्रा' नामक निबन्ध में वे गोदान पर करारा प्रहार करते हुए लिखते हैं कि—''यदि गौ की पूंछ पकड़ कर पार उतर जाते हैं तो क्या बैल से नहीं उत्तर सकते? जब बैल से उतर सकते हैं तो कुत्ते ने क्या चोरी की है?''[9]

द्विवेदी युग(1900 ई.— 1920 ई.)—हिन्दी निबन्ध के विकास के द्वितीय चरण को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर 'द्विवेदी युग' के नाम से जाना जाता है। द्विवेदी ने सरस्वती पत्रिका का सम्पादकत्व सन् 1903 ई. में सम्भाला था, इसलिए इस युग का प्रारम्भ सन् 1903 ई. से ही माना जाता है। आचार्य द्विवेदी ने बेकन के निबन्धों को आदर्श मानते हुए उनके निबन्धों का 'बेकन विचार रत्नावली' के नाम से हिन्दी अनुवाद किया। इसके अलावा 'रसज्ञ रंजन' नाम से इनका निबन्ध संग्रह भी प्रकाशित हुआ। द्विवेदी जी के कुछ प्रसिद्ध निबन्धों के नाम हैं— कवि और कविता, कवि कर्त्तव्य, प्रतिभा, साहित्य की महत्ता, लोभ, मेघदूत आदि। उनके निबन्धों में वैचारिकता और गम्भीरता है तथा भारतेन्दु युग की हास्य व्यंग्य शैली का अभाव है।

द्विवेदी काल के अन्य प्रमुख निबन्धकार माधव प्रसाद मिश्र का निबन्ध संग्रह 'माधव मिश्र निबन्धमाला', जिसमें 'धृति', 'सत्य' जैसे निबन्धों की रचना विचार प्रधान शैली में की है। गोविन्द नारायण मिश्र की भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं अलंकारों के बोझ से दबी हुई है वाक्य लम्बे—लम्बे हैं और तत्सम एवं सामासिक पदावली की अधिकता है।

बाबू श्याम सुन्दर द्विवेदी युग के श्रेष्ठ निबन्धकार थे। वे एक उच्च कोटि के आलोचक थे। अतः उनके निबन्धों का विषय प्रायः आलोचना से सम्बन्धित रहा यथा– 'भारतीय साहित्य की विशेषताएं', कर्त्तव्य एवं सभ्यता', समाज और साहित्य आदि बाबू श्याम सुन्दर द्वारा रचित प्रमुख आलोचनात्मक निबंध हैं।

तुलनात्मक समालोवना के लिए प्रसिद्ध पं. पद्म सिंह के दो निबन्ध संग्रह 'पद्मपराग' एवं 'प्रबन्ध मंजरी' नाम से प्रकाशित हुए। इनके निबन्धों में वैयक्तिकता एवं भावुकता की प्रधानता है।

प्रसिद्ध पुरातत्वविद् चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' के निबन्धों में प्रखर पांडित्य की झलक दिखाई देती है। उनमें गम्भीर चिन्तन, सूक्ष्म विश्लेषण और व्यंग्य का पुट है। गुलेरी जी की भाषा प्रौढ़ और विषयानुकुल है। इनके निबन्ध संग्रहों के नाम हैं– 'गोबर गणेश संहिता', 'कछुआ धर्म', और 'मारेसी मोहि कुठांव'।

इस काल के सर्वाधिक सशक्त निबन्धकार हैं– सरदार पूर्ण सिंह जो हिन्दी में भावात्मक निबन्धों की रचना के लिए तथा शैली की विशिष्टता एवं भाषा की लाक्षणिकता के लिए सुविख्यात हैं। उनके निबन्ध हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। इनके निबन्धों के नाम हैं– 'आचरण की सभ्यता', 'मजदूरी और प्रेम', 'सच्ची वीरता', 'पवित्रता', 'कन्यादान' और 'अमेरिका का मस्त योगी वाल्ट व्हिटमैन' आदि। इनके निबन्धों में स्वाधीन चिन्तन के साथ–साथ लाक्षणिक एवं व्यंग्य प्रधान शैली की छाप दिखाई पड़ती है।

शुक्ल युग(1920 ई.– 1940 ई.)– हिन्दी निबन्ध के तृतीय चरण को शुक्ल युग की संज्ञा प्रदान की गई है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध क्षेत्र में पर्दापण करने से इसे नये आयाम एवं नई दिशाएं प्राप्त हुई। उन्होंने 'चिन्तामणि' में जो निबन्ध संकलित किए हैं उनमें हिन्दी निबन्ध अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिखाई पड़ता है। उनके निबन्ध दो प्रकार के हैं– साहित्यिक समीक्षा सम्बन्धी निबन्ध तथा मनोविकार

सम्बन्धी निबन्ध। तुलसी का भक्तिमार्ग, कविता क्या है, साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद प्रथम कोटि के निबन्ध हैं तो 'उत्साह', 'लज्जा और ग्लानी', 'श्रद्धा भक्ति', क्रोध' द्वितीय प्रकार के निबन्ध हैं। भाषा की दृष्टि से शुक्ल के निबन्धों को हिन्दी साहित्य का आदर्श कहा जा सकता है। उनके निबन्धों में उपलब्ध कुछ सूत्रात्मक वाक्य दृष्टव्य हैं– ''यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण'', ''बैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है।''

बाबू गुलाबराय के निबन्ध संग्रह 'मेरे निबन्ध', 'मेरी असफलताएं' और 'फिर निराशा क्यों' आदि हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि कही जा सकती है। गुलाबराय एक उच्चकोटि के आलोचक थे अतः उनके निबन्धों में साहित्यिक समस्याओं पर विचार किया गया है। कुछ निबन्ध नितान्त वैयक्तिक हैं, जिन्हें रोचक ढंग से लिखा गया है तथा इनमें उनके व्यक्तित्त्व के कई पहलू उभर कर सामने आए हैं।

बख्शी जी के निबन्ध 'कुछ' और 'पंच पात्र' में संकलित है, जिनमें मौलिक विचार एवं नूतन शैली के दर्शन होते हैं। 'अतीत स्मृति', 'उत्सव', 'रामलाल पण्डित', 'श्रद्धांजली' के दो फूल' जैसे निबन्धों में लेखक की भावुकता, आत्मीयता और व्यंग्य का समन्वय मिलता है।

शान्तिप्रिय द्विवेदी ने आलोचनात्मक और वैयक्तिक निबन्धों की रचना की है। 'कवि और काव्य' तथा 'साहित्यिकी' में संकलित निबन्धों में भावुकता और आत्मीयता की प्रधानता है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने प्रायः सांस्कृतिक विषयों पर निबन्ध लिखे हैं जिनमें उच्च कोटि की विद्वता झलकती है। माखनलाल चतुर्वेदी ने भाव प्रधान निबन्धों की रचना की हैं, किन्तु उनमें गम्भीर चिन्तन भी विद्यमान है।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि शुक्ल युग हिन्दी के निबन्ध के विकास का स्वर्ण युग है। इस काल के निबन्ध मनोविज्ञान, साहित्य, संस्कृति, इतिहास सभी विषयों को समाविष्ट किए हुए हैं।

शुक्लोत्तर युग(1940 ई के उपरान्त)– शुक्ल ने हिन्दी निबन्ध को जो नए आयाम दिए उससे हिन्दी निबन्ध का परवर्ती काल में विविधमुखी विकास हुआ। विषय क्षेत्र, वैचारिकता, भाषा–शैली सभी दृष्टियों से हिन्दी निबन्ध ने नई दिशाएं खोजी। इस काल में न सिर्फ समीक्षात्मक निबन्धों की रचना हुई अपितु ललित निबन्धों की भी पर्याप्त रचना हुई।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी शुक्ल की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले प्रमुख निबन्धकार हैं। उनके निबन्ध 'आधुनिक साहित्य', 'नया साहित्य', 'नये प्रश्न' में संकलित हैं। वैयक्तिकता एवं व्यंग्य विनोद की झलक भी उनके निबन्धों में पर्याप्त मात्रा में देखने को मिलती है।

शुक्लोत्तर युग के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी माने जाते हैं। इनके प्रकाशित निबन्ध संग्रहों में 'कल्पलता', 'अशोक के फूल', 'कुटज', 'विचार प्रवाह', 'विचार और वितर्क' आदि उल्लेखनीय हैं। इनके निबन्धों में विषय और व्यक्ति का सन्तुलित समन्वय तो है ही साथ ही उनकी विद्वता एवं विषय की गहरी पकड़ भी परिलक्षित होती है।

शान्ति प्रिय द्विवेदी शुक्लोत्तर युग के प्रमुख समीक्षात्मक निबन्धों के लेखक के रूप में जाने जाते हैं। 'संचारिणी', 'युग और साहित्य', 'धरातल', 'आधान', 'साकल्य', 'वृन्त और विकास' उनके प्रमुख निबन्ध संग्रह है।

हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि रामधारी सिंह दिनकर ने भी निबन्ध रचना में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। 'अर्धनारीश्वर', 'हमारी सांस्कृतिक एकता', 'प्रसाद, पन्त और मैथिलीशरण', 'राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय साहित्य' इनके प्रमुख निबन्ध संग्रह हैं।

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के निबन्ध संकलन 'पृथ्वी पुत्र', 'मातृभूमि', 'कला और संस्कृति' पुरातत्व एवं भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित है। इन निबन्धों में एक ओर तो निबन्धकार के गम्भीर अध्ययन की झलक मिलती है तो दूसरी ओर चिन्तन की मौलिकता एवं शैली की विशिष्टता भी झलकती है।

इस काल के आलोचनात्मक निबन्धों में डॉ. नगेन्द्र का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने विचार और विवेचन, विचार और अनुभूति, विचार और विश्लेषण, कला कल्पना और साहित्य, साहित्य की झांकी आदि निबन्ध संग्रह लिखे हैं। इनके निबन्धों में विषय की प्रधानता है।

डॉ. रामविलास शर्मा ने 'प्रगति और परम्परा' तथा 'प्रगतिशील साहित्य' की समस्याओं में विषय का प्रतिपादन प्रगतिवादी दृष्टिकोण से किया है। साहित्य, कला, संस्कृति और राजनीति पर भी उन्होंने अपने विचार निबन्ध रूप में प्रस्तुत किए हैं। इन विषयों पर संकलित निबन्ध 'संस्कृति और साहित्य', 'स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य' में संग्रहित किए गए हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि हिन्दी निबन्ध साहित्य ने बहुत कम समय में आशातीत प्रगति की है। भारतेन्दु युग से लेकर वर्तमान युग तक हिन्दी निबन्ध साहित्य ने क्रमशः प्रौढ़ता प्राप्त की है और निबन्धों का विविधमुखी विकास हुआ है। आज हिन्दी निबन्ध में विषय वैविध्य है, विविध शैलियां हैं और गम्भीर चिन्तन मनन है, किन्तु उसमें व्यक्तित्व का प्रकाशन कम होता जा रहा है।

हिंदी साहित्य का जीवनी–साहित्य

किसी व्यक्ति विशेष के जीवन वृत्तांत को जीवनी कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे 'बायोग्राफी' कहा जाता है। हिन्दी में जीवनी–साहित्य का शुभारंभ सन् 1882 ई. से प्रारम्भ होता है। कार्तिक प्रसाद खत्री ने 1883 ई. में मीराँबाई का जीवन चरित्र लिखा। भारतेन्दु हरिशचन्द्र, राधाकृष्णदास, मुंशी देवीप्रसाद ने भी जीवनी साहित्य का

सृजन किया है। बालमुकुन्द गुप्त का प्रतापनारायण मिश्र पर लिखित जीवनी हिन्दी के आरम्भिक जीवनी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। शरतचन्द्र के जीवन पर विष्णु प्रभाकर का 'आवारा मसीहा'(1974 ई.), निराला के जीवन पर डॉ. रामविलास शर्मा की 'निराला की साहित्य साधना'(1969 ई.), मुंशी प्रेमचन्द के जीवन पर उनकी पत्नी द्वारा लिखित 'प्रेमचन्द घर में'(1956ई.), मदनगोपाल द्वारा रचित 'कलम का मजदूर'(1965ई.), और प्रेमचन्द के पुत्र अमृतराय द्वारा लिखित 'कलम का सिपाही' (1968 ई.), पंत के जीवन पर आधारित शांता जोशी की 'सुमित्रानन्द पंत'(1970 ई. प्रथम भाग, 1977 ई. मे द्वितीय भाग), बंगला के विप्लवी कवि काजी नसरूल इस्लाम के जीवन पर विष्णुचन्द्र शर्मा विरचित 'अग्नि सेतु'(1976 ई.) इत्यादि जीवनीपरक रचनाएँ हिन्दी साहित्य की कुछ ऐसी विशिष्ट एवं उल्लेखनीय कृत्तियां हैं, जिनसे हिन्दी–साहित्य का जीवनी साहित्य अत्यन्त समृद्ध है।

छायावादोत्तर काल में जीवनी–साहित्य का बहुविध विकास हुआ। इस दौर में लोकप्रिय नेताओं, सन्तों, महात्माओं, विदेशी महापुरुषों, वैज्ञानिकों, खिलाड़ियों एवं साहित्यकारों से सम्बन्धित प्रचुर मात्रा में जीवनियाँ लिखी गई। स्वामी दयानन्द द्वारा आधुनिक संतों एवं महात्माओं पर सर्वाधिक जीवनियाँ लिखी गईं। महात्मा गाँधी इस युग के सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त राष्ट्रीय नेता थे, फलस्वरूप इनसे सम्बन्धित जीवनियाँ सर्वाधिक मिलती हैं। घनश्याम दास बिड़ला(बापू, 1940 ई.), लक्ष्मण प्रसाद भारद्वाज (महात्मा गाँधी, 1939 ई.), ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल'(महात्मा गाँधी, 1940 ई.), सुशीला नायर(बापू के कारावास की कहानी, 1949 ई.) इत्यादि जीवनीकारों ने गाँधीजी पर जीवनियाँ लिखी, जो अत्यन्त प्रसिद्ध है। हरिकृष्ण त्रिवेदी, छविनाथ पाण्डेय, गिरीशचन्द्र जोशी इत्यादि ने सुभाष चन्द्र बोस पर जीवनियाँ लिखकर जीवनी साहित्य को समृद्ध किया। माता सेवक पाठक, लक्ष्मण प्रसाद भारद्वाज, देवी धवन प्रसाद इत्यादि ने पण्डित जवाहर लाल नेहरू पर जीवनियाँ लिखी। इसी प्रकार मन्मथनाथ गुप्त ने चन्द्र शेखर आजाद(1938 ई.), सीताराम चतुर्वेदी ने महामना मालवीय(1938 ई.), जगदीश झा विमल ने अबुल कलाम आजाद(1940 ई.),

देवराज मिश्र ने राजश्री टंडन(1950 ई.), रामवृक्ष बेनीपुरी ने जयप्रकाश नारायण (1951 ई.), शिवकुमार कौशिक ने प्रियदर्शिनी इन्दिरा गाँधी(1970 ई.), डॉ. अमरनाथ सेठ ने जयप्रकाश नारायण(1975 ई.), डॉ. चन्द्र शेखर ने ज्ञानी जैल सिंह पर जीवनी जीवन यात्रा शीर्षक से लिखकर जीवनी साहित्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

सन्तों–महात्माओं के जीवन–चरित लेखन के क्षेत्र में भदंत आनन्द कौसल्यायन, सुन्दर लाल, दीनदयाल उपाध्याय एवं बलदेव उपाध्याय महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। इनके अतिरिक्त मन्मथनाथ गुप्त(गुरु नानक, 1938 ई.), हंसराज रहबर (योद्धा संन्यासी विवेकानन्द), शिवप्रसाद सिंह(उत्तरयोगी श्री अरविन्द, 1972 ई.), अमृतलाल नागर(चैतन्य महाप्रभु, 1975 ई.), डॉ. रघुवंश(मानव पुत्र ईसा : जीवन और दर्शन, 1985 ई.) के नाम उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी साहित्यकारों ने अनेक विदेशी महापुरुषों की जीवनियाँ लिखकर जीवनी–साहित्य के क्षेत्र में एक मिशाल कायम की है। नेपोलियन बोनापार्ट (1983 ई., रमाशंकर व्यास), गैरीबाल्डी(1901 ई., सिद्धेश्वर वर्मा), कोलम्बस (1917 ई., शिवनारायण द्विवेदी), सुकरात (1917 ई., बेनीप्रसाद), अब्राहन लिंकन (1928 ई., सत्यव्रत), महात्मा लेनिन(1934 ई., सदानन्द भारती), हिटलर महान् (1936 ई., चन्द्रशेखर शास्त्री), मिस्टर चर्चिल(1942 ई., अंनत प्रसाद विद्यार्थी) इत्यादि अनेक विदेशी महापुरुषों पर हिन्दी के साहित्यकारों ने महत्त्वपूर्ण जीवनियाँ लिखी। श्रमणलाल अग्रवाल ने हिटलर(1950ई.), स्तालिन(1954 ई.), लेनिन (1954 ई.), कार्लमार्क्स(1954 ई.) पर जीवनियाँ लिखी तो राहुल सांकृत्यायन ने स्तालिन, कार्ल मार्क्स, लेनिन, माओत्सेतुंग (सभी 1954 ई. में) को जीवनी साहित्य का विषय बनाया। इस सन्दर्भ में यदि डॉ. रामविलास शर्मा की मार्क्स, त्रोत्सकी और एशियाई समाज (1986 ई.) की चर्चा न की जाए तो बात अधूरी होगी। विदेशी महापुरुषों पर आधारित डॉ. रामविलास शर्मा की यह कृति एक उल्लेखनीय रचना है। राजपाल

एण्ड सन्ज कश्मीरी गेट, नई दिल्ली ने विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिकों, आविष्कारकों की जीवनियाँ प्रकाशित कर जीवनी साहित्य के क्षे़त्र में श्लांघनीय योगदान दिया है।

दूसरी ओर इन वर्षों में मुरली मनोहर प्रसाद सिंह द्वारा सम्पादित फैज की शख्सियत : अन्धेरे में सुर्ख लौ 2002 ई. में, गीतेश शर्मा ने जननायक हो चि–मिन्ह और भारत 2013 ई. में, नीतिश कुमार और उभरता बिहार (2013 ई. में), अरुण सिह्रा ने एक संवेदनशील राजनेता शांता कुमार(2013 ई. में), सुशील कुमार फुल्ल, पी.के. सिंह रचित फिदेल कास्त्रों (2014 ई. में), अरुण माहेश्वरी कृत सिरहाने ग्रामसी (2014 ई. में), रश्मि बंसल रचित सात रंग के सपने(2014 ई. में), विजय बहादुर ने आलोचक का संदेश(नंद दुलारे वाजपेयी की साहित्यिक जीवनी) इत्यादि उल्लेखनीय जीवनियाँ हैं। 2015 ई. में यासिर उस्मान ने फिल्म अभिनेता राजेश खन्ना पर 'राजेश खन्ना : कुछ तो लोग कहेंगे' शीर्षक से जीवनी लिखी है।

भंवर सिंह सामौर की गद्य दृष्टि– भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य की दृष्टि को हम निम्न बिदुओं से जान सकते हैं।

सामाजिक दृष्टि

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का अनुशीलन करते समय सामाजिक जीवन से जुड़े सरोकारों का वर्णन भी अत्यंत आवश्यक हो जाता है क्योंकि सामौर सामाजिक जीवन के अनछुए पहलुओं को उजागर करने से कभी नहीं चूकते हैं। आपके साहित्य पर राजस्थानी पृष्ठभूमि का प्रभाव बड़ी मात्रा में नजर आता है। राजस्थानी जीवन की अभिव्यक्ति राजस्थानी साहित्य में तो होना स्वाभाविक है किन्तु यह उतनी ही स्वाभाविक बात है कि राजस्थानी मानसिकता, भारतीय मानसिकता का अविच्छिन्न घटक है। आपने राजस्थानी मिट्टी की सुगंध को हिन्दी साहित्य में बड़ी खूबी से फैलाया है। राजस्थानी जीवन के अनेक पहलू इनके गद्य साहित्य में नजर आते हैं। इसका मतलब यह भी नहीं है कि इनके गद्य साहित्य में राजस्थानी

आबोहवा का ही चित्रण है, बल्कि पूरे भारत भर की विविधता साहित्य में समायी हुई है। बचपन से राजस्थानी जीवन में पले–बढ़े भंवर सिंह सामौर जी के साहित्य में राजस्थानी जीवन का पूरा सौन्दर्य नजर आता है। गाँव, गाँवों का सहजीवन, रहन–सहन, आचार–विचार, विश्वास–अंधविश्वास, जाति–प्रथा, भेदभाव, उदारता, जीवन–संघर्ष, झगड़े, मारपीट, प्रेम–अवज्ञा समाज मन का ऐसा कोई भी कोना नहीं जो छूट गया हो। यह सही है कि इनके साहित्य में गाँव को लेकर ये ज्यादा संवेदनशील नजर आते हैं।

सेवाकार्य

भवंर सिंह सामौर द्वारा रचित कृति युगान्तरकारी संन्यासी में सेवा कार्यों का उल्लेख किया गया है। सेवाकार्यों का मूल आधार धर्म, संस्कृति, परम्परा एवं इतिहास की भूमि पर रहा है, जिसका प्रचार समस्त विश्व में है। स्वामीजी के विविध सेवा कार्यक्रमों की लम्बी सूची है जो ‘कोई भूखा ना सोए’ से लेकर ‘नेत्र शिविर’, ‘बवासीर निर्मूलन’, ‘स्वास्थ्य सेवा’, ‘आयुर्वेद केन्द्र’,’सद् साहित्य प्रकाशन’, ‘कार्यकर्त्ता प्रशिक्षण’, ‘असहाय की सहायता’ आदि तक जाकर भी रूकती नहीं है। ‘‘स्वामीजी का सेवा मार्ग सत्संग से संगठन की ओर होता हुआ सेवा तक पहुँचता है। स्वामीजी के अनुसार सेवा योग है अर्थात् सेवा धर्म है। सेवा और श्रम(मजदूरी) का अन्तर स्वामीजी की दृष्टि में स्पष्ट था। मन कहीं ओर तथा हाथ कहीं ओर, तो वह कार्य मजदूरी है एवं जहाँ हृदय कार्य से जुड़ जाता है तो वह कार्य सेवा हो जाता है। इसी प्रकार स्वामीजी ज्ञान एवं अज्ञान का अन्तर स्पष्ट करते हुए कहते थे कि शरीर को अपना रूप समझना ही अज्ञान है तथा आत्मा को सच्चा रूप ही समझना ज्ञान है।’’[10]

युगान्तरकारी संन्यासी में मानव सेवा के लिए आप आह्वान करते हुए लिखते हैं कि– ‘‘स्वामीजी का कार्य सेवा कार्य से शुरू हुआ। उन्होंने लोगों से अपील की कि संकट की घड़ी में आगे आए और दुखियों, भूखों, अभावग्रस्तों की सहायता करें।

एक–एक रुपया प्रति परिवार सेवा के लिए दे। उसी दिन से धार्मिक सेवा शिविर ने घर–घर से धन संग्रह करना व घर–घर जाकर सेवा करना शुरू कर दिया।''[11]

युवाओं की समस्याएँ एवं समाधान

सामौर जी के साहित्य में युवाओं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है। आपने युगान्तरकारी संन्यासी नामक रचना में युवाओं को आह्वान करते हुए साहित्यिक अभिव्यक्ति दी है। ''नौजवान अपनी संस्कृति से परिचित होने के लिए आगे आने लगा। अपने समाज और राष्ट्र की समस्याओं से वह परिचित हुआ और उन समस्याओं के समाधान संकल्प के साथ ढूँढ़ने लगा। स्वामीजी का कार्य उनमें चेतना भरना था। डेढ़ सौ वर्षों से दबा–कुचला समाज अब साहस की साँसे लेकर आगे बढ़ने लगा। विचारने लगा कि उसका भी कुछ कर्त्तव्य है और दृढ़ संकल्प से उसने निश्चय किया कि आगे बढ़ना ही है। स्वामीजी निर्भीक होकर अपने विचारों को समाज के सामने रखने लगे। उनके नये विचारों की लहर समाज में जागरण के साथ–साथ नूतन प्रेरणा प्रदान करने लगी।''[12]

उपेक्षित वृद्धों को सम्मान

भवंर सिंह सामौर द्वारा रचित कृति युगान्तरकारी संन्यासी में वृद्धों की सेवा कार्यों का उल्लेख किया गया है। आज ये इस भौतिकवादी युग में वृद्ध माता–पिता किस प्रकार उपेक्षित जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इस समस्या को सामौर के साहित्य में बड़ी ही सजींदगी के साथ व्यक्त किया गया है। ''ब्रिटेन में भारतीय वृद्ध बहुत ही उपेक्षित थे। उन्हें कोई पूछने वाला नहीं था। स्वामीजी ने ऐसे लोगों के लिए लंदन के फिंचले क्षेत्र में'मील्स् ऑन व्हील्स' योजना शुरु करवाई जिसके तहत या तो वृद्धों को लाकर भोजन करवाना या बस में भोजन ले जाकर उन्हें भोजन करवाना शामिल है।''[13]

इसी प्रकार उनके साहित्य में वर्णित है कि किसी कार्य के प्रति निस्वार्थ भाव से कार्य किया जाए तो निश्चित तौर पर सफलता हासिल होती है। वृद्धों के प्रति किए गए कार्य की सफलता को साहित्यिक अंदाज में वर्णित किया गया है– ''स्वामीजी ने गाँव–गाँव में जाकर अपील की कि लोग इन बूढ़ों और अपाहिजों की सहायता के लिए सहयोग करें, फिर तो हिन्दुओं की धार्मिक उदारता जाग्रत हो गई। लोग गाँव–गाँव से वृद्धों को भोजन लेकर खिलाने के लिए लाने लगे और दान भी देने लगे। आश्रम का प्रबन्ध आदर्श हो गया। थोड़े ही समय में आश्रमवासियों की संख्या पिचहत्तर से बढ़कर एक सौ पिचहत्तर हो गई।''[14]

जन्मदात्री, पोषणकर्मी को आश्रय

भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान महत्त्वपूर्ण है। संसार में यदि नारी नहीं होती तो सभ्यता और संस्कृति ही नहीं होती। अपने विविध रूपों में नारी ने पुरुष को संवर्धन, प्रोत्साहन और शक्ति प्रदान की है। वह समाज में पुरुष के लिए कभी जन्मदात्री, पोषणकर्मी माँ के रूप में आती है तो कभी स्नेह की भावधारा में प्रवाहित करने वाली भगिनी के रूप में लक्षित होती है। आपके गद्य साहित्य में नारी को एक संगठन में जान फूकने वाली संगठनकत्री के रूप में वर्णित किया गया है। महिलाओं के रहवास के लिए अनेक आश्रम खोलने पर बल दिया गया है। ''नौजवानों ने स्त्रियों के लिए भी एक आश्रम स्थापित करने का निर्णय लिया। मॉरीशस के प्रधानमंत्री अनिरुद्ध जगन्नाथ ने कॉमर्शियल बैंक के संचालकों से कहा कि बैंक को लोगों के लिए कुछ करना चाहिए। संचालकों ने कृष्णानन्द सेवा आश्रम की भूमि में एक महिला आश्रम बनाकर भेंट कर दिया।''[15]

पशुपालन युग के प्रतीक पुरूष

सामौर के साहित्य में चारणों का मुख्य व्यवसाय पशु पालन को रेखांकित किया गया है। चारणों ने पशुपालन की परम्परा को न केवल जीवंत बनाए रखा वरन् पशुओं के प्रति अपना असीम प्रेम भी बनाए रखा है। इसी का सामौर वर्णन

करते हुए लिखते हैं कि– ''समाज को आदिम अवस्था से पशुपालन व खेती की तरफ आगे ले जाने का कार्य चारण समाज ने किया। जंगली अवस्था(आदिम अवस्था) से पशुपालन युग के प्रतीक पुरूष के रूप चारण समाज ने पशुत्व(आदिम प्रवृत्ति) को लगाम देने(संस्कारित करने कराने) व चराने का प्रारम्भिक अर्थ धारण करने वाले शब्द चारण(चराने वाला) को ही आज भी पहचान के रूप में धारण कर रखा है। इसलिए पशुपालक गुर्जर, राईका, रेबारी, देवासी आदि जातियों से चारण अपना निकट सम्बन्ध मानते हैं। आज भी चारणों का बहुसंख्यक समाज पशुपालक है। चारण समाज की देवियां पशुपालक थी। पशुओं को पालतू बनाने में चारण समाज ने गजब का परिचय दिया है।''[16]

समाज के सारथी

सामौर के साहित्य में चारणों को समाज के सारथी के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। चारणों ने समाज को सदैव नवीन पथ की ओर अग्रसर किया है। इससे प्रेरित होकर अन्य समाजों ने भी समाज को आगे ले जाने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी है। चूरू मण्डल के यशस्वी चारण नामक कृति में सामौर वर्णित करते हैं कि– ''चारण की भूमिका समाज रूपी सूर्य के रथ में सारथी की सी थी। राज्य एवं समाज में चारण की भूमिका एक ऐसे वर्ग के रूप में स्थापित हो गई जो अपने चरित्र बल एवं सत्य आचरण के कारण सबसे बढ़कर था। चारण का न केवल आचरण ही सच्चाई पर आधारित था बल्कि उसकी आजीविका भी सच्चाई पर आधारित थी।

इसलिए चारणों की राज व समाज में सदैव सम्माननीय स्थिति रही है। ये देवी पुत्र के रूप में अत्यधिक श्रद्धा के पात्र रहे हैं। इनकी गणना देवताओं के रूप में की गई है। यहाँ तक मान्यता है कि चारण सहायता नहीं करते तो देवता संघर्ष में दानवों से हार जाते। चारण सामाजिक चेतना के वाहक, सामुदायिक जीवन शैली के प्रतीक, क्षमता स्वतन्त्रता के पर्याय, सामाजिक जीवन संघर्ष के सहयोगी, आत्म

संघर्ष के पथ प्रदर्शक एवं संस्कार निर्माण के प्रेरक रहे हैं। मानवता को समृद्ध एवं गौरवान्वित बनाने में चारणों की भूमिका भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं रही है।''[17]

समाज एवं सत्ता के सेतु

सामौर के साहित्य में चारणों को समाज और सत्ता के मध्य सेतु के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। ''चारण वह है जो चलने की प्रेरणा देकर चलाए व प्रेरक बने। चारण का कार्य सत्ता एवं समाज के बीच सेतु का सा कार्य था। अभिव्यक्ति की क्षमता के बल से दो द्वीपों को मिलाने का कार्य था। यहीं आकर सच्चे अर्थों में चारण लोक शक्ति, लोक चेतना का प्रवक्ता एवं प्रतिनिधि था। अपने युग का प्रतिनिधि था। अपने युग को अभिव्यक्त करना बहुत कठिन कार्य होता है। किन्तु इस कठिन कार्य को भी पूरा करने की विशिष्ट भूमिका चारण ने निभाई।''[18]

लोकहित में समाज निर्माण

सामौर के साहित्य में चारणों को समाज के निर्माण में महत्ती भूमिका अदा करने वालों के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। ''चर धातु से बने शब्द चारण का विकास क्रम इस प्रकार रहा है चर–चरण एवं चारण। चरण को चलाए वह चारण यही शब्द सामाजिक संदर्भों में चलते चलाते नए अर्थों से पुष्ट होता रहा है। शरीर में जो स्थान मस्तिष्क का होता है वही स्थान समाज में चारणों का रहा है। चरण को चलाने से तात्पर्य है चलने की प्रेरणा देना व चलने योग्य बनाना, हौसला बढ़ाना व दिशा बोध देना कि किधर जाना है? क्यों जाना है? कैसे जाना है? चलाने की योग्यता से ही चारण प्रेरित कर उत्साहित कर लोक हित में समाज को तैयार करते थे। इस प्रकार चलाने के लिए दृष्टि, स्मृति एवं अभिव्यक्ति चाहिए। चारण इन तीनों में ही पारंगत थे। चारण की दृष्टि में विवेक, स्मृति में समाज की गौरव गाथाएँ एवं अभिव्यक्ति में निडरता का अभिमान था। इसी से उसके व्यक्तित्व में सामर्थ्य आया।''[19]

चारण समाज अमूल्य रत्न

सामौर के साहित्य में चारणों को समाज के निर्माण में महत्ती भूमिका अदा करने वाले अमूल्य रत्न के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। ''सामाजिक संघर्ष के अग्रणी वीर पूरुष को उसके माता–पिता, पुत्र, पत्नी एवं बन्धु बाँधव सदृश आत्मीय जन तक भूल जाते हैं। उसी पराकाष्ठा तक पहुँचे शूरवीर पुरुष की यशस्वी बातें स्मरण कराकर चारण ही उसे स्मरणीय बनाते हैं। जोधपुर नरेश महाराजा मानसिंह कहते हैं कि हे क्षत्रिय राजाओं मेरी बात ध्यान से सुनो ! कभी भूल से भी चारणों से अनबन मत कर लेना। इनसे स्नेह सम्बन्ध बनाए रखो। प्रेम भाव बढ़ाए जाओ। क्योंकि ये तो वरदान देने वाले हैं, पूज्य हैं। ये मद झरते हाथी के समान स्वतंत्र स्वभाव के मनस्वी हैं। इस विश्व में चारण अमूल्य रत्न हैं।''[20]

धार्मिक दृष्टि

समाज में धर्म का विशेष स्थान रहा है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन धर्ममय समझा जाता है। धर्म एक शक्ति है और विश्वास भी। इसकी धारणा अमूर्त और अतिप्राचीन है। हर व्यक्ति को अपनी इच्छा तथा विश्वास के आधार पर किसी भी धर्म पालन का अधिकार है। आपके साहित्य में सर्वधर्म सद्भाव का संदेश दिया गया है। युगान्तरकारी संन्यासी नामक कृति में सर्वधर्म सद्भाव को व्यक्त करने वाली गाँधीजी की प्रार्थना का उल्लेख किया गया है। ''धर्म किसी से बैर रखना नहीं सिखाता। इसलिए गाँधीजी वाली सर्वधर्म प्रार्थना को अपनी प्रार्थना में स्थान दिया। वे सभी धर्मों का आदर करते थे।''[21]

धर्म एवं सम्प्रदाय

भारतीय चिंतन में भौतिकता की अपेक्षा आत्म चिंतन पर अधिक बल दिया गया है। क्योंकि जीवन की पूर्णता आध्यात्मिक मूल्यों से जुड़कर ही संभव हो पाती है। आध्यात्मिकता भारतीय संस्कृति का मूल स्वर है। शास्त्रीय दृष्टिकोण से सम्पूर्ण

विश्व एक अदृश्य परम शक्ति के द्वारा संचालित होता है। भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में आध्यात्मिक सत्ता से हटकर मानव सेवा को ही धर्म के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। ''सेवा अपने आप में एक धर्म है। सेवा पूर्व व धर्म से पहले धार्मिक शब्द रखना व्यर्थ है। सेवा शिविर देश–भर में सर्वमान्य हो गया। उसमें बहुत शक्ति आ गई क्योंकि वह नौजवानों का संगठन है। ऐसा संगठन यदि सेवा की ओर न झुके, सेवा न करे, सेवा के मूल्यों को न अपनाए, तो वह बहुत ही जल्दी मर जाता है। उसी प्रकार जिस प्रकार हर एक प्राणी जो जन्मता है, वह मरता ही है। वैसे ही जो संस्था बनती है, वह समाप्त भी होती है। संसार के इतिहास में यही सब पढ़ने को मिलता है। स्वामीजी इन संगठनों को मौसमी मानते हैं। मौसम आता है और चला जाता है। वर्षा आई और चली गई। हमेशा वर्षा कभी नहीं रहती। यदि हमेशा बरसती रहे तो प्रलय हो जाए।''[22] यही मानव धर्म और सम्प्रदाय है।

धर्माचार्य

सामौर जी की दृष्टि में आज के धर्माचार्य व्यंग्य की श्रेणी में हैं– आज तथाकथित धर्माचार्यों का काम ही है त्याग के नाम से अधिक से अधिक संग्रह तथा इन धर्माचार्यों ने धर्म को सम्प्रदाय बना दिया है। लोक कल्याण से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। वे तो तोते की तरह कुछ न कुछ बोलते रहते हैं। उन्होंने भारत की स्वतन्त्रता में न तो हिस्सा लिया, न राष्ट्र को किसी प्रकार की प्रेरणा दी। गाँधीजी जैसे महान नेताओं का विरोध किया। भारत के कंधों पर बैठी विदेशी सरकार का जय–जयकार किया। धर्म के नाम से मनुष्य–मनुष्य के बीच भेद कायम करने के प्रयत्न किए। विदेश जाने को अधर्म मानने वाले और जो चला जाता था, उसे समाज से बहिष्कृत करने को धर्म मानने वाले कौन–से धर्म का प्रचार करते थे, मुझे तो पता नहीं। जो धर्माचार्य विदेश जाने को धर्मच्युति मानते थे, आज विदेशों के चक्कर पर चक्कर लगा रहे हैं तथा जिन्हें यह अवसर नहीं मिला, वे विदेश जाने के लिए उतावले हैं। भारत में ईसाई धर्म का प्रचार क्यों हुआ? क्योंकि हमारे धर्माचार्य

हरिजनों, आदिवासियों से हमेशा घृणा करते रहे हैं। उनसे दूर रहने को ही धर्म मानते रहे हैं।

आध्यात्मिक दृष्टि

सामौर जी की आध्यात्मिक दृष्टि में आत्मा को चारों ओर से देखना अर्थात् निरीक्षण व परीक्षण के द्वारा उसके विकास की संभावनाओं का संधान करना ही अध्यात्म कहलाता है। आत्म साक्षात्कार ही अंततः चरम सत्ता का साक्षात्कार बनता है। इसी अर्थ में आत्मा को परमात्मा का अंश माना गया है। मनुष्य इसी परमात्मा की देन है। विश्व के समस्त प्राणियों में प्रज्ञावान होने के कारण मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ है। उसमें आत्मा के रूप में भगवान का निवास है। संसार नश्वर है परन्तु आत्मा अजर और अमर है। ज्ञान का विकास और आत्मा की उन्नति प्रत्येक प्राणी का अन्तिम लक्ष्य है। धर्म अथवा अध्यात्म का अर्थ सांसारिक त्याग नहीं, बल्कि शुभ कर्मों द्वारा जीवन को सफल बनाना है। ये आध्यात्मिक मूल्य ही मनुष्य को एक आस्तिक आस्था से सम्पन्न करते हैं तथा मानव मात्र के हित चिंतन के लिए व्यष्टिनिष्ठ चेतना को समष्टिनिष्ठ बनाते हैं। आपने अपनी रचनाओं में परमात्मा, कर्मफल भाग्य, पाप–पुण्य, अहिंसा आदि के सम्बन्ध में चर्चा कर एक सीमा में आध्यात्मिक मूल्यों को जीवन के लिए आवश्यक घटक के रूप में स्वीकारा है।

मनुष्य केवल मनुष्य

सामौर जी की दृष्टि में मनुष्य का अस्तित्व मनुष्य के रूप में ही है। इस लोक में जन्म लेने वाला मनुष्य समस्त प्रकार के भेदों से परे मनुष्य ही है। उसका न कोई धर्म, न कोई जाति है वह तो एक मानव है। यदि इस भावना का मानव वरण कर ले तो संसार के समस्त प्रकार के दुखों का निवारण सम्भव है। किसी धर्म, जाति, मत आदि के लिय मर मिटने की बजाय देश हितार्थ मर मिटना श्रेयस्कर है। ''केसवदास की भक्ति साधना का उद्देश्य मत, जाति, धर्म और भेदभाव से रहित मात्र मनुष्य है।''[23]

सामौर के साहित्य में कर्मफल की प्रधानता को सहर्ष स्वीकार किया गया है। कर्मफल से बढ़कर इस संसार में कोई अन्य सत्ता नहीं है जो कि अव्वल दर्जा दिला सके। इसी महत्ता को प्रतिपादित करते हुए आप अपनी कृति युगान्तरकारी संन्यासी में लिखते हैं कि– ''जहाँ तक आध्यात्मिकता का प्रश्न है, विश्व में भारत का बड़ा सम्मान है। क्योंकि भारत ने वेद दिए, उपनिषद् दिए, रामायण दी, गीता दी, महाभारत दिया, राम और कृष्ण को जन्म दिया। गौतम व गाँधीजी को जन्म दिया। इसके बाद यदि हम भारत की सामाजिकता के सम्बन्ध में विश्व की आलोचना को सुनें तो भारत अनेक भागों, अनेक सम्प्रदायों और आधुनिकता में पिछड़ा हुआ देश है। राजनीतिक दृष्टि से मैं आधिकारिक मत देने में असमर्थ हूँ। राजनीति में दूसरे ही देश अधिक शक्तिशाली है, सामरिक क्षमता वाले हैं। बड़े सम्पन्न हैं।''[24] "

सामौर अपने साहित्य में आध्यात्मिकता के महत्व को दृढ़ता से प्रस्तुत करते हैं कि आध्यात्मिकता की वजह से ही हमारा राष्ट्र विश्व पटल पर अलग ही सूर्य की भांति चमकता नजर आता है। ''भारत की आध्यात्मिकता ही उसके सम्मान और महानता का कारण है। हमारी इस आध्यात्मिकता में अर्थ का त्याग हमारे महान् गुणों में माना जाता है। रामायण में भरत के मुँह से कहलवाया गया है– त्रिवेणी संगम पर प्रार्थना करते हुए भरत से जब गंगाजी ने पूछा– क्या चाहते हो? तो भरत ने कहा था– जन्म–जन्म रुचि राम पद यह वरदान न आन। इस उत्तर में हमारी परम्परा की महानता है। संग्रह करना व परिग्रह करना अवगुण माने जाते हैं। इसी कारण हमारे यहाँ वैश्यों की वैश्यवृत्ति को तीसरा स्थान दिया गया है।''[25]

युगान्तरकारी संन्यासी में स्वामी कृष्णानन्द जी के जीवन के सन्दर्भ में लिखते हैं कि उनका जीवन गीता के अनुरूप था–

''लभंतेब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः।''[26]

निष्काम कर्म के प्रति आप लिखते हैं कि जिस प्रकार अज्ञानी मनुष्य फल की कामना से निरन्तर कर्म में लगा रहता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष को निष्काम–भाव

से लोक संग्रह के उद्देश्य की इच्छा से प्रेरित होकर कर्म में लगे रहना चाहिए। इसे गीता के श्लोक के माध्यम से आपने साहित्य में स्थान दिया है–

''सक्ता कर्मण्येविद्वांसो यथा कुर्वंति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्।।''[27]

भोजन से पूर्व किए जाने वाले मंत्रजाप को आपने साहित्य में स्थान देते हुए लिखा है कि–

''ऊँ सहना ववतु। सह नौ भुनक्तु। सहवीर्यं करवावहै।
तेजस्वी नावधीमस्तु मा विद्विषावहै।।
ऊँ शांतिः शांतिः शांतिः।''[28]

आपने साहित्य में वर्णित किया गया है कि व्यक्ति को कर्म करते रहना चाहिए। लोग क्या कहेंगे इस बात की परवाह मानव को कभी भी नहीं करनी चाहिए। कारवाँ जारी रखो, सिरफिरे लोग समाज को दिशाहीन कर देते हैं। कथन में युगान्तरकारी संन्यासी कृति का भावबोध से अभिभूत करने का सामर्थ्य है। इस कथन में आपने स्वामीजी के माध्यम से समाज को ऐसे लोगों से बचने और ऐसे लोगों के तर्कों की परवाह न करके अपने कर्म के प्रति सदैव अग्रसर रहने का संदेश दिया है।

संगठन में आस्था और विश्वास

भंवर सिंह सामौर संगठन में ही आस्था और विश्वास करते हैं। आपकी युगान्तरकारी संन्यासी कृति में संगठन को मजबूती प्रदान करने के लिए किए गए कार्यों का उल्लेख किया गया है। ''स्वामीजी का सिद्धान्त सत्संग द्वारा संगठन खड़ा करना था और संगठन की शक्ति से मॉरीशस के डेढ़ सौ वर्षों से दबे–कुचले लोगों को अपनी संस्कृति से जोड़कर उन्हें जागृत करना था। उन्होंने चालीस नौजवानों के शक्तिशाली दल में प्रेरणा भरी और कर्त्तव्यबोध कराया और समझाया कि तुम्हें अपना

नेतृत्व ख़ुद ही करना है। नौजवानों ने इस नई चुनौती को स्वीकार किया एवं आगे चलकर अपने संगठन की सफलता में चार चांद लगाये।''[29]

अहिंसा मार्ग के हिमायती

भंवर सिंह सामौर ने परमात्मा, कर्मफल, भाग्य के साथ अपनी रचनाओं में अहिंसा के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। आपके साहित्य में चारणों को समाज के निर्माण में महत्ती भूमिका अदा करने वाले अहिंसा के हिमायती के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। किसी भी जीव के प्रति मन, वचन और कर्म से हिंसा को अनैतिक माना गया है। आपकी दृष्टि में किसी भी जीव के प्रति मन से बुरा सोचना भी हिंसा की श्रेणी में आता है। आप चूरू मण्डल के यशस्वी चारण नामक कृति में लिखते हैं कि– ''भगवती सूत्र में भी दो प्रकार के चारणों के प्रसंग आता है। विद्या तथा जंघा चारण। उपदेश रसाल ग्रन्थ में ढ़मण नामक चारण की कथा है। इस कथा में चारण द्वारा अहिंसा के मार्ग की श्रेष्ठता का उद्घोष किया गया है।

जीव वध्धतां न्रक्क गति, अ बधतां गति स्रग्ग।
हूं जाणूं दुइ वट्टडी, जिण भावइ तिण लग्ग।।

जीव हिंसा का मार्ग नारकीय है तथा अहिंसा का मार्ग आनन्द का मार्ग है। ढ़मण चारण कह रहा है कि मैं तो ये दो मार्ग जानता हूँ। निर्णय तुम्हें करना है कि जो तुम्हें ठीक लगे उसी मार्ग को ग्रहण करो।''[30]

आपके साहित्य में अभिव्यक्त अहिंसात्मक दृष्टिकोण पर विचार करने से स्पष्ट है कि किसी भी जीव मात्र के प्रति मन में यदि बुरा विचार भी आता है तो उसे भी हिंसा की दृष्टि से व्यक्त करते हैं। आप जीव की हिंसा को धर्म विरूद्ध मानते हुए उसे नैतिकता से जोड़कर देखते हैं।

शैक्षिक दृष्टि

सामौर जी की शैक्षिक दृष्टि में ''जहाँ तक शिक्षा की बात है, आज से बहुत पहले मैकाले ने जो लकीर खींच दी थी, उसी पर सब चल रहे हैं। हमारे नेता, माता–पिता और शिक्षा शास्त्रियों में ये किसी में भी यह साहस नहीं है कि गुलामी में खींची उस लकीर को, जो अंग्रेजो के ऑफिसों में बाबू बनकर काम करने हेतु दी जाती थी, उसको तोड़ डाले तथा नये युग में हमारे देश में नौजवानों को यह शिक्षण दिया जाए जिसके द्वारा वे अपने आपको समग्र रूप से विकसित कर सकें। अपने समाज और राष्ट्र का सम्मान बढ़ा सके। आज की शिक्षा तो केवल रोजी–रोटी की शिक्षा है।

अज्ञानता का विरोध

शिक्षा के अभाव में मानव समाज को बहुत हानी उठानी पड़ी है। भारतीय गाँव तो केवल अज्ञानता के कारण पिछड़ गए। सरकार द्वारा दी गयी योजनाएँ तथा सुविधाओं की जानकारी न होने से उनका उत्कर्ष होना मुश्किल हुआ। गरीबों की योजनाओं को शिक्षित उड़ा ले गए। भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में अज्ञानता का पुरजोर विरोध किया गया है। आपकी कृति युगान्तरकारी संन्यासी में इसकी एक बानगी झलकती दिखाई पड़ती है कि शिक्षित वर्ग अशिक्षित पर किस प्रकार कहर ढा रहा है। ''मॉरीशस में भारत से गरीब लोगों को गुलामों की तरह पकड़–पकड़ कर गोरों के खेतों में काम करने के लिए ले जाया गया। इन लोगों की मॉरीशस में पहुँचने पर नीलामी होती थी। गोरे उन्हें खरीदकर अपने खेतों में काम करने के लिए ले जाते थे। चौबीसों घण्टे काम लेते थे। एक समय ऐसा था, वे शहर में जा ही नहीं सकते थे। उन्हें पीट–पीटकर काम लिया जाता था। उनसे पशुओं की तरह काम लेने के लिए एक आदमी डंडा हाथ में लिए पीछे रहता था। उसे सरदार कहा जाता था। वे मजदूर कुली या गिरमिटिया(एग्रीमेन्ट का बिगड़ा रूप) मजदूर कहलाते थे। उनसे एग्रीमेन्ट वाले कागज पर अँगूठा लगवा लिया जाता था। उन्हें रुपया–दो

रुपया दे दिया जाता था। चावल, सड़ा आलू व थोड़ा नमक खाने को दे दिया जाता था। उन्हें मनुष्य के प्राथमिक अधिकार तक नहीं थे। ऐसी गरीब व दबी हुई मानवता को ऊपर उठाने के लिए गाँधी जी ने प्रयत्न किए। डॉ. मणिलाल ने किए। आर्य समाजी संन्यासी स्वतंत्रानन्द ने किए और भगवान ने मुझे भी अवसर दिया है।''[31]

लोक साक्षरता एक अभियान

लोकतान्त्रिक व्यवस्था में लोक को साक्षर करने के लिए लोक साहित्य का महत्त्व स्वयं सिद्ध है। लोक साहित्य लोगों का पाठ्यक्रम होता है। इसी के सहारे लोक जीवन अपनी मंजिल की और बढ़ता है। जहाँ कहीं भी बाधा आती है, वहाँ यह लोक साहित्य अंधेरे में प्रकाश की किरण के समान मार्ग दिखाता है। आपने लोक को साक्षर बनाने हेतु महात्मा गाँधी पुस्तकालयों के माध्यम से यह लोगों के हाथों में सौंपा। आपने शैक्षिक उन्नयन हेतु साहित्येत्तर कार्य किए इस के लिए लोक भारती भवन बोबासर, चूरू के माध्यम से पुस्तकालय आंदोलन चलाया ताकि कोई भूखा नहीं सोये, समाज सेवा शिविरों की शुरूआत की। इस दृष्टिके लिए राजस्थान सरकार ने आपकी प्रशंसा की और इसका विस्तार सम्पूर्ण राजस्थान में किया। राजस्थानी लोक वाचिक परम्परा के संरक्षण हेतु आपने राष्ट्रीय साहित्य अकादमी नई दिल्ली और रूपायन संस्थान बोरून्दा के सहयोग से 3 मार्च से 7 मार्च 2002 में एक राष्ट्रीय कार्यशाला का आयोजन लोक भारती भवन बोबासर में किया। इस कार्यशाला में 21 घण्टे की सीडी सैट और लगभग डेढ़ घण्टे की एक फिल्म भी बनाई गई। जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर के इलेक्ट्रॉनिक मीडिया रिसर्च सेन्टर और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के सहयोग से लोक भारती भवन बोबासर के नाम पर परम्परा की 'जीवन्त विरासत का प्रतीक' नाम से एक डोक्यूमेन्ट्री फिल्म आपने बनवाई थी। यह फिल्म संसार भर में चर्चित रही। लोक भारती भवन बोबासर के माध्यम से आपने राजस्थान और गुजरात के लगभग 50 गाँव और शहरों में पुस्तकालय स्थापना के लिए पुस्तकों के सैट वितरित किये हैं।

आपने राजस्थानी रसधार के नाम से दो खण्डों में राजस्थानी दोहे सम्पादित किए हैं। एक पुस्तक दूहा कथा कोश नाम से सम्पादित की है। यह शैक्षिक विलक्षण दृष्टि एक दूरदर्शी अध्यापक की दूरदृष्टि की सोच ही हो सकती है।

अनुवाद की महत्ता

सामौर ने भर्तृहरि के श्रृंगार शतक का राजस्थानी भाषा में सिणगार सतक नाम से अनुवाद किया है। गुजरात के सुप्रसिद्ध गुजराती कवि जयन्त पाठक की कविता की पुस्तक 'अनुनय' का राजस्थानी भाषा में 'अरज' नाम से अनुवाद किया है। गुजराती कवि जगदीश जोशी की पुस्तक 'वमल नां वन' का राजस्थानी में 'वमल रा वन' नाम से अनुवाद कर सामौर ने राजस्थानी कवियों में अपनी ख्याति अर्जित की।

सामौर का राजस्थानी निबन्धों का संकलन राजस्थानी संस्कृति री सनातन दीठ में राजस्थानी संस्कृति, संस्कृति को मीडिया की चुनौती, राजस्थानी लोक कलाएं एवं लोक संगीत, राजस्थानी साहित्य की सांस्कृतिक विरासत, राजस्थानी संस्कृति की लोक चेतना, छन्दों की प्रासंगिकता और वर्षा तुम्हारे कितने नाम आदि निबंध संकलित हैं। यह राजस्थानी साहित्य की अमूल्य थाती के रूप में प्रकाशवान है। इनसे लोक सहज ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

भंवर सिंह सामौर के हिन्दी साहित्य में निबंधों का संकलन 'राजस्थानी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना' नाम से प्रकाशनाधीन है। इस पुस्तक में राजस्थानी बात साहित्य, राजस्थानी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना, गोगाजी एवं उनकी लोकगाथा, राजस्थानी वात साहित्य में कथानक रूढ़िया, राजस्थानी साहित्य का प्रवृत्यात्मक मूल्यांकन, राजस्थानी साहित्य में लोक चेतना, राजस्थानी वात साहित्य एवं हिन्दी कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, वीर सतसई में प्रयुक्त वीर तत्व के प्रतीक वैण सगाई अंलकार, डिंगल गीत हमारे विद्यालय और राजस्थानी भाषा, नाथ पथ की

समाज को देन, हमारा समय और साहित्य की चुनौतियां वर्तमान सांस्कृतिक संकट और रचना कर्म राजस्थान के रंगमंच की स्थिति और समस्याएं कविपूजक राजस्थान, वंशावली परम्परा आदि निबंध संकलित हैं। इनसे हर वर्ग को शिक्षित किया जा सकता है।

आर्थिक दृष्टि

आधुनिक काल में भौतिकवाद का अत्यधिक प्रभाव दिखाई देता है। लेकिन भंवर सिंह सामौर आधुनिकता की दौड़ से कोसों दूर नजर आते हैं। आपका सादगी से भरा जीवन ही इसका उदाहरण है। आपका जीवन सादा जीवन उच्च विचार पर केन्द्रित है। धन के सन्दर्भ में उनका मानना है कि यह मनुष्य जीवन का बंधन है। धन मनुष्य जीवन में नश्वर है। ज्ञान ही मानव का परम आभूषण है। इस सन्दर्भ में आपकी कृति युगाान्तरकारी संन्यासी में झलक देखने को मिलती है। ज्ञान प्राप्त होने के बाद स्वामीजी ने अनुभव किया कि ''बिना पैसे (धन) के भी साधारण ही नहीं अच्छा जीवन चल सकता है। स्वामीजी का जीवन इस बात का साक्षी था। इस हेतु उन्होंने बैंक में रखे एक लाख रुपये से कंचनमुक्त होने के लिए पहला निर्णय लिया— धन क्यों रखा जाए? उसमें से तीस हजार रुपए कनखल (हरिद्वार) में अस्पताल के लिए दिए। तीस हजार रुपए से ऋषिकेश में कोढ़ियों के लिए एक कुष्ठाश्रम बना दिया। बीस हजार रुपए बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री एवं यमनोत्री जाने वाले गरीब तीर्थयात्रियों को ऊन के टोपे, स्वेटर, जूते, एवं चश्में बाँटने के लिए काली कमली वाले ट्रस्ट को दे दिये। दस हजार रुपए हरिद्वार के एक साधु विद्यालय को और दस हजार रुपए प्रयोगों में खर्च कर दिये। इस दिन स्वामीजी कंचनमुक्त हो गए। इस दान रूपी जीवन दर्शन के आधार पर वह स्वस्थ समाज के विकास में निजी धन के योगदान की नींव रखना चाहते थे। ताकि इससे प्रेरित होकर धनाढ्य लोग भी उनका अनुसरण करें। अर्थदान से मोक्ष मार्ग की कामना भी कर सकते हैं।''[32]

.एक अन्य उदाहरण में भी आप व्यक्त करते हैं कि धन ही सब कुछ नहीं है। डॉ. रामगुलाम को ऐसा विश्वास हो गया कि उनका दल (मजदूर दल) चुनावों में हार जायेगा। विरोधी लोगों ने मजदूरों में शराब और धन बाँटना शुरू कर दिया था, ऐसा डॉ. रामगुलाम का कहना था।

''एक दिन दोपहर में स्वामीजी गीता पढ़ रहे थे। उसी वक्त क्यूर्पिप के मेयर, जो कि विरोधी दल के नेता थे, की मोटरकार आई । उसमें से क्यूर्पिप का टाउन क्लर्क विसेसर, ड्राइवर पांडेय तथा कपूरथला (भारत) के राजकुमार, जिन्हें भारत से विरोधी दल के नेता श्री जुवाल ने बुलाया था, उतरे। तीनों ने आते ही स्वामीजी को प्रणाम किया। स्वामीजी ने उनका स्वागत किया। पास पड़ी कुर्सियों पर वे बैठ गए और वार्तालाप शुरू हुआ। उन लोगों ने बड़े कूटनीतिक ढंग से स्वामीजी को विरोधी दल और उसके नेता की ओर खींचने के प्रयास प्रारम्भ किए। उनका कहना था कि स्वामीजी हमारे दल का साथ दें अथवा चुनाव में किसी दल का पक्ष न ले। विरोधी दल के नेता ने स्वामीजी से आकर मिलने की तीव्र इच्छा प्रकट की। तीनों ही आगंतुक सज्जनों ने कहा कि विरोधी दल के नेता स्वामीजी को समुद्र तट पर एक सुन्दर कैम्पस भेंट करना चाहते हैं। एक मोटर कार भेंट करना चाहते हैं, निर्वाह हेतु बड़ी धनराशि भेंट करना चाहते हैं। स्वामीजी का उत्तर था, स्वामीजी इन सबका क्या करें। यह स्वामी तो कंचन मुक्त संन्यासी है। आप जाकर अपने नेता से कह दीजिए कि अब तक जिन संन्यासियों को धन और साधनों से जीता है, वैसे यह संन्यासी नही जीता जाएगा।''[33]

स्वास्थ्य जीवन में सर्वोपरि

सामौर स्वास्थ्य के प्रति अति सजग नजर आते हैं। उनका मानना है कि स्वयं के स्वास्थ्य के साथ–साथ अन्य के स्वास्थ्य का भी ख्याल रखना मानवता की परम सेवा है। आप स्वास्थ्य के संदर्भ में 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' अर्थात् शारीरिक स्वास्थ्य ही प्रत्येक धर्म की साधना का आधार है, सिद्धांत का अनुशरण करते हैं।

आपकी युगान्तरकारी संन्यासी नामक कृत्ति में स्वास्थ्य के प्रति दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है। ''डॉक्टर ने देखा, स्वामीजी को बचाने के लिए जरूरी है कि उन्हें रक्त प्रदान किया जाए। जब डाक्टरों ने मिलकर स्वामीजी के रक्त का परीक्षण किया तो उन्हें पता चला कि स्वामीजी का रक्त ओ नैगेटिव ग्रुव का है और वह सब जगह नहीं मिलता है। डॉक्टरों ने जब हॉस्पिटल के रक्त संग्रह कोष में देखा, तो उन्हें मात्र एक बोतल उस नम्बर के रक्त की मिली। जब डाक्टरों ने वह बोतल मांगी तो पता चला कि उसी समय में उस हॉस्पिटल में एक स्त्री के प्रसव हुआ है और उसका बहुत रक्त बह गया है। उस स्त्री का ग्रुप रक्त भी ओ नेगेटिव था। जब स्वामीजी को पता चला कि वह नवप्रसूता माता मृत्यु के कगार पर पहुँच गई है तो उन्होंने वह रक्त लेना अस्वीकार कर दिया और आदेश दिया कि वह रक्त उस महिला को दिया जाए और उसके शीघ्र प्राण बचाए जाएँ। जब डॉक्टरों ने इसे मानने में आनाकानी की तो स्वामीजी ने जोर देकर कहा कि आप लोग ऐसा क्यों करते हैं? मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि जिस समय मेरी मृत्यु होगी, उसी समय होगी। उससे पहले कभी नहीं। मैं यदि मर भी जाऊँगा तो न मैं ही उसकी चिन्ता करुंगा तथा न मेरे लिए ही कोई रोने वाला है। स्वामीजी के आदेश से वह रक्त उस महिला को प्रदान किया गया।''[34]

नैतिकता व्यक्तित्व का मूलाधार

नैतिक शब्द नीति से बना है। नीति शब्द संस्कृत की नीय (नी) धातु से बना है, जिसका अर्थ है ले जाना। आपने नीति को परिभाषित करते हुए लिखा है कि समाज को स्वस्थ एवं संतुलित पथ पर अग्रसर करने एवं व्यक्ति को अर्थ, काम, मोक्ष और धर्म को उचित रीति से प्राप्ति करने के लिए जिन विधि–निषेध मूलक सामाजिक, व्यावहारिक, आचारणिक, धार्मिक तथा राजनीतिक आदि नियमों का विधान देश, काल और पात्र के संदर्भ में किया जाता है, उसे नीति शब्द से अभिहित करते हैं। इसलिए नैतिक शब्द का अर्थ है नीति का आचरण करने वाला। नीति और

धर्म को अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि नीति का सैद्धान्तिक रूप धर्म है और धर्म का व्यावहारिक रूप नीति है। धर्म का सार नीति और नीति का आधार धर्म है। धर्म हमारे नैतिक जीवन का आदर्श है। उचित–अनुचित, नैतिक–अनैतिक, सत्–असत् कार्यों का ज्ञान धार्मिक आधार पर ही होता है।

नैतिकता मानवीय आचरण और व्यवहार को श्रेष्ठतम् की ओर उन्मुख करने का साधन है। अहिंसा, न्याय, त्याग, साहस, मूल्यनिष्ठा, न्यायनिष्ठा आदि हमारे नैतिक आदर्श हैं। जिनका अनुगमन करना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है। भंवर सिंह सामौर ने अपने गद्य साहित्य में नैतिक मूल्यों की स्थापना एवं रक्षा करने वाले अनेक पात्रों का निर्माण किया है जो नैतिक मूल्यनिष्ठा का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। नैतिक संस्कार केवल हमारे भौतिक जीवन को ही प्रभावित नहीं करते बल्कि उनका प्रभाव जन्म–जन्मान्तर तक चलता रहता है। नैतिक संस्कारों का मुख्य उद्देश्य मनुष्य में दया, क्षमा आदि गुणों की प्रतिष्ठा ही है। सामौर की कृत्ति शंकरदान सामौर इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण बनकर प्रस्तुत हुआ है। ''शंकरदान सामौर के अनुसार चारण राजा को भी दण्ड देने वाले थे। ये राजा डंडी कहलाते थे। इसका तात्पर्य यह है कि राज सत्ता से भी उपर उठकर जो नैतिक सत्ता होती है, उसके प्रतीक चारण थे। जिस नैतिक सत्ता से राजा भी डरता था।''[35]

आदर्श मानवीय जीवन का नियामक

सामौर के साहित्य में आदर्शवादी दृष्टिकोण मुखरित हुआ है।आदर्शवाद यथार्थवाद का विलोम है। भारतीय संदर्भ में आदर्श का अनुकरण अथवा अनुशरण प्राचीन परंपरा है। भारतीय वाङमय में आदर्श की प्रतिष्ठा का प्रयत्न सदैव ही होता रहा है। आपने अपनी अधिकांश रचनाओं में मानवीय रिश्तों के आदर्श पर बल दिया है। आपके द्वारा रचित चारण बड़ी अमोलक चीज नामक कृति में इसकी बानगी की झलक देखने को मिलती है। ''धरती पर जब संकट आये, स्त्रियों की इज्जत पर संकट आये, मनुष्यता व मानव धर्म पर संकट आये तो चाहे वह राजा हो चाहे रंक,

सभी अपने प्राण देकर भी इन तीनों संकटों को टालते हैं। जीते जागते ये संकट नहीं आने देते हैं।''[36] भंवर सिंह सामौर जीवन के व्यावहारिक आदर्शों, उदात्त मूल्यों और मानव के रागात्मक सम्बंधों में अटूट निष्ठा रखते हैं। वे ऐसे समाज के समर्थक हैं जिसमें परस्पर प्रेम, त्याग, सद्भाव, सौहार्द्र और सामजस्य की प्रबलता हो। आपका विश्वास है कि मनुष्य की कर्मनिष्ठा, मूल्यनिष्ठा, सेवावृत्ति, कर्त्तव्यपरायणता, जातीय–अस्मिता, राष्ट्रप्रेम, बन्धुत्वभाव आदि कुछ ऐसे मूल्य हैं, जो आदर्श मानवीय जीवन के नियामक होते हैं।

वैज्ञानिक तर्क शक्ति

भंवर सिंह सामौर विज्ञान को एक सीमा में ही स्वीकार करते हैं, जिससे मनुष्य का सामान्य जीवन सुखी और सम्पन्न हो। परन्तु उस सीमा का उल्लंघन होते ही मनुष्य की लोभ वृत्ति की कोई सीमा नहीं रह जाती है और वह विज्ञान का दुरूपयोग करता है। उसकी लालच और संग्रह की प्रवृत्ति असीम हो जाती है। मनुष्य की इस अनाहत लोभवृत्ति को हम आपकी कृत्ति चारण बड़ी अमोलक चीज में देख सकते हैं– ''विज्ञान अपने आप में न किसी का विकास करता है, न विनाश। जिन विचारों से प्रेरित होकर मनुष्य विज्ञान का उपयोग करता है, उसी पर इस बात का दारोमदार है कि वह विज्ञान का क्या और कैसा उपयोग करेगा? हवाई जहाज से भूखों के लिए अन्न, रोगियों के लिए दवा भी बरसा सकते हैं। यदि विरोधियों के प्रति वैर है तो वही हवाईजहाज बम बरसा सकता है। हमनें एक बटन दबाया कि कमरे में रोशनी हो गई। उस रोशनी में हम ज्ञान की बातें भी लिख सकते हैं तथा यदि हमारे विचार द्वेष व वैर–विरोध से प्रभावित है तो हम बुराई की बातें भी लिख सकते हैं।''[37]

वैचारिक सार

सामौर के गद्य साहित्य में यथार्थपरक वैचारिक दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है। भले ही लेखक की दृष्टि कितनी ही सूक्ष्म, कितनी ही पैनी और सारपूर्ण क्यों न हो, वह जीवन के सत्य की खोज ही करती रहती है, किसी नये सत्य की सृष्टि नहीं करती। वह हमें कुछ दिखाती है, जो जीवन में मौजूद है, परन्तु अभी तक जिस पर हमारी नजर नहीं गई, जबकि नजर ने उसे देख लिया है। इस तरह अन्ततः अपनी दृष्टि की विशालता के बावजूद लेखक जीवन के वस्तुपरक यथार्थ का अन्वेषी होता है। ''आधुनिक युग की समग्र स्वाधीन चेतना के गुरु स्वामी कृष्णानंद जी ही हैं। आपने स्पष्ट कहा है कि जिसने सेवा धर्म अपना लिया वह सारे बंधनों से मुक्त हो गया।''[38] उन्होंने आगे कहा है कि मनुष्य के पिछड़ेपन और विकास का मूल कारण उसके विचार होते हैं। गीता में कहा है– ''मनुष्य के बंधन एवं मोक्ष का कारण उसका मन अर्थात् विचार ही होते हैं। जो कोई भी पिछड़ता है, वह विचारों में ही पिछड़ता है। जिसका भी विकास होता है, उसका भी महान् विचारों का ही विकास होता है। विकास का मूलमंत्र विचारों का विकास निरंतर प्रवहमान रहे।''[39] यदि मानव के मन में मोक्ष की मनोकामना है तो वह भारतीय जीवन दर्शन के धर्म मार्ग का अनुसरण करेगा। निस्वार्थ भाव से सेवा कर्म को ही अपना प्रमुख धर्म समझेगा। परहित कामना में रत रहेगा।

सांस्कृतिक दृष्टि

साहित्य की चरम सार्थकता इस बात में होती है कि वह अपने समकालीन जीवन के सांस्कृतिक दृष्टिकोण को समग्रता के साथ अभिव्यंजित करता है। सामौर के साहित्य में सांस्कृतिक दृष्टिकोण बहुआयामी रूप में अभिव्यक्त हुआ है। आप युगान्तरकारी संन्यासी में सांस्कृतिक मूल्यों की अभिवृद्धि करने के लिए लिखते हैं कि–''एक रात स्वामीजी एक करोड़पति भारतीय के यहाँ सोये हुए थे। बिजली की बत्ती बुझी हुई थी। अचानक बिजली की बत्ती जल उठी। स्वामीजी जग गये, उठ

बैठे। उन्होंने बूढ़े को देखा, वह करुणा की याचना करता पोपला मुँह, आँखों से झर–झर झरते आँसू सिसकियाँ भरता उसका उदास चेहरा, देखकर स्वामीजी ने उससे कहा रोओ मत । क्या हुआ? स्वामी रोना नहीं देख सकता। बहुत कठिनाई से स्वामीजी ने उसे शांत किया। तब उसने कहा, स्वामीजी, मैं बहुत दुःखी हूँ। स्वामीजी ने उससे कहा तुमसे ज्यादा सुखी और कौन हो सकता है? अपार सम्पत्ति के मालिक हो तुम। गन्ना, चाय और कॉफी के खेत तथा चीनी, चाय और कॉफी के कारखानों के मालिक हो, तुम दुःखी क्यों हो?' उसने गुजराती भाषा में स्वामीजी को जवाब दिया 'मारा छोकरा बिगड़ि गया।' अर्थात् मेरी संतान बिगड़ गई। स्वामीजी समझ गये कि परिवार में संस्कार नहीं है। अन्य दो–तीन जगह भी ऐसी ही बातें हुई। स्वामीजी ने सोच लिया कि उन्हें भगवान यहाँ अफ्रीकी भारतीयों में संस्कार सिंचन के लिए लाया है।''[40]

ईश्वर के प्रति आस्थिक भाव

सामौर के साहित्य में ईश्वर के प्रति आस्था भाव और सकारात्मक दृष्टिकोण को अभिव्यक्ति मिली है। युगान्तरकारी संन्यासी नामक कृति में साकार ईश्वरीय भाव को आपने व्यक्त करते हुए लिखा है कि– ''स्वामीजी का ध्यान वहाँ के समाज में भारतीय संस्कारों एवं धर्म–प्रचार की ओर गया। मॉरीशस के घर–घर में हनुमानजी की लाल ध्वजा फहराती थी। लोगों को हनुमान चालीसा का पाठ करते हुए भी स्वामीजी ने सुना था। गाँव–गाँव में मंदिरों के दर्शन किए। वृद्ध लोगों को परम्परागत ढंग से झाँझ एवं ढोलक पर रामायण गाते देखा तो उनके दिल में एक बात आई कि मॉरीशस की भूमि में भी संस्कारो के बीज तो हैं, परन्तु ये अंकुरित तभी होंगे जब संस्कृति रूपी वर्षा हो। वे इसी ढंग से सोचने लगे।''[41]

गंगाजल की पावनता

सामौर के गद्य साहित्य की दृष्टि में भारतीय परम्परा से जुड़ा व्यक्ति दुनियां के किसी भी कोने में रहता हो, उसे गंगा स्नान की इच्छा रहती ही है। यदि यह इच्छा पूरी न हो तो भी वह व्यक्ति चाहेगा कि मरने के बाद अस्थियाँ तो गंगा पहुँचे ही। ''स्वामीजी मॉरीशस के लोगों की इस भावना को जड ़से जानते थे, अतः उन्होंने मॉरीशस में गंगाजल वितरण का अनोखा प्रयोग किया। ह्यूमन सर्विस ट्रस्ट ने यह बीड़ा उठाया तथा मॉरीशस में 22,800 बोतल गंगाजल नवम्बर 1984 से जुलाई 1985 तक वितरित किया गया। देश के 82 गाँवो में गंगाजल वितरण अभियान के रुप में समारोह पूर्वक वितरण किया गया। गाँवों में सामाजिक और सांस्कृतिक संगठनों ने यह बीड़ा उठाया। लोगों ने अपने घरों में आरती उतारकर पावन गंगाजल ग्रहण किया।''[42]

गोदान जीविका का आधार

सामौर के साहित्य में अभिव्यक्त है कि भारतीय संस्कृति में एक परम्परा है कि मरणासन्न व्यक्ति से गोदान कराया जाता है। स्वामीजी ने मॉरीशस के अपने शिष्यों को समझाया कि जो मर रहा है, उसके लिए गोदान क्यों? जो स्वस्थ और जीवित है, उनके लिए गोदान करो। उस गरीब को गोदान करो। वह गरीब गौ का पालन करके जीविका प्राप्त कर लेगा। अपने बच्चों का लालन–पालन कर सकेगा। अपने परिवार को दूध दे सकेगा। यह विचारधारा एक गाँव से दूसरे गाँव तक पहुँची लोगों को यह बात एकदम नई ओर अच्छी लगी। रांपार जिले के बारलो गाँव में गोदान उत्सव रखा गया। सांयकाल सारा गाँव और आसपास के लोग इस उत्सव में भाग लेने के लिए उमड़ पड़े। यह हिन्दू समाज में एक क्रांति थी। इस नए उत्सव और स्वामीजी के दर्शन करने के लिए लोग एकत्रित हो गए। वृन्दावन हिन्दी पाठशाला के आँगन में गौ को लाया गया। उसे हार पहनाया गया। माथे पर सिन्दूर का टीका लगाया गया। गाँव की महिलाओं ने गौ की आरती उतारी। पंडितजी ने

मंत्र पढ़े। फिर वह गाय एक सेन परिवार को दे दी गई। स्वामीजी ने अपने भाषण में कहा, यह गौ जिस परिवार में जा रही है, वे इसकी खूब अच्छी सेवा करें तथा दूध प्राप्त करे फिर इसकी बछड़ी दूसरे को दान करे। अगर बछड़ा हो तो उसे बेचकर गौ खरीदे और उसे दूसरे को दान कर दे। कुछ ही दिनों के बाद बेलवी मोरेल में गोदान का उत्सव रखा गया..............धीरे–धीरे गोदान उत्सव मॉरिशस के सभी प्रान्तों में होने लगा।''[43]

सामौर के गद्य साहित्य में भगवान द्वारा किए जाने वाले अप्रितम कार्यों को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। ''गिलहरी द्वारा भगवान् राम को पुल बाँधने में मदद देने के रूप में देखता हूँ। जो कार्य आपके सामने आए हैं उसे भगवान का भेजा हुआ मानकर करने का प्रयत्न करना चाहिए। मैंने समस्त सेवा को महत्त्व दिया है। सेवा का विभाग नहीं होता। जो सेवाकार्य सामने आ जाता है, वही करने का प्रयत्न करता हूँ। मोटर कार में जाते हुए किसी को दुर्घटनाग्रस्त देखता हूँ तो सब कुछ छोड़कर सबसे पहले उसकी चिकित्सा का प्रयत्न करूँगा।''[44]

राजनीतिक दृष्टि

राजा से भी महान् कविराजा

सामौर के साहित्य में चारणों को काव्यके सृजन में महत्ती भूमिका अदा करने वाले राज–काज–समाज के हिमायती के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। राजा से भी बढ़कर कवि को महान् दर्जा दिया गया है। इसकी एक सुन्दर मार्मिक बानगी आपकी चूरू मण्डल के यशस्वी चारण नामक कृति में देखने को मिलती है। ''मैं हेम को मेरे जिन्दा रहते हुए ही राजा बनाऊँगा और वो बनेगा कविराजा। हमारा राजा, राजा का भी राजा– कविराजा। इस प्रकार कविराजा का पद प्रतिष्ठित हुआ। चारणों में पहला कविराजा हेम सामौर बना। बड़ा विद्वान, विद्यावान, संस्कृत, प्राकृत, फारसी, डिंगल, पिंगल, ब्रज, पिशाच, दक्खिणी का ज्ञाता। गुण भाषा चित्र को रचने वाला, जोबनेर की महाकाली जालपा का वरदाई पुत्र।''[45]

व्यंग्यात्मकता

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण मुखरित हुआ है। आपके साहित्य में वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक पक्ष को पाठक के सामने लाने एवं उसमें ऊर्जा का संचार करने में व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। गाँधीजी के समय में समाज और देश के हर क्षेत्र में महान् पुरूषों ने जन्म लिया और आज श्मशानवत् नजर आता है। उन्होंने विनोद में कहा, स्वामीजी, हम तो सभी बन्दर है। गाँधी मदारी था, वह डुगडुगी बजाता था और हम सब नाचते थे। उनके निधन के बाद आज अपनी–अपनी डफली और अपना–अपना राग रह गया है।

''स्वामीजी ने कहा, यह आपका कैसा देश है, जिसमें धार्मिक क्षेत्र में गाँधी जयंति नहीं मना सकते। स्वामीजी ने कहा कि यह आपका कैसा धर्म है कि आप देश के नवयुवकों व नवयुवतियों को मंदिर के प्रांगण में गाँधी जयंति नहीं मनाने दे रहे हैं। पिछले वर्षो में यह पर्व वहाँ सदा मनाया जाता है आनन्दपूर्वक एवं शांतिपूर्वक। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, स्वामीजी हमें क्षमा करें और खूब अच्छी तरह से गाँधीजी का जन्मदिन मंदिर में हमेशा की तरह मनाइये।''[46]

एक दिन इन्दिरा जी ने डॉ. रामगुलाम से पूछा कि ये नौजवान और नवयुवतियाँ स्वागत में देश भर में घूम रहे हैं, ये किस संस्था के हैं? तब डॉ. रामगुलाम ने कहा, ये तो सेवा संस्था के लोग हैं, जिसका संगठन देश भर में स्वामीजी ने किया है। इस पर इन्दिरा जी बड़े प्रेम से स्वामीजी से मिली और उनसे कहा, इस कार्य को करने की तो भारत में बहुत आवश्यकता है। उनके शब्द थे, ''स्वामीजी, आप भारत आए, यह काम करें। हम आपको सब प्रकार की सहायता देंगे। स्वामीजी ने थोड़ा विचार किया और उत्तर दिया, मैं तो साधारण दुबला–पतला स्वामी हूँ, इसलिए मुझे इस छोटे–से देश में ही काम करने देवें। भारत तो एक

विशाल देश है, उसमें बावन लाख स्वामी रहते हैं तो वहाँ के कार्य के लिए किसी मोटे–ताजे स्वामी को चुनिएगा। यह जवाब सुनते ही इंदिराजी मुस्करा उठी।''[47]

आपके साहित्य में आऊवा का धरना नामक कृत्ति में व्यंग्यात्मक दृष्टि को बड़े ही मार्मिक ढंग से अभिव्यक्ति दी गई है। ''आऊवे का धरना ज्यादा मशहूर है जो सम्वत् 1643 में मोटा राजा उदयसिंहजी की नीतियों विरुद्ध दिया गया था । इसका सबब था कि 20 वर्ष पहले जब राव चन्द्रसेन जी ने जोधपुर का किला मुगलों को सौपा तो जनाने को सिवाने के पहाड़ों में भेज दिया था रास्ते में एक रथ के बैल थक गये। पास ही एक चारण कुआँ चला रहा था। राज के नौकर उसके बैल ले आए। चारण गाँव में जाकर कुछ आदमी लाया। उन्होंने आते ही रथ से बैल खोल लिए और रथ उलट दिया। जिससे मोटा राजा की माँ का हाथ टूट गया। उसी वक्त तो प्राणों की पड़ी हुई थी। हाथ को कौन पूछता था? मगर सम्वत् 1640 में मोटा राजा को वापस जोधपुर मिलने पर जब जनाना काफिला पहाड़ों से वापस आया तो माँ जी ने उनको हाथ दिखाकर कहा कि और तो जो मुसीबत गुजरी सो गुजरी। मगर जिस चारण ने रथ उलटकर मेरा हाथ तोड़ा है, वह हरगिज माफी के काबिल नहीं है। मोटा राजा ने उसकी जमीन जब्त कर दी। उसके कारण जिन चारणों ने उसकी सिफारिश की थी, वह भी अपने–अपने शासन खो बैठे। इससे चारणों में हलचल मच गई। सम्वत् 1642 के अंत में राजाजी दक्खन से सोजत आये और वहाँ जो शासन उनके बड़े भाई राम और राम के बेटे कल्ला को दिये हुए थे, वे भी जब्त कर लिए तब तो ग्यारह हजार चारणों ने गाँव आऊवा में चाँदी करने के वास्ते इकठ्ठे होकर महादेवजी के मन्दिर पर धरना दिया। क्योंकि वहाँ ठाकुर चम्पावत गोपालदास ने उनसे कहा था कि और तो मुझसे कुछ मदद नहीं हो सकती। मगर मैं तुम्हारी चांदी करवा दूँगा। राजाजी ने यह खबर सुनकर सोजत के अक्खाजी के बारहठ को समझाने के वास्ते भेजा। मगर आऊवा पहुँचकर वह भी अपनी बिरादरी में शामिल हो गया। तब राजाजी ने उसके वास्ते एक बड़ा कटार भेजकर कहलवाया कि 'और तो गले घालकर मरेंगे और तुम गुदा में घालकर

मरना।' फिर फौज को हुक्म दिया कि जाकर चारणों को सजा दे। मगर चाम्पावत गोपालदास ने चारणों को तसल्ली देकर कहा कि मैं फौज से लडूँगा, तुम अपना काम करो। चारणों ने पहले तो हलवा बनाकर खूब खाया और फिर रात भर जोग माया के गीत गाकर तड़के ही अक्खाजी के ढोली गोयंद को मंदिर के शिखर पर चढ़ाया। जब सूरज की किरणें फूटे तो ढोल बजा देना। मगर गोयंद ने ऐसी बात के लिए कि जिससे ग्यारह हजार चारणों की जान जाती हो। इसलिए ढोल नहीं बजाया और सूरज के निकलते ही गले मे छुरी खाकर अपने को नीचे गिराया। तब सब चारण छुरी और कटारी लेकर मन्दिर में गये। किसी ने गला काटकर अपना खून महादेवजी पर छिड़का। किसी ने अपना सिर चढ़ाया। कोई पेट में कटारी मारकर मरा। कोई जख़्म खाकर गिरा। सारा मंदिर खून से भर गया। सात आदमी तो उसी वक्त मर गये। उनमें अक्खाजी भी था। जब तक कि यह चांदी हुई चम्पावत गोपालदास अपने भाई बेटों समेत फौज का रास्ता रोककर खड़ा रहा, मगर फौज नहीं आई। क्योंकि राजाजी ने चारणों को खुद मरते देखकर फौज नहीं भेजी। मगर गोपालदास ने कहलवाया कि तुमने चारणों को चांदी में मदद दी इसलिए मेरी अमलदारी से चले जाओ। गोपालदास दो लाख का पट्टा छोड़कर चारणों समेत बीकानेर के राजा रायसिंह के पास चला गया और उसके भाई पृथ्वीराज ने अकबर बादशाह से सिफारिश करके चारणों के शासन फिर से बहाल करा दिये।''[48]

स्वतंत्रता के प्रति दृष्टि

सामौर के गद्य साहित्य में व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक स्वतन्त्रता पर बल दिया गया है। मानसिक स्वतन्त्रता के बिना शारीरिक स्वतन्त्रता अधूरी होती है क्योंकि व्यक्ति जब तक मानसिक रूप से स्वतन्त्र होकर कार्य में सलंग्न नहीं होता तब तक उसके द्वारा किए गये समस्त कार्यों में पूर्णता नहीं आ पाती है।

गुलामी व स्वतंत्रता में भेद

सामौर के साहित्य में चारणों को व्यक्ति की स्वतंत्रता में महत्ती भूमिका अदा करने वाले स्वतंत्रता के पुजारी के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। व्यक्ति को कभी भी गुलामी में जीवन यापन नहीं करना चाहिए। गुलामी सहन करने वाले व्यक्ति का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता है। स्वतन्त्र विचार रखने वाला व्यक्ति शेर की तरह होता है जबकि गुलामी सहन करने वाला व्यक्ति हाथी की तरह अस्तित्वहीन होता है। ''गागरूण गढ़ के योद्धा अंचलदास खींची एवं मांडू के सुल्तान होसंगशाह के मध्य हुए युद्ध का आँखों देखा वर्णन शिवदास गाडण ने किया है। शिवदास गाडण स्वयं इस युद्ध में शामिल था। मालवा में तो अंचलदास ने इस रचना के बल पर देव पद प्राप्त कर लिया।

एकई वन्न वसंतड़ा, एहड़ौ अन्तर काय।

सिंघज कोड़ी ना लहै, गयवर लक्ख बिकाय।।

एक ही वन में साथ–साथ निवास करते हैं। फिर इतना अन्तर कैसे कि सिंह की तो कोई कोड़ी देने को तैयार नहीं होता एवं हाथी एक लाख में बिकता है। कवि स्वयं ही कारण बताते हुए उत्तर देता है कि–

गयवर गळै गळत्थणौ, जहँ खंचै तहं जाय।

सिंघ गळत्थण जे सहै, तो दह लाख बिकाय।।

हाथी गले में गुलामी का प्रतीक गलबंधन स्वीकार कर लेता है, बिक जाता है तथा जिधर ले जाओ उधर ही जाने को तैयार हो जाता है। यदि सिंह गुलामी का गलबन्धन स्वीकार करने को तैयार हो जाए तो दस लाख में बिके।''[49]

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में स्वतन्त्रता के विभिन्न पहलुओं पर दृष्टिपात किया गया है। स्वतन्त्रता के लिए आपने समस्त धर्मानुनायियों को आजादी के महायज्ञ में अपनी अपनी आहुति देने के लिए प्रेरित किया है। ''विष्णु क्षेत्र मंदिर

में स्वतन्त्रता समारोह होने की बात फैल गई। आर्य समाज ने डॉ. रामगोपाल को आमंत्रित कर तिलक किया। रवि वेद प्रचारिणी सभा ने उन्हें आमंत्रित कर स्वागत किया। मुसलमानों ने दोनों बड़ी मस्जिदों में उनके साथ विशेष नमाज पढ़ी।''[50]

भंवर सिंह सामौर स्वतन्त्रता के महत्त्व को उजागर करते हुए युगान्तरकारी संन्यासी नामक कृति में लिखते हैं कि ''मॉरीशस प्रवासी भारतीयों का प्रथम देश है जो 12 मार्च, 1992 को स्वतंत्र हुआ। उसका प्रशासन तंत्र भारतीयों के हाथों में आया। सन् 1956 से ही प्रवासी भारतीयों के काम करने का क्षेत्र बन गया था। मॉरीशस स्वामीजी की कर्मभूमि और प्रयोगभूमि है। मॉरीशस के घर–घर में उस दिन दीपावली मनाई गई। वह दिन अभूतपूर्व था। लोग अपने मित्रों को अपने घर में आमंत्रित करते थे तथा साथ बैठकर खा–पी रहे थे। उस दिन लोगों ने डेढ सौ वर्षों की गुलामी के बाद प्रथम बार स्वतन्त्र देश की वायु में साँस लिया था।''[51]

हर सांस देश हित में

चूरू मण्डल के यशस्वी चारण नामक कृति में सामौर जीवन और ब्रह्माण्ड को विस्तार से वर्णित करते हैं कि– ''इक्कीस हजार छः सौ श्वास जीव एक दिन में लेता है। छः श्वासों का एक पल, साठ पलों की एक घड़ी, साठ घड़ी का एक दिन–रात, पन्द्रह दिन–रात का एक पखवाड़ा, दो पखवाड़ों का एक माह, दो महीनों की एक ऋतु, दो ऋतुओं का एक काल, तीन कालों का एक वर्ष, एक सौ वर्ष बीतने पर एक संवत्, कलियुग में यही एक सौ वर्ष मनुष्य की आयु मानी जाती है। दस संवत् का एक हजार वर्ष, एक हजार वर्ष के एक लाख वर्ष, कितने ही लाखों वर्षों का एक युग, चार–चार युग की चौकड़ी के छत्तीस युग, ऐसे छत्तीस युग इन्द्र की आयु होती है। जब चौदह इन्द्र हो जाए तब ब्रह्मा का एक दिन होता है। ऐसे दिनों के एक सौ बरस तक ब्रह्मा का जीवन हैं। स्वयं को अनुभव करो कि ब्रह्मा की भी एक निश्चित आयु है फिर मूरख क्यों दुखी होता है कि आयु कम है। इस प्रकार केशवदास ने अपनी वाणी द्वारा अपने युग की काल चेतना की दृष्टि को अभिव्यक्ति

दी कि वही मनुष्य है जो देश के हित में अपने प्राणों की हँसते–हँसते बलि चढ़ा दे।''[52]

भय से मुक्ति

सामौर के गद्य साहित्य में भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता 'वसुधैव कटुम्बकम्' की भावना में भय के प्रति मानवीय अकांक्षाओं के दर्शन होते हैं। ''स्वामीजी ने कहा यह बात तो आपने भय के कारण स्वीकार की है। जब आप स्वतन्त्र हो गए हैं तो भय से भी स्वतन्त्र होइये। डर को मन से निकाल फेंकिए। आपको इस देश पर राज करना है। वह आप निर्भय होकर ही कर सकते हैं। स्वामीजी ने सुझाव दिया, पुलिस लाईन बैरेक्टस के स्थान पर घुड़दौड़ के मैदान में स्वतन्त्रता मनाइए।''[53]

''जब भारत स्वतंत्र हो गया तो गाँधीजी ने कांग्रेस के नेताओं से कहा था, कांग्रेस को समाप्त कर दें। उनका उद्देश्य तो देश को आजाद कराना था, वह पूरा हो गया है। परन्तु संगठनों के संचालक मानते हैं कि संगठन को समाप्त करना, उसकी अपनी आत्महत्या है। इसलिए जानते हुए भी कि उस संगठन का उद्देश्य पूरा हो गया है, वे उसे समाप्त नहीं करते हैं।''[54]

सामरिक चिंतन

सामौर के साहित्य में सामरिक चिंतन इस प्रकार मुखरित हुआ है– गीता ने इस विश्व को एक पवित्र कर्म भूमि माना है। धर्म के अंतर्गत कार्य करने वाला व्यक्ति ही श्रेष्ठ है। पुण्य की प्राप्ति के लिए पाप का नाश करना परम कतर्व्य है। पाप के नाश के लिए धर्म युद्ध आवश्यक है। चारण बड़ी अमोलक चीज निबंध संग्रह व चारण साहित्य हमें सिखाता है कि स्वतन्त्रता की रक्षा हेतु हमें लड़ना भी पड़ता है, मरना भी पड़ता है। इस परम्परा का इन कवियों ने जींवत बनाए रखा है। ''इसी कारण शेखावाटी विश्व की वह वीर वरदाइनी भूमि बन गई है, जिस पर वीरों ने

राष्ट्र एवं उसकी संस्कृति की रक्षा के लिए हँसते–हँसते प्राणों की बाजी लगाई है। वीरांगनाओं ने प्रेरक शक्ति बनकर अपने आत्मीय जनों पति, पुत्रों व भाइयों को हँसते–हँसते लोक हित के लिए युद्ध भूमि में भेजकर राष्ट्र प्रेम का अद्वितीय परिचय दिया है। दूसरी तरफ चारण योद्धा कवि बंधुओं ने तो सेनापति के साथ कदम से कदम मिला कर रक्त बिन्दुओं के अक्षरों से राष्ट्रीय साहित्य का निर्माण किया है। ओज एवं दर्प से ओतप्रोत इन महान योद्धा कवियों की शेखावाटी के लोगों ने जो आरती उतारी है, उसी से चारण काव्य के एक नए अध्याय का पुण्य मंगलाचरण हुआ है।''[55]

भंवर सिंह सामौर के लेखन में राष्ट्रीय अस्मिता और राष्ट्रीय विकास के व्यापक संदर्भों का चित्रण अनेक रूपों में हुआ है। वे जहाँ एक ओर राष्ट्रप्रेमी चरित्रों के माध्यम से राष्ट्रप्रेम की बलिदानी निष्ठा और उसके उदात्त मूल्यों को रेखांकित करते हैं वहीं दूसरी ओर राष्ट्र विकास की गतिरोधी स्थितियों और शक्तियों को रेखांकित करते हुए उनके घातक परिणामों को भी बलपूर्वक आलोकित करते हैं। ''सन् 1965 में पाकिस्तान ने भारत पर हमला किया। लाहौर तक तिरंगा फहरा दिया गया। युद्ध और सृजन ऐसा प्रतीत होता है, मानों दोनों परस्पर विरोधी हैं। युद्ध अपनी सम्पूर्ण विध्वंसात्मक विभीषिका को लिए सृजन के प्रतिरोध में खड़ा हुआ है। शांति के क्षणों में किये गये साहित्य सृजन में शास्त्रीय मानदण्डों की ओर बढ़ने का यत्न तथा सौन्दर्य एवं कलागत पूर्णता की प्रवृत्ति लक्षित होती है। इसके ठीक विपरीत युद्ध कालीन सृजन में उत्तेजन सशक्त भाव प्रवाह होता है और मनोबल को निरन्तर ऊँचे धरातल पर रखने की क्षमता तथा विरोधी तत्वों के ध्वंसावशेषों पर नव्य सृजन का मुक्त उद्घोष। ''युद्ध मानव जीवन में आद्यन्त एक प्रश्न चिह्न के रूप में ही उपस्थित हुआ है। चिन्तन के शैशव से ही मानव मनीषी इस समस्या पर अपने विचार अभिव्यक्त करते रहे हैं। दार्शनिकों ने शुष्क सैद्धान्तिक रूप में ही परीक्षण किया तो समाज सुधारक ने इसे अभिशाप या कभी वैमनस्य को तिरोहित करने के लिए वरदान कहकर छोड़ दिया। परन्तु कवि जो जन मन का प्रतिनिधि होता है,

जिसके कण्ठ में युग वाणी प्राप्त कर मुखरित हो उठता है, मानव जीवन के सौख्य तथा शान्ति के क्षणों को कम्पित कर विनष्ट कर देने वाले युद्ध के विषय पर मनन कर अपनी सशक्त भावधारा को काव्य के कलेवर में व्यक्त करता है। प्रत्येक देश में कवि या कलाकार वहाँ के बुद्धिजीवी वर्ग में गिना जाता है अतः युद्ध की संकटापन्न घड़ियों में उसका दायित्व सीमा पर जूझने वाले सैनिक से कम नहीं होता। वह देश के आन्तरिक मोर्चे पर जन मन की शक्ति को प्रेरित कर त्याग देशप्रेम, वीरत्व प्रभृति उदात्त भावनाओं को सजग रखता है।''[56]

पिछले दिनों पश्चिमी सीमान्त पर शत्रु ने हमारे अस्तित्व को ललकारते हुए युद्ध की घोषणा की। इस पर प्रतिक्रिया स्वरूप सम्पूर्ण देश ने सभी पारस्परिक मतभेदों को विस्मृत कर चुनौती का प्रत्युत्तर देने के लिए हुंकार उठा। युद्ध को पुनीत पर्व के रूप में देखने वाले राजस्थान का साहित्यकार युद्ध की ललकार को सुन कर प्रत्युत्तर दिये बिना निश्चेष्ट कैसे बना रहता? उसकी प्रेरक, ओजस्विनी वाणी वीरता एवं शौर्य के अभिनन्दन हेतु तत्पर हुई। भारतीय सेना ने आक्रांता के अदम्य माने जाने वाले पैटन टैंकों व साईबर जैट विमानों को मिट्टी के खिलौनों की भांति ध्वस्त कर वीरता के इतिहास में स्वर्णपृष्ठ लिखा। अद्भुत था सूरमाओं का रण कौशल। विजय–वरण के साथ ही भारतवर्ष के लम्बे और विविधता भरे इतिहास में एक बहुत गौरवान्वित अध्याय की वृद्धि हुई है। इन परिस्थितियों में साहित्यकार का दायित्व और भी बढ़ गया था। भारत शांति का उपासक रहा है, परन्तु आत्मरक्षार्थ स्वाधीनता तथा सिद्धान्तों के अस्तित्व की अक्षुण्णता के लिए किये जाने वाले युद्ध में भारतीय जन मानस को आदर्शों के प्रति जागरुक रखना भारतीय साहित्यकारों का ही कर्तव्य था। वे साहित्य के माध्यम से देश को नई प्रेरणा देकर राष्ट्र के प्रति गौरव भावना के प्रसार से जन मन तथा सीमा पर खाई में जूझने वाले सैनिकों को नई दृष्टि प्रदान कर मूल्यवान कार्य कर सकते हैं।

युद्ध–काव्य को साहित्य के शाश्वतवादी या ब्रह्मानन्दवादी दृष्टिकोण वाले साहित्यकार मात्र सामयिक स्थिति से प्रभावित मान कर शाश्वत सृजन या मूल्यवान की कोटि में नहीं रखते हैं। आज का नया कवि भी यही सोचता है। युद्ध के दौरान कवि की सबसे बड़ी उपलब्धि यही हो सकती है कि वह पागलपन के ज्वार में ऊँचे जीवन मूल्यों के आदर्शों को खोने से बचाये कविता की सौन्दर्यकला की रक्षा करें। इस दृष्टि से सभी युद्ध काव्य पागलपन के ज्वार में वाणी की अभिव्यक्ति रहे, परन्तु यह निर्विवाद रूप से सत्य नहीं है। न सभी युद्ध पागलपन है और न ही सभी युद्ध काव्य शाश्वत मूल्यों से च्युत निरी वाणी की गर्जना। यदि यह सत्य ठहरे तो क्या राम द्वारा रावण से युद्ध, कृष्ण द्वारा अर्जुन को महाभारत के लिए प्रेरित कर सक्रिय करना और हमारा स्वाधीनता संग्राम किसी जीवन मूल्य आदर्श और सौन्दर्य की हत्या करते हैं? इस प्रकार का चिन्तन निरा भटकाव तथा घोर अहमन्यता है, जिसमें कि एक वर्ग विशेष अपनी कृतियों को सामान्य जन तथा सामान्य जन कृतियों से भिन्न ऊँची स्थिति की वस्तु मानते हुए साहित्य के लिए शाश्वत विशेषण का प्रयोग करता हुआ समूचे जन जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित करने वाली युद्ध की सामयिक स्थिति के प्रति आँख मूंदे अपने शाश्वत काव्य के गीत गाता रहता हो। कवि या कलाकार जो अन्य सामाजिकों की अपेक्षा अधिक अनुभूतिशील होता है। यदि वह सारे देश के जीवन को प्रभावित कर झकझोर देने वाली घटना के प्रति संवेदनहीन बन जाय तथा शाश्वत मूल्यों की ही बात करता रहे तो यह उसका निरा भटकाव की कहा जायेगा। शाश्वत मूल्यों की रक्षा का निर्णय तो इतिहास देवता ही करता है।

''यद्यपि युद्ध स्वयं में निंद्य है, विनाश का विस्फोट है, तथापि इस संबंध में एकपक्षीय निर्णय समस्या का समाधान नहीं करता है। यदि समूची मानव चेतना इसी दृष्टिकोण को अपना ले, तभी युद्ध की समस्या का समाधान सम्भव है। इन विचारों के व्यक्तिगत रहने की अपेक्षा व्यापकता ग्रहण कर सामाजिक बनने में ही सार्थकता है। युद्ध की घड़ियों में सच्चे कलाकार, साहित्यकार और बुद्धिजीवी का कर्तव्य है कि

वह मनोबल को ऊँचा रखने के साथ ही उदात्त भावनाओं, त्याग, शौर्य, वीरत्व को जागृत करे। यदि साहित्यकार अपने इस दायित्व को पूरा करने में यत्नशील रहता है तो उसका श्रम स्तुत्य और अभिनन्दनीय है। मरण–त्यूंहार की मूल भावना में यही सामरिक दृष्टि प्रतिबिम्बित है।''[57]

जीवदया भाव

किसी भी प्रकार के जीव को हानि पहुँचाना हिंसा है। हिंसा केवल मात्र शस्त्रों से नहीं होती, कठोर वचन, ईर्ष्या, द्वेष आदि भावों से भी होती है। सामौर जी के गद्य साहित्य में इसके अनेकानेक उदाहरण विद्यमान हैं। लोक पूज्य देवियाँ नामक कृति में इसका अत्यन्त ही मनोहारी वर्णन किया गया है। ''समाज की आदिम अवस्था से पशुपालन युग व खेती की तरफ आगे ले जाने का कार्य किया चारण समाज ने। पशुत्व को लगाम देने(संस्कारित करने व कराने) व चराने का प्रारम्भिक अर्थ धारण करने वाले शब्द चारण(चराने वालों) को ही अपनी पहचान के रूप में अद्यावधि धारण कर रखा है। आज भी चारणों का बहुसंख्यक समाज पशुपालक है। पशुओं को पालतू बनाने में इन्होंने गजब का परिचय दिया। बैल को नाथ से, ऊँट को नकेल से, घोड़े को लगाम से, हाथी को अंकुश से, सिंह को चाबुक से, किसी को पाँव से, किसी को सींग से वश में कर प्रेम से ऐसा पालतू बनाया कि फिर तो ये प्राणी सामाजिक जीवन के अस्तित्व का आधार बन गए। चारण समाज की अधिसंख्य देवियाँ पशुपालक थी। आदिम संस्कारों का रूढ़ि के स्तर तक पालन करने वाली असुर संस्कृति पशुपालन को किसी भी कीमत पर स्वीकार करने को तैयार नहीं थी। इसीलिए पशुपालक समाज व्यवस्था को तहस नहस करने में उसने कोई कौर कसर नहीं छोड़ी। पशुओं के अपहरण की घटनाओं से इतिहास भरा है। इन लोकपूज्य देवियों ने ही वन, पशु, पक्षियों की रक्षा हेतु बड़े से बड़े राजपुरुषों से भी लोहा लेने में कभी संकोच नहीं किया।''[58]

अपने अहिंसक सिद्धान्तों की रक्षार्थ आवड़ देवी ने सिन्ध के अत्याचारी शासक ऊमर सूमरा से लोहा लिया व अनेक दैत्यों का दलन किया। खोड़ियार देवी ने वल्लभी के शिलादित्य को सत्ता से उखाड़ा। देवल देवी ने जायल के जींदराव खींची से संघर्ष झेला। करणी देवी ने अत्याचारी कान्हा राठौड़ का वध किया। बैचरा देवी ने पाटण के आक्रान्ता क्रूर सुल्तान को मुर्गों को मारकर खा जाने का मजा चखाया। नागल देवी ने जूनागढ़ में राव माण्डलिक को शासन की मर्यादा खोने पर सत्ता से उखाड़ फेंका। कामेही देवी ने जामनगर के जाम शासक लाखण को समाज विरोधी आचरण के लिए भस्म कर दिया। राजल देवी ने अकबर के लम्पट आचरण को ललकारा व नौरोजा परंपरा से मुक्ति दिलाई। गीगाय देवी ने अजमेर के आक्रान्ताओं से लोहा लिया। चांपल देवी ने जालौर के सुल्तान जब्बल खां की ऊँटनियों को सिन्ध के सिरोही आक्रान्ताओं से छुड़ाकर लाने हेतु बाहरू(आक्रान्ताओं का पीछा करने वाले दल के नेतृत्त्व) का कार्य किया। चन्दूबाई ने पोकरण के अत्याचारी ठाकुर सालिमसिंह से संघर्ष कर उसे नष्ट किया। राणंबाई ने कोटड़े के ठाकुर राठौड़ कुंवरपाल खोखर से संघर्ष किया। देमां देवी ने गुढ़ा मालानी के भाखरसिंह के साथ संघर्ष किया। सुन्दरबाई व सतबाई ने बोधरा मेर से संघर्ष किया। जैतबाई ने ईडर के राजकुमार कल्याणमल व उसके मामा मानजी महीड़ा के समाज विरोधी व्यवहार के विरुद्ध संघर्ष का नेतृत्व कर रास्ता दिखाया तथा उसी मानजी महीड़ा की पत्नी व पुत्र को खातू बोरैया से बचाकर शरण दी व कहा कि पिता की नीचता का फल पुत्र को क्यों मिले? पुनसरी देवी ने अनाचारी बाकर खान को खत्म करके उसके अत्याचारों से लोगों को मुक्ति दिलाई। बाईस देवियों ने रोझ(नीलगाय) की रक्षार्थ माधवपुर के राजा मघराजवाजा से संघर्ष किया। सोनबाई ने मांगरोळ दरबार अब्दुल खालिक के शिकार से कुरजा पक्षियों की जलक्रीड़ा करती पूरी डार को ही बचाया। हरियां देवी ने शिव के अत्याचारी हाकिम से, जीवाबाई ने भुज के राव खेंगार से, वानूदेवी ने सींधल(सोढ़ा) राजपूतों से, केसरबाई ने बैणप के चौहान शासक जसवंत सिंह से तथा बैनल देवी ने जूनागढ़ के अत्याचारी शासकों से लोहा उसी प्रकार लिया जिस प्रकार हिंसक परंपरा से संघर्ष चला आ रहा था।

प्रकृति संरक्षक

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में प्रकृति के संरक्षण को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। प्रकृति संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए देवियों के ओरण की स्थापना करना, उसका महत्त्व उजागर करना आपके गद्य साहित्य में प्रकृति प्रेम के साथ–साथ उसके संरक्षण को दर्शाता है। आप द्वारा रचित कृति 'लोक पूज्य देवियाँ' प्रकृति के संरक्षण को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करती है। ''प्रकृति के निकट के जीवन जीने वाली इन देवियों ने वन पशु एवं पक्षियों के मध्य जीवन व्यतीत कर इन्हें संरक्षण दिया। आज भी राजस्थान में स्थान–स्थान पर इन देवियों द्वारा स्थापित बड़े–बड़े ओरण पशु पक्षियों के स्वच्छन्द विचरण स्थल के रूप में वनस्पति जगत के संरक्षित केन्द्र बने हुए हैं। इस कारण भी ये देवियाँ व इनसे संबंधित काव्य में प्रकृति संरक्षक दृष्टि लोकप्रिय है।''[59]

वृक्षों की रक्षा

सामौर के साहित्य में चारणों को प्रकृतिके सृजन में महत्ती भूमिका अदा करने वाले वृक्षों की रक्षा के हिमायती के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। आपके साहित्य में वर्णित वृक्षों के प्रति प्रेम विश्व प्रसिद्ध जोधपुर के खेजड़ली ग्राम की घटना का स्मरण करा देता है। एक समय जब मेघसिंह नाजिम थे तब ओरण में से खेजड़ी के वृक्षों को काटने का आदेश दिया तब ग्राम वालों ने वृक्षों के बदले ओरण की झड़बेरियों का चारा उनके घर पहुँचा दिया था लेकिन नाजिम नहीं माना। उक्त घटना का आपके साहित्य में अत्यन्त ही मार्मिक वर्णन किया गया है। ''ग्राम मेहलिया(राजगढ़) के मेघसिंह रतनगढ़ में नाजिम थे। चांपासी के माताजी के ओरण की रक्षा के लिए बखतावरदान ने मेघसिंह नाजिम से निवेदन किया परन्तु ओरण की खेजड़िया काटने वालों ने पाले (झड़बेरी के पतो का चारा) की लाद व मतीरें नाजिम के घर पहुँचा दिए तो नाजिम ने बखतावरदान के निवेदन पर कोई ध्यान नहीं

दिया। तब बखतावनदान दुबारा नाजिम के पास गए व यह दोहा कहकर उनको फटकारा–

मेघा तूं माड़ी करी, (थारी) रजपूती मे राख।

करणी रो कांई करे, (थारै) पेट भरण रो साख।।''[60] इसके बाद वृक्षों का कटना बंद हो गया।

दूर दृष्टि

भारत के आजाद होने के काफी सालों बाद आज तक भी उसका पूर्णतः विकास नहीं हुआ है। भारत में लोगों का नजरिया अभी भी भ्रष्टाचार में लिप्त है। जिसकी वजह से देश में समस्त संसाधन होते हुए भी उनका सदुपयोग नहीं हो रहा है। भारत में शिक्षा, चिकित्सा की मुफ्त में व्यवस्था आजादी के साठ सालों बाद शुरू हुई है। फिर भी उसका आज सही दिशा में क्रियान्वयन नहीं हो रहा है। इसका तुलनात्मक अध्ययन मॉरीशस के साथ करते हुए आप अपने साहित्य में वर्णन करते हैं कि– ''मॉरीशस लोक–कल्याणकारी राज्य है। यहाँ शिक्षा मुफ्त है। यहाँ चिकित्सा मुफ्त है। वृद्धावस्था पेंशन है। विधवाओं को सहायता हैं। वहाँ कोई बिना घर का नहीं हैं। वहाँ कोई बेकार नहीं है।''[61] एक सफल अध्यापक होने की सफल अभिव्यक्ति आपकी दूरदृष्टि का ही परिणाम है। भारत में आज बेरोजगारी सबसे बड़ी समस्या है।

वसुधैव कटुम्बकम् भाव

सामौर के गद्य साहित्य में भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता 'वसुधैव कटुम्बकम्' के दर्शन होते हैं। आप सम्पूर्ण विश्व को अपना परिवार मानते हैं। आपके साहित्य में विश्व शान्ति एवं विश्व कल्याण की भावना के दर्शन होते हैं। आपकी युगान्तरकारी संन्यासी नामक कृति में विश्व कल्याण की भावना को स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। ''स्वामीजी तीन छंदों का पाठ कर जोगमाया की स्तुति करते थे। पहले छंद के माध्यम से स्वामीजी विश्व में शांति रहने की कामना करते

हैं। दूसरे छंद के माध्यम से संसार से दुष्टता के नाश की कामना करते हैं। तीसरे छंद के माध्यम से मनुष्य एवं प्राणीमात्र में निराशा न रहने की कामना करते हैं।''[62] इस प्रकार आपके गद्य साहित्य में विविध एवं विहंगम दृष्टि परिलक्षित होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 65
2. हिन्दी और उसका स्वरूप– ई. एच. कार, पृष्ठ 231
3. हिन्दी की विविध विधाएँ– कारलाईल, पृष्ठ 354
4. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास– डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, पृष्ठ 54
5. वही– पृष्ठ 68
6. वही– पृष्ठ 148
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 24
8. वही– पृष्ठ 168
9. यमपुर की यात्रा– रामचरण गोस्वामी, पृष्ठ 54
10. युगान्तरकारी सन्यासी– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 24
11. वही– पृष्ठ 68

12. वही– पृष्ठ 57

13. वही– पृष्ठ 23

14. वही– पृष्ठ 94

15. वही– पृष्ठ 95

16. चूरू मण्डल के यशस्वी चारण– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 12

17. वही– पृष्ठ 11

18. वही

19. वही– पृष्ठ 10

20. शेखावाटी के यशस्वी चारण– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 16

21. युगान्तरकारी सन्यासी– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 44

22. वही– पृष्ठ 135

23. चूरू मण्डल के यशस्वी चारण– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 44

24. युगान्तरकारी सन्यासी– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 134,135

25. वही– पृष्ठ 142

26. वही– पृष्ठ 129

27. वही– पृष्ठ 96

28. वही– पृष्ठ 103

29. वही– पृष्ठ 53

30. चूरू मण्डल के यशस्वी चारण– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 5,6

31. युगान्तरकारी सन्यासी– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 133

32. वही– पृष्ठ 83

33. वही– पृष्ठ 163

34. वही– पृष्ठ 121,122

35. शंकरदान सामौर– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 44

36. चारण बड़ी अमोलक चीज चारण साहित्य– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 24

37. युगान्तरकारी सन्यासी– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 165

38. वही– पृष्ठ 136

39. वही– पृष्ठ 124

40. वही– पृष्ठ 184

41. वही– पृष्ठ 96

42. वही– पृष्ठ 56

43. वही– पृष्ठ 79

44. वही– पृष्ठ 95

45. चूरू मण्डल के यशस्वी चारण– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 33

46. युगान्तरकारी सन्यासी– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 185

47. वही– पृष्ठ 105

48. वही– पृष्ठ 49

49. चूरू मण्डल के यशस्वी चारण– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 42

50. युगान्तरकारी सन्यासी– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 71

51. वही– पृष्ठ 74

52. चूरू मण्डल के यशस्वी चारण– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 44

53. युगान्तरकारी सन्यासी– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 70

54. वही– पृष्ठ 79

55. शेखावाटी के यशस्वी चारण– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 24

56. आऊवा का धरणा– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 14

57. लोक पूज्य देवियां– भंवर सिंह सामौर,पृष्ठ 68

58. वही– पृष्ठ 76

59. वही– पृष्ठ 36

60. चूरू मण्डल के यशस्वी चारण– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 29

61. युगान्तरकारी सन्यासी– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 194

62. वही– पृष्ठ 39

तृतीय अध्याय

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का कथ्य

जीवन दर्शन एवं समाज

प्रकृति चित्रण

राष्ट्रीयता

व्यंग्य

आधुनिक बोध

समकालीन चिंतन धाराएं एवं विमर्श

तृतीय अध्याय

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का कथ्य

जीवन दर्शन एवं समाज

भारतीय चिन्तन में जगत् को मिथ्या क्षणभंगुर तथा त्याज्य समझने वाली धारणा तथा जाग्रत को ही एक मात्र सत्य और योग्य मानने वाली विचारधारा, इन दोनों के बीच समन्वय स्थापित करते हुए भारतीय जीवन दर्शन जगत् को ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति स्वीकार करता है, इसलिए सांसारिक भोग से सम्बंधित भौतिकवादी तथा ब्रह्म को काम्य मानकर आध्यात्मिकतावादी दृष्टि दोनों को ही समन्वित रूप से स्वीकृति देता है। चिन्तन की इसी समन्वयवादिता पर पुरुषार्थ की धारणा अवलम्बित है।

भारतीय जीवन दर्शन के अन्तर्गत पुरुषार्थ को ही जीवन दर्शन के रूप में मान्यता दी गई है। पुरुषार्थ का मूल अर्थ उन प्रयत्नों से है, जिन्हें जीवन के उद्देश्य की पूर्ति हेतु किया जाता है। हिन्दू जीवन दर्शन ने समाज में मानव जीवन के चार उद्देश्य स्वीकार किए हैं– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। मोक्ष को जीवन का साध्यात्मक मूल्य तथा धर्म, अर्थ एवं काम को साधनात्मक मूल्य के रूप में मान्यता दी है। भारतीय दर्शनानुसार शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा इन चार तत्त्वों का समन्वय ही मनुष्य है।

शारीरिक विकास हेतु– अर्थ,

मानसिक विकास हेतु– काम,

बौद्धिक विकास के लिए– धर्म

आध्यात्मिक विकासार्थ– मोक्ष।

इन चारों को ही पुरुषार्थ तथा लक्ष्य के रूप में स्वीकारा गया है। वस्तुतः ये भारतीय जीवन दर्शन के चार प्राचीनतम मूल्य हैं। इस प्रकार भारत में प्राचीन काल से ही जीवन दर्शन सम्बन्धी धारणा इस रूप में विद्यमान रही है। महाकाव्यों का उद्देश्य शाश्वत जीवन दर्शन की प्रतिष्ठा अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति स्वीकार करते हुए श्री देवीप्रसाद गुप्त लिखते हैं कि– ''हमारे महाकाव्यों का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की अर्थात् चतुवर्ग की प्राप्ति माना गया है। इसमें प्रतिपादित शाश्वत जीवन दर्शन भोग, योग और कर्म हैं।''[1]

धर्म का अर्थ है जो धारण करे और पुरुषार्थ के सन्दर्भ में मानव द्वारा व्यष्टि और समष्टि के प्रति नैतिक कर्त्तव्यों को धारण करना ही धर्म है। इस दृष्टि से धर्म का सम्बन्ध नैतिक मूल्यों से है। ''धर्म उन नैतिक नियमों को कहते हैं, जिनके पालन से व्यक्ति और समाज दोनों की ही उन्नति और कल्याण होता हो। जिन पर चलने से व्यक्ति को सुख, शान्ति समाज में सन्तुलन, सामंजस्य और शान्ति स्थापित हो।''[2]

अर्थ से आशय गृहस्थी चलाने, परिवार के बसाने और धार्मिक कार्यों को पूर्ण करने हेतु आवश्यक भौतिक वस्तुओं से है। चतुवर्ग में मोक्ष की प्राप्ति धर्म के समान अर्थ को भी उपयोगी माना गया है। भारतीय दार्शनिकों ने आत्म ज्ञान, आत्मविकास, आत्मानन्द, तेजस्वित सहजता, विवेक आदि साध्यात्मक या स्वलक्ष्य जीवन दर्शन माने हैं। ये मूल्य की प्राप्ति में उपयोगी होने के कारण इनकी महत्ता किसी भी रूप में कम नहीं होती है। दया, करुणा, त्याग, अहिंसा, उदारता, अपरिग्रह, लोकमंगल कामना, सदाचरण तथा विनम्रता आदि को साधना या निमित्त मूल्य माना है। ये साधनात्मक जीवन दर्शन हैं। अधिकांश अवसरों पर साधनात्मक जीवन दर्शन के साथ यश प्राप्ति या प्रतिष्ठित होने का अभिशाप अपनी संगति बनाये रखता है। इन जीवन दर्शन के पालन में से किसी एक का ही वरण संभव हो सकता है। दान इसलिए भी दिया जा सकता है कि देने में आनन्द आता है और इसलिए भी कि मोक्ष, स्वर्ग या पुण्यप्राप्ति का मोह विवश करता है।

यह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है कि साधन जीवन दर्शन के साथ जब कोई आकांक्षा अपना सम्बंध बनाये रहती है, तब तक आत्मज्ञान या आत्मानन्द घटित हो ही नहीं सकता। भारतीय मत में काम को मात्र ऐन्द्रिक सुख और यौन तुष्टि के रूप में नहीं लिया गया, बल्कि मानसिक प्रक्रिया तथा रागात्मिका वृत्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। काम मनुष्य की एषणाओं को जगाता हुआ उनको भौतिक संकल्पों की ओर अभिमुख करता है। अर्थ के समान काम सम्बन्धी जीवन दर्शन भी धर्म से सम्बद्ध होकर ही साध्यात्मक जीवन दर्शन की ओर अग्रसर होते हैं। इसलिए काम, धर्म से संयुक्त होकर मोक्ष प्राप्ति में सहायक बनता है।

अपनी सारी शक्तियों को अपने निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक स्थान पर केन्द्रीभूत करना ही पुरुषार्थ है। ''मोक्ष वह अवस्था है, जहाँ जीव एक ओर संसार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है और दूसरी और ईश्वर में लीन हो जाता है। वैयक्तिक जीवन के दृष्टिकोण को मोक्ष, धर्म, अर्थ और काम का स्वाभाविक परिणाम है।''[3]

''जीवन के चरम जीवन दर्शन के अर्थ में मोक्ष का अर्थ मानव जीवन की स्वतन्त्रता ही है।''[4] डॉ. राधाकृष्णन् पुरुषार्थ को जीवन दर्शन स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि ''अपना अस्तित्व बनाये रखना आत्मा की निर्मलता को बनाये रखना ही जीवन का लक्ष्य है। मानव केवल भौतिक सम्पत्ति और ज्ञानार्जन से ही संतुष्ट नहीं रह सकता। उसका ध्येय है— आत्म साक्षात्कार करना।''[5]

इस प्रकार स्पष्ट है कि जीवन दर्शन के सन्दर्भ में भारतीय चिन्तन ने सर्वांगीण मानव जीवन की व्यवस्था को लक्ष्य मानकर चार पुरुषार्थों अथवा मूल्यों की प्रतिष्ठा की है, उनमें अन्तर्वर्ती तथा बाह्य साध्यात्मक और साधनात्मक, शाश्वत तथा सामयिक और वैयक्तिक एवं सामाजिक सभी तरह के दार्शनिक मूल्यों की समाविष्टि हो जाती है, इसलिए आज की वैज्ञानिक और अन्तर्राष्ट्रीय आधुनिकता के संदर्भ में थोड़े बहुत स्वरूप भेद के साथ समस्त जीवन मूल्यों को इन्हीं के अन्तर्गत देखा जा

सकता है। युगीन संदर्भ में इनकी वरियता तो बदलती रहती रही है, जैसे– आज अर्थ और काम की प्रमुखता दिखाई देती है, किन्तु चारों में से एक भी पूर्णतः विलुप्तिकरण की स्थिति कभी नहीं आयी प्रकारान्तर से मानव जीवन सदैव इन्हीं चार दिशाओं में गतिशील रहा है और रहेगा। भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य के कथ्य में जीवन दर्शन एवं समाज का चित्रण युगान्तरकारी संन्यासी कृति में इस प्रकारदेखा जाता हैं।

धर्मावतार : युगान्तरकारी संन्यासी

इस कृति का कथ्य शासन सत्ता से कोसों दूर रहकर सेवा की महिमा एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को स्थापित करने वाले स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती के द्वारा भारत एवं विदेशों में किये गए कार्यों पर प्रकाश डाल कर भारतीय समाज को जीवन दर्शन में रचाना एवं बसाना है, ताकि भारतीय समाज जीवन दर्शन की महत्ता को समझ सके।

मॉरीशस में कृष्णानन्द स्वामी को महात्मा गाँधी के रूप में उनके किए गए कार्यों के फलस्वरूप याद किया जाता है। स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती की महिमा का उल्लेख मॉरीशस में उनकी याद में बनाया गया ढाई एकड में बना स्मारक साक्षी है। इस पुस्तक के विविध उपशीर्षकों में जीवन दर्शन एवं समाज का चित्रण देखा जाता है– स्वामी जी की समझ में आ गया कि क्या करना है, प्रार्थना आन्दोलन, प्रार्थना का इतिहास एवं स्वरूप, मॉरीशस में युगान्तर, धार्मिक सेवा शिविर, प्रारम्भिक विफलता, समस्त देश में संगठन, शिविर संगठन का स्वरूप, नव जागृति, सरकार की और विरोधियों में सनसनी, विरोधी दल के व्यर्थ प्रयास, श्री रामनारायण राय से मुलाकात, मॉरीशस की स्वतन्त्रता के चुनाव, अफ्रीका में प्रचार कार्य, सेवा शिविर का विघटन, ह्यूमन सर्विस ट्रस्ट की स्थापना, नवयुवतियों का संगठन, सरिता मक्खन का सफल सत्याग्रह, स्वामी कृष्णानन्द सेवा आश्रम एवं महिला आश्रम की स्थापना, रामायण और गीता का वितरण, अफ्रीकी भारतीयों का आकर्षण मॉरीशस, मॉरीशस में

महात्मा गाँधी के चित्रों का वितरण, मॉरीशस में प्रथम अफ्रीकी भारतीयों का सम्मेलन, सम्मेलनों का तांता, री यूनियन द्वीप में कार्य, डॉक्टरों की सेवा युनिट, मॉरीशस में बाम्बे सेवा युनिट, ब्रिटेन के राजदूत ने स्वामी जी का जन्मदिन मनाया, अभिनव प्रयोग और साक्षात्कार नाम से सम्पूर्ण विवरण विवेचित है। इस पुस्तक का कथ्य इतना चर्चित रहा कि इसके फ्रेंच, अंग्रेजी और क्रियोल में अनुवाद की योजना बनी। परम् पूज्य स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज सरस्वती भारतीय ऋषियों–संतों की परंपरा के प्रतीक थे।

जीवन का मूल मंत्र प्रेमभाव

सामौर जी के कथ्य के अनुसार स्वामीजी ''प्रेमभाव को जीवन का मूल मंत्र मानते थे। इसी जीवन दर्शन के आधार पर वह स्वस्थ समाज की रचना करना चाहते थे। उनकी दृष्टि में सच्चा धर्म वही है, जो मनुष्य को मनुष्य से प्रेम की सीख दे।''[6] इसी सर्वव्यापी प्रेम के कारण मनुष्य मात्र की महत्ता उनकी दृष्टि में बड़ी थी। आज निराशा के गहन कुहासे में स्वामीजी के प्रेमभाव के ये विचार आशा रूपी आलोक की तीव्र और तीखी किरणें हैं, जिनसे घृणा में डूबा संसार आज भी बहुत कुछ प्रेम का प्रकाश पा सकता है। अपनी दार्शनिक चेतना में स्वामीजी परम स्वतंत्र विचारक थे। उनकी मान्यता थी कि व्यक्ति स्वयं अपने संस्कारों एवं योग्यताओं से युक्त विश्व की एक स्वतंत्र इकाई है। परम स्वतंत्र व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा ही उनके विचार दर्शन का मूल आधार था।

स्वामीजी ने दर्शन की अनुभूति धर्म को प्रदान की तथा धर्म की चेतना जीवन को दी। जिससे दर्शन, धर्म एवं जीवन को मनुष्य की श्रेष्ठतम प्रेरणाओं का प्रतीक बना दिया। स्वामीजी ने दर्शन एवं धर्म की संधि में सेवा का रूप संवारने की चरम प्रतिभा का परिचय दिया। उन्होंने सेवा के सहारे हृदय की प्रवृत्तियों को इंद्रियों के विष से मुक्त करने का मार्ग सुझाया। इस प्रकार स्वामीजी ने दर्शन की नीरसता व धर्म की गंभीरता को सेवा के विश्वास से जोड़कर जीवन का अंग बना दिया।

सहज सेवा दर्शन

सामौर जी के कथ्य के अनुसार ''स्वामीजी का सेवा दर्शन सहज कोटि का है। उन्होंने सेवा का रूप स्थिर करने में बड़ी सतर्कता से काम लिया। अपने युग से समस्त संशयों एवं तर्कों को दूर करने तथा दर्शन और धर्म को जीवन में उतारने का एकमात्र अवलंब वे सेवा को मानते थे।''[7] सेवा मानवीय गुण है। सेवा व्यक्तित्व को ऊँचाई देनेवाला तत्व है। सेवा के माध्यम से व्यक्ति सबके हृदय के सिंहासन पर आसीन हो सकता है। इसी कारण मंदिरों मठों में भगवान या संतों की पूजा भी सेवा कहलाती है।

आज सेवा की भावना का लोप होता जा रहा हैं सम्बंधों के रेशमी धागे कच्चे सूत की तरह टूटते जा रहे हैं। लोग अपने माता–पिता तक की सेवा नहीं करते। अपितु वृद्धावस्था में उन्हें वृद्धाश्रमों में छोड़ आते हैं। उनकी सम्पत्ति हड़प लेते हैं। इसी कारण उन्होंने सेवा के माध्यम से ईश्वर और मनुष्य में एक रूपता स्थापित की। उन्होंने शताब्दियों की विचारधारा को गति प्रदान करते हुए उसमें नवीन प्रेरणाओं की तरंगें उठाई।

इस प्रकार स्वामीजी प्राचीन मान्यताओं एवं युगसंभूत व्यावहारिक प्रयोगों के बीच एक सुदृढ़ सेतु के समान थे। युग की प्रवृत्तियों के भीतर उनकी पैठ गहरी थी। उनकी प्रयोगपटुता मानवता के मनोविज्ञान से मेल खाती हुई उन्हें संपूर्ण विश्व में एक अग्रगामी सामाजिक तथा धार्मिक नियामक के रूप में प्रस्थापित करती है। इस सहज सेवा दर्शन के आधार पर वह स्वस्थ समाज का निर्माण करना चाहते थे। जिसकी आज के युग में अत्यधिक आवश्यकता है। सेवा भाव तो आधुनिक युग में अंतर्धान हो गया है।

सहज सेवायोग

सामौर जी के कथ्य के अनुसार स्वामीजी ''जिस सेवायोग का प्रतिपादन करते थे, वह सहज सेवायोग है।''[8] यह सुगमसाध्य एवं आचरण की पवित्रता पर आधारित है। सांसारिक परिस्थितियों में काम, मद, दंभ आदि को त्यागना सरल नहीं है। यह तो उन्हीं संतों द्वारा संभव है, जिन्होंने अपने जीवन को सदैव सत्संग में व्यतीत किया है तथा अभ्यासपूर्वक पवित्र जीवन जीया है। स्वामीजी इस सत्य एवं मनुष्य स्वभाव से परिचित थे। अतः उन्होंने सेवा का एक सरल मार्ग बनाया, जिस पर हर कोई चल सकता है। वह रास्ता है संतों का संग अर्थात् सत्संग, प्रभु गुणगान अर्थात् भजन, दीन–दुखियों को प्रभु के समान समझना अर्थात् मानव सेवा एवं भगवान पर अगाध विश्वास यानी छलरहित जीवन का रास्ता, जिस पर साधारण व्यक्ति भी सरलता से चल सकता है। यह सहज सेवायोग परंपरा अपनी संपूर्ण विशेषताओं में स्वामीजी के रचनात्मक कार्यों की अभिव्यक्ति बन गई।

लोकसेवा

सामौर जी के कथ्य के अनुसार स्वामीजी के सेवायोग से एक नवीन मनुष्य की रचना संभव है। सेवा को जीवन की सभी समस्याओं का अमोघ उपाय मानकर स्वामीजी ने सेवा का सुगम एवं व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया। सेवा को सहज साध्य मानकार लोकसेवा शिक्षण के लिए उन्होंने सेवा शिविरों का संचालन कर अपने युग के संशयग्रस्त लोगों को धर्म के सुदृढ़ पथ पर अग्रसर कर दिया। परंपरा एवं प्रयोग का ऐसा सुंदर समन्वय किसी संत में नहीं मिलेगा। ''क्षण–क्षण में भूत एवं भविष्य बनते वर्तमान मनुष्य के विकास की कल्याणमय जीवन की इतनी सुंदर स्वस्थ संवेदना ही स्वामीजी की न्याय और समता पर आधारित लोकसेवा की प्रेरक शक्ति थी।''[9] संक्षेप में स्वामीजी निसर्ग सिद्ध प्रतिभावाले क्रांतिदर्शी संत थे। स्वांतः सुखाय सेवा मे तल्लीन होते हुए भी दूसरों को उसमें लीन करने की क्षमता रखते थे। मानव

सेवा के विविध आयामों के साथ स्वामीजी के हृदय का रागात्मक सामंजस्य देखकर उनकी सूझ–बूझ तथा अन्तः प्रवेशिनी सूक्ष्म दृष्टि पर विस्मय विमुग्ध होना पड़ता है।

कंचनमुक्ति

सामौर जी के कथ्यानुसार ज्ञान प्राप्त होने के बाद स्वामीजी ने अनुभव किया कि ''बिना पैसे (धन) के भी साधारण ही नहीं अच्छा जीवन चल सकता है। स्वामीजी का जीवन इस बात का साक्षी था। इस हेतु उन्होंने बैंक में रखे एक लाख रुपये से कंचनमुक्त होने के लिए पहला निर्णय लिया– धन क्यों रखा जाए?''[10] उसमें से तीस हजार रुपए कनखल (हरिद्वार) में अस्पताल के लिए दिए। तीस हजार रुपए से ऋषिकेश में कोढ़ियों के लिए एक कुष्ठाश्रम बना दिया। बीस हजार रुपए बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री एवं यमनोत्री जानेवाले गरीब तीर्थयात्रियों को ऊन के टोपे, स्वेटर, जूते एवं चश्में बाँटने के लिए काली कमली वाले ट्रस्ट को दे दिये। दस हजार रुपए हरिद्वार के एक साधु विद्यालय को और दस हजार रुपए प्रयोगों में खर्च कर दिये। इस दिन स्वामीजी कंचनमुक्त हो गए। इस दान रूपी जीवन दर्शन के आधार पर वह स्वस्थ समाज के विकास में निजी धन के योगदान की नींव रखना चाहते थे। ताकि इससे प्रेरित होकर धनाढ्य लोग भी उनका अनुसरण करें। अर्थदान से मोक्ष मार्ग की कामना भी कर सकते हैं।

मोक्ष

सामौर जी के कथ्य के अनुसार आधुनिक युग की समग्र स्वाधीन चेतना के गुरु स्वामी कृष्णानंद जी ही हैं। आपने स्पष्ट कहा है कि ''जिसने सेवा धर्म अपना लिया वह सारे बंधनों से मुक्त हो गया।''[11] उन्होंने आगे कहा है कि मनुष्य के पिछड़ेपन और विकास का मूल कारण उसके विचार होते हैं। गीता में कहा है– ''मनुष्य के बंधन एवं मोक्ष का कारण उसका मन अर्थात् विचार ही होते हैं। जो कोई भी पिछड़ता है, वह विचारों में ही पिछड़ता है। जिसका भी विकास होता है, उसके

महान् विचारों का ही विकास होता है। विकास का मूलमंत्र विचारों का विकास निरंतर प्रवहमान रहे।''[12] यदि मानव के मन में मोक्ष की मनोकामना है तो वह भारतीय जीवन दर्शन के धर्म मार्ग का अनुसरण करेगा। निस्वार्थ भाव से सेवा कर्म को ही अपना प्रमुख धर्म समझेगा। परहित कामना में रत रहेगा।

निष्काम भाव से लोक संग्रह

सामौर जी के कथ्य के अनुसार परम पूज्य स्वामी कृष्णानंद जी का जीवन और संदेश गीता के अनुरूप था। ''ऐसे ऋषि अपनी सभी अपूर्णताओं को समाप्त कर, सभी संशयों को नष्ट कर, स्वयं को पूर्णरूपेण संयमित करके, सभी प्राणियों के हित में अनवरत लगे रहकर, ब्रह्मलीन हो निर्वाण प्राप्त करते हैं।

जिस कार्य से ऋषियों को निर्वाण की प्राप्ति होती है उसे भगवान कृष्ण ने 'लोक संग्रह' की संज्ञा दी है। जनकादि राजऋषियों ने लोक–संग्रह के द्वारा ही मोक्ष प्राप्त किया है। जिस प्रकार ''अज्ञानी मनुष्य फल की कामना से निरंतर कर्म में लगा रहता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष को निष्काम–भाव से लोक संग्रह के उद्देश्य की इच्छा से प्रेरित होकर कर्म में लगा रहना चाहिए।''[13] लोक–संग्रह क्या था जिसे कृष्ण ने समझाया स्वामी कृष्णानंद जी ने अपनाया। वह आदर्श था संपूर्ण मानव जाति को एकत्र करना, उसे धर्म, संप्रदाय, लिंग, वर्ण, राष्ट्र और राजनीति के विभाजनों से बचाना। जिससे वह अपने को पूर्णता की ओर ले जाय।

अभिनव प्रयोग : गंगाजल वितरण

सामौर जी के कथ्य के अनुसार भारतीय संस्कृति में मरने के बाद मोक्ष प्राप्ति हेतु गंगा में अस्थि विसर्जन करने की परम्परा है। उसी मोक्ष कामना हेतुभारतीय परम्परा से जुड़ा व्यक्ति दुनिया के किसी भी कोने में रहता हो, उसे गंगा स्नान की इच्छा रहती ही है। यदि यह इच्छा पूरी न हो तो भी वह व्यक्ति चाहेगा कि मरने के बाद अस्थियाँ तो गंगा में पहुँच ही जाये। स्वामीजी मॉरीशस के लोगों की इस

भावना को जड़ से जानते थे। अतः उन्होंने मॉरीशस में गंगाजल वितरण का अनोखा प्रयोग किया। ह्यूमन सर्विस ट्रस्ट ने यह बीड़ा उठाया तथा ''मॉरीशस में 22,800 बोतल गंगाजल नवम्बर 1984 से जुलाई 1985 तक वितरित किया गया। देश के 82 गाँवों में गंगाजल वितरण अभियान के रुप में समारोह पूर्वक वितरण किया गया।''[14] गाँवों में सामाजिक–सांस्कृतिक संगठनों ने यह बीड़ा उठाया। लोगों ने अपने घरों में आरती उतारकर गंगाजल ग्रहण किया।

अभिनव प्रयोग : गोदान उत्सव

सामौर जी के कथ्य के अनुसार भारतीय संस्कृति में एक परम्परा है कि मरणासन्न व्यक्ति से मोक्ष कामना हेतु गोदान कराया जाता है। स्वामीजी ने मॉरीशस के अपने शिष्यों को समझाया कि ''जो मर रहा है, उसके लिए गोदान क्यों? जो स्वस्थ और जीवित है, उनके लिए गोदान करो। उस गरीब को गोदान करो। वह गरीब गौ का पालन करके जीविका प्राप्त कर लेगा। अपने बच्चों का लालन–पालन कर सकेगा। अपने परिवार को दूध दे सकेगा।''[15] यह विचारधारा एक गाँव से दूसरे गाँव तक पहुँची लोगों को यह बात एकदम नई ओर अच्छी लगी। रांपार जिले के बारलो गाँव में गोदान उत्सव रखा गया। सांयकाल सारा गाँव और आसपास के लोग इस उत्सव में भाग लेने के लिए उमड़ पड़े। यह हिन्दू समाज में एक क्रांति थी। इस नए उत्सव और स्वामीजी के दर्शन करने के लिए लोग एकत्रित हो गए। वृन्दावन हिन्दी पाठशाला के आँगन में गौ को लाया गया। उसे हार पहनाया गया। माथे पर सिन्दूर का टीका लगाया गया। गाँव की महिलाओं ने गौ की आरती उतारी। पंडित जी ने मंत्र पढ़े, फिर वह गाय एक सेन परिवार को दे दी गई। स्वामीजी ने अपने भाषण में कहा, 'यह गौ जिस परिवार में जा रही है, वे इसकी खूब अच्छी सेवा करें तथा दूध प्राप्त करें फिर इसकी बछड़ी दूसरे को दान करें। अगर बछड़ा हो तो उसे बेचकर गौ खरीदे और उसे दूसरे को दान कर दे।' कुछ ही दिनों के बाद बेलवी मोरेल में गोदान का उत्सव रखा गया..............धीरे–धीरे

गोदान उत्सव मॉरिशस के सभी प्रान्तों में होने लगा। इस प्रकार गौ–सेवा को अर्थ, स्वास्थ्य, सेवा धर्म और मोक्ष मंगल कामना से जोड़ दिया।

सर्वे भवन्तु सुखिनः

सामौर जी के कथ्य के अनुसार स्वामीजी ने अपने साक्षात्कार में निवेदन किया है कि विश्व के सभी लोगों को मेरा यही कहना है कि ''वैर मत करो। प्रेम करो। शोषण मत करो। सेवा करो। अच्छा बोलो। दुखियों का दुख बँटाने से दुखः हलका होता है और सुख में शामिल होने से सुख में व्द्धि होती है। सबको सुखी बनाने का प्रयास करो। आप भी सुखी होंगे।''[16] यही मोक्ष का मार्ग है। यदि समस्त विश्व के लोग स्वामीजी की कहीं बातों को थोड़ा भी मान लें तो विवाद फसाद की समस्त जड़ मूल से समाप्त हो जाये। यह सृष्टि विकास और शांति के मार्ग पर स्थिर हो जाये।

प्रकृति चित्रण

सामौर जी के कथ्य के अनुसार आज वैश्विकरण की अंधी दौड़ में मानव ने प्रकृति का इतना दोहन किया है कि ग्लोबलवार्मिंग की समस्या से समूचा विश्व जूझ रहा है। वैश्विक मंचों से प्रकृति संरक्षण की बातें तो होती हैं, पर कथनी और करनी में कहीं भी एकता दिखाई नहीं देती। आपके गद्य साहित्य के कथ्य में प्रकृति चित्रण में प्रकृति के इसी रक्षार्थ भाव को लोक पूज्य देवियां कृति में देखा जाता है। प्रकृति के निकट के जीवन जीने वाली इन देवियों ने वन पशु एवं पक्षियों के मध्य जीवन व्यतीत कर इन्हें संरक्षण दिया। आज भी राजस्थान में स्थान–स्थान पर इन देवियों द्वारा स्थापित बड़े–बड़े ओरण पशु पक्षियों के स्वच्छन्द विचरण स्थल के रूप में वनस्पति जगत के संरक्षित केन्द्र बने हुए हैं। इस कारण भी ये देवियां व इनसे संबंधित काव्य लोकप्रिय है।

सहज प्राकृतिक जीवन

सामौर जी के कथ्य के अनुसार नारियां इसलिए लोक पूज्य बनी कि वे अपना व्यावहारिक जीवन घर के छोटे मोटे कार्य दुहना, बिलौना, भोजन बनाना, खिलाना आदि प्राकृतिक रूप से निर्वहन करती थी। इन देवियों की दिनचर्या के सर्वांग प्रकृति के उपादान थे। रेशमी वस्त्र व रत्नजड़ित स्वर्णाभूषणों से इन देवियों ने कोई वास्ता न रखकर भेळिया, लोवड़ी, धाबळा जैसे ऊन के साधारण वस्त्र धारण कर उन्हें असाधारण देवत्व का प्रतीक बना दिया।

प्राकृतिक जीवन शैली

सामौर जी के कथ्य में सात्विक प्राकृतिक जीवन शैली का मूल मंत्र है जिसे देकर पूरे चारण समाज को ही इन देवियों ने देवी पुत्रों, देवी पुत्रियों का प्राकृतिक समाज बना दिया। समाज में दृढ़ आस्था व ऐसा विश्वास भर दिया कि यदि समाज में कवि एवं देवियों की निरंतरता जारी रखना चाहते हो तो त्यागमूलक सात्त्विक एवं प्राकृतिक जीवन व्यवहार अपनाना सीखो। पांच पीढ़ियों तक निरंतर दोनों पक्षों (निज परिवार एवं संबंधियों) के सात्त्विक एवं प्राकृतिक जीवन का परिणाम परिवार में कवि अवतरण के रूप में प्राप्त होता है। सात पीढ़ियों तक निरन्तर दोनों पक्षों (निज परिवार एवं निजी संबंधियों) के सात्त्विक एवं प्राकृतिक जीवन का परिणाम परिवार में सगत (शक्ति देवी) अवतरण के रूप में प्राप्त होता है। ऐसी मान्यता प्रकृति के संवर्धन एवं संरक्षण में महान् योगदान देती दिखाई पड़ती है।

नीलगाय की रक्षा

सामौर जी के कथ्य के अनुसार प्रकृति संवर्धन एवं संरक्षण के योगदान में विविध लोक देवियों का महत्त्वपूर्ण स्थान इस प्रकार है– बाईस देवियों ने रोझ (नीलगाय) की रक्षार्थ माधवपुर के राजा मघराजवाजा से संघर्ष किया। घटना इस प्रकार है– ''एक रोझ(नीलगाय) का बच्चा कहीं से भटकता हुआ इस चारण की

शरण में आ गया। बाईस कन्याओं ने इसे बड़े चाव से पाला पोसा। वह गायों, भैंसों के साथ ही रहने लगा। बड़ा होने पर चरते–चरते दूर–दूर तक जाने लगा............. माधवपुर के राजा मघराजवाजा की बाड़ी में जाने लगा। एक दिन मघराज ने घोड़े पर सवार होकर हाथ में भाला लेकर पीछा किया और उसके पीछे–पीछे उस चारण की बस्ती में आ गया। बाईस देवियां पानी भरने गई थी। लौटकर देखती हैं। राजा मघराज भाला लिए खड़ा प्रहार कर रहा था तथा रोझ तड़फ रहा था। रोझ को बचाने के लिए बाईस देवियों ने संघर्ष किया।''[17] एक रोझ पशु के लिए एक राजा से युद्ध करना, उसे चुनौती देना पशु की रक्षा के साथ ही नारियों के अदम्य साहस का भी परिचायक है।

कुरजा पक्षियों की रक्षा

सोनबाई ने मांगरोल दरबार अब्दुल खालिक के शिकार से कुरजा पक्षियों की जलक्रीड़ा करती पूरी डार को ही बचाया। कथ्य इस प्रकार है– ''छत्रावा के पास बहती बेण नदी के कांठे पर गायों को पानी पिलाने पधारी तो नदी के किनारे कुरजा पक्षियों की डार पानी पीती हुई जल क्रीड़ा कर रही थी। इतने में मांगरोल का राजा शिकार के लिए आता हुआ दिखाई दिया। सोन बाई ने सोचा मेरे सामने इतने सारे प्राणियों का शिकार होगा? मन आत्मग्लानि से भर गया। तुरंत पानी में उतर कर अपने हाथ की लकड़ी से उड़ा दी। मांगरोल दरबार अब्दुल खालिक ने सेवक को धमकाने के लिए दौड़ाया तथा कहा ''जिंदा जला दूंगा। तो सोन बाई ने उत्तर दिया यही तो रास्ता देख रही हूँ। जीते जी आँखों के सामने जीव हिंसा नहीं होने दूंगी।''[18] कुरजा पक्षी की डार के लिए एक राजा और उसके सेवक से वैर मौल लेना कुरजा पक्षी की रक्षा के साथ ही नारी के अदम्य साहस, कुशाग्र बुद्धि, तत्पर निर्णय क्षमता का भी परिचायक है। जीभ के स्वाद के खतिर जीव हत्या से बड़ा पाप कौनसा हो सकता है?

पिल्लों की रक्षा

जानवरों में सर्वाधिक वफादार जीव कुत्ता होता है। इसकी वफादारी के सैकड़ों उदाहरण हमनें सुने हैं। लोक पूज्य देवियों में धांनबाई की कथावस्तु का कथ्य विलक्षण है। आपने मरी हुई कुत्तिया के पिल्लों को स्तनपान कराकर पोषण किया। गुजरात के महान लोक कवि भगतबापू दुलाभाई काग की माता ''जीव मात्र के प्रति मातृत्व भाव की साक्षात् मूर्ति थी। उनके घर के पास एक कुत्तिया बच्चों(पिल्लों) को जन्म देकर चल बसी। आपने एक थन से दुलाभाई व दूसरे थन से चारों बच्चों को दूध पिलाकर जीवनदान दिया।''[19] एक कुत्तिया के बच्चों(पिल्लों) को अपना दुग्धपान करा कर जीवन रक्षित करने का कथ्य दुनिया के किसी भी इतिहास में वर्णित नहीं है। चिंतन की बात यह है कि आज तो नारियां अपने तन की सुड़ौलता को कायम रखने के लिए अपने ही बच्चों को दुग्धपान नहीं कराती। ऐसे में धांनबाई को मातृत्व भाव की साक्षात् मूर्ति होना नारियों के लिए गर्व की बात है।

मुर्गों की रक्षा

बैचरा देवी ने पाटण के आक्रान्ता क्रूर सुल्तान को ''मुर्गों को मारकर खा जाने का मजा चखाया। संखलसर गाँव में इस देवी का पट्ट स्थान है। इस देवी के वाहन मुर्गें हैं। जो अनगिनत संख्या में देवी के मंदिर और ओरण में विचरण करते हैं। किवदंती है कि पाटण की चढ़ाई के बाद किसी मुस्लिम सुल्तान के सिपाहियों नेदेवी के वाहन मुर्गों को खा लिया था तो प्रातःकाल पेटों से निकलकर बांग देने लगे।''[20] मुर्गों के लिए आक्रान्ता क्रूर सुल्तान से सामना करके उसके कुकर्म का फल चखाना पक्षियों की रक्षा के साथ ही नारियों के अदम्य साहस और बेजुबान जीवों की हत्या के विरुद्ध सैकड़ों वर्षों पूर्व पक्षियों की रक्षा के आगाज का भी परिचायक है।

उँटनियों की रक्षा

चांपल देवी ने ''जालौर के सुल्तान जब्बल खां की ऊँटनियों को सिन्ध के सिरोही आक्रान्ताओं से छुड़ाकर लाने हेतु बाहरू (आक्रान्ताओं का पीछा करने वाले दल के नेतृत्व) का कार्य किया।''[21] उँटनियों की रक्षा के लिए सुल्तान से युद्ध करना पशु की रक्षा के साथ ही नारियों के अदम्य साहस का भी परिचायक है।

कथ्य के मूल में यह बात है कि वृक्ष, पशु, पक्षी, वन जल आदि प्राकृतिक उपादानों का मानव के विकास में सबसे बड़ा योगदान है। इनके अभाव में मानव का जीवन ही संभव नहीं है फिर भी मंदबुद्धि मानव इन्हें नष्ट करने पर तुला है।

पशुपालन व कृषि कार्य को महत्ता

समाज की आदिम अवस्था से पशुपालन युग व खेती की तरफ आगे ले जाने का कार्य चारण समाज ने किया है। पशुत्व को लगाम देने हेतु समाज को पशुपालन और कृषि कार्यों में संस्कारित करने व कराने व चराने का प्रारम्भिक अर्थ धारण करने वाले शब्द चारण (चराने वालों) को ही अपनी पहचान के रूप में अद्यावधि धारण कर रखा है। आज भी चारणों का बहुसंख्यक समाज पशुपालक है। पशुओं को पालतू बनाने में इन्होंने गजब का परिचय दिया।

बैल को नाथ से, ऊँट को नकेल से, घोड़े को लगाम से, हाथी को अंकुश से, सिंह को चाबुक से, किसी को पांव से, किसी को सींग से वश में करके प्रेम से ऐसा पालतू बनाया कि फिर तो ये प्राणी सामाजिक जीवन के अस्तित्त्व का आधार बन गए। चारण समाज की अधिसंख्य देवियां पशुपालक थी। आदिम संस्कारों का रूढ़ि के स्तर तक पालन करने वाली असुर संस्कृति पशुपालन को किसी भी कीमत पर स्वीकार करने को तैयार नहीं थी। इसीलिए पशुपालक समाज व्यवस्था को तहस

नहस करने में उसने कोई कौर कसर नहीं छोड़ी। पशुओं के अपहरण की घटनाओं से इतिहास भरा है। इन लोकपूज्य देवियों ने ही वन, पशु, पक्षियों की रक्षा हेतु बड़े से बड़े राजपुरुषों से लोहा लेने में कभी संकोच नहीं किया। ये सभी देवियां सरल, शांत, निराभिमानी, ओजस्विनी, तपस्विनी एवं दीप्तिवान होते हुए भी सत्ता से निर्लिप्त रहकर प्रकृति का संरक्षण करती रही। पुस्तक का यह कथ्य प्राकृतिक संरक्षण की धरोहर को सिद्ध करता है।

आपके समग्र कथ्य में प्रकृति का रम्य चित्रण युगान्तरकारी संन्यासी कृति के मॉरीशस में युगाांतर उपशीर्षक में अलग–अलग मनोभावों व उपमाओं, प्रतीकों बिंबों में देखा जाता है।

मॉरीशस जलपरियों का देश

सामौर जी के कथ्य के अनुसार स्वामीजी ने इन्हीं सात दिनों के अल्प समय में मॉरीशस की प्रकृति को सागर के सौन्दर्य को सदा के लिए हृदयंगम कर लिया। ''स्वामीजी को जलपरियों का देश मॉरीशस सूरज की हथेली पर मुसकराते फूल जैसा लगा।''[22] प्रकृति के सुन्दरतम रंगों वाला यह देश स्वामीजी को एक सुहाने सपने जैसा लगा।

रेती के प्राकृतिक बिछौने का देश

सामौर जी के कथ्य के अनुसार स्वामीजी कहते हैं ''अफ्रीका, आस्ट्रेलिया एवं भारत जैसी समृद्ध संस्कृतियों से घिरे विशाल हिंद महासागर की गोद में खेलते–इठलाते मॉरीशस को जल पर जीवन का देश कहें या जलपरियों का देश,''[23] ''सूरज की हथेली पर मुसकराते फूलों का देश कहें या प्रकृति के सुन्दरतम रंगों का देश, पलाश के घने वनों वाला देश कहें या मखमली परतों वाला बाग–बगीचों का देश, चाँद से होड़ लेते पर्वत शिखरों वाला देश कहें या कलकल नाद करते झरनों का देश, बलखाते इठलाते निरंतर प्रवहमान नद–नालों का देश कहें या ''भरी–पूरी

हरियाली के बीच छिपे–बसे शिशु–शावक से गाँवों का देश, इंद्रधनुषी रंग बिखराते आसमान का देश कहें या सौंदर्य की उदात्त कल्पना का देश, पुरातन अभिजात्य और अधुनातन स्थापत्य की सांझी याद का देश कहें या परिष्कृत भाव–भंगिमाओं वाले लोगों का देश, लहलहाते गन्ने के खेतों का देश कहें या दुनिया के सबसे मीठे अनन्नासों, पपीतों, आम, लीची, अमरूद, केले व सेब का देश, हरी साग–सब्जियों व मौसमी फसलों का देश कहें या नारियल के अमृतोपम पानी का देश, एक साथ खिलखिलाते फूलों जैसे जाड़े का देशकहें या सूरज की सतरंगी किरणों से अठखेलियाँ करते इंद्रधनुषी सपनों का देश, आँखों में आशा का उजास भरने वाले प्रकाश का देश कहें या समुद्र तट की रेती के प्राकृतिक बिछौने का देश।''[24] यहाँ आपके अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रोपम वर्णन है। एक साथ मानस पटल पर अनेकानेक सतरंगी चित्र अंकित होने लगते हैं। मन मॉरीशस में पहुँच जाता है।

स्वर्ग की रचना का प्रेरक मॉरीशस

सामौर जी के कथ्य के अनुसार ''पलाश के घने वन, मखमली परतों वाले बाग–बगीचे, चाँद से होड़ लेती पर्वत–मालाएँ, हँसी बिखेरते झरनें, बल खाती, इठलाती नदियाँ, भरपूर हरियाली के बीच आँख–मिचौली खेलते गाँव तथा इन्द्रधनुषी रंग बिखेरता आसमान देखकर स्वामीजी ने साक्षी दी कि धरती पर मॉरीशस की रचना के बाद ही ईश्वर ने स्वर्ग की रचना की।''[25]

इसे गन्ने का देश कहूँ या दुनिया के सबसे मीठे अनन्नास का देश कहूँ या पपीता या आम या लीची या अमरूद या केले या सेब का देश कहूँ। मॉरीशस ने सचमुच स्वामी जी का मन मोह लिया। विरोधाभास यह है कि जिन स्वामीजी ने कंचन से मुक्ति पा ली? उनके मन को प्राकृतिक सौंदर्य ने मोह लिया।

बारा राष्ट्रीय उद्यान एवं मर्चीशन प्रपात का प्राकृतिक सौंदर्य

समौर जी ने अपने मन के सभी इद्रधनुषी रंगों को प्रकृति चित्रण के कथ्य में छिटक दिया है। इसलिए ही प्रकृति का साकार जीवंत चित्रण उभर कर आया है। युगांडा में बारा राष्ट्रीय उद्यान एक बहुत ही रम्य स्थल है, जहाँ एक समय लाखों की संख्या में वन्य पशु थे। यहाँ पर ''बड़ी ऊँचाई से नील नदी गिरती है और मर्चीशन प्रपात बनाती है। हाथी, सिंह जेबरा, जंगली भैंसे, मगरमच्छ, हिप्पो, विल्डर बीस्ट, जिराफ आदि देखने के लिए संसार के कोने–कोने से पर्यटक प्रतिवर्ष वहाँ आते हैं। मर्चीशन प्रपात तो दुनिया का माना हुआ दर्शनीय स्थल है ही।''[26]

राष्ट्रीयता

जन्मभूमि से प्रेम

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य के कथ्य में जन्मभूमि से प्रगाढ़ प्रेम देखा जाता हैं। चूरू मंडल के यशस्वी चारण कृति में चूरू जिले के चारण साहित्य का इतिहास वर्णित है। इस काव्य की सबसे प्राचीन कृति भी दस्सूसर में आसा बारहठ को क्रोड़ पसाव की एवज में कर्मसिंह द्वारा ''अपना पुत्र तक भेंट करने की घटना इसी मण्डल में घटित हुई थी और इसी घटना से अभिभूत होकर आसा बारहठ ने अपने जीवन का उत्तरार्द्ध इस मण्डल में व्यतीत किया।''[27] भक्त कवि ''केसवदास गाडण को भी अपने जीवन का उत्तरार्द्ध इसी मण्डल में बिताने का सुयोग मिला था।''[28]

शंकर बारहठ को भी सवा क्रोड़ पसाव इसी मण्डल में प्राप्त हुआ था। शंकर बारहठ ने इसी पुरस्कार के बाद इसी धरती को अपनाकर इसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित की। चारण कवियों में सर्वप्रथम कविराजा का खिताब प्राप्त करने वाले हेम सामौर भी इसी मण्डल के थे। गाडण गौवर्धन जैसे योद्धा कवियों ने भी इसी धरती को यशस्वी बनाया था। दक्षिण के बड़े युद्ध में इनके सत्ताइस घाव लगे

थे। मान रतनू ने इसी धरती की प्रतिष्ठा के लिए अपने प्राण न्यौछावर किये थे। लूणकरण कविया ने भी इसी धरती की इज्जत के लिए प्राणोंत्सर्ग किया था। ''अठ्ठारह सौ सत्तावन की क्रांति के समय भी यहाँ के चारणों की भूमिका यशस्वी रही है। अठ्ठारह सौ सत्तावन के क्रांतिवीर जनकवि शंकरदान सामौर की भूमिका तो इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है।''[29] तांत्या टोपे को मुसीबत के वक्त शरण देने वाले पृथ्वीसिंह सामौर भी इसी मण्डल के यशस्वी सपूत थे।

कथ्य की इन्हीं सब विशेषताओं की जानकारियाँ इस कृति में प्राप्त होती हैं। वेदों पुराणों से लेकर अद्यावधि तक प्राप्त पुस्तकों, पट्टों, परवानों, ताम्र पत्रों एवं साक्षी के छंदों का उपयोग प्रमाण के रूप में पुस्तक में वर्णित प्रसंगों के साथ किया गया है। इसी संदर्भ में गौरव के साथ यह कहा जा सकता है कि देश के वीर योद्धाओं के शौर्य एवं साहस को जागृत व जीवित रखने हेतु इस क्षेत्र के चारणों ने योद्धा एवं कविरूप में समान भाव से योद्धाओं के शौर्य को जीवित रखा व उन वीर गाथाओं को काव्य रूप में प्रस्तुत कर इतिहास की अभूतपूर्व सामग्री समाज को दी। उन्होंने एक नई साहित्यिक एवं जीवन शैली देकर योद्धाओं के स्वतंत्रता संग्राम को इतिहास में अमर कर दिया। हमलावरों की अजेयता की धाक से निराश समाज को यहाँ के चारणों ने अपने युद्ध कौशल एवं काव्य कौशल के बल से आशावान बनाकर राष्ट्रीयता और जन्मभूमि से प्रगाढ़ प्रेम की संजीवनी शक्ति प्रदान की।

स्वतन्त्रता की रक्षा

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य चारण बड़ी अमोलक चीज नामक पुस्तक के कथ्य में 'राजस्थान के अपूर्व इतिहासकार : बारहठ कृष्णसिंह', लक्ष्मणदान घांघणिया का 'युद्ध और कविता का सिपहसालार : करणीदान कविया', फतेहसिंह मानव का 'सिद्ध भगवद भक्त : अलूनाथ जी कविया', फतेहसिंह मानव का 'संतकवि : ओपाजी आढा', फतेहसिंह मानव का 'राजिया के सोरठे और उनके रचयिता श्री कृपाराम खिड़िया', बद्रीदान गाडण का 'चारण बड़ी अमोलक चीज', डॉ. आनन्द

मंगल वाजपेयी का 'स्वाभिमान के प्रतीकः दुरसा जी आढा', बद्रीदान गाडण का 'कल्याणदास गाडण और उनका नागदमन', डॉ. कुसुम माथुर का 'कलम का बांकाः बांकीदास आसिया' और प्रोफेसर शंकर सहाय सक्सेना का 'अप्रतिम क्रान्तिवीरः जोरावर सिंह बारहठ' नामक आलेख संकलित कर सम्पादित किये गए हैं। इन आलेखों में यह स्पष्ट किया गया है कि चारण साहित्य ही हमें सिखाता है कि स्वतन्त्रता की रक्षा हेतु हमें लड़ना भी पड़ता है, मरना भी पड़ता है। इस परम्परा को इन कवियों ने जीवंत बनाए रखा है।

अठ्ठारह सौ सत्तावन का क्रांतिवीर : शंकरदान सामौर

भंवर सिंह सामौर की पुस्तक शंकरदान सामौर के कथ्य में अठ्ठारह सौ सत्तावन की क्रांति का क्रांतिवीर और ओज के जन कवि शंकरदान सामौर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का वर्णन है। इस पुस्तक में परम्परा और जीवन चरित, राज और समाज, रचनाएं, युगबोध, महिमावान जनकवि के नाम से शंकरदान सामौर के कृतित्व एवं व्यक्तित्व का विवेचन किया गया है। परिशिष्ट में कविताओं की बानगी और उनके सन्दर्भ दिये गए हैं। इस पुस्तक का कथ्य सम्पूर्ण भारत में चर्चा का विषय रहा।

देश के इतिहास में वीरता और बलिदान हेतु राजस्थान भारत में ही नहीं बल्कि विश्व में अपनी अद्भुत मिशाल रखता है। राजस्थान की धरती का कण–कण वीरता के रंग में रंगा हुआ है। राजस्थान की धरती पर बना झोपड़ा भी देश भक्तों की यादगार का गर्व धारण किए हुए मिलता है। सामौर साहब ने बताया है कि मेरे दादाजी चतरदान जी सामौर बचपन में हमें एक दोहा जो शंकरदान सामौर द्वारा रचित था, सुनाते थे–

"थिन झुंपड़ियां रा धणी, भुज थां भारथ भार।

हो थेही इण मुलक रा, सांचकला सिणगार"[30]।।

तब बचपन में हम इसका भावार्थ नहीं जानते थे, लेकिन यह दोहा मुझे बचपन में ही कंठस्थ हो गया था, लेकिन आज जब इस दोहे की याद आती है, तो मन रोमांचित हो उठता है। विचार करते–करते भावार्थों की परत दर परत खुलती जाती है और मन करता है कि इस एक दोहे पर ही एक पुस्तक लिख दूं। इसी दोहे से प्रेरित होकर आपने शंकरदान सामौर नामक कृति की रचना की।

सामौर अपने कथ्य में स्पष्ट करते हैं कि जब हम राजस्थान के संदर्भ में साहित्य संस्कृति और इतिहास पर नजर डालते हैं, तो समझ में आता है कि लोक पूज्य चारण देवियां और कवियों की अगवानी में ही देश रक्षा का युद्ध दानव, असुर, यवन, शक, हूण, अरबी, पठान, मुगलों आदि के खिलाफ शुरू हुआ युद्ध अंग्रेजों के शासन काल में भी जारी रहा। इस प्रकार स्पष्ट है कि चारणों ने यहाँ हमेशा ही परदेशी हमलावरों के खिलाफ मुकाबले की जोत को जलाए रखा। इस बात के साक्षी झंवर और साका है। हजारों वर्षों से इस धरती के पुत्र और पुत्रियों ने चारण के बिड़दाने से देश की रक्षा के लिए बलिदान करने की होड़ सी लगाए रखी है। गाँव–गाँव और ढाणी–ढाणी में जुझारू वीरों के त्याग और बलिदान की यश गाथाएं, जीवित समाधी, निशान रूप सहित मंदिर, देवल और कविताएं इस बात की साक्षी हैं।

चारण बलिदान परम्परा की इसी जोत ज्वाला के प्रतीक प्रातः स्मरणीय स्वतन्त्रता के निर्भीक दीवाने शक्ति पुत्र शंकरदान सामौर थे। शंकरदान सामौर का जन्म छोटे से गाँव बोबासर (सुजानगढ़) में हुआ। शंकरदान सामौर ने अपनी कृषि कार्य में तल्लीनता के बल इतना बड़ा कार्य कर दिखाया कि वे स्वतन्त्रता संग्राम की लड़ाई में प्रथम साके की अगुवानी करने के साक्षी बने। आज शंकरदान सामौर को विभिन्न पर्वों व त्योहारों पर गीतों में भी गाया जाता है। अतः इस पुस्तक को आपने शंकरदान सामौर के चरणों में अर्पित किया है। इस पुस्तक में उनसे जुड़ी हुई बातों

और कविताओं को आपने अपने पिता श्री उजीणदान सामौर से सुनकर वर्णित किया है।

राजस्थानी शक्ति काव्य

सामौर ने अपने कथ्य में स्पष्ट किया हैं कि ''शक्ति काव्य का शाब्दिक अर्थ होता है, ऐश्वर्य एवं पराक्रम का काव्य। यह ऐश्वर्य एवं पराक्रम स्त्री के शक्ति रूप से ही प्राप्त होता है। इसीलिए राजस्थानी साहित्य में स्त्री महिमा की अद्भुत अभिव्यक्ति हुई है। अन्य भाषाओं के साहित्य में स्त्री का चित्रण केवल श्रृंगार की पुतली के रूप में हुआ है। राजस्थानी साहित्य में जैसे पुरुष वैसी ही स्त्रियां भी सामाजिक मर्यादा की रक्षा में वे पुरुषों से आगे ही रही हैं। शक्ति काव्य में जिस आदर व श्रद्धा से स्त्री जीवन की अभिव्यक्ति की गई है वह विश्व साहित्य में बेजोड़ है। स्त्री की शक्ति रूप में पूजा मातृरूप में वन्दना, वीरांगना के रूप में प्रशस्ति, मार्ग निर्देशिका के रूप में अनुसरण, बहिन के रूप में प्रेरणा तथा गृहलक्ष्मी के रूप में स्वागत की अभिव्यक्ति की गई है। अवसर आने पर वह चण्डी का रूप धारण कर जौहर की ज्वाला का वरण कर शक्ति के अजस्र स्रोत का प्रतीक बन जाती थी। मन वचन कर्म से करुणा का विस्तार स्वावलम्बी जीवन, सत्य में आस्था, सहिष्णुता, धैर्य, निड़रता, शरणागत, वात्सल्य, दानशीलता, आत्मबलिदान की भावना आदि उच्च आदर्शों की रक्षार्थं अनुपम वीरता के साथ मर मिटने की भावना इन देवियों में निरंतर स्त्री चरित्र की विशेषताओं के रूप में प्रवाहमान है। यही इस पुस्तक के कथ्य की विशेषताएं बन गई है। इन देवी स्वरूप स्त्रियों का उद्देश्य समाज में साहस का संचार कर उसे सद्मार्ग पर चलाना था। इस हेतु इन्होंने पवित्रता, विश्वास एवं धर्मपालन का अखण्ड रूप समाज के सामने अपने आचरण के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। इसी कारण स्त्री के सबला रूप की इतनी सजगता से अभिव्यक्ति सम्भव हो पाई है।''[31]

युद्ध नायक : शेखावाटी के यशस्वी चारण

सामौर की कृति शेखावाटी के यशस्वी चारण में देवकरण बीठू, मूलसिंह सांदू, देवीदान पाल्हावत, पनजी खिड़िया, मेघराज किशानवत, दानजी महडू, हणूंतसिंह मेहडू, महारिख जागावत व सूजा जागावत आदि सभी इस संघर्षोन्मुखी चेतना के युद्ध नायकों का वर्णन है। ये सभी आजादी के संघर्ष की इस ज्वाला में प्रवेश कर कंचन बन कर युद्ध नायक के रूप में सामने आये हैं।

वीर प्रसूता भूमि : शेखावाटी

सामौर अपने कथ्य में स्पष्ट करते हैं कि इसी कारण शेखावाटी विश्व की वह वीर वरदाइनी भूमि बन गई है, जिस पर वीरों ने राष्ट्र एवं उसकी संस्कृति की रक्षा के लिए हँसते–हँसते प्राणों की बाजी लगाई है। वीरांगनाओं ने प्रेरक शक्ति बनकर अपने आत्मीय जनों पति, पुत्रों व भाइयों को हँसते–हँसते लोक हित के लिए युद्ध भूमि में भेजकर राष्ट्र प्रेम का अद्वितीय परिचय दिया है। दूसरी तरफ चारण योद्धा कवि बंधुओं ने तो सेनापति के साथ कदम से कदम मिला कर रक्त बिन्दुओं के अक्षरों से राष्ट्रीय साहित्य का निर्माण किया है। ओज एवं दर्प से ओतप्रोत इन महान योद्धा कवियों की शेखावाटी के लोगों ने जो आरती उतारी है, उसी से चारण काव्य के एक नए अध्याय का पुण्य मंगलाचरण हुआ है।

स्वतंत्रता संग्राम का आगाज : चूरू मंडल के यशस्वी चारण

भंवर सिंह सामौर की इस पुस्तक के कथ्य में स्वतंत्रता संग्राम के आगाज में चूरू जिले के यशस्वी चारणों का साहित्य, शिक्षा, विज्ञान, शास्त्र आदि क्षेत्रों में प्राप्त विभिन्न उपलब्धियों पर विभिन्न शाखाओं यथा सामौर मेहडू, गाडण, सिंढायच, नांधू, आढा, मीसण, खिडिया, बीठू, मोखा, चाहडौत, आसावत, लखावत, कविया, लालस, दधवाडिया, रतनू, जगट, सूंघा को विभिन्न शासकों, सामन्तों, राजाओं, जागीरदारों द्वारा प्रदत ताम्रपत्र पट्टे, परवाने, फरमान और राज्य

अभिलेखागार के आधार पर प्रमाणित इतिहास का इस पुस्तक में वर्णन किया गया है।

भंवर सिंह सामौर अपने कथ्य में बताते हैं कि चारण साहित्य पर काम करते समय यह बात सामने आई कि चारणों के इतिहास की जानकारी समग्र रूप में उपलब्ध नहीं है। इसी संदर्भ में काम करने के लिए सर्वप्रथम चूरू मण्डल के चारणों के इतिहास का काम हाथ में लिया। चूरू की धरती सरस्वती नदी के प्रवाह क्षेत्र में आती थी। वेदों की ऋचाएं भी इसी धरती पर रची गई हैं। यह क्षेत्र महाभारत काल में कुरु जांगल प्रदेश के नाम से विख्यात रहा है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से कुरु शब्द से ही चूरू शब्द बना है। जांगल का प्रतीक जांगलू नामक गाँव बीकानेर के पास आज भी मौजूद है।

चूरू मण्डल का यह क्षेत्र चारणों के लिए भी ऐतिहासिक एवं साहित्यिक महत्त्व वाला रहा है। चूरू मण्डल के चारणों से संबंधित विवरण से अनेक नवीन जानकारियां प्राप्त होती हैं। राजस्थानी साहित्य का प्राचीन काव्य अचलदास खींची री वचनिका इसी क्षेत्र के दस्सूसर गाँव के शिवदास गाडण द्वारा रची गई थी। इस काव्य की सबसे प्राचीन प्रति भी दस्सूसर गाँव के निकट स्थित पड़िहारा गाँव में लिखी गई थी। चारण कवियों में सर्वप्रथम कविराजा का खिताब प्राप्त करने वाले हेम सामौर भी इसी मण्डल के थे। सिद्ध अलूनाथ कविया ने भी इसी क्षेत्र को अपने चरणों से कृतार्थ किया था। वे जहाँ रहे उस गाँव की पहचान ही उनके नाम से ज्ञापित हुई तथा वह गाँव अलू कविया री नीमड़ी के रूप में ही प्रसिद्ध हो गया। अकबर का अंतरंग सभासद लक्खा बारहठ भी इसी धरती के गाँव धीरदेसर को प्राप्त कर यहीं का हो गया। लखा के पुत्र भक्तकवि नरहरिदास का विवाह इसी धरती की पुत्री नारायणी देवी (गणेशदास सामौर की पुत्री व कविराजा हेम सामौर की बहिन) के साथ हुआ था।

कविराजा करणीदान कविया जैसे महान् कवि का भी इसी मण्डल की धरती से अंतरंग संबंध रहा है। वे वर्षों तक चूरू में रहे थे। विदेशी आक्रान्ता कामरान को ललकार कर भगाने को मजबूर करने वाली घटना भी इसी मण्डल के साथ जुड़ी हुई है और उस ऐतिहासिक घटना का साक्षी रूप में छंद रचने वाले सूजा बीठू भी इसी क्षेत्र के कवि थे।

शौर्य रूपी संजीवनी शक्ति के प्रेरक : चूरू के योद्धा

वेदों पुराणों से लेकर अद्यावधि तक प्राप्त पुस्तकों, पट्टों, परवानों, ताम्र पत्रों एवं साक्षी के छंदों का उपयोग प्रमाण के रूप में पुस्तक में वर्णित प्रसंगों के साथ किया गया है। इसी संदर्भ में गौरव के साथ यह कहा जा सकता है कि देश के वीर योद्धाओं के शौर्य एवं साहस को जागृत व जीवित रखने हेतु इस क्षेत्र के चारणों ने योद्धा एवं कविरूप में समान भाव से योद्धाओं के शौर्य को जीवित रखा व उन वीर गाथाओं को काव्य रूप में प्रस्तुत कर इतिहास की अभूतपूर्व सामग्री समाज को दी। उन्होंने एक नई साहित्यिक एवं जीवन शैली देकर योद्धाओं के स्वतंत्रता संग्राम को इतिहास में अमर कर दिया। हमलावरों की अजेयता की धाक से निराश समाज को यहाँ के चारणों ने अपने युद्ध कौशल एवं काव्य कौशल के बल से आशावान बनाकर संजीवनी शक्ति प्रदान की।

आत्मोत्सर्ग की पावन भूमि : आऊवा

भंवर सिंह सामौर द्वारा रचित कृति आऊवा का धरना के कथ्य में– धरने का अर्थ, स्वरूप, आऊवा का धरना, आऊवा धरने पर चंद्रप्रकाश देवल की नई कविताएं आऊवा धरने पर रचित ऐतिहासिक पुस्तकों का मूल विवरण राजस्थान एवं गुजरात में हुए धरनों का संक्षिप्त परिचय नाम से विवरण इस पुस्तक में विस्तृत रूप से वर्णित है। इस पुस्तक में राजस्थानी की कविताओं का अनुवाद वर्णित होने से पुस्तक की सरलता सहजता और लोकप्रियता में चार चाँद लग गये हैं।

आऊवा का धरना विश्व इतिहास की वह ऐतिहासिक घटना है जिसने लोक के इतिहास में अपनी अमिट छाप छोड़ी है। इस घटना का उल्लेख तो सभी इतिहासकारों ने किया है लेकिन उसे प्रचलन में सूचना देने से ज्यादा महत्त्व नहीं दिया है। इसीलिए आप बताते हैं कि इस धरने का सिलसिलेवार विवरण देने के लिए यह पुस्तक तैयार की गई है। इसी संदर्भ में धरना शब्द के अर्थ एवं स्वरूप का विवरण भी प्रस्तुत किया गया है। इस धरने से संबंधित साहित्य भी प्रचुर मात्रा में लिखा गया है तथा लिखा जाता रहा है जिसका भी इस पुस्तक में यथा स्थान उपयोग किया गया है। आऊवा धरने पर मिलने वाली सामग्री का विस्तार से विवरण देने का प्रयास किया गया है। यह सामग्री राजस्थान व गुजरात में यत्र तत्र बिखरी पड़ी है। इसे संकलित कर यहाँ प्रस्तुत किया गया है। इस पर अभी और भी शोध की आवश्यकता है।

इस पुस्तक का निमित्त बना है आऊवा धरना स्थल पर उस घटना की स्मृति को चिर स्थाई बनाने वाला ऐतिहासिक स्मारक सत्याग्रह उद्यान जिसे श्री ओंकारसिंह लखावत ने अपने सांसद विकास कोष से बीस लाख रुपये खर्च कर यह स्मारक तैयार करवाया है। चार सौ अठ्ठारह वर्ष पूर्व घटित इस घटना को आज भी लोक ने अपने मन से दूर नहीं किया है। यह हमारे समाज के लोक इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना है। इसी दृष्टि से इसे प्रस्तुत भी किया गया है।

आऊवा का धरना विश्व इतिहास की विश्रुत घटना है। इसके संबंध में इतिहास ग्रन्थों में चालू चर्चा अवश्य मिलती है। कहीं फुटनोट के रूप में तो कहीं फुटकर जानकारी के रूप में विवरण मिलता है। अभी तक कोई ऐसी पुस्तक नहीं मिलती जिसमें युग चेतना के सबल संवाहक इस धरना परंपरा की व्यवस्थित जानकारी विवेचन के साथ प्रस्तुत की गई हो। धरना विषयक अब तक सामने आई जानकारियां दो प्रकार की है। प्रथम, धरने से संबंधित रचनाएं एवं स्मारक स्थान पर हस्तलिखित प्रतियों व देवलियों, स्मारकों के रूप में समकालीन व बाद के काव्य

प्रेमियों द्वारा संकलित कर सहेजे गए तथा जन साधारण ने उसे लोकमुख पर धारण कर जीवित रखा। द्वितीय, इतिहासकारों ने भी इस आऊवा धरने पर प्रसंग आने पर संक्षिप्त पाद टिप्पण या विवरण दिया है।

चारणों की दृष्टि में धरना कोई सामान्य कर्म नहीं था। इस परंपरा को निरन्तरता देने के लिए चारणों ने काव्य रचे। इन काव्यों से लोगों में वीरता एवं उत्साह का ऐसा संचरण हुआ कि देश एवं देश का इतिहास गौरवान्वित हो गया। लोगों ने अन्याय एवं अत्याचार का न केवल सामना किया अपितु उन अत्याचारियों को धरने के बल धूल भी चटाई। इसके लिए शक्ति आराधना का काव्य भी रचा गया। इसी काव्य ने लोगों को मृत्यु के भय से मुक्त किया। यही इस काव्य की सार्थकता है। इसीलिए चारणों ने धरना स्थल पर मृत्यु के वरण को श्रेष्ठ कर्म माना। ऐसे मरण को उत्सव व अनुष्ठान का रूप दिया। इसी दर्शन के बल पर पीड़ित, दलित तथा निरूपाय समाज भयमुक्त होकर धरना स्थल पर जूझने की आकांक्षा लेकर बड़ी से बड़ी राजशक्ति से लोहा लेने को तत्पर रहा।

इस पुस्तक के कथ्य का मूल प्रयोजन यह है कि लोग जानें कि इतिहास की किसी घटना को कैसे समझा जाए? क्योंकि तथ्य कुछ और होता है, कारण कुछ और होता है व परिणाम कुछ और होता है। घटना के इतिहास होने या नहीं होने से कोई खास फर्क नहीं पड़ता है। आऊवा के धरने की छोटी से छोटी घटना भी इतिहास की बड़ी से बड़ी घटना से भी बड़ी है। लेकिन इस घटना की ऐतिहासिक व्याख्या तक पहुँच पाना आसान नहीं है। इतिहास घटनाओं के प्रमाण चाहता है। लेकिन प्रमाण इतिहास को खंड–खंड कर देता है, क्योंकि प्रमाण का खंडन किया जा सकता है। आज मोटा राजा तो इतिहास के किसी अंधेरे कोने में अज्ञातवास भोग रहा है पर आऊवा धरने की घटना से जुड़े साहित्यकारों का बलिदान आज भी जीवित है। इसीलिए वे सब साहित्यकार अभूतपूर्व हैं जबकि उनका समकालीन सर्वोच्च पदासीन मोटा राजा भूतपूर्व बन कर रह गया है। साहित्य एवं इतिहास के

इस सूक्ष्म भेद को समझकर ही हम आऊवा धरने के सही संदेश तक पहुँच सकते हैं। इतिहास के प्रत्येक युग में अनेक घटनाएं घटित होती हैं। उनके प्रमाणीकरण की समस्या सबसे जटिल होती है। हम जानते हैं कि केन्द्रीय नेतृत्व द्वारा विवश होकर पद त्याग करने वाला मुख्यमंत्री भी अस्वस्थता या अन्य कारण का बहाना बनाकर पद से हटता है। जबकि वास्तविक अर्थ में तो उसे हटाया जाता है। इस घटना की तथ्यात्मक व्याख्या क्या इतिहास द्वारा हो सकती है?

राजस्थान के सामन्ती इतिहास की यह वह घटना है जिसके कारण राजा के आदेश के खिलाफ सत्य के आग्रह की रक्षा हेतु सैंकड़ों सृजनधर्मी बुद्धिजीवियों ने राजधानी से दूर एक छोटे से स्थान आऊवा गाँव में अपना आत्मोत्सर्ग किया व आऊवा को विश्व विख्यात बना दिया। इसीलिए आऊवा सृजनधर्मियों का तीर्थ स्थल बन गया। तत्कालीन कवियों के सामने सत्ता के दो चरित्र थे। एक चरित्र तो विदेशी आक्रांताओं के आश्रय के सहारे पनप रहा था। दूसरा स्वतंत्र रूप में पनपना चाहता था। कवि किसका साथ दे? तो कवि तो निश्चय ही स्वातंत्र्य चेतना का ही पक्ष लेगा। इसमें जोखिम जानते हुए भी चारण कवियों ने उचित का ही पक्ष लिया तथा इतिहास के कलुश को अपने रक्त के छींटों से धो दिया। अनुचित सत्ताधारी के नाम को ही लोक में अवाच्य बना दिया। मोटा राजा के उत्तराधिकारी द्वारा चारण कवियों को पुनः मारवाड़ में लाने की घटना भी इस बात की पुष्टि करती है कि उस लोक निन्दा से नया राजा छुटकारा पाना चाहता था। अतः आऊवा का धरना कोई साधारण जागीर की बहाली का मामला नहीं था। जागीरें एवं सम्मान मिलने छिनने का अन्तहीन सिलसिला तो कवियों के सामने सदा से ही रहा है। यह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए सृजनधर्मियों द्वारा लड़ा गया स्वतंत्रता की रक्षा का संग्राम था। कविता को जीवित रखने के लिए कलमकार की अस्मिता की रक्षा के लिए किया गया उत्सर्ग था। ''अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सत्ता तीन प्रकार से बाधित करती है। एक सत्ता के खिलाफ कुछ भी न कहने की पाबन्दी से। दूसरा सत्ता के पक्ष में कहने की बाध्यता से। तीसरा सत्ता के पक्ष में न कहो तो सत्ता के विरोधी के पक्ष में

भी न कहने की आज्ञा से। सत्ता विरोध का स्वर सर्वप्रथम साहित्यकार ही अभिव्यक्त करता है। वही विपक्ष की भूमिका निभाता है। वही सत्ता को लोक निन्दा का पात्र बनाता है।''[32] इसी संदर्भ में आज के मीडिया के संकट को समझने की जरुरत है। यह संकट पलायन से हल नहीं हो सकता। इसीलिए इस संकट का सामना उन साहित्यकारों ने वहीं संघर्ष के आह्वान के साथ किया, क्योंकि आऊवा चांपा राठौड़ द्वारा स्थापित ठिकाना था। चांपा योग्य होते हुए भी व्यवस्था के छल से जोधपुर के उत्तराधिकार से वंचित किया गया। चंद्रसेन के साथ भी यही इतिहास दोहराया जा रहा था। चंद्रसेन साहित्यकारों की दृष्टि में योग्य उत्तराधिकारी था जबकि मोटा राजा उदयसिंह उसके पासंग में भी नहीं ठहरता था। धरना आयोजित करने वाले इन्हीं समकालीन साहित्यकारों ने अपनी कविताओं में चंद्रसेन की तुलना महाराणा प्रताप से की है।

इसलिए आऊवा धरने का तात्कालिक कारण कुछ भी बन गया हो। मूल बात तो सत्ताधारी के अवचेतन में वही– चंद्रसेन वाला प्रश्न खटक रहा था। इसीलिए यह आऊवा धरने का प्रसंग आज भी उतना ही प्रासंगिक है। आज भी मोटे राजाओं की कोई कमी नहीं है। नाम बदल गए हैं। पद बदल गए हैं। यह बात हर सत्ता संगठन पर आज भी लागू होती है। इसीलिए आज भी यह प्रसंग साहित्यकारों, चिन्तकों व लोकजन को उद्वेलित करता है।

इस घटना के चार सौ अठ्ठारह वर्ष बाद ये कविताएं देने का औचित्य यह है कि मोटा राजा कविता का विरोधी था। आज का कवि भी यह सवाल उठाता है कि हम किसके पक्ष में खड़े हैं? तथा हमें किसके पक्ष में खड़ा होना चाहिए? क्योंकि यह प्रश्न तो हर युग में रहा है तथा रहेगा। इसी संदर्भ में अक्खा बारहठ के बलिदान का दृष्टान्त लेना चाहिए। वह कवियों को समझाने के लिए धरना स्थल पर गया था पर समस्या की गंभीरता को समझ खुद मर कर अमर हो गया। जीवित रहता तो अन्य लोगों की तरह लांछित होता।

भंवर सिंह सामौर अपने कथ्य में यह भी बताते हैं कि हमारे पूर्वजों की विचार भूमि के रूप में आऊवा का धरना स्थल तो चिह्नित है ही। इस संदर्भ में जब मैंने देश के जाने माने साहित्यकार डॉ. चंद्रप्रकाश देवल से चर्चा की तो उन्होंने आऊवा धरने से संबंधित अपनी कविताएं सुनाई। तब मुझे पुस्तक के औचित्य की बात तुरन्त समझ में आ गई तथा मैंने उनके द्वारा रचित कविताओं को इस पुस्तक में सम्मिलित करने का निर्णय लिया। लोक स्मरण एवं पुस्तक से बड़ा कोई स्मारक नहीं होता। स्मारक स्थल पर तो लोक को जाना पड़ता है, जो सबके लिए संभव नहीं है पर लोक मानस तक इस स्मारक का विचार बीज पहुँचाने के लिए यह पुस्तक तैयार की गई है जो लोक की चेतना में सोए बीज को अंकुरित करती है। इसी कारण यह पुस्तक लोक चेतना के प्रतीक आऊवा गाँव एवं आऊवा की भूमि के बलिदानी सृजनधर्मियों एवं उनके सहयोगियों को ही समर्पित की गई है। आगे अन्य धरनों का भी विवरण दिया गया है।

प्राचीन राजस्थानी काव्य का परिचय

भंवर सिंह सामौर द्वारा सम्पादित पुस्तक में प्राचीन राजस्थानी काव्य की समस्त धाराओं के संग्रह का सृजन किया गया है। इस पुस्तक के कथ्य में उद्योतन सूरी, शालिभद्र सूरी, प्रज्ञा तिलक सूरी, चन्दबरदाई, ढोला मारू रा दूहा, पदमनाभ, श्रीधर, नरपति नाल्ह, शिवदास गाडण, बीठू सूजा, ईश्वरदास बारहठ, पृथ्वीराज राठौड़, दुरसा आढा, समयसुन्दर, जसनाथ, जांभोजी, मीरांबाई, बहादुर दाढी, सायांजी झुला, तेजोजी सामौर, कील्ह सामौर, कान्ह बारहठ, मेहा गोदारा, अलुजी कविया, शंकर बारहठ, चांपसिंह सामौर, जिनहर्ष, कुंभकरण सांदू आदि की रचनाएं संकलित है। पुस्तक में इन कवियों की प्रमाणिक कृतियों से लोकजन का परिचय करवाया है। सम्पादकीय में राजस्थानी काव्य का विस्तार से वर्णन करके इस पुस्तक की सौंदर्य वृद्धि में चार चांद लगा दिये हैं।

रावत सारस्वत का अद्वितीय व्यक्तित्व व कृतित्व

भंवर सिंह सामौर द्वारा लिखित पुस्तक हमारे साहित्य निर्माता रावत सारस्वत के कथ्य में आजादी के बाद राजस्थानी भाषा की मान्यता को लेकर जो आंदोलन हुए हैं, उनमें आंदोलनकारियों में रावत सारस्वत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रावत सारस्वत ने संस्था से अधिक अकेले ने ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया। सारस्वत ने 1953 ई. में राजस्थान भाषा प्रचार सभा की स्थापना कर राजस्थानी भाषा के महत्त्व पर पुरजोर कार्य किया।

उनके इस कार्य में आचार्य रामनिवास हारीत, चंद्रसिंह बिरकाली, रानी लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत, चौधरी कुम्भाराम आर्य ने महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान कर अपनी उपस्थिति दर्ज की। इस पुस्तक में परम्परा एवं व्यक्तित्व, रावत सारस्वत का युग, बहुआयामी व्यक्तित्व, महत्त्व एवं मूल्यांकन अध्यायों में विभाजित कर साहित्यिक शैली में वर्णित किया गया है। इस पुस्तक के परिशिष्ट में रावत सारस्वत के लेखन की बानगी का स्वरूप प्रदान करने वाले आलेख, कविताएं, अनुवादित अंश प्रकाशित है। ''स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले शुरू हुआ अखिल भारतीय राजस्थानी सम्मेलन, दिनाजपुर जिस प्रकार ऐतिहासिक गिना जाता है, उसी प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राजस्थानी आंदोलन का रावत सारस्वत द्वारा किया गया कार्य ऐतिहासिक रहा। एक व्यक्ति किस प्रकार संस्था गठित कर काम कर गया, यह देखना हो तो रावत सारस्वत द्वारा किया गया राजस्थानी आंदोलन का काम देखना चाहिए। सन् 1953 में राजस्थानी भाषा प्रचार सभा का जयपुर में विधिवत गठन कर काम प्रारंभ किया। उनके सहयोगी बने आचार्य रामनिवास हारीत, चंद्रसिंह बीरकाली, रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत, चौधरी कुम्भाराम आर्य। सारे देश में राजस्थानी समर्थकों की एक टीम बन गई।''[33]

राजस्थानी भाषा प्रचार सभा का कार्यालय बनीपार्क में अपने घर में प्रारंभ किया। निरन्तर 24 घण्टे वे सभा के कार्य में लगे रहते थे। बैठते, सोते एवं चलते वे

इसी धुन में लगे रहते। उन्होंने राजस्थानी आंदोलन का प्रारंभ दो दिशाओं में किया। एक तो लोगों का राजस्थानी से जोड़ने के लिए राजस्थानी की परीक्षाएं समस्त देश में शुरू की। इसमें उन्हें खूब सफलता मिली। हजारों लोग परीक्षाओं में सम्मिलित होते थे। दूसरा राजस्थानी लेखकों की टीम खड़ी करने के लिए राजस्थानी की पत्रिका मरूवाणी प्रारंभ की। मरूवाणी राजस्थानी की वह उल्लेखनीय पत्रिका बनी जिसने राजस्थानी लेखन को नया आयाम दिया। इस कार्य ने ही रावत सारस्वत को महावीरप्रसाद द्विवेदी का दर्जा दिलाया।

पुस्तक : सबसे बड़ा स्मारक

रावत सारस्वत राजस्थानी आंदोलन को खड़ा करने के लिए अकेले ही जीवट से जुझते रहे। उन्होंने संपादन व अनुवाद का कार्य भी संभाला। खुद तो लगे ही, अन्य लोगों को भी इस काम में लगाया। आधुनिक राजस्थानी के महल को खड़ा करने के लिए प्राचीन राजस्थानी साहित्य को आधार बनाया। इसके लिए प्राचीन नामी गद्य पद्य ग्रंथों का संपादन किया। साथ ही देश दुनिया में क्या लिखा जा रहा है, यह बताने के लिए अनुवाद का काम हाथ में लिया। दूसरे लेखकों द्वारा भी अनुवाद करवाया गया। उनकी ऐतिहासिक दृष्टि की भी कोई तुलना नहीं है। मीणा इतिहास उनकी आदिम इतिहास की पीठिका कहा जा सकता है। इस पुस्तक के मूल कथ्य में बताया है कि मीणा शब्द संस्कृत के मीन अर्थात् मछली से आया है मीन से इसकी उत्पत्ति कई अर्थों में महत्त्वपूर्ण है। विष्णु के दशावतारों में मत्स्यावतार सर्वप्रथम है। विष्णु के अवतार जीवन की उत्पत्ति व विकास को दर्शाते हैं। इनमें मत्स्यावतार या मछली सर्वप्रथम जल से जीवन की उत्पत्ति की ओर इंगित करती है। इस प्रकार 'मीणा' जनजाति का 'मीन' से सम्बन्ध इसकी सबसे प्राचीनता का द्योतक हो सकता है। प्रागैतिहासिक शैल चित्रों में मछली का चित्र अंकन मिलता है। हड़प्पा व मोहनजोदड़ो संस्कृति के मृदपात्रों, मुद्राओं पर भी मछली का अंकन मिलता है। सिन्धु लिपि में भी 'मत्स्य' के समान चिह्न मिलता है।

शिवराजपुर से प्राप्त मानवाकृति के सीने पर मछली का अंकन है, जो अपने आप में अद्वितीय है। मीणा जनजाति ने मछली से अपने को समीकृत कब व कैसे किया, यह एक शोध का विषय है। इतिहासकारों द्वारा ''8वीं–9वीं शताब्दी तक मीणों का राजनीतिक प्रभुत्व भारतीय स्तर पर भी स्वीकारा है, परन्तु बाद में 11वीं–12वीं सदी में कछवाहों के आगमन से इनका पतन शुरू हुआ और ये विनाश के कगार पर पहुँचने लगे। मीणों के जनपदों–मेवासों को कछवाहों ने समाप्त किया तथा अपना प्रभुत्व स्थापित किया।

आमेर के राजा भारमल के समय में 16वीं शताब्दी में नाई (नहान) का अन्तिम मीणा राज्य अपने अधीन किया। खोहगंग में चान्दा वंश के मीणा शासन करते थे। यह इतिहास सम्मत है कि चांदा वंश के मीणों ने महिशमति नगर को त्यागकर चान्दोड़ स्थान में व वहाँ से आकर खोहगंग में राज्य स्थापित किया। यहाँ पर गढ़, कोट, कुएं, छतरियां, तालाब, नक्कार खाना, बावड़ी आदि का निर्माण कराया जो आज भी पुरावंश के रूप में खंडित पड़े हैं। ये मीणा जाति के गौरवशाली अतीत के भग्नावशेष आज भी हमारे पूर्वजों की यादें ताजा कर देते हैं।

रावत सारस्वत की स्मृति में किए गए कार्य

शब्द चर्चा में भी उनकी गहरी पैठ थी। पत्रिका मरुभारती में इस संदर्भ में उनके कई आलेख छपे। शब्दों के सांस्कृतिक अर्थों के विश्लेषण में उनका कोई सानी नहीं। रावत सारस्वत अच्छे कवि थे। उन्हें लिखने का समय ही नहीं मिला। कविता की एक पुस्तक 'बखत रै परवाण' अंतिम समय में छपी।

राजस्थानी के ऐसे सपूत रावत सारस्वत उम्र बहुत कम लाए। चूरू के इस राजस्थानी सपूत की स्मृति में चूरू के लोगों ने उनके ऋण से उऋण होने के लिए एक आयोजन उनके जन्म दिवस के अवसर पर 22 जनवरी को करना शुरू किया। चूरू की एक सड़क का नामकरण श्री रावत सारस्वत मार्ग किया गया। उनकी स्मृति

में राजस्थानी में काम करने वाले को प्रतिवर्ष सम्मानित करने का निश्चय किया गया। प्रतिवर्ष स्मारिका भी निकाली जाती है।

इसी संदर्भ में श्री बैजनाथ जी पंवार चाहते थे कि रावत सारस्वत की स्मृति में कोई स्थाई कार्य हो। इस हेतु राजस्थान के उभरते युवा लेखक दुलाराम सहारण पर दृष्टि गई। एक संस्था गठित कर उसके सचिव का कार्य दुलाराम सहारण को सौंपा गया। भंवर सिंह सामौर अध्यक्ष और बैजनाथ पंवार सरंक्षक बने। अन्य युवा साथियों को दुलाराम सहारण ने अपने साथ लिया। इसी प्रकार बात में से बात निकालकर उनके नाम से एक पुरस्कार की स्थापना की गई। रावतजी के पुत्र सुधीर सारस्वत आगे आए। इसी क्रम में स्थाई रूप से उनके नाम से चूरू के विश्व विख्यात गोइन्का परिवार के साहित्यकार श्याम गोइन्का द्वारा स्थापित कमला गोइन्का फाउन्डेशन द्वारा रावत सारस्वत पत्रकारिता पुरस्कार की घोषणा ऐतिहासिक है। स्मारकों में सबसे बड़ा स्मारक पुस्तक ही होता है। अन्य स्मारक तक तो व्यक्ति को चलकर जाना पड़ता है, पर पुस्तक स्वयं व्यक्ति के हाथों तक पहुँचती है।

व्यंग्य

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य के कथ्य में व्यंग्य का चित्रण युगान्तरकारी संन्यासी कृति में कई संदर्भों में है। प्रारंम्भिक विफलता शीर्षक में ‘‘प्रातःकाल तैयार होकर स्वामीजी शिविरार्थियों के बीच आए और उपस्थिति ली तो पाया कि पाँच शिविरार्थी उपस्थित नहीं थे। स्वामी जी ने सभी से पूछा कि कहाँ गए? पर किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। अब दिन भर पैंतालीस शिविरार्थियों की कक्षा चली। भोजन हुआ, कीर्तन हुआ, प्रार्थना हुई व रात्रि शयन हुआ। दूसरे दिन प्रातःकाल जब उपस्थिति हुई तो पाँच शिविरार्थी और कम हो गये। स्वामी जी ने सभी से पूछा कि पर किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। यद्यपि सभी पचास नौजवानों ने धार्मिक सेवा शिविर में प्रवेश के समय दस दिन लगातार शिविर में रहने का ही प्रतिज्ञा पत्र भरा था, परन्तु इन में से दस चले गये। ‘‘वह समझ गए कि वहाँ कोई

कैदी नहीं है। स्वामीजी को समझते देर नहीं लगी कि जिस प्रकार दस शिविरार्थी शिविर से चले गये हैं उसी प्रकार बहुत जल्दी ही सभी चले जाएँगे। चिड़ियों की तरह सब वहाँ से उड़ जायेंगे।''[34] यहाँ युवा सेवा शिविरार्थी की प्रतिज्ञा पर व्यंग्य किया गया है।

प्रेम के नाम से पापाचार

यह व्यंग्य युगान्तरकारी संन्यासी ह्यूमन सर्विस ट्रस्ट की स्थापना शीर्षक में ''स्वामीजी जब मॉरीशस से बाहर चले, संगठन से दूर हो गए तो उन्हें अच्छी तरह से अनुभव हुआ कि संगठन के नाम से इस प्रकार की भंयकर शक्ति पैदा हो जाती है और वह सेवा के नाम से शोषण करने लगता है। प्रेम के नाम से पापाचार करने लगता है। सेवा शिविर में तो इतनी भंयकरता नहीं आई थी परतु वह भयंकरता की ओर बढ़ रहा था।''

मैकाले की शिक्षा : गुलामी में खींची लकीर

सामौर शिक्षक होने के कारण अपने कथ्य में स्पष्ट करते हैं कि आज भी भारतीय शिक्षा प्रणाली मैकाले की शिक्षा प्रणाली पर ही चल रही है। भारत में आजादी के बाद इसमें आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता थी। जहाँ तक शिक्षा की बात है, ''आज से बहुत पहले मैकाले ने जो लकीर खींच दी थी, उसी पर सब चल रहे हैं। हमारे नेता, माता–पिता और शिक्षा शास्त्रियों में से किसी में भी यह साहस नहीं है कि गुलामी में खींची उस लकीर को, जो अंग्रेजों के ऑफिसों में बाबू बनकर काम करने हेतु दी जाती थी।''[35] उसको तोड़ डाले तथा नये युग में हमारे देश में नौजवानों को यह शिक्षण दिया जाए जिसके द्वारा वे अपने आपको समग्र रूप से विकसित कर सकें। अपने समाज और राष्ट्र का सम्मान बढ़ा सके। आज की शिक्षा तो केवल रोजी–रोटी की शिक्षा है। इससे मानव का मानसिक और आत्मिक विकास नहीं होता।

धर्माचार्य : तोते

सामौर शिक्षक होने के कारण अपने कथ्य में स्पष्ट करते हैं कि आज तथाकथित धर्माचार्यों का काम ही है त्याग के नाम से अधिक से अधिक संग्रह तथा इन धर्माचार्यों ने धर्म को सम्प्रदाय बना दिया है। ''लोक कल्याण से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। वे तो तोते की तरह कुछ न कुछ बोलते रहते हैं।''[36] उन्होंने भारत की स्वतन्त्रता में न तो हिस्सा लिया, न राष्ट्र को किसी प्रकार की प्रेरणा दी। गाँधीजी जैसे महान् नेताओं का विरोध किया। भारत के कंधों पर बैठी विदेशी सरकार का जय–जयकार किया।

धर्म के नाम से मनुष्य–मनुष्य के बीच भेद कायम करने के प्रयत्न किए। विदेश जाने को अधर्म मानने वाले और जो चला जाता था, उसे समाज से बहिष्कृत करने को धर्म मानने वाले कौन–से धर्म का प्रचार करते थे, मुझे तो पता नहीं। जो धर्माचार्य विदेश जाने को धर्मच्युति मानते थे, आज विदेशों के चक्कर पर चक्कर लगा रहे हैं तथा जिन्हें यह अवसर नहीं मिला, वे विदेश जाने के लिए उतावले हैं। भारत में ईसाई धर्म का प्रचार क्यों हुआ? क्योंकि हमारे धर्माचार्य हरिजनों, आदिवासियों से हमेशा घृणा करते रहे हैं। उनसे दूर रहने को ही धर्म मानते रहे हैं। एक मानव दूसरे मानव को अपने से हीन समझता है इस दृष्टिकोण पर करारा व्यंग्य कसा है। हम आजाद हो गये हैं, पर हमारी संकुचित मानसिकता में कोई बदलाव दिखलाई नहीं देता है।

अपनी–अपनी डफली और अपना–अपना राग

गाँधीजी के समय में समाज और देश के हर क्षेत्र में महान् पुरुषों ने जन्म लिया और आज श्मशानवत् नजर आता है। उन्होंने विनोद में कहा, स्वामीजी, ''हम तो सभी बन्दर हैं। गाँधी मदारी था, वह डुगडुगी बजाता था और हम सब नाचते थे। उनके निधन के बाद आज अपनी–अपनी डफली और अपना–अपना राग रह

गया है।''[37] गाँधीजी के सभी अनुयाईयों ने उनके मूल सिद्धातों को भुला दिया है। सभी सत्ता सुंदरी की चाह में साम, दाम, दंड, भेद की नीति पर चल रहें हैं।

अन्य उदाहरण में ''एक दिन दोपहर में स्वामीजी गीता पढ़ रहे थे। उसी वक्त क्यूर्पिप के मेयर, जो कि विरोधी दल के नेता थे, की मोटरकार आई । उसमें से क्यूर्पिप का टाउन क्लर्क विसेसर, ड्राइवर पांडेय तथा कपूरथला(भारत) के राजकुमार, जिन्हें भारत से विरोधी दल के नेता श्री जुवाल ने बुलाया था, उतरे। तीनों ने आते ही स्वामीजी को प्रणाम किया। स्वामीजी ने उनका स्वागत किया। पास पड़ी कुर्सियों पर वे बैठ गए और वार्तालाप शुरू हुआ। उन लोगों ने बड़े कूटनीतिक ढंग से स्वामीजी को विरोधी दल और उसके नेता की ओर खींचने के प्रयास प्रारम्भ किए। उनका कहना था कि स्वामीजी हमारे दल का साथ दें अथवा चुनाव में किसी दल का पक्ष न ले। विरोधी दल के नेता ने स्वामीजी से आकर मिलने की तीव्र इच्छा प्रकट की। तीनों ही आगंतुक सज्जनों ने कहा कि विरोधी दल के नेता स्वामीजी को समुद्र तट पर एक सुन्दर कैम्पस भेंट करना चाहते हैं। एक मोटर कार भेंट करना चाहते हैं, निर्वाह हेतु बड़ी धनराशि भेंट करना चाहते हैं।

स्वामीजी का उत्तर था, 'स्वामीजी इन सबका क्या करे। यह स्वामी तो कंचन मुक्त सन्यासी है। आप जाकर अपने नेता से कह दीजिए कि अब तक जिन सन्यासियों को धन और साधनों से जीता है, वैसे यह सन्यासी नहीं जीता जाएगा।'

आधुनिक बोध

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य के कथ्य में आधुनिकता बोध का चित्रण युगान्तरकारी संन्यासी कृति में देखा जाता हैं। स्वामी कृष्णानन्द जी सरस्वती युगांतकारी संन्यासी थे। वे आधुनिक विश्व के परम प्रकाशमय ज्योतिर्पिण्ड थे। उनका सुदीर्घ जीवनकाल संपूर्ण बीसवीं शताब्दी को घेरे था। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में एक और जहाँ देशी राजे–रजवाड़े थे, वहीं दूसरी ओर विदेशी शासक

अंग्रेज थे। इसी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में देश की जनता ने इन राजाओं, नवाबों व अंग्रेजों को उखाड़ फेंका। इस घटना का केवल भारतीय राजनीति पर ही नहीं बल्कि समूचे भारतीय जीवन, भारतीय समाज, कला, संस्कृति और विचार पद्धति पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

भारतीय चिंतन एवं क्रिया में एक युगांतर

सामौर जी अपने कथ्य में स्पष्ट करते हैं कि युगान्तरकारी संन्यासी में स्वामीजी के आधुनिकता बोध की गहराई का पता इस बात से लगाया जाता है कि उन्होंने परंपरा की रूढ़ियों को नकारकर मानव सेवा की परंपरा का सूत्रपात कर भारतीय चिंतन एवं क्रिया की धारा में एक युगांतर उपस्थित किया। इस संदर्भ में निःसंकोच कहा जा सकता है कि आधुनिक युग की समग्र स्वाधीन चेतना के गुरू स्वामी कृष्णानंदजी ही हैं। जिन्होंने स्पष्ट कहा कि जिसने सेवा धर्म अपना लिया वह सारे बंधनों से मुक्त हो गया। सभी मनुष्य भाई–भाई हैं। सभी मनुष्य एक जाति के हैं। श्रेष्ठता सेवा से होती है, जन्म से नहीं। स्वामीजी के समय में और उससे पहले भी देश के धार्मिक आंदोलनों के रूप में जनता का जागरण तीन परंपराओं के रूपों में प्रकट हो रहा था। स्वामीजी को उन सबको आत्मसात् करने का सुयोग मिला। इसी कारण साहसी स्वामीजी हमारी संत परंपरा की अनुपम एवं अद्भुत निधि हैं। उन्हें युगावतारी कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगा।

अपने युग की इन विराट धाराओं को आत्मसात करके भी स्वामीजी किसी एक धारा में नहीं बंधे। युग की आवश्यकता के अनुरूप स्वामीजी ने सर्वसाधारण को सेवा का एक सरल और सीधा मार्ग दिखाया। सेवा के इस सरल एवं सीधे मार्ग को प्रशस्त करने के लिए उन्होंने मनुष्य को मनुष्य की सेवा मनुष्य की हैसियत से ही करने की बात कही तथा धर्मगत, जातिगत, रंगगत, भौगोलिक सीमागत, वंशगत, संस्कारगत, विश्वासगत और शास्त्रगत विषमताओं के जाल को छिन्न–भिन्न करने के

लिए अदम्य साहस के साथ संपूर्ण विश्व को अपनी कर्मस्थली बनाकर नई परंपरा डाली।

इस प्रकार स्वामीजी ने संसार भर में अपने सेवाकार्यों द्वारा अपने युग की आचार प्रवणता तथा सामाजिक अन्याय पर लगातार आक्रमण करते हुए ईश्वर की उपासना के लिए मनुष्य की सेवा का संदेश दिया। इस विराट सेवा आंदोलन के सबसे प्रमुख आधुनिक बोध के कृतीनेता के रूप में उनका सेवाकार्य आज के दिग्भ्रमित व टूटे हुए मनुष्य को जोड़कर एक जीवंत भविष्य देता है।

विश्व शांति की कामना

सामौर शिक्षक होने के कारण अपने कथ्य में विश्व शांति की कामना स्पष्ट करते हैं कि स्वामीजी तीन छंदों का पाठ कर जोगमाया की स्तुति करते थे। ''पहले छंद के माध्यम से स्वामीजी विश्व में शांति रहने की कामना करते हैं। दूसरे छंद के माध्यम से संसार से दुष्टता के नाश की कामना करते हैं। तीसरे छंद के माध्यम से मनुष्य एवं प्राणीमात्र में निराशा न रहने की कामना करते हैं।''[38] तीनों ही छंदों में विश्व शांति की मंगलमय कामना है।

वर्तमान विज्ञान पर आधुनिक बोध

स्वामीजी के विज्ञान के बारे आधुनिक बोध को उनकी वैज्ञानिक सोच व सूझ से जाना जा सकता है—'विज्ञान अपने आप में न किसी का विकास करता है, न विनाश। जिन विचारों से प्रेरित होकर मनुष्य विज्ञान का उपयोग करता है, उसी पर इस बात का दारोमदार है कि वह विज्ञान का क्या और कैसा उपयोग करेगा। हवाई जहाज से भूखों के लिए अन्न, रोगियों के लिए दवा भी बरसा सकते हैं। यदि विरोधियों के प्रति वैर है तो वही हवाई जहाज बम बरसा सकता है। हमनें एक बटन दबाया कि कमरे में रोशनी हो गई। उस रोशनी में हम ज्ञान की बातें भी लिख

सकते हैं तथा यदि हमारे विचार द्वेष व वैर–विरोध से प्रभावित हैं तो हम बुराई की बातें भी लिख सकते हैं।"[39]

तुलनात्मक आधुनिक बोध

सामौर शिक्षक होने के कारण अपने कथ्य में विविध देशों के लोगों के बारें में स्वामीजी के माध्यम से तुलनात्मक आधुनिक बोध इस प्रकार स्पष्ट किया है– ''संख्या व वोटों की दृष्टि से भारतीय सबसे ज्यादा हैं। धन की दृष्टि से गोरे ईसाई सबसे धनी हैं। धर्म की दृष्टि से मुसलमान सबसे ज्यादा संगठित हैं। जमीन व चीनी के कारखानों के मालिक गोरे हैं। पहले मजदूर या कुली भारतीय ही थे। जब से जनजागरण हुआ है और देश स्वतन्त्र हुआ है, तब से भारतीय नौकरियों में आये हैं। अच्छे शिक्षित हो गये हैं। संगठित हो गये हैं और वे अब व्यापार–धन्धे में भी आ गए हैं।''[40] मॉरीशस लोक–कल्याणकारी राज्य है। यहाँ शिक्षा मुफ्त है। यहाँ चिकित्सा मुफ्त है। वृद्धावस्था पेशन है। विधवाओं को सहायता है। वहाँ कोई बिना घर का नहीं है। वहाँ कोई बेकार नहीं है।

हर व्यक्ति का कर्म महान्

सामौर ने अपने कथ्य में बताया है कि देश की स्वतंत्रता और सेवा में हर व्यक्ति का सामर्थ्य के अनुसार योगदान महान् होता है। ''गिलहरी द्वारा भगवान् राम को पुल बाँधने में मदद देने के रूप में देखता हूँ। जो कार्य आपके सामने आए हैं उसे भगवान का भेजा हुआ मानकर करने का प्रयत्न करना चाहिए।''[41] ''मैंनें समस्त सेवा को महत्त्व दिया है। सेवा का विभाग नहीं होता। जो सेवाकार्य सामने आ जाता है, वही करने का प्रयत्न करता हूँ। मोटर कार में जाते हुए किसी को दुर्घटनाग्रस्त देखता हूँ तो सब कुछ छोड़कर सबसे पहले उसकी चिकित्सा का प्रयत्न करूँगा।''

लोक पूज्य देवियां : आधुनिक बोध की प्रतिनिधि

सामौर की सभी लोक पूज्य देवियों में आधुनिक बोध कथ्य सहज रूप से अभिव्यक्त होता है। मातृ वात्सल्य की प्रतीक इन देवियों ने अपने आचरण से मनुष्य मनुष्य के बीच भेद के भाव को अस्वीकारा एवं संदेश दिया कि मनुष्य में कोई बड़ा छोटा, छूत अछूत नहीं है। माता के लिए सभी सन्तानवत समान हैं। अपने कथ्य को कसौटी पर खरा उतारने के लिए अनेक उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं।

''करणी देवी''[42] के साथ ही उनके ग्वाले दशरथ मेघवाल की भी पूजा होती है। नागल देवी ने तो दलित दम्पत्ति को अपनी गोद में ही धारण कर रखा है। सर्वप्रथम दलित दम्पत्ति को नारियल चढ़ाया जाता हैं ''जांनबाई''[43] ने तो दलितों, वंचितों के अधिकार की रक्षार्थ औरस पुत्र तक को त्याग दिया था। जाहल देवी ने लाधवा मेर की मर्यादा की रक्षार्थ अपने ही आत्मीय जनों से संघर्ष किया। ''बोधीबाई''[44] ने नंगे भूखे मातृविहीन बालकों को अपनाकर माता के वात्सल्य का परिचय दिया। इन देवियों के ऐसे परिचयों से शक्ति काव्य सराबोर है। समता व वात्सल्य के इसी संदेश के कारण यह काव्य आज भी लोकप्रिय है।

अपने सिद्धांतों की रक्षार्थ आवड़ देवी ने सिन्ध के अत्याचारी शासक ऊमर सूमरा से लोहा लिया व अनेक दैत्यों का दलन किया। ''खोडियार देवी''[45] ने वल्लभी के शिलादित्य को सत्ता से उखाड़ा। देवल देवी ने जायल के जींदराव खींची से संघर्ष झेला। करणी देवी ने अत्याचारी कान्हा राठौड़ का वध किया। ''बैचरा देवी''[46] ने पाटण के आक्रान्ता क्रूर सुल्तान को मुर्गों को मारकर खा जाने का मजा चखाया। नागल देवी ने जूनागढ़ में राव माण्डलिक को शासन की मर्यादा खोने पर सत्ता से उखाड़ फेंका। कामेही देवी ने जामनगर के जाम शासक लाखण को समाज विरोधी आचरण के लिए भस्म कर दिया। राजल देवी ने अकबर के लम्पट आचरण को ललकारा व नौरोजा परंपरा से मुक्ति दिलाई। गीगाय देवी ने अजमेर के आक्रान्ताओं से लोहा लिया। चांपल देवी ने जालौर के सुल्तान जब्बल खां की ऊंटनियों को

सिन्ध के सिरोही आक्रान्ताओं से छुड़ाकर लाने हेतु बाहरू (आक्रान्ताओं का पीछा करने वाले दल के नेतृत्व) का कार्य किया। चन्दूबाई ने पोकरण के अत्याचारी ठाकुर सालिमसिंह से संघर्ष कर उसे नष्ट किया। राणंबाई ने कोटड़े के ठाकुर राठौड़ कुंवरपाल खोखर से संघर्ष किया। देमां देवी ने गुढ़ा मालानी के भाखरसिंह के साथ संघर्ष किया। सुन्दरबाई व सतबाई ने बोधरा मेर से संघर्ष किया। जैतबाई ने ईडर के राजकुमार कल्याणमल व उसके मामा मानजी महीड़ा के समाज विरोधी व्यवहार के विरुद्ध संघर्ष का नेतृत्व कर रास्ता दिखाया तथा उसी मानजी महीड़ा की पत्नी व पुत्र को खातू बोरैया से बचाकर शरण दी व कहा कि पिता की नीचता का फल पुत्र को क्यों मिले? पुनसरी देवी ने अनाचारी बाकर खान को खत्म करके उसके अत्याचारों से लोगों को मुक्ति दिलाई। बाईस देवियों ने रोझ (नीलगाय) की रक्षार्थ माधवपुर के राजा मघराजवाजा से संघर्ष किया। सोनबाई ने मांगरोळ दरबार अब्दुल खालिक के शिकार से कुरजा पक्षियों की जलक्रीड़ा करती पूरी डार को ही बचाया। हरियां देवी ने शिव के अत्याचारी हाकिम से रक्षा की, जीवाबाई ने भुज के राव खेंगार से, वानूदेवी ने सींधल (सोढ़ा) राजपूतों से, केसरबाई ने बैणप के चौहान शासक जसवंतसिंह से तथा बैनल देवी ने जूनागढ़ के अत्याचारी शासकों से लोहा उसी प्रकार लिया जिस प्रकार परंपरा से संघर्ष चला आ रहा था। मूल रूप से कथ्य यही है कि संकट व स्वतंत्रता प्राप्ति की अलख में नारियों को भी अत्याचारियों को उखाड़ने हेतु आगे बढ़कर प्रतिनिधित्व करना चाहिए।

समकालीन चिंतन धाराएं एवं विमर्श

लोक भारती भवन बोबासर, चूरू के माध्यम से भंवर सिंह सामौर ने सबसे पहले पुस्तकालय आंदोलन चलाया ताकि लोग शिक्षित बनें। कोई भूखा नहीं सोयें। समाज सेवा शिविरों की शुरुवात की। इन कार्यों की राजस्थान सरकार ने प्रशंसा की और इसका विस्तार सम्पूर्ण राजस्थान में किया ।

राजस्थानी लोक वाचिक परम्परा के संरक्षण हेतु आपने राष्ट्रीय साहित्य अकादमी नई दिल्ली और रूपायन संस्थान बोरून्दा के सहयोग से 3 मार्च से 7 मार्च, 2002 में एक राष्ट्रीय कार्यशाला का आयोजन लोक भारती भवन बोबासर में किया। इस कार्यशाला में 21 घण्टे की सीडी सैट और लगभग डेढ़ घण्टे की एक फिल्म भी बनाई गई। जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर के इलेक्ट्रॉनिक मीडिया रिसर्च सेन्टर और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के सहयोग से लोक भारती भवन बोबासर के नाम पर परम्परा की जीवन्त विरासत का प्रतीक नाम से एक डोक्यूमेन्ट्री फिल्म भी बनवाई थी। यह फिल्म संसार भर में चर्चित रही। लोक भारती भवन बोबासर के माध्यम से सामौर ने राजस्थान और गुजरात के लगभग 50 गाँवों और शहरों में पुस्तकालय स्थापना के लिए पुस्तकों के सैट वितरित किये हैं ताकि समाज के मनीषी समकालीन चिंतन धाराओं पर विमर्श कर सकें।

लोक साक्षरता का महायज्ञ

भंवर सिंह सामौर की लोक नीति काव्य पुस्तक का जिला साक्षरता समिति चूरू के द्वारा प्रकाशन किया गया। लोकतान्त्रिक व्यवस्था में लोक को साक्षर करने के लिए लोक साहित्य का महत्त्व स्वयं सिद्ध है। लोक साहित्य लोगों का पाठ्यक्रम होता है। इसी के सहारे लोक जीवन अपनी मंजिल की और बढ़ता है। जहाँ कहीं भी बाधा आती है, वहाँ यह लोक साहित्य अंधेरे में प्रकाश की किरण के समान मार्ग दिखाता है।

इस काव्य में चूरू मण्डल के लोकनीतिकारों का काव्य विशेष रुप से संकलित किया गया है। साथ ही इस जनपद में लोक मुख पर अवस्थित आस–पास के जनपदों का लोक साहित्य भी संकलित किया गया है। खासतौर से सीकर जनपद का लोक साहित्य संकलित किया गया है। सीकर जनपद के लोक प्रिय कवि जनकवि कृपाराम खिड़िया के सोरठों को इस संकलन में सम्मिलित किया है।

साहित्य से जुड़कर कृपाराम खिड़िया का सेवक राजिया अमर हो गया। राजिया को सम्बोधित इन सोरठों के बाद राजस्थानी में संबोधन काव्य की एक निराली परम्परा चली जो आज भी अनवरत है। इस संकलन को पुस्तक रुप में संग्रहित करते समय यह ध्यान रखा गया कि महात्मा गाँधी पुस्तकालयों के माध्यम से यह लोगों के हाथों में जाएगा। इसलिए सरल राजस्थानी भाषा के लोक शिक्षण से जुड़े लोक प्रचलित काव्य को इसमें स्थान दिया गया है।

पिछले दिनों पश्चिमी सीमान्त पर शत्रु ने हमारे अस्तित्व को ललकारते हुए युद्ध की घोषणा की। इस पर प्रतिक्रिया स्वरूप सम्पूर्ण देश सभी पारस्परिक मतभेदों को विस्मृत कर चुनौती का प्रत्युत्तर देने के लिए हुंकार उठा। युद्ध को पुनीत पर्व के रूप में देखने वाले राजस्थान का साहित्यकार युद्ध की ललकार को सुन कर प्रत्युत्तर दिये बिना निश्चेष्ट कैसे बना रहता? उसकी प्रेरक, ओजस्विनी वाणी वीरता एवं शौर्य के अभिनन्दन हेतु तत्पर हुई। भारतीय सेना ने आक्रांता के अदम्य माने जाने वाले पैटन टैंकों व साईबर जैट विमानों को मिट्टी के खिलौनों की भांति ध्वस्त कर वीरता के इतिहास में स्वर्णपृष्ठ लिखा। अद्भुत था सूरमाओं का रण कौशल। विजय–वरण के साथ ही भारतवर्ष के लम्बे और विविधता भरे इतिहास में एक बहुत गौरवान्वित अध्याय की वृद्धि हुई है। इन परिस्थितियों में साहित्यकार का दायित्व और भी बढ़ गया था। भारत शांति का उपासक रहा है, परन्तु आत्मरक्षार्थ स्वाधीनता तथा सिद्धान्तों के अस्तित्व की अक्षुण्णता के लिए किये जाने वाले युद्ध में भारतीय जन मानस को आदर्शों के प्रति जागरुक रखना भारतीय साहित्यकारों का ही कर्तव्य था। वे साहित्य के माध्यम से देश को नई प्रेरणा देकर राष्ट्र के प्रति गौरव भावना के प्रसार से जन मन तथा सीमा पर खाई में जूझने वाले सैनिकों को नई दृष्टि प्रदान कर मूल्यवान कार्य कर सकते हैं। साहित्य द्वारा सैनिकों में स्फूर्ति, साहस, मातृभूमि प्रेम की वर्षा कर सकते हैं।

समकालीन चिंतन

युद्ध–काव्य के सम्बन्ध में सामौर का मूल कथ्य है कि साहित्य के शाश्वतवादी या ब्रह्मानन्दवादी दृष्टिकोण वाले साहित्यकार मात्र समकालीन चिंतन और सामयिक स्थिति से प्रभावित मान कर शाश्वत सृजन या मूल्यवान की कोटि में नहीं रखते हैं। आज का नया कवि भी यही सोचता है। 'युद्ध के दौरान कवि की सबसे बड़ी उपलब्धि यही हो सकती है कि वह पागलपन के ज्वार में ऊँचे जीवन मूल्यों के आदर्शों को खोने से बचाये कविता की सौन्दर्यकला की रक्षा करें।

समकालीन चिंतन और युद्ध–काव्य

सामौर के कथ्य में श्रीकान्त वर्मा की दृष्टि से सभी युद्ध काव्य पागलपन के ज्वार में वाणी की अभिव्यक्ति रहे, परन्तु यह निर्विवाद रूप से सत्य नहीं है। न सभी युद्ध पागलपन है और न ही सभी युद्ध काव्य शाश्वत मूल्यों से च्युत निरी वाणी की गर्जना। यदि यह सत्य ठहरे तो क्या राम द्वारा रावण से युद्ध, कृष्ण द्वारा अर्जुन को महाभारत के लिए प्रेरित कर सक्रिय करना और हमारा स्वाधीनता संग्राम किसी जीवन मूल्य आदर्श और सौन्दर्य की हत्या करते हैं? इस प्रकार का चिन्तन निरा भटकाव तथा घोर अहमन्यता है, जिसमें कि एक वर्ग विशेष अपनी कृतियों को सामान्य जन तथा सामान्य जन कृतियों से भिन्न ऊँची स्थिति की वस्तु मानते हुए साहित्य के लिए शाश्वत विशेषण का प्रयोग करता हुआ समूचे जन जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित करने वाली युद्ध की सामयिक स्थिति के प्रति आँख मूंदे अपने शाश्वत काव्य के गीत गाता रहता हो। कवि या कलाकार जो अन्य सामाजिकों की अपेक्षा अधिक अनुभूतिशील होता है यदि वह सारे देश के जीवन को प्रभावित कर झकझोर देने वाली घटना के प्रति संवेदनहीन बन जाय तथा शाश्वत मूल्यों की ही बात करता रहे तो यह उसका निरा भटकाव की कहा जायेगा। शाश्वत मूल्यों की रक्षा का निर्णय तो इतिहास देवता ही करता हैं। साहित्य तो समाज की मांग के अनुसार ही रचा जाता है।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

सामौर इस कथ्य को साहित्य की उपादेयता से भी जोड़कर देखते हैं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सत्ता तीन प्रकार से बाधित करती है। एक सत्ता के खिलाफ कुछ भी न कहने की पाबन्दी से। दूसरा सत्ता के पक्ष में कहने की बाध्यता से। तीसरा सत्ता के पक्ष में न कहो तो सत्ता के विरोधी के पक्ष में भी न कहने की आज्ञा से। सत्ता विरोध का स्वर सर्वप्रथम साहित्यकार ही अभिव्यक्त करता है। वही विपक्ष की भूमिका निभाता है। वही सत्ता को लोक निंदा का पात्र बनाता है। यह संकट पलायन से हल नहीं हो सकता। इसीलिए इस संकट का सामना उन साहित्यकारों ने वहीं संघर्ष के आह्वान के साथ किया।

समकालीन चिंतन : मरण—त्यूंहार

सामौर का कथ्य है कि राजस्थान वीरों की जन्मस्थली है। इस देश पर शहीद होना पुण्य, सौभाग्य एवं गर्व की बात समझते हैं। सन् 1965 में पाकिस्तान ने भारत पर हमला किया। युद्ध के नायक थे प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री। लाहौर तक तिरंगा फहर गया। इस अवसर पर युद्ध की कविताओं का संकलन तैयार किया।

सामौर कहते हैं कि युद्ध और सृजन ऐसा प्रतीत होता है, मानों दोनों परस्पर विरोधी है। युद्ध अपनी सम्पूर्ण विध्वंसात्मक विभीषिका को लिए सृजन के प्रतिरोध में खड़ा हुआ है। शांति के क्षणों में किये गये साहित्य सृजन में शास्त्रीय मान दण्डों की ओर बढ़ने का यत्न तथा सौन्दर्य एवं कलागत पूर्णता की प्रवृत्ति लक्षित होती है। इसके ठीक विपरीत युद्ध कालीन सृजन में उत्तेजन सशक्त भाव प्रवाह होता है और मनोबल को निरन्तर ऊँचे धरातल पर रखने की क्षमता तथा विरोधी तत्वों के ध्वंसावशेषों पर नव्य सृजन का मुक्त उद्घोष। युद्ध मानव जीवन में आद्यन्त एक प्रश्न चिह्न के रूप में ही उपस्थित हुआ है। चिन्तन के शैशव से ही

मानव मनीषी इस समस्या पर अपने विचार अभिव्यक्त करते रहे हैं। दार्शनिकों ने शुष्क सैद्धान्तिक रूप में ही परीक्षण किया तो समाज सुधारक ने इसे अभिशाप या कभी वैमनस्य को तिरोहित करने के लिए वरदान कहकर छोड़ दिया। परन्तु कवि जो जन मन का प्रतिनिधि होता है, जिसके कण्ठ में युग वाणी प्राप्त कर मुखरित हो उठता है, मानव जीवन के सौख्य तथा शान्ति के क्षणों को कम्पित कर विनष्ट कर देने वाले युद्ध के विषय पर मनन कर अपनी सशक्त भावधारा को काव्य के कलेवर में व्यक्त करता है। प्रत्येक देश में कवि या कलाकार वहाँ के बुद्धिजीवी वर्ग में गिना जाता है अतः युद्ध की संकटापन्न घड़ियों में उसका दायित्व सीमा पर जूझने वाले सैनिक से कम नहीं होता। वह देश के आन्तरिक मोर्चे पर जन–मन की शक्ति को प्रेरित कर त्याग देशप्रेम, वीरत्व प्रभृत्ति उदात्त भावनाओं को सजग रखता है।

सैनिकों को नई दृष्टि व प्रेरणा प्रदान करना

युद्ध काव्य के कथ्य में सामौर का चिंतन है कि भारत शांति का उपासक रहा है, परन्तु आत्मरक्षार्थ स्वाधीनता तथा सिद्धान्तों के अस्तित्त्व की अक्षुण्णता के लिए किये जाने वाले युद्ध में भारतीय जन मानस को आदर्शों के प्रति जागरुक रखना भारतीय साहित्यकारों का ही कर्तव्य था।पिछले दिनों पश्चिमी सीमान्त पर शत्रु ने हमारे अस्तित्त्व को ललकारते हुए युद्ध की घोषणा की। इस पर प्रतिक्रिया स्वरूप सम्पूर्ण देश सभी पारस्परिक मतभेदों को विस्मृत कर चुनौती का प्रत्युत्तर देने के लिए हुंकार उठा। युद्ध को पुनीत पर्व के रूप में देखने वाले राजस्थान का साहित्यकार युद्ध की ललकार को सुन कर प्रत्युत्तर दिये बिना निश्चेष्ट कैसे बना रहता? उसकी प्रेरेक, ओजस्विनी वाणी वीरता एवं शौर्य के अभिनन्दन हेतु तत्पर हुई। भारतीय सेना ने आक्रांता के अदम्य माने जाने वाले पैटन टैंकों व साईबर जैट विमानों को मिट्टी के खिलौनों की भांति ध्वस्त कर वीरता के इतिहास में स्वर्णपृष्ठ लिखा। अद्भुत था सूरमाओं का रण कौशल। विजय–वरण के साथ ही भारतवर्ष के लम्बे और विविधता भरे इतिहास में एक बहुत गौरवान्वित अध्याय की वृद्धि हुई है।

इन परिस्थितियों में साहित्यकार का दायित्व और भी बढ़ गया था। वे साहित्य के माध्यम से देश को नई प्रेरणा देकर राष्ट्र के प्रति गौरव भावना के प्रसार से जन मन तथा सीमा पर खाई में जूझने वाले सैनिकों को नई दृष्टि प्रदान कर मूल्यवान कार्य करते रहें हैं।

समकालीन विमर्श : मानव चेतना

सामौर का कथ्य यहाँ मानव चेतना से ओतप्रोत है। युद्ध स्वयं में निंद्य है, विनाश का विस्फोट है, तथापि इस संबंध में एकपक्षीय निर्णय समस्या का समाधान नहीं करता है। यदि समूची मानव चेतना इसी दृष्टिकोण को अपना ले, तभी युद्ध की समस्या का समाधान सम्भव है। इन विचारों के व्यक्तिगत रहने की अपेक्षा व्यापकता ग्रहण कर सामाजिक बनने में ही सार्थकता है। युद्ध की घड़ियों में सच्चे कलाकार, साहित्यकार और बुद्धिजीवी का कर्तव्य है कि वह मनोबल को ऊँचा रखने के साथ ही उदात्त भावनाओं, त्याग, शौर्य, वीरत्व को जागृत करें। यदि साहित्यकार अपने इस दायित्व को पूरा करने में यत्नशील रहता है तो उसका श्रम स्तुत्य और अभिनन्दनीय है।

हिन्दी साहित्य की प्रमुख विशेषता उसका वीर काव्य है, जिसमें कि कवि लेखनी का ही नहीं तलवार का शूर भी हुआ करता था तथा अपने प्रत्यक्ष अनुभवों को वाणी देता था। राष्ट्र के हित आत्मबलिदानी सूरमाओं के अभिनन्दन तथा वाणी द्वारा अभ्यर्थना करने की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। आज के हिन्दी कवियों ने भी अपने परम्परागत मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में इस चुनौती को स्वीकार किया। प्रस्तुत संकलन मरण त्यूंहार में राजस्थानी के सभी प्रतिनिधि कवियों के कृतित्व को ग्रहण किया गया है। अधिकांश रचनाएं रस, भाव और भाषा सभी दृष्टियों से अत्युत्तम है ।

नवोदित कवियों को प्रेरणा

सामौर का कथ्य यहाँ परम्परा को आगे बढ़ाने में निहित है। उन्होंने संकलन में सभी प्रतिनिधि कवियों के अतिरिक्त नवोदित कवियों को भी सम्मिलित किया गया है जिससे कि वे प्रेरणा प्राप्त कर सकें तथा साहित्य सृजन को विकास की नई दिशाएं दे। कविता क्रम निर्वाह में हमने शैलीगत आधार को ही ग्रहण किया प्रारम्भ में पुरानी परम्परावादी शैली के अंतर्गत दोहों व डिंगल गीतों को स्थान दिया है, इसके बाद राजस्थानी की आधुनिक शैली की छन्दबद्ध कविताएं और गीत है, तदुपरान्त अतुकान्त कवियों का स्थान दिया गया है। अन्त में परिशिष्ट के रूप में राजस्थानी साहित्य परम्परा और युद्ध प्रवाह के अंतर्गत हमनें राजस्थानी साहित्य में युद्ध संबंधी चिन्तन को स्पष्ट करने का यत्न किया है, जो कि मरण–त्यूंहार की पूर्वपीठिका के रूप में ग्रहण किया जा सकता है।

इस कृति के आवरण पृष्ठ के लिए राजस्थान के सुप्रसिद्व चित्रकार श्री रामगोपाल विजयवर्गीय ने चित्र बनाया, जिसमें मरण–त्यूंहार की मूल भावना प्रतिबिम्बित है।

संगठन शक्ति की महत्ता

सामौर का कथ्य है कि स्वामीजी का ''सिद्धान्त सत्संग द्वारा संगठन खड़ा करना था और संगठन की शक्ति से मॉरीशस के डेढ़ सौ वर्षों से दबे–कुचले लोगों को अपनी संस्कृति से जोड़कर उन्हें जागृत करना था।''[47] उन्होंने चालीस नौजवानों के शक्तिशाली दल में प्रेरणा भरी और कर्त्तव्यबोध कराया और समझाया कि तुम्हें अपना नेतृत्व ख़ुद ही करना है। नौजवानों ने इस नई चुनौती को स्वीकार किया एवं आगे चलकर अपने संगठन की सफलता में चार चाँद लगाये।"

नूतन प्रेरणा

सामौर के कथ्य के अनुसार नौजवान अपनी संस्कृति से परिचित होने के लिए आगे आने लगा। अपने समाज और राष्ट्र की समस्याओं से वह परिचित हुआ और उन समस्याओं के समाधान संकल्प के साथ ढूँढ़ने लगा। स्वामीजी का कार्य उनमें चेतना भरना था। डेढ़ सौ वर्षों से दबा–कुचला समाज अब साहस की साँसे लेकर आगे बढ़ने लगा। विचारने लगा कि उसका भी कुछ कर्त्तव्य है। और दृढ़ संकल्प से उसने निश्चय किया कि आगे बढ़ना ही है। स्वामीजी निर्भीक होकर अपने विचारों को समाज के सामने रखने लगे। ''उनके नये विचारों की लहर समाज में जागरण के साथ–साथ नूतन प्रेरणा प्रदान करने लगी।''[48]

सर्वधर्म आदर

सामौर का कथ्य यहाँ सर्वधर्म आदर का है– धर्म किसी से बैर रखना नहीं सिखाता। इसलिए गाँधीजी वाली सर्वधर्म प्रार्थना को अपनी प्रार्थना में स्थान दिया। ''वे सभी धर्मों का आदर करते थे।''[49]

सांस्कृतिक सनातन दृष्टिकोण

भंवर सिंह सामौर ने संस्कृति री सनातन दीठ पुस्तक में संस्कृति के महत्त्व एवं समाज में उसके योगदान को रेखांकित किया गया है। संस्कृति की सनातन दृष्टि ही व्यक्ति और उसके जीवन को वर्तमान, भूत और भविष्य को एक साथ जीवित रखने में सहायक है। संस्कृति ही मानव जीवन का सांस्कृतिक आइना है जो उसका मार्ग प्रशस्त करती है। सनातन की दृष्टि के दो अर्थ है, प्रथम वर्तमान में जीवित रहते हुए अतीत से जुड़कर भविष्य के सुनहरे सपनों को उत्साह के साथ संजोये रखना तथा प्रकृति के साथ उत्साहित जीवन व्यतीत करना। दूसरा संस्कृति ही मनुष्य और उसके समाज व देश का आधार स्तम्भ होती है। संस्कृति की बदौलत ही मनुष्य आकाश की भांति विस्तार पाता है। अपना मान–सम्मान, कीर्ति, यश प्राप्त

करता है। संस्कृति की सनातन दीठ के कारण ही मनुष्य अपनी सनातन परम्परा से जुड़ा रहता है। संस्कृति का अपना कोई आकार नहीं होता है, वह तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है।

सांस्कृतिक परम्परा

सांस्कृतिक परम्परा की उत्पति का रहस्योद्घाटन करना ही सामौर के कथ्य का मूल उद्देश्य है। भारतीय उपमहाद्वीप की संस्कृति ईरान, ईराक, ईण्डोनेशिया तक फैली हुई है। सांस्कृतिक उपमहाद्वीप का ह्रदय स्थल भारत को माना जाता है। भारत में राजस्थान के पुष्कर अजमेर स्थित ब्रह्मा के मंदिर के सन्दर्भ में मान्यता है कि ब्रह्म ने यही से सृष्टि की रचना की थी। वैसे भी विश्व की सबसे प्राचीनतम पर्वत श्रृंखला अरावली को ही माना जाता है। इसकी साक्षी सरस्वती नदी किनारे पनपी सरस्वती घाटी सभ्यता एवं संस्कृति में मिली वस्तुएं हैं। सरस्वती नदी के किनारे ही वेदों की रचना हुई थी।

मीडिया की चुनौती

सामौर का कथ्य यहाँ मीडिया समाज को संस्कृति से दूर ले जा रहा है, बताते हैं। आपके राजस्थानी निबंधों के संकलन राजस्थानी संस्कृति री सनातन दीठ में राजस्थानी संस्कृति, संस्कृति को मीडिया की चुनौती, राजस्थानी लोक कलाएं एवं लोक संगीत राजस्थानी साहित्य की सांस्कृतिक विरासत, राजस्थानी संस्कृति की लोक चेतना, छन्दों की प्रासंगिकता और वर्षा तुम्हारे कितने नाम आदि निबंध संकलित हैं।

प्रवासी भारतीयों की पुण्य भूमि भारत

सामौर का कथ्य यहाँ यह है कि प्रवासी भारतीय भारत को पुण्य भूमि समझते हैं और अपनी बोली में उसे हमेशा देश कहते हैं। भारत से बाहर बसने वाले सभी

भारतीयों की वह तीर्थ भूमि है। ''सभी तीर्थ भारत में हैं। सभी प्रवासी भारतीय अपने जीवन में कम से कम एक बार तो गंगा स्नान करना चाहते ही हैं। वे सदा भारत के सुख में सुखी होते हैं, भारत के दुख में दुखी होते हैं।''[50]

आज की युवापीढ़ी की छटपटाहट

सामौर का कथ्य है कि ''आज के युवा को उचित संग, उचित शिक्षा, उचित प्रेरणा और जीवन के संपूर्ण विकास के लिए प्रेम भरा सहयोग कहीं भी प्राप्त नहीं होता। नई पीढ़ी के विकास की बात ह्रदय से कोई सोचता ही नहीं। आज का नवयुवक उपेक्षा के गहरे गर्त में पड़ा हुआ है और वह छटपटा रहा है। इसी कारण वह कटु हो गया है। उसके घर, समाज, संगठन व देश में कहीं भी सम्मानपूर्ण स्थान नहीं मिलता।''[51]

सेवा संगठन एक मौसम

इस संदर्भ में सामौर का कथ्य है कि ''सेवा अपने आप में एक धर्म है। सेवा पूर्व व धर्म से पहले धार्मिक शब्द रखना व्यर्थ है। सेवा शिविर देश–भर में सर्वमान्य हो गया। उसमें बहुत शक्ति आ गई क्योंकि वह नौजवानों का संगठन है। ऐसा संगठन यदि सेवा की ओर न झुके, सेवा न करे, सेवा के मूल्यों को न अपनाए, तो वह बहुत ही जल्दी मर जाता है। उसी प्रकार जिस प्रकार हर एक प्राणी जो जन्मता है, वह मरता ही है। वैसे ही जो संस्था बनती है, वह समाप्त भी होती है। संसार के इतिहास में यही सब पढ़ने को मिलता है। स्वामीजी इन संगठनों को मौसमी मानते हैं। मौसम आता है और चला जाता है। वर्षा आई और चली गई। हमेशा वर्षा कभी नहीं रहती। यदि हमेशा बरसती रहे तो प्रलय हो जाए।''[52] जीवन में बदलाव चिरंतन है। यदि बदलाव नहीं होगा तो विकास की गति मंद हो जायेगी।

संगठन की समाप्ति आत्महत्या

यहाँ सामौर का कथ्य है कि ''जब भारत स्वतंत्र हो गया तो गाँधीजी ने कांग्रेस के नेताओं से कहा था, कांग्रेस को समाप्त कर दें। उनका उद्देश्य तो देश को आजाद कराना था, वह पूरा हो गया है। परन्तु संगठनों के संचालक मानते हैं कि संगठन को समाप्त करना, उसकी अपनी आत्महत्या है। इसलिए जानते हुए भी कि उस संगठन का उद्देश्य पूरा हो गया है, वे उसे समाप्त नहीं करते हैं।"[53]

सांस्कृतिक वर्षा

सामौर संस्कृति को ही सर्वोपरि मानते हैं अतः उनका कथ्य सांस्कृतिक वर्षा का है "स्वामीजी का ध्यान वहाँ के समाज में भारतीय संस्कारों एवं धर्म–प्रचार की ओर गया। मॉरीशस के घर–घर में हनुमानजी की लाल ध्वजा फहराती थी। लोगों को हनुमान चालीसा का पाठ करते हुए भी स्वामीजी ने सुना था। गाँव–गाँव में मंदिरों के दर्शन किए। वृद्ध लोगों को परम्परागत ढंग से झाँझ एवं ढोलक पर रामायण गाते देखा तो उनके दिल में एक बात आई कि यहाँ की भूमि में भी संस्कारों के बीज तो हैं, परन्तु ये अंकुरित तभी होंगे जब सांस्कृतिक वर्षा हो। वे इसी ढंग से सोचने लगे।"[54]

तत्परता

सामौर तत्परता से कार्य करने को ही सिद्धी मानते हैं अतः उनका कथ्य "जगतसिंह परम राष्ट्रभक्त थे। सच्चे हिन्दू और भारतीय थे तथा नवयुवक थे। उनके हृदय में स्वामीजी की सभी बातें घर कर गई। उन्होंने स्वामीजी से ही अपने राष्ट्र के लिए शीघ्र कुछ करने का मार्ग पूछा। स्वामीजी ने उन्हें समझाया कि वे जल्दी से जल्दी भारत जाएँ और वहाँ के मंत्रियों व नेताओं से मिलें तथा उन्हें मॉरीशस की स्थिति से अवगत कराए।"[55]

परहित कामना

सामौर परहित कामना में सदैव रत रहें हैं। अतः उनके अनेक कथ्यों में भी ऐसा ही कहा गया है ”डॉक्टर ने देखा, स्वामीजी को बचाने के लिए जरूरी है कि उन्हें रक्त प्रदान किया जाए। जब डाक्टरों ने मिलकर स्वामीजी के रक्त का परीक्षण किया तो उन्हें पता चला कि स्वामीजी का रक्त ओ नैगेटिव ग्रुप का है और वह सब जगह नहीं मिलता है। डॉक्टरों ने जब हॉस्पिटल के रक्त संग्रह कोष में देखा, तो उन्हें मात्र एक बोतल उस नम्बर के रक्त की मिली। जब डाक्टरों ने वह बोतल मांगी तो पता चला कि उसी समय में उस हॉस्पिटल में एक स्त्री के प्रसव हुआ है और उसका बहुत रक्त बह गया है। उस स्त्री का ग्रुप रक्त भी ओ नेगेटिव था। जब स्वामीजी को पता चला कि वह नवप्रसूता माता मृत्यु के कगार पर पहुँच गई है तो उन्होंने वह रक्त लेना अस्वीकार कर दिया और आदेश दिया कि वह रक्त उस महिला को दिया जाए और उसके शीघ्र प्राण बचाए जाएँ। जब डॉक्टरों ने इसे मानने में आनाकानी की तो स्वामीजी ने जोर देकर कहा कि ”आप लोग ऐसा क्यों करते हैं? मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि जिस समय मेरी मृत्यु होगी, उसी समय होगी। उससे पहले कभी नहीं मर सकता। मैं यदि मर भी जाऊँगा तो न मैं ही उसकी चिन्ता करूँगा तथा न मेरे लिए ही कोई रोने वाला है।“[56] स्वामीजी के आदेश से वह रक्त उस महिला को प्रदान किया गया।

भारत एक आध्यात्मिक देश

सामौर संस्कृति को ही सर्वोपरि मानते हैं यहाँ उनका कथ्य आध्यात्मिकता को मुखरित करता है। जहाँ तक आध्यात्मिकता का प्रश्न है, विश्व में भारत का बड़ा सम्मान है। क्योंकि ‘‘भारत ने वेद दिए, उपनिषद दिए, रामायण दी, गीता दी, महाभारत दिया, राम और कृष्ण को जन्म दिया। गौतम व गाँधीजी को जन्म दिया।

इसके बाद यदि हम भारत की सामाजिकता के सम्बन्ध में विश्व की आलोचना को सुनें तो भारत अनेक भागों, अनेक सम्प्रदायों और आधुनिकता में पिछड़ा हुआ देश है। राजनीतिक दृष्टि से मैं आधिकारिक मत देने में असमर्थ हूँ। राजनीति में दूसरे ही देश अधिक शक्तिशाली हैं, सामरिक क्षमता वाले हैं। बड़े सम्पन्न हैं।"[57]

निर्भय होकर कर्म करें

सामौर का कथ्य निर्भय होकर कर्म में रत रहने को है जो इस कथन से स्पष्ट है– स्वामीजी ने कहा यह बात तो आपने भय के कारण स्वीकार की है। जब आप स्वतन्त्र हो गए है तो भय से भी स्वतन्त्र होइये। ''डर को मन से निकाल फेंकिए। आप को इस देश पर राज करना है। वह आप निर्भय होकर ही कर सकते हैं।''[58] स्वाजी ने सुझाव दिया, पुलिस लाईन बैरेक्स के स्थान पर घुड़दौड़ के मैदान में स्वतन्त्रता दिवस मनाइए।

वृद्धावस्था का समाधान

सामौर ने अपने जीवन में वृद्धों पर अमूल्य चिंतन किया है। यहाँ उनका कथ्य ''विश्व में आज वृद्धावस्था की बड़ी जटिल समस्या है। अतिथि देवो भव की परम्परा वाले भारत देश में भी आज वृद्धाश्रम बन रहे हैं। इस सांस्कृतिक परम्परा का ह्रास दिन–ब–दिन बढ़ता ही जा रहा है। विदेशों में तो स्थिति और भी बदत्तर है। ''ब्रिटेन में भारतीय वृद्ध बहुत ही उपेक्षित थे। उन्हें कोई पूछने वाला नहीं था। स्वामीजी ने ऐसे लोगों के लिए लंदन के फिंचले क्षेत्र में 'मील्स् ऑनव्हील्स'[59] योजना शुरु करवाई जिसके तहत या तो वृद्धों को लाकर भोजन करवाना या बस में भोजन ले जाकर इन्हें भोजन करना शामिल है।

स्वामीजी ने गाँव–गाँव में जाकर अपील की कि लोग इन बूढ़ों और अपाहिजों की सहायता के लिए सहयोग करें। फिर तो हिन्दुओं की धार्मिक उदारता जाग्रत हो

गई। ''लोग गाँव–गाँव से वृद्धों को भोजन लेकर खिलाने के लिए लाने लगे और दान भी देने लगे। आश्रम का प्रबन्ध आदर्श हो गया।''[60] थोड़े ही समय में आश्रमवासियों की संख्या पिचहत्तर से बढ़कर एक सौ पिचहत्तर हो गई।

सेवाकार्यों के मूल आधार

सामौर समाज सेवा सर्वोपरि व प्रमुख मानव धर्म मानते हैं यहाँ उनका कथ्य है स्वामीजी के सेवाकार्यों का मूल आधार धर्म, संस्कृति, परम्परा एवं इतिहास की भूमि पर था जिसका प्रचार समस्त विश्व में है। स्वामीजी के विविध सेवा कार्यक्रमों की लम्बी सूची है– 'कोई भूखा ना सोए' से लेकर 'नेत्र शिविर', 'बवासीर निर्मूलन', 'स्वास्थ्य सेवा', 'आयुर्वेद केन्द्र', 'सद्साहित्य प्रकाशन', 'कार्यकर्त्ता प्रशिक्षण', 'असहाय सहायता' आदि तक जाकर भी रुकती नहीं है।

स्वामीजी का सेवा मार्ग सत्संग से संगठन की ओर होता हुआ सेवा तक पहुँचता है। स्वामीजी के अनुसार सेवा योग है अर्थात् सेवा धर्म है। सेवा और श्रम(मजदूरी) का अन्तर स्वामीजी की दृष्टि में स्पष्ट था। ''मन कहीं ओर तथा हाथ कहीं ओर, तो वह कार्य मजदूरी है एवं जहाँ ह्रदय कार्य से जुड़ जाता है तो वह कार्य सेवा हो जाता है।''[61] इसी प्रकार स्वामीजी ज्ञान एवं अज्ञान का अन्तर स्पष्ट करते हुए कहते थे कि शरीर को अपना रुप समझना ही अज्ञान है तथा आत्मा को सच्चा रुप ही समझना ज्ञान है।

संस्कार सिंचन

सामौर का कथ्य है कि जीवन में संस्कार ही मानव को मनुष्य बनाकर श्रेष्ठ प्राणी की संज्ञा से अभिहित करता है। संस्कार विहिन मानव पशु के समान होता है। इसका अनुपम उदाहरण– एक रात स्वामीजी एक करोड़पति भारतीय के यहाँ सोये हुए थे। बिजली की बत्ती बुझी हुई थी। अचानक बिजली की बत्ती जल उठी। स्वामीजी जग गये, उठ बैठे। ''उन्होंने बूढ़े को देखा, वह करुणा की याचना करता

पोपला मुँह, आँखों से झर–झर झरते आँसू सिसकियां भरता उसका उदास चेहरा, देखकर स्वामीजी ने उससे कहा, 'रोओ मत। क्या हुआ? स्वामी रोना नहीं देख सकता। बहुत कठिनाई से स्वामीजी ने उसे शांत किया। तब उसने कहा, 'स्वामीजी, मैं बहुत दुःखी हूँ।' स्वामीजी ने उससे कहा, 'तुमसे ज्यादा सुखी और कौन हो सकता है? अपार सम्पत्ति के मालिक हो तुम। गन्ना, चाय और कॉफी के खेत तथा चीनी, चाय और कॉफी के कारखानों के मालिक हो, तुम दुःखी क्यों हो?' उसने गुजराती भाषा में स्वामीजी को जवाब दिया 'मारा छोकरा बिगड़ि गया। 'अर्थात् मेरी संतान बिगड़ गई।''[62] स्वामीजी समझ गये कि परिवार में संस्कार नहीं हैं। अन्य दो–तीन जगह भी ऐसी ही बातें हुई,। स्वामीजी ने सोच लिया कि उन्हें भगवान यहाँ अफ्रीकी भारतीयों में संस्कार सिंचन के लिए लाया है।

युगान्तरकारी संन्यासी में स्वामी कृष्णानन्द जी के जीवन के सन्दर्भ में लिखते हैं कि उनका जीवन गीता के अनुरूप था। वह इन्हीं संस्कारों का हस्तांतरण विश्वजन में करके संस्कारवान मानव सृष्टि का स्वप्न साकार करना चाहते थे–

''लभंतेब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः।''

निष्काम कर्म के प्रति सामौर का कथ्य हैं कि जिस प्रकार अज्ञानी मनुष्य फल की कामना से निरन्तर कर्म में लगा रहता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष को निष्काम–भाव से लोक संग्रह के उद्देश्य की इच्छा से प्रेरित होकर कर्म में लगे रहना चाहिए। इसे गीता के श्लोक के माध्यम से सामौर ने साहित्य में स्थान दिया है–

''सक्ता कर्मण्येविद्वांसो यथा कुर्वंति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्।।''

भोजन से पूर्व किए जाने वाले मंत्रजाप को सामौर ने साहित्य में स्थान देते हुए लिखा है कि–

''ऊँ सहना ववतु। सह नौ भुनक्तु। सहवीर्यं करवावहै।
तेजस्वी नावधीमस्तु मा विद्विषावहै।।

ऊँ शांतिः शांतिः शांतिः।''

सामौर आज की युवा पीढ़ी में इन्हीं संस्कारों को सींचना चाहते हैं। अपने कथ्य में आगे वह कहते हैं– 'कारवाँ जारी रखो, सिरफिरे लोग समाज को दिशाहीन कर देते हैं।' कथन में युगान्तरकारी संन्यासी कृति का कथ्य भावबोध से अभिभूत करने का सामर्थ्य रखता है।

एक–एक रुपया प्रति परिवार से सेवा कार्य

सामौर का कथ्य है कि स्वामीजी का कार्य सेवा कार्य से शुरू हुआ। उन्होंने लोगों से अपील की कि ''संकट की घड़ी में आगे आए और दुखियों, भूखों, अभावग्रस्तों की सहायता करें। एक–एक रुपया प्रति परिवार सेवा के लिए दे।''[63] उसी दिन से धार्मिक सेवा शिविर ने घर–घर से धन संग्रह करना व घर–घर जाकर सेवा करना शुरू कर दिया। फिर सेवा कार्य के लिए कभी भी धन की कमी नहीं आई।

महिला आश्रम

सामौर का महिलाओं के प्रति चिंतन इस कथ्य से उजागर होता– नौजवानों ने स्त्रियों के लिए भी एक आश्रम स्थापित करने का निर्णय लिया। मॉरीशस के प्रधानमंत्री अनिरुद्ध जगन्नाथ ने कॉमर्शियल बैंक के संचालकों से कहा कि बैंक को लोगों के लिए कुछ करना चाहिए। संचालकों ने ''कृष्णानन्द सेवा आश्रम की भूमि में एक महिला आश्रम''[64] बनाकर भेंट कर दिया। इस प्रकार सामौर के कथ्य में महिलाओं के प्रति चिंतन और विकास के अनेक नवीन आयाम देखे जाते हैं।

काल चेतना

सामौर ने अपने कथ्य में समय एवं काल के प्रतिक्षण गुजरने और इसी सीमित समय में श्रेष्ठ कार्य करने के प्रति चिंतन चूरू मण्डल के यशस्वी चारण

नामक कृति में उजागर किया है। आप जीवन और ब्रह्माण्ड को विस्तार से वर्णित करते हैं कि– ''इक्कीस हजार छः सौ श्वास जीव एक दिन में लेता है। छः श्वासों का एक पल, साठ पलों की एक घड़ी, साठ घड़ी का एक दिन–रात, पन्द्रह दिन–रात का एक पखवाड़ा, दो पखवाड़ों का एक माह, दो महीनों की एक ऋतु, दो ऋतुओं का एक काल, तीन कालों का एक वर्ष, एक सौ वर्ष बीतने पर एक संवत्, कलियुग में यही एक सौ वर्ष मनुष्य की आयु मानी जाती है। इस संवत् का एक हजार वर्ष, एक हजार वर्ष के एक लाख वर्ष, कितने ही लाखों वर्षों का एक युग, चार–चार युग की चौकड़ी के छतीस युग, ऐसे छतीस युग इन्द्र की आयु होती है। जब चौदह इन्द्र हो जाए तब ब्रह्मा का एक दिन होता है। ऐसे दिनों के एक सौ बरस तक ब्रह्मा का जीवन है।''[65]

स्वयं को अनुभव करो कि ब्रह्मा की भी एक निश्चित आयु है फिर मूर्ख क्यों दुखी होता है कि आयु कम है। इस प्रकार केशवदास ने अपनी वाणी द्वारा अपने युग की काल चेतना को जो अभिव्यक्ति दी वही मनुष्य का जीवन्त संदेश है। अतः हमें हर पल देशहित में अनवरत कार्य करते रहना चाहिए। ब्रह्मा ने हमें एक निश्चित आयु देकर निश्चित लक्ष्य के लिए सृष्टि पर भेजा है। इस प्रकार सामौर के गद्य साहित्य में अनेक मौलिक एवं नवीन कथ्यों का भंडार भरा है।

सन्दर्भ सूची

1. हिन्दी महाकाव्य : सिद्धान्त और मूल्याकंन– डॉ. देवीप्रसाद गुप्त, पृष्ठ 23
2. भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास– भीखनलाल आत्रेय, पृष्ठ 619
3. भारत में समाजशास्त्र, प्रजाति और संस्कृति– गौरीशंकर भट्ट, पृष्ठ 261
4. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन– डॉ. देवराज, पृष्ठ 176
5. पूर्व–पश्चिम भारतीय जीवन– डॉ. राधकृष्णन्, पृष्ठ 9
6. युगान्तरकारी सन्यासी– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 12
7. वही– पृष्ठ 13
8. वही–पृष्ठ 13
9. युगान्तरकारी सन्यासी– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 14
10. वही– पृष्ठ 22
11. वही– पृष्ठ12
12. वही– पृष्ठ 139
13. वही–पृष्ठ दो शब्द
14. वही–पृष्ठ 129
15. वही–पृष्ठ 129
16. वही–पृष्ठ 140
17. लोक पूज्य देविया– भंवर सिंह सामौर,पृष्ठ 58
18. वही–पृष्ठ 60
19. वही
20. वही–पृष्ठ 44
21. वही–पृष्ठ 51
22. युगान्तरकारी सन्यासी– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 46
23. वही–पृष्ठ 25
24. वही–पृष्ठ 26

25. वही–पृष्ठ 46

26. वही–पृष्ठ 87

27. चूरू मण्डल के यशस्वी चारण– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ दो शब्द

28. वही

29. वही

30. वही

31. संस्कृति री सनातन दीठ– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 90

32. राजस्थानी शक्ति काव्य– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 15

33. आऊवा का धरणा– भंवर सिंह सामौर, मुखबंध

34. हमारे साहित्य निर्माता रावत सारस्वत– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 8

35. युगान्तरकारी सन्यासी– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 50

36. वही–पृष्ठ 136

37. वही–पृष्ठ 137

38. वही

39. वही–पृष्ठ 39

40. वही–पृष्ठ 138

41. वही– पृष्ठ 139–140

42. वही–पृष्ठ 132

43. लोक पूज्य देवियां– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 40

44. वही– पृष्ठ 56

45. वही– पृष्ठ 57

46. वही– पृष्ठ 34

47. वही– पृष्ठ 44

48. युगान्तरकारी सन्यासी– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 53

49. वही– पृष्ठ 57

50. वही–पृष्ठ 44

51. वही– पृष्ठ 138

52. वही– पृष्ठ 136

53. वही– पृष्ठ 79

54. वही

55. वही– पृष्ठ 96

56. वही– पृष्ठ 105

57. वही– पृष्ठ 121–122

58. वही– पृष्ठ 134–135

59. वही– पृष्ठ 23

60. वही– पृष्ठ 94

61. वही– पृष्ठ 24

62. वही– पृष्ठ 33–34

63. वही– पृष्ठ 71

64. वही– पृष्ठ 94

65. चूरू मण्डल के यशस्वी चारण– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 44

चतुर्थ अध्याय

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का शिल्प

भाषा वैशिष्ट्य

शैली

अलंकारिता एवं अर्थ गांभीर्य

रचना प्रक्रिया

शब्द विधान

चतुर्थ अध्याय

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का शिल्प

भाषा वैशिष्टय

भाषा मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति है। भाषा भावों को अभिव्यक्त करने का महत्वपूर्ण साधन है। भाषा के माध्यम से ही तत्कालीन देशकाल और समाज का बोध होता है। भाषा शब्द और अर्थ के संयोग से आकार ग्रहण करती है। 'शब्द' भाषा का 'शरीर' और अर्थ उसकी 'आत्मा' कहलाती है। उसका मूल कार्य विचारों, भावनाओं, इच्छाओं आदि का संप्रेषण है। भाषा का प्रयोग ही संप्रेषण का सबसे बड़ा साधन है। भाषा से ही अनुभूति की अभिव्यक्ति होती है। ज्ञान–विज्ञान की प्रत्येक मूलभूत अवधारणा भाषा ज्ञान पर अवलम्बित है। मनुष्य भाषा के बिना अपना विकास नहीं कर सकता। भाषा और मनुष्य का गहरा सम्बंध है। भाषा के माध्यम से ही व्यक्ति को जाना पहचाना जा सकता है। भाषा मानव जीवन के भावों और विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। अतः मानव जीवन जैसे–जैसे विकसित और परिवर्तित होता गया, वैसे–वैसे भाषा का रूप भी परिवर्तित, परिवर्धित और परिष्कृत होता गया।

भाषा केवल भावों की अभिव्यक्ति का साधन मात्र नहीं है, अपितु समस्त ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला तत्त्व है। भाषा का मूल स्वभाव प्रवाहशीलता है। इसलिए सभी विधाओं में भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। साहित्यकार भाषा के माध्यम से ही अपनी पहचान बनाता है। भाषा का आधार लेकर जीवन के अनुभवों को भोगकर समाज के सामने प्रस्तुत करता है। हम उसे साहित्य के रूप में देखते हैं। अनेक उपकरणों का सहारा लेकर रचनाकार अपनी भाषा में संस्कार और परिनिष्ठित भाषा का प्रस्तुतिकरण करता है। अतः भाषा का स्थान सर्वोपरि है।

भाषा रूपी ज्योति से यह संसार और मानव, प्रकाश की ओर निरन्तर अग्रसर है। आधुनिक युग में मानव अपने प्रगतिशील मार्ग पर अग्रसर है। आज मानव

सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में विकास लाया है। मानव ने ये सब भाषा के सहयोग से ही अर्जित किया है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक भाषा का विकास अवरूद्ध नहीं हुआ बल्कि उसका पथ सुनहरे विकास की ओर अग्रसर है। भाषा का विषय जितना सरस और मनोरम है, उतना ही गम्भीर और कौतूहलजनक भी है। भाषा मनुष्य कृत है। देशकाल, वातावरण और आवश्यकताएँ ही उनके सृजन का आधार है, मनुष्य सहयोग ही भाषा का प्रबल संबल है। भाषा की जड़ मनुष्य की वाणी है, जिससे भाषा विकसित हुई है। जीवित बोली को हम भाषा मानते हैं। दुनियां में सैंकड़ों बोली और भाषाएँ हैं।

शैली

भावाभिव्यक्ति का यह माध्यम जितना सशक्त होता है, साहित्य उतना ही प्रभावी और सफल होता है। अतः किसी भी रचना या साहित्य की परख केवल भावपक्ष पर निर्भर नहीं होती है। उसका शैली पक्ष भी देखना–परखना अति आवश्यक होता है। प्रत्येक साहित्यकार अपनी अनुभूति और चिन्तनधारा को अभिव्यक्त करने के लिए एक विशिष्ट माध्यम का सहारा लेता है और यह माध्यम प्रत्येक रचनाकार का अलग–अलग होता है। किसी भी साहित्यकार के साहित्य में एक ओर जहाँ उसका कथ्य उसकी पहचान बनाता है वहीं दूसरी ओर उसकी अभिव्यक्ति का कलात्मक माध्यम अर्थात् शिल्प भी उस पहचान को सुदृढ़ बनाता है। साहित्य की प्रत्येक विधा का अपना विशिष्ट रचना शिल्प होता है। रचना शिल्प की दृष्टि से न केवल साहित्य की गद्य और पद्य विधाएँ अलग–अलग होती है बल्कि गद्य की भी विविध विधाएँ प्रस्तुति शैली के कारण एक दूसरे से भिन्न हो जाती हैं। इसी कारण नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी, रेखाचित्र, संस्मरण, निबन्ध, रिर्पोताज आदि गद्यात्मक साहित्य में शैलीगत तत्त्व में समानता होते हुए भी रचना शिल्प में सैद्धान्तिक अन्तर पाया जाता है। भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में शिल्प विधान पर विचार करने से पूर्व 'शिल्प' की संकल्पना को समझना उपयुक्त ही नहीं बल्कि अत्यावश्यक भी होगा।

शिल्प : परिभाषा एवं स्वरूप

शिल्प का शाब्दिक अर्थ– 'किसी वस्तु के बनाने या रचने का ढंग अथवा पद्यति है।' हिन्दी में शिल्प, शिल्प–विधि, शिल्प–विधान आदि शब्द समानार्थी रूप में प्रयुक्त होते हैं। 'शिल्प' शब्द अंग्रेजी के 'टेकनीक'(Technique) का हिन्दी रूपान्तरण है। अंग्रेजी में 'टेकनीक' शब्द के अतिरिक्त इसके लिए फॉर्म(Form), स्ट्रक्चर(Structure), आर्ट(Art), क्राफ्ट(Craft) जैसे शब्द प्रचलन में हैं। उपर्युक्त सभी शब्दों में से ''शिल्प–विधि के लिए टेकनीक शब्द अधिक उचित प्रतीत होता है, क्योंकि शिल्प–विधि का शाब्दिक अर्थ किसी चीज के बनाने या रचने का ढंग या तरीका होता है। किसी वस्तु के रचने की जो विधियाँ अथवा प्रक्रियाएँ होती हैं, उनके समुच्चय को शिल्प–विधि के नाम से जाना जाता है।''[1] नालन्दा विशाल शब्द सागर के अनुसार 'शिल्प' का अर्थ ''कोई वस्तु हाथ से बनाकर तैयार करने का काम, कारीगरी, दस्तकारी या कला सम्बंधी व्यवसाय है।''[2] ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी–हिन्दी शब्दकोश के अनुसार टेकनीक ''विशेष कौशल से सम्पन्न कराने की विधि है।''[3] इस विवेचन के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि टेकनीक और शिल्प में थोड़ा–बहुत अन्तर है। शिल्प जहाँ हस्तकला से अधिकतर सम्बन्धित है, वहीं टेकनीक किसी भी काम के कौशलपूर्ण समापन की ओर संकेत करता है। सामान्य व्यवहार में चाहे वे भिन्न अर्थों की प्रतीति कराते हो किन्तु साहित्य के क्षेत्र में वे लगभग एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।

शिल्प विधि का सम्बन्ध साहित्य की रूप योजना से है। रूप योजना कथ्य को अधिकाधिक प्रभावी बनाने में ही सार्थक होती है। अर्थात् साहित्य निर्माण में शिल्प सौष्ठव की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। सरल भाषा में कहा जाए तो शिल्प विधि से अभिप्राय हाथ से किसी वस्तु को बनाने की पद्धति से होता है। शब्द रचना के आधार पर शिल्प से तात्पर्य हस्तकौशल, कारीगरी तथा विधि से लिया जाता है। इसलिए शिल्प विधि के अन्तर्गत वे समस्त तत्त्व आते हैं, जो उस कलाकृति की निर्मिति में सहायक होते हैं।

साहित्य के सन्दर्भ में शिल्प–विधि का अर्थ है साहित्यिक कृति के रचने का ढंग या तरीका। हिन्दी साहित्य के विद्वानों में अपने–अपने दृष्टिकोण से तकनीक या शिल्प को परिभाषित किया है।

शिल्प विधि की व्याख्या करते समय एक बात का उल्लेख आवश्यक हो जाता है कि शिल्प विधि और रचना विधि को अनेक विद्वानों ने एक ही अर्थ में स्वीकार किया है। हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार जैनेन्द्र कुमार ने शिल्प विधि और कलाकृति की रचना विधि को समानार्थक मानकर शिल्प विधि की व्याख्या की है। जैनेन्द्र कुमार के अनुसार– ''टेकनीक ढाँचे के नियमों का नाम है, परन्तु ढाँचे की जानकारी की उपयोगिता इसी में है कि वह सजीव मनुष्य के जीवन में काम आए। वैसे ही टेकनीक साहित्य–सृजन में योग के लिए है।''[4] जैनेन्द्र की यह परिभाषा शिल्प विधि को रचना विधि से जोड़ती है।

डॉ. कैलाश वाजपेयी के अनुसार– ''शिल्प विधि रचना की उन प्रमुखताओं का लेखा–जोखा है, जिसके आधार पर रचना मूर्त हो चुकी है अथवा विशिष्ट भंगिमा के साथ लेखनी के द्वारा अवतरित हुई है।''[5]

डॉ. जवाहर सिंह साहित्य के संदर्भ में शिल्प को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि– ''शिल्प विधि से तात्पर्य किसी कृति के निर्माण की उन सारी रचना प्रक्रियाओं तथा रचना पद्धतियों से है, जिनके माध्यम से शिल्पकार या रचनाकार अपनी अमूर्त जीवनानुभूतियों, मनःप्रभावों तथा विचारों और भावों को मूर्त रूप देकर अधिकाधिक और सौन्दर्यमूलक बनाता है।''[6]

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के अनुसार– ''शिल्प विधि कला के विभिन्न तत्त्वों अथवा उपकरणों की योजना का वह विधान, वह ढंग है, जिससे कलाकार की अनुभूति अमूर्त से मूर्त हो जाए।''[7]

शिल्प विधि के अन्य पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए कैम्पवेल डबलेडी ने कहा है कि– ''अच्छे टेकनीक का अर्थ सही बात, सही ढंग से, उपयुक्त समय पर

करना। वही विषय चुनों जो तुम्हें रुचे और तब ऐसी शैली एवं टेकनीक चुनों जिसके सहारे वह विषय पाठकों तक मार्मिक ढंग से पहुँचाया जा सके।''[8]

उपर्युक्त परिभाषाओं से एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि 'शिल्प' वस्तु को अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया का वैशिष्ट्य है। अर्थात् 'शिल्प' का सम्बन्ध अभिव्यक्ति या अभिव्यंजना से है। इसमें कलाकार की अनुभूति की सच्चाई और गहराई होती है। शिल्प रचनाकार की प्रतिभा, सृजनशील कल्पना और अविराम साधना का परिणाम होता है, जिसके द्वारा वह अपने रचनात्मक लक्ष्य को प्राप्त करता है।

साहित्य सृजन की प्रक्रिया के कई सोपान होते हैं किन्तु उनमें प्रमुख दो स्तर उभर कर सामने आते हैं– साहित्यकार की अनुभूति और अभिव्यक्ति। शिल्प विधि का सम्बन्ध साहित्य के इन दोनों स्तरों से हैं। साहित्यकार की अनुभूति का रूपान्तर रचना के आशय अर्थात् भावपक्ष से हो जाता है और अभिव्यक्ति का रूपान्तर कला या व्यापक अर्थ में शैली पक्ष में हो जाता है। इन आधारों को सामने रखते हुए डॉ. श्रीमती ओम शुक्ल ने शिल्प के दो भेद किए हैं– आंतरिक शिल्प और बाह्य शिल्प। उनके अनुसार– ''आन्तरिक शिल्प का अर्थ है रचना सम्बन्धी वे प्रक्रियाएँ, जो साहित्यकार के मन में घटित होती हैं और बाह्य शिल्प से तात्पर्य भाषा और शब्द योजना के उन तरीकों और विधियों से है जिनकी सहायता से साहित्यकार अपने मनोभावों को अभिव्यक्त करता है।''[9] अर्थात् साहित्य सृजन से पहले रचनाकार मनन और विश्लेषण द्वारा अपने भाव जगत् का कोना–कोना खोजकर अपनी सामग्री इकट्ठा करता है और शब्द, भाषा, बिम्ब, प्रतीक आदि के माध्यम से अपनी कृति का कलेवर सजाता है।

गद्य साहित्य का शैलीगत अध्ययन

भाषा के माध्यम से शैली कृति में सर्वत्र विद्यमान रहती है। रचनाकार अपने भावों एवं कथ्य को विशिष्टता साभिप्रायता प्रदान करने के लिए अनेक घटक तत्त्वों को माध्यम बनाता है। ''शैली रचनाकार द्वारा किया गया भाषा का विशिष्ट चयन–संयोजन है और भावक के लिए शैली साभिप्राय भाषिक अग्र

प्रस्तुति है।''[10] रचनाकार कथ्य की मांग और प्रस्तुति सम्बन्धी विवेचन के अनुरूप विभिन्न शैलियों का इस्तेमाल करता है। प्रत्येक समर्थ रचनाकार अपनी कलात्मक श्रेष्ठता के अनुरूप निज को औरों से अपनी विभिन्नता दर्शाने के लिए अपनी विशेष शैली का ईजाद करता है। कारण यह है कि शैली अभिव्यक्ति की विशिष्ट पद्धत्ति होती है। जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने भावों और विचारों की अपेक्षा अपने को अधिक अभिव्यक्त करता है। अभिव्यक्ति के लिए रचनाकार का अपना उद्देश्य, स्वभाव, दृष्टिकोण, जीवन प्रणाली, आस्था–विश्वास, संदेह आदि व्यक्त होते चलते हैं। शैली ही रचनाकार की सोच–व्यवहार और मूल्य चेतना का प्रतिबिम्ब होती है। शैली ही व्यक्तित्व विशेष की परिचायक है। शिल्पगत शैली एक आवरण की तरह होती है जो कलाकार की आत्मा के मुख को ढकती है।

शैली अनुभूत विषयों को सजाने के उन तरीकों का नाम है, जो उस विषयवस्तु की अभिव्यक्ति को सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं। कहना ना होगा कि भंवर सिंह सामौर ने अपने गद्य साहित्य में अपनी इच्छित विषय वस्तु के सम्प्रेषण के लिए विभिन्न शैली रूपों का प्रयोग किया है।

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य की शैली का विवेचन करने से पूर्व शैली के स्वरूप, शैली : अर्थ निर्धारण आदि बातों को जानना अनिवार्य हो जाता है। अतः शैली का विस्तार से विवेचन निम्नानुसार है–

शैली का स्वरूप

शिल्प पक्ष में भाषा और शैली का अहम् स्थान है। भाषा भावाभिव्यक्ति का माध्यम होती है। भाषा किसी भी साहित्य को जीवन प्रदान करती है। कथानक यदि शरीर है तो भाषा उसके प्राण है। भाषा के माध्यम से ही विषय को एक निश्चित शिल्प के द्वारा गद्य साहित्य में प्रस्तुत किया जाता है। डॉ. त्रिभुवन सिंह के अनुसार– ''गद्य साहित्य को अर्थवता प्रदान करने का कार्य भाषा ही करती है। गद्य साहित्य की रचना शब्द और अर्थ के संयोजन से ही होती है। लेखक की अनुभूति स्वयं भाषा को पकड़ती है। अनुभूति जितनी तीव्र होगी, भाषा उतनी ही स्वाभाविक होगी। गद्य साहित्य की कथा में प्रवाह, रोचकता, क्रमबद्धता के

लिए अच्छी भाषा और उत्तम शैली का होना आवश्यक है। सामान्यतः देखा जाता है कि एक भाषा भाषी क्षेत्र में अनेक जातियां, धर्म, सम्प्रदाय के लोग रहते हैं जो परस्पर भाईचारा विनिमय के स्तर पर प्रभावित होते हैं। गद्य साहित्य में पात्रोचित भाषा का होना, मुहावरे व लोकोक्तियों का सटीक प्रयोग, तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी शब्दों का यथास्थान प्रयोग होना आवश्यक माना जाता है। ठीक इसी प्रकार गद्य साहित्य की रचना प्रक्रिया में शैली का विशेष महत्त्व होता है। शैली के माध्यम से विचारों और भावों को कलात्मक ढंग से बोधगम्य बनाना नितान्त सहज होता है। यदि गद्य साहित्य की कथा शैली उत्कृष्ट होगी तो भावानुभूति की गहनता और सघनता चिर स्थायी होगी। जो शैली जितनी ही वैविध्यपूर्ण होगी, उसका प्रभाव अनुभूतियों, विचारों तथा मान्यताओं पर उतना ही गहरा होगा। शैली लेखक की अपनी निजता से सम्पन्न होती है, शैली ही लेखक के व्यक्तित्व का दर्पण होती है। अन्य शब्दों में इसे अभिव्यंजना चातुरी कहना अधिक संगत होगा।''[11]

किसी भी साहित्यिक विद्या में भाषा के समकक्ष शैली को महत्त्व दिया जाता है। डॉ. ज्योत्सना शर्मा के अनुसार– ''भाषा को यदि साहित्य का शरीर मानें तो शैली को उसके शरीर का संगठन मानना होगा।''[12] शैली के स्वरूप एवं महत्त्व को स्पष्ट करते हुए बाबू गुलाबराय ने कहा है कि– ''शैली का सम्बन्ध कहानी के किसी एक तत्त्व से नहीं वरन् सब तत्त्वों से है और उसकी अच्छाई या बुराई का प्रभाव पूरी कहानी पर पड़ता है। कला की प्रेषणीयता अर्थात् दूसरों को प्रभावित करने की शक्ति शैली पर ही निर्भर करती है। किसी बात के कहने या लिखने के विशेष प्रकार को शैली कहते हैं। इसका सम्बन्ध केवल शब्दों से नहीं, वरन् विचार व भावों से है।''[13]

भारतीय काव्यशास्त्र में 'शैली' शब्द आधुनिक विद्वानों की एक नई उपलब्धि है। शैली का प्रयोग हमारे प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है, लेकिन आज उसका रूप बदला हुआ है। इसका अर्थ यह नहीं कि यह शब्द भारतीय वाङ्मय के लिए एकदम अपरिचित था, केवल आकार और प्रकार में ही अन्तर था। नामान्तर से हमारे विद्वानों ने इन दोनों में भेद–प्रभेद कर दिए हैं।

शैली शब्द व्यक्ति के वैयक्तिक वैशिष्टय की अपेक्षा उसके क्रिया व्यापारों एवं रचना–कौशल से अधिक चिपका हुआ है। ''शैली न तो केवल अनुभूत विषयवस्तु का धर्म है और न रहने का तरीका ही है, अपितु शैली की आत्मा मुख्यतः वे सम्बन्ध हैं, जिनके घेरे में अनुभूत विषयवस्तु को समेटकर खड़ा किया जाता है, एक व्यवस्थित और सुन्दर रूप प्रदान किया जाता है।''[14] जबकि शैली के आधारभूत शब्द 'शील' का सम्बन्ध व्यक्तित्व से अधिक है। व्यक्ति के स्थान पर व्यक्ति की कार्य पद्धति से शील का सम्बन्ध कैसे स्थापित हो गया इसका समाधान करते हुए कहा जा सकता है कि किसी भी व्यक्ति के शील का पता उसके कार्य व्यवहार से ही चलता है, या उसके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति क्रियाकलापों में ही होती है। अतः शैली को व्यक्तित्व के स्थान पर व्यक्ति के क्रियाकलाप पक्ष की विशेषता कहें तो अनुचित नहीं होगा। शास्त्र और विज्ञान में लेखक का सामान्य उद्देश्य भाव व्यंजना मात्र रहता है, जिस समय कोई लेखक भाव व्यंजना मात्र के उद्देश्य से ऊँचा उठता है और शब्द चयन अथवा वाक्य विन्यास का भी समुचित ध्यान रखकर अपनी लेखनी चलाता है, उसी समय शैली अथवा स्टाइल का जन्म होता है। किसी भी भाषा की लेखन शैली विचार शून्य तथा निरुद्देश्य लेखकों के हाथों से कभी परिमार्जित नहीं बनती। यह वस्तुतः भाषा की वैयक्तिक अभिव्यक्ति का विशेष ढंग है।

साहित्याचार्यों ने शैली के अनेक उपकरण माने हैं– शब्द, वाक्य, गुण, वृत्तियाँ और रीतियां, अलंकार, पद–विन्यास, छंद और शब्द शक्ति। इन उपकरणों के कुशल और सम्यक् उपयोग द्वारा ही एक श्रेष्ठ एवं परिष्कृत शैली की उत्पत्ति होती है। शैली अभिव्यक्ति का उन्नत रूप है। शैली के माध्यम से ही लेखक की प्रतिभा का परिचय मिलता है। भावों की कुशल अभिव्यक्ति ही शैली है।

शैली शब्दों का प्रसाधन है। इसका भावाभिव्यक्ति के साथ सम्बंध है। भावाभिव्यक्ति सौन्दर्य का साधन शैली है। शैली ही साहित्य का प्राण तत्त्व है। भारतीय प्राचीन काव्यशास्त्र में शैली के लिए समानार्थक शब्द 'रीति' है। 'रीति' को डॉ. विद्यानिवास मिश्र परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि– ''शैली का रीति

से सम्बन्ध, विशिष्ट पद रचना रीति से जोड़ते हैं।''[15] रीति और शैली का वस्तुपरक एक ही है। शैली विषयवस्तु के उत्कर्ष का साधन है।

शैली का अर्थ 'नालन्दा विशाल शब्द सागर में इस तरह बताया गया है कि– ''1. चाल/ढब/ढंग, 2. प्रणाली/तर्ज, 3. रीति/प्रथा, 4. वाक्य रचना का वह ढंग जो लेखक की भाषा सौन्दर्य सम्बंधी निजी विशेषताओं का सूचक होता है, स्टाइल।''[16]

भाषा शब्दकोश में 'शैली' का अर्थ इस प्रकार से अभिव्यक्त किया गया है– ''ढब, ढंग, चाल, प्रणाली, प्रथा, तरीका, तर्ज, रीति, पद्धत्ति, कौशल, रस्मरिवाज, वाक्य रचना का ढंग, स्टाइल।''[17]

राजपाल हिन्दी शब्दकोश में शैली का अर्थ इस प्रकार बताया है कि– ''1. ढंग, तरीका 2. विचार प्रकट करने का ढंग, 3. वस्तु निर्माण का कलापूर्ण ढंग।''[18]

'शैली' पर विश्वकोश में अपना लेख प्रस्तुत करते हुए ई. ए. टेनी ने लिखा है कि– ''शैली अस्पष्टता से भरा पद है। अतः सावधान आलोचक या तो इसे निभ्रान्ति सन्दर्भ में प्रयुक्त करता है अथवा इसके व्यवहार से दूर रहने का परहेज करने की कोशिश करता है।''[19]

शैली भाषा की अभिव्यंजना शक्ति की परिचायक है। फ्रेंच साहित्य में 'स्टाइल' मूलतः अर्थोपकर्ण से अभिव्यक्ति के सुन्दर ढंग के लिए प्रयुक्त हुआ है। 'स्टाइल' शब्द के विभिन्न युगों में विभिन्न अर्थ प्रचलित हुए हैं। ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी ने इसके पच्चीस से अधिक अर्थ दिए हैं। मूलतः यह ग्रीक के **'Styals'**(स्टाइल्स) तथा लैटिन के **'Styels'** (स्टाइल्स) से सम्बन्धित है। स्टाइल.... से ही व्युत्पत्ति मानी जाती है। फिर तो लिखने का ढंग, लिखित रचना, लेखक विशेष की अभिव्यक्ति को विशिष्टता, साहित्यिक रचना की रूपगत विशेषताएँ, बोलने का लहजा, रीति या प्रथा, किसी कलाकार की रचना पद्धत्ति की विशिष्टता या किसी युग, जाति, देश या वर्ग विशेष के कलाकारों की रचना पद्धत्ति की

विशिष्टता आदि। इस संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र कहते हैं कि– ''शैली शब्द अत्यंत प्राचीन है और इसकी व्युत्पत्ति शील से हुई है। शील का अर्थ है स्वभाव, जो कुन्तक के मत से रीति का नियामक आधार है। जिस प्रकार स्वभाव की अभिव्यक्ति का मार्ग रीति है, उसी प्रकार शील(स्वभाव) की अभिव्यक्ति पद्धत्ति शैली है।''[20] शैली विचारों का परिधान है। शैली भाषा का व्यक्तिगत प्रयोग है।

इस प्रकार शैली का मूल अर्थ लेखनी, क्रमशः विभिन्न अर्थों में विकसित होता हुआ लेखन की विशेषता तक पहुँच गया है। अब इसका प्रयोग लेखन क्षेत्र में ही नहीं कला कौशल के अन्य क्षेत्रों में भी पद्धति विशेष के लिए होता है। अभिव्यक्ति और भाषा प्रयोग की वैशिष्ट्य एवं प्रेषणीयता ही शैली है एवं व्यक्ति, विषय, भाषा एवं प्रयोजन के वैशिष्ट्य के द्वारा अभिव्यंजना पद्धति में जो वैशिष्ट्य आता है, वही शैली है। अतः वस्तुतः अभिव्यंजना पद्धति का वैशिष्ट्य ही शैली की आत्मा है, चेतना है, स्पंदन है। शैली के स्वरूप का निर्माण व्यक्ति के भाव, विस्तार और अनुभूति के व्यंजन से होता है। यह व्यंजना जिस समय गुण, क्षति, रीति और अलंकार आदि से प्रसाधित एवं श्रृंगारिक भाषा का परिधान पहनकर आती है तब सुन्दर शैली का रूप धारण कर लेती है। शैली का सौन्दर्य व्यक्ति की बौद्धिक गरिमा और उदात्त भावना पर अधिक निर्भर रहता है। इसके अतिरिक्त भाषा की सरलता, स्पष्टता और व्यावहारिकता शैली को अधिक प्रभावशाली और प्रांजल बनाती है। गद्य साहित्य में शैली का वही स्थान है जो मनुष्य में उसकी आकृति और वेशभूषा का है। शैली के प्रमुख गुण आकर्षकता, रोचकता, सरलता और प्रवाहपूर्ण हैं।

सामौर ने जीवन की विविधताओं, मार्मिक प्रसंगों और सूक्ष्म समस्याओं को अपने गद्य साहित्य का विषय बनाने और उसे अभिव्यक्त करने के लिए संरचना विविधरूप में अपनायी जाती है। आपने परम्परागत घेरे से आज के गद्य साहित्य को बाहर निकाला है जो अपनी अलग ही सरगम बजा रहा है। अतः गद्य साहित्य जीवन के हर खण्ड को मार्मिक क्षण, अर्थपूर्ण घटना, कथातंत्र में बाँधने में समर्थ है। संरचनात्मक पक्ष के नवीन पहलुओं और प्रयोगों का समीकरण गद्य साहित्य में दर्ज है। गद्यकार अपने अनुभवों और संवेदनाओं को

प्रकट करने के लिए शिल्प का ही सहारा लेता है। जब कलाकार का अनुभव कलाकार से बड़ा हो तो जान लेना चाहिए कि गद्य साहित्य का ढांचा बार–बार टूटेगा और बदलेगा। इसलिए गद्य साहित्य का संरचनात्मक पक्ष(अनुभूति पक्ष + अभिव्यक्ति पक्ष और वस्तुपक्ष + कलापक्ष) गद्य साहित्य का निर्माण करने में सहायक होता है।

हिन्दी गद्य साहित्य में सामान्यतः वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, आत्मकथानात्मक, संवादात्मक, नाटकीय, व्यंग्यात्मक, डायरी, पत्र, काव्यात्मक, लोककथात्मक, स्मृतिपरक, पूर्वदीप्ति, मनोविश्लेषणात्मक आदि शैलियां प्रचलित हैं। जीवन के गहनतम विविध पहलुओं का गहनतम ज्ञान, पाण्डित्य और विद्वता की छाप, बहुआयामी व्यक्तित्व के कारण आप छात्र जीवन से ही पुरस्कार और मान–सम्मान के हकदार रहे हैं। आपको प्रबुद्धजनों ने मान–सम्मान दिया हैं। आपका साहित्य लेखन नवीन प्रयोग पर आधारित है, जिसमें बहुपठन–पाठन, देशी–विदेशी, प्राचीन–अर्वाचीन साहित्य काव्यात्मक अनुभवों के साथ चिंतन–मनन हुआ है। आपने साहित्य लेखन में समरसता, समानता, बन्धुता के साथ अपने उत्तरदायित्व को निभाया है और साहित्यकारों की अग्रिम पंक्ति में स्थान बनाया है। आपने साहित्य लेखन धन एवं समृद्धि व प्रसिद्धि पाने के लिए नहीं किया है। आप अपनी लेखनी के प्रति सदैव वफादार और कर्त्तव्यपरायण बने हुए हैं जो युगानुरूप यथार्थवादी लेखन उनकी विशिष्टता का परिचायक है। अगर साहित्यिक दृष्टि से देखा जाए तो विधाओं एवं वैचारिकता की दृष्टि से आपने साहित्य जगत् को नई पहचान दी है। आपने गद्य साहित्य में विभिन्न शिल्पों एवं शैली की दृष्टि से नवीन जीवन दृष्टि का सूत्रपात किया है, जिससे निश्चित ही हिन्दी साहित्य को श्रीवृद्धि मिली है। आपने परम्परा के साथ परम्परा से हटकर नवीन शैलीगत प्रयोग किए हैं जो साहित्य जगत् में अतुलनीय है।

सामौर का साहित्य सामाजिक पक्षधरता का दस्तावेज है। वे न सिर्फ साहित्य लिखते हैं बल्कि उसे जीवन में जीते भी हैं। आपके शब्दों में लेखन मेरे लिए आत्मरति नहीं, समाज की जड़ स्थितियों पर प्रहार की तरह है। वर्तमान समय के

समाज पर यह मेरा लेखकीय हस्तक्षेप है। हस्तक्षेप से भी दो कदम आगे एक तरह से मेरी चेतना का दायित्व है, सामाजिक दायित्व। किसी रचना को लिखने से पहले मैं जितना बेचैन और उद्विग्न होता हूँ, लिखकर छप जाने के बाद भी न सिर्फ वैसा ही बना रहता हूँ, बल्कि पहले से ज्यादा बेचैन और उद्विग्न हो जाता हूँ, यह जानने के लिए कि मेरी बेचैनी पूरी तरह से पाठक तक सम्प्रेषित हुई या नहीं, क्योंकि रचनाएं जब तक एक्टीविस्ट की तरह काम नहीं करती, सामाजिक जड़ता पर प्रहार नहीं करती, पाठक को जागरुक नहीं बनाती, उसे शिक्षित नहीं करती तब तक उनका मकसद पूरा नहीं होता.... सच कहूँ तो अपने बच्चों की तरह ही मैं अपनी रचनाओं के लिए भी परेशान रहता हूँ कि अपनी भूमिका का वे सही तरह से निर्वाह कर रही या नहीं। वे मेरी हैं, उन्हें जन्म देने के बाद मैं निश्ंिचत कैसे हो सकता हूँ? स्पष्ट है कि आप सामाजिक सरोकार, समाज जागृति को अपने साहित्य का लक्ष्य मानते हैं। प्रत्येक साहित्यकार अपने–अपने समस्त पारिवेशिक दबावों से प्राप्त अनुभवों को अपने युग की विसंगत स्थितियों के चित्रण से, उन पर व्यंग्य करके साहित्य के जरिए समाज को सीधी राह पर चलने का निर्देश देता है। आपके साहित्य में 'कला कला के लिए' के पक्षधर न होकर 'कला जीवन के लिए' के पक्षधर हैं। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि साहित्य में कला को अनदेखा करने का वे समर्थन करते हैं परन्तु साहित्य में शिल्प को विषय–वस्तु पर हावी नहीं होने देते बल्कि इनके साहित्य में शिल्प विषय–वस्तु के उपकारक रूप में प्रकट होता है। भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में निम्नलिखित शैलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं–

1. **वर्णनात्मक शैली–** वर्णनात्मक शैली का आमतौर पर बहुत ज्यादा प्रयोग किया जाता है। इस शैली द्वारा साहित्यकार को अपेक्षाकृत विषय–विस्तार के लिए अधिक भूमि मिल जाती है। इस शैली के साहित्यकार को इतिहास की भांति साहित्य के चरित्रों तथा उनसे सम्बन्धित घटनाओं का इतिवृत्तात्मक वर्णन अपनी कल्पनानुभूति एवं जानकारी के आधार पर लिख देना होता है। इसे विवरणात्मक या व्याख्यात्मक शैली भी कहते हैं। इस शैली का प्रयोग साहित्यकार समेकित

घटनाओं, स्थानों या परिवेश का वर्णन अपनी कथ्य योजना के अनुरूप करता है। वैसे तो यह प्रस्तुतिकरण की प्रारम्भिक शैली है। आपने अपने गद्य साहित्य में इस शैली को प्रमुखता के साथ अपनाया है।

हिन्दी गद्य साहित्य में प्रायः वर्णनात्मक शैली का ही ज्यादा उपयोग होता आया है। यह प्रस्तुतिकरण की प्रारम्भिक शैली है। कथानक के स्थान, काल तथा वातावरण का निर्माण करने की संभावना कला सृजन के किसी दूसरे तत्त्व में ज्यादा नहीं रहती है। आज विषय विस्तार की जहाँ आवश्यकता अनुभव की जाती है या इतिवृत्तात्मक वर्णन देकर गद्यकार अपनी बात स्पष्ट करना चाहता है वहाँ यह शैली अपनायी जाती है।

गद्य लेखन में सर्वाधिक लोकप्रिय शैली वर्णनात्मक शैली है। डॉ. प्रतापनारायण टंडन के अनुसार– ''इस शैली में गद्य के सभी मूल उपकरणों में विकास की संभावनाएं विद्यमान रहती हैं। इसमें कथावस्तु में संग्रहित घटनाओं के प्रभावाभिव्यंजक रूप में वर्णित होने के लिए स्थान रहता है। पात्रों के स्वाभाविक चित्रांकन के लिए भी यह उपयुक्त है, कथोपकथन अथवा संवाद तत्त्व का भी आनुपातिक समावेश इसमें हो सकता है। देशकाल अथवा वातावरण के चित्रण के लिए भी इस शैली में उचित स्थान रहता है। उद्देश्य पूर्ति के विचार से इस शैली में लिखा गया गद्य साहित्य उत्कृष्ट सिद्ध होता है।''[21]

सामौर ने अपने गद्य साहित्य में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग बखूबी किया है। शेखावाटी के यशस्वी चारण नामक कृत्ति में 'दीवान जी का बास के रामनाथ' का वर्णन आपने इस शैली के प्रयोग से अत्यंत ही मार्मिक ढंग से किया है। ''लालपुरा(पोकरण) के तेजमाल रतनू को सीकर ठिकाने की ओर से 1500 बीघा भूमि चंदपुरा गाँव की प्रदान की गई थी। तेजपाल के तीन पुत्र रामनाथ, बद्रीदान व स्योबख्स थे। रामनाथ जयपुर रियासत के प्रथम मैट्रिक थे। ये जयपुर, किशनगढ़ व जोधपुर की कौंसिल के मेम्बर थे। किशनगढ़ के दीवान थे। जोधपुर के दीवान पद को कविराजा मुरारीदान आसिया के कहने से समाज हित में इन्होंने स्वीकार नहीं किया। सर प्रताप इनका बहुत सम्मान करते थे। ये इतिहास के नामी विद्वान थे। 'इतिहास राजस्थान' नामक इनका प्रसिद्ध प्रकाशित ग्रन्थ है। जयपुर के अमर सिंह चाम्पावत ने अपनी विशाल डायरी में इनके बारें में विस्तार से प्रकाश डाला है, जिसका प्रकाशन अमेरिका से हुआ है। उसके कुछ अंश

राजस्थान पत्रिका की नगर परिक्रमा में भी प्रकाशित हुए थे। इससे पता चलता है कि इनका व्यक्तित्व कितना महान् था। इनका विवाह कुबिया–बासी(बीकानेर) के महान् इतिहासकार दयालदास सिंढायच परिवार में हुआ था।''[22]

चूरू मण्डल के यशस्वी चारण नामक कृति में आप जीवन और ब्रह्माण्ड को विस्तार से वर्णित करते हैं कि– ''इक्कीस हजार छः सौ श्वास जीव एक दिन में लेता है। छः श्वासों का एक पल, साठ पलों की एक घड़ी, साठ घड़ी का एक दिन–रात, पन्द्रह दिन–रात का एक पखवाड़ा, दो पखवाड़ों का एक माह, दो महीनों की एक ऋतु, दो ऋतुओं का एक काल, तीन कालों का एक वर्ष, एक सौ वर्ष बीतने पर एक संवत्, कलियुग में यही एक सौ वर्ष मनुष्य की आयु मानी जाती है। इस संवत् का एक हजार वर्ष, एक हजार वर्ष के एक लाख वर्ष, कितने ही लाखों वर्षों का एक युग, चार–चार युग की चौकड़ी के छत्तीस युग, ऐसे छत्तीस युग इन्द्र की आयु होती है। जब चौदह इन्द्र हो जाए तब ब्रह्मा का एक दिन होता है। ऐसे दिनों के एक सौ बरस तक ब्रह्मा का जीवन है।''[23]

2. **आत्मकथात्मक शैली–** आत्मकथात्मक शैली को स्वकलात्मक शैली भी कहा जाता है, जिसमें लेखक पात्रों की जीवनगाथा उसके कथन से चित्रित करते हैं। इसे ही आत्मकथात्मक शैली कहते हैं। आत्मकथात्मक शैली में गद्य लेखक आत्मचरित अथवा आत्मकथा की भाँति प्रथम पुरुष के रूप में गद्य का वर्णन करता है। इस शैली में लिखा गया गद्य भाव संप्रेषण में अधिक सक्षम होता है। इसी कारण अन्य शैलियों की तुलना में इस शैली में लिखा गया गद्य साहित्य अधिक मर्मस्पर्शी प्रतीत होता है। आत्मकथात्मक साहित्य के विषय–विस्तार की अपनी सीमाएं हैं, जिसमें कल्पना का उपयोग एक सीमा तक और एक विशेष पद्धति से ही हो सकता है। सम्पूर्ण गद्य साहित्य में गद्यकार अपने मुख से प्रकटतः कुछ भी नहीं बोल सकता है और उसे जो कुछ भी कहना होता है, वह उसे चरित्रों के माध्यम से ही नहीं, बल्कि चरित्रों के रूप में ही कहता है। इस प्रकार गद्यकार गद्य के पात्रों का स्थान स्वयं ग्रहण करता है और एक–एक घटना का विवरण अत्यंत विश्वसनीय ढंग से प्रस्तुत करता है।

सामौर द्वारा रचित कृति 'चारण बड़ी अमोलक चीज' में आत्मकथात्मक शैली प्रयुक्त हुई है। संत कवि ओपा जी आढ़ा का परिचय आत्मकथात्मक शैली में इस प्रकार प्रस्तुत किया है– ''मध्यकालीन राजस्थान के सबसे ज्यादा महिमा–मण्डित, समलंकृत और राष्ट्रीय–चेतना के प्रथम कवि दुरसा आढ़ा (विक्रम संवत् 1599 से विक्रम संवत् 1712) से सातवीं पीढ़ी में संत कवि ओपा आढ़ा थे। दुरसा आढ़ा इसी भारमल (दुरसा के ज्येष्ठ पुत्र) चंदाजी, मानजी, अजबसिंह, बगतसिंह, ओपा आढ़ा। इनकी माता का नाम सुवा कुँवर था। प्राकृतिक सौन्दर्य से अभिमंडित और तपोभूमि की तरह विख्यात अर्बुदाँचल में ओपा आढ़ा के सरल जीवन और भक्तिमय काव्य रचना इतनी प्रसिद्ध हो गई थी कि इन्हें एक सिद्ध की श्रेणी में गिना जाता था।''[24]

'हमारे साहित्य निर्माता : रावत सारस्वत' नामक कृति में आत्मकथात्मक शैली अत्यंत ही मार्मिक रूप में प्रयुक्त हुई है– ''रावत सारस्वत का जन्म 22 जनवरी, 1921 को चूरू में सारस्वत ब्राह्मणों के कुर्विलाव नख में पिताश्री हनुमान प्रसाद सारस्वत के घर माता श्रीमती बनारसी देवी(श्री स्नेहीराम औझा की पुत्री) की कुक्षि से हुआ। अपने आठ भाई–बहनों(चार भाई, चार बहिन) में रावत सारस्वत सबसे बड़े थे। वर्तमान में इस पीढ़ी में कोई भी भाई या बहिन जीवित नहीं हैं।''[25]

'लोक पूज्य देवियां' नामक कृति में समस्त देवियों के परिचय में आत्मकथात्मक शैली प्रयुक्त हुई है। इन्द्रकुँवर बाई का परिचय आत्मकथात्मक शैली में– ''नागौर जिले के खुड़द(बेसरोली स्टेशन के पास) नामक गाँव में रतनू शाखा के चारण सागरदान के घर धापूबाई की कोख से विक्रम संवत् 1962 में इस देवी ने जन्म लिया। इनकी गणना देवी के नित्य अवतार के रूप में की जाती है। सात्विकता, शान्ति, क्षमा, धैर्य आदि गुणों से परिपूर्ण व्यक्तित्व था इनका। ज्योति(हवन) के पश्चात् सुबह–शाम कुछ समय के लिए ध्यानस्थ हुआ करती थी। देवी की भक्ति के द्वारा ही इच्छाओं की सफलता का रहस्य वे मानती थी। उनके देवी चमत्कारों की बहुत सी बातें कही सुनी जाती हैं। उनके व्यक्तित्व का महत्त्व इसी रूप में समझना चाहिए कि अनास्था के भँवर में डूबते समाज को इन्होंने आस्था का आधार प्रदान किया।''[26]

3. **संवादात्मक शैली–** सवांद शैली गद्य साहित्य को गति प्रदान करती है। चरित्र–चित्रण में कथोपकथन विशेष उपयुक्त सिद्ध होता है। जब विभिन्न पात्र परस्पर वार्तालाप करते हैं, तो वे एक–दूसरे की चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन तो करते ही हैं, साथ ही वार्तालाप के ढंग और शैली द्वारा अपने चरित्र पर भी प्रकाश डालते हैं। ''इस शैली की ठोस विशेषता यह है कि इसमें कथा अपने ठोस और विश्वसनीय रूप में उभरकर सामने आ जाती है और कोई अंश ऐसा नहीं आ जाता जो अनावश्यक और आडम्बरपूर्ण हो।''[27] मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित चरित्र–चित्रण भी संवादों पर ही आधारित होता है।

युगान्तरकारी सन्यासी में संवाद शैली का प्रयोग हुआ है। सामौर स्वामीजी के साथ विचार–विमर्श कर रहे हैं–

''सामौर– बदलते हुए विश्व की आधुनिकता को आप किस रूप में देखते हैं? किस रूप में अपनाने की सलाह देते हैं?

स्वामीजी– गिलहरी द्वारा भगवान् राम को पुल बाँधने में मदद देने के रूप में देखता हूँ। जो कार्य आपके सामने आए हैं उसे भगवान का भेजा हुआ मानकर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

सामौर– आपने अपने सेवा कार्यों में किस सेवा क्षेत्र को विशेष महत्त्व दिया है? इस तरह की सेवा को और क्यों?

स्वामीजी– मैंने समस्त सेवा को महत्त्व दिया है। सेवा का विभाग नहीं होता। जो सेवाकार्य सामने आ जाता है, वही करने का प्रयत्न करता हूँ। मोटर कार में जाते हुए किसी को दुर्घटनाग्रस्त देखता हूँ तो सब कुछ छोड़कर सबसे पहले उसकी चिकित्सा का प्रयत्न करूंगा।''[28]

इसी प्रकार स्वामीजी और श्री राम सुमेर का वार्तालाप– ''श्री राम सुमेर एकदम ही दौड़कर स्वामीजी के पास आए तथा दण्डवत् प्रणाम कर अपना परिचय दिया तथा बोले आज पहली बार मैंने एक सच्चे संन्यासी के दर्शन किए हैं। फिर श्रीराम सुमेर ने कहा– आपको मैं अपना सागर तटीय निवास भेंट करने आया हूँ। स्वामीजी ने कहा यह निवास तो आपका है, आपको ही रहना चाहिए। स्वामियों को तो सिर छुपाने के लिए कोई जगह चाहिए। अब तक तो श्री

रामदीन की यह जगह थी, अब आपका यह निवास भी हो गया है जहाँ यह स्वामी जब चाहे रह सकता है।''[29]

एक अन्य उदाहरण में संस्कृति पर उत्तर देते हुए की संस्कृति की सनातन दृष्टि ही व्यक्ति और उसके जीवन को वर्तमान, भूत और भविष्य को एक साथ जीवित रखने सहायक है। संस्कृति ही मानव जीवन का सांस्कृतिक आइना है जो उसका मार्ग प्रशस्त करती है। सनातन की दृष्टि के दो अर्थ है, प्रथम वर्तमान में जीवित रहते हुए अतीत से जुड़कर भविष्य के सुनहरे सपनों को उत्साह के साथ संजोये रखना तथा प्रकृति के साथ उत्साहित जीवन व्यतीत करना। दूसरा संस्कृति ही मनुष्य और उसके समाज व देश का आधार स्तम्भ होती है। संस्कृति की बदौलत ही मनुष्य आकाश की भांति विस्तार पाता है। अपना मान–सम्मान, कीर्ति और यश प्राप्त करता है। संस्कृति की सनातन दीठ के कारण ही मनुष्य अपनी सनातन परम्परा से जुड़ा रहता है। संस्कृति का अपना कोई आकार नहीं होता है, वह तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है।

लोक पूज्य देवियां में सामौर ने देवल देवी और पाबूजी के मध्य हुए संवाद को इस प्रकार वर्णित किया है–

''देवल बाई कैवो नै घोड़ी के रो मोल,
थांरी तो घोड़ी पाल राजा परण पधारसी।
पाबू रै बीरा घोड़ी रौ को मोल न तोल,
सिर के सट्टै तो केसर काळमी।
देवल बाई दयो नै पाबू ने आसीस,
थारी तो आसीसां पाल घोड़ी चढ़ै।
पाबू रै बीरा होसी थारो कुल में नांव,
अमर तो हो ज्यासी पाल राजा री छाँवली।।''[30]

4. **काव्यात्मक शैली–** भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में काव्यात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। काव्यात्मकता से गद्य साहित्य में जान आती है। यह शैली साहित्य को प्रभावशाली बनाती है।

'युगान्तरकारी संन्यासी' कृति में मदन मोहन मालवीय के आशीर्वचन जो उन्होंने स्वामी श्री कृष्णानंद जी महाराज सरस्वती को कहे थे, जिससे स्वामी जी

की जीवनधारा ही बदल गई थी, को सामौर ने काव्यात्मक शैली में मार्मिक रूप से अभिव्यक्ति प्रदान की है–

''दूध पिओ कसरत करो, सदा जपो हरि नाम।
मन लगाय विद्या पढ़ो, पूरेंगे सब काम।।''[31]

'युगान्तरकारी संन्यासी' कृति में जब स्वामी जी ने तय कर लिया कि वृद्ध समाज, जो कि मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है, को अपने कार्य के लिए छूना ही नहीं चाहिए। वे सब तो कोई आज तो कोई कल कूच करने वाले हैं को आपने काव्यात्मक शैली में इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

''नदी किनारे देखिए, सम्मन सब संसार।
के उतरे के ऊतरै, के बगुचा बाँध तैयार।।''[32]

'हमारे साहित्य निर्माता : रावत सास्वत' मे आपने एक ऐतिहासिक घटना का उल्लेख किया है। दलपत बीकानेर के महाराजा रायसिंह के विद्रोही पुत्र थे। एक बार विद्रोह कर रायसिंह को अपदस्थ कर दिया। रायसिंह दक्षिण में बुरहानपुर में शाही सैना का नेतृत्व कर रहे थे। वहीं उनकी मृत्यु हो गई। अन्तिम समय में उन्होंने अपने छोटे पुत्र सूरसिंह से कहा कि न केवल दलपतसिंह से बल्कि उसके सहयोगी कर्मचन्द बच्छावत, मानमहेश पुरोहित, चौथ बारहठ, लालजी सामौर एवं गोविन्द सुजावत बीठू से भी प्रतिशोध लेना है। दलपतसिंह बीकानेर के शासक बन गए। सूरसिंह ने जहाँगीर की सहायता लेकर दलपतसिंह को अपदस्थ कर दिया। इस घटना का साक्षी लालजी सामौर का दोहा प्रसिद्ध है, भंवर सिंह सामौर काव्यात्मक शैली में लिखते हैं–

''फिट बीकां फिट कांधलां, जंगळधर लेडांह।
दळपत हुड पकड़ावियो, भाज गई भेड़ाह।।''[33]
''जावे गढ़ राज भलां भल जावो, राज गयां नहं सोच रती।
गजब हुवै कविराज गयां सूं, पलटै मत बण छत्रपती।।''[34]

'चूरू मण्डल के यशस्वी चारण' में सामौर की काव्यात्मक शैली–

''तिथ तेरस पख च्यानणों, समत चौतीसै साल।
जिण दिन सामौर जलमियौ, इल रावळ जगमाल।
समत सात सितानवै, चैत तीज रवि साल।

बांटी मावल खंग बळ, औ रावळ जगमाल।।''[35]

''सीस दिपै सिन्दूर, माळा बिच अन्तर महक्कै।

बाजत बीण बेहद्द, डाक बाजै इक डंकै।

घूघर पाय घमंक, लाल लूंगी लटियाळौ।

बणे बास अकास, किलक कर खेले काळौ।

खेतला बीर मोटा खिती, भण जाणू गुण भेदनैं।

आप ही पुत्र दिज्यौ अबै, मिणधारी उम्मेद नै।।''[36]

'शेखावाटी के यशस्वी चारण' में आप चारणों की महत्ती भूमिका का उल्लेख करते हैं कि जब समाज के संघर्षी सूर वीरों को समाज भूल जाता है तो उसकी पराकाष्ठा की यशस्वी बातें स्मरण कराकर चारण ही उसे समाज में स्मरणीय बनाते हैं। इसकी बानगी सामौर की काव्यात्मक शैली–

''आखै मान सुणो अधपतियाँ, क्षत्रियाँ कोई न करज्यौ खीज।
वरदायक बहता मद वारण, चारण बड़ी अमोलक चीज।''[37]
''बार बार रसना रटै, दस दिस ना दातार।
मो त्रस्ना तोसूं मिटै, किसना राजकंवार।।''[38]

'शंकरदान सामौर' कृत्ति में आप कृत्ति के मुख पृष्ठ के आवरण की चित्रकारी करने वाले चेलदान सामौर की प्रशंसा करते हुए काव्यात्मक शैली में लिखते हैं–

''पांव चोंच आंख्यां परा, कांधी किलंगी कोर।
यण पौथी रै ऊपरै, मांड्यो चेलै मोर।।
संकरिये सामौर रा, गोळी हन्दा गीत।
मिन्तर सांचा मुलक रा, रिपुवां उल्टी रीत।।''[39]

सामौर ने 'चूरू मण्डल के यशस्वी चारण' में फूहड़ स्त्री के चरित्र को काव्यात्मक शैली में चित्रित करते हुए लिखा है कि–

''बैठे नळा पसार, जरख ज्यूं जाड़ बजावै।
गण्डक ज्यूं गुरराय, सेर ज्यूं साम्ही आवै।
ओछो घाघर पहर, देय मचकोळो चालै।
लग ज़्यावै जिणलार, हियौ डोढत्थौ हालै।
घरणी इसी आवै घरां, ज्यारै पुन्नः पूरज्या पुरबलौ।
बारठ पाबू सांचौ बकै, ई परणे सूं रंडवौ भलौ।''[40]

'आऊवा का धरना' कृत्ति में आप इस धरने की शुरुआत करने के उद्देश्य स्पष्ट करते हुए काव्यात्मक शैली में लिखते हैं कि–

''सोळासेह संवत, ताम तै बरस तिंयाळौ।
उदक धरा ऊथपी, चा'ळो चक्रवातियों चाळ्यौ।
खेरावतियां रावतां, तलब मेल्हे तेड़ाया।
चारण ब्रामण भाट, आउवै सारा आया।
अप हत्थ करण नव नव अणी, रहै सीस ऊपर रुठा।
राव सिर मरण धरणौ रचे, आण मिल्या सब्र एकठा।।''[41]

'लोक पूज्य देवियां' में आपने सोनबाई व अरढीला के हम्मीर जी गोहिल के बीच संवाद का वर्णन काव्यात्मक शैली में–

''बेहलो आवे वीर, सोमैया तणी।
हिल्लोळवा हमीर, भलां अणियां भीमड़त।
तूं पड़ते पड़ियाह, हर शशियर ऊमापति।
छो चूड़ा चड़ियाह, भुज तो मांगे भीमड़त।।[42]

'चारण बड़ी अमोलक चीज' कृति में आप 'सूरज प्रकाश' कृत्ति रचनाकार के व्यक्तित्व के बारे में काव्यात्मक शैली में लिखते हैं–

''सत्रै सै समत सत्यासिये, बिजैदसमी सनिजीत।
बदि कार्तिक गुण बरणियों, दसमीवार अदीत।।
वणियौ गुण एक बरस बिच, उकति अर्थ अपार।
छन्द अनुष्टुप करिउजन, सतपंच सात हजार।।''[43]

5. **वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग–** सामौर ने अपने साहित्य में वैज्ञानिक शब्दावली को भीस्थान दिया हैं। आप शक्ति के सन्दर्भ में 'राजस्थानी शक्ति काव्य' में शरीर के संदर्भ में लिखते हैं कि– ''वैज्ञाानिक मान्यता के अनुसार भी कण–कण में शक्ति निहित है। लोक में भी पदार्थों की शक्ति गति से मापी जाती है। चलने–फिरने, भार उठाने, कार्य करने, सोचने, समझने का सामर्थ्य या गति ही

शक्ति कहलाती है। गति या शक्ति सभी जड़ या चेतनों में होती है। एक परमाणु के विखण्डन से इतनी ऊर्जा उत्पन्न होती है कि उससे बड़े से बड़ा देश नष्ट हो सकता है। हमारा शुक्र जीव कणों से बना है। जिन्हें कोष कहा जाता है। प्रत्येक जीवकण में भी गति होती है। ये व्यवस्थित रूप में एक दूसरे के प्रति आकृष्ट और विकृष्ट होते हैं। इसी प्रकार जड़ पदार्थों का प्रत्येक कण अणु और परमाणु भी अनेक विधुत कणों से बनता है। विधुत दो प्रकार का होता है– पोजिटिव और नेगेटिव। पोजिटिव के चारों ओर नेगेटिव एक सैकेण्ड में एक लाख अस्सी हजार मील की रफ्तार से गतिमान है। इसी प्रकार परमाणु, प्रभाणु, कर्षाणु तथा सर्गाणु के सम्बन्ध में समझना चाहिए तथा इससे आगे वाणी भी मौन हो जाती है। आधिभौतिक(मेटा फिजिकल) पृष्ठभूमि में देखें तो पुरुष प्रकृति का चित्रण वराह तन्त्र में मिलता है जिसके अनुसार स्त्री में गर्मी–सर्दी, बीमारी आदि सहन करने की शक्ति पुरुष से चौगुनी ज्यादा होती है। उसके 121 नाड़ियाँ पुरुष से ज्यादा हैं। इस धरती पर जितने भी कार्य होते हैं वे नेगेटिव चार्ज(रिसीवर) के माध्यम से ही सम्पन्न होते हैं– खाना, पीना, देखना, सुनना, बोलना, विचारना आदि। इसी प्रकार आपने गणितीय सिद्धान्त को भी साहित्य में जगह दी है– पॉजिटिव 5 × नेगेटिव 2 = $10X^5$(पंच तत्त्व)=50 + ईथर = शक्ति।'' [44]

6. **आँचलिकता–** सामौर के साहित्य में आँचलिकता की भरमार है। आपने अपने साहित्य में अंचल विशेष का साहित्यांकन किया है। आप के साहित्य में गाँव–गाँव, ढाणी–ढाणी के सदियों से उपेक्षित चारण साहित्कारों को उजागर करने का सुनहरा प्रयास किया है, जिससे इनके साहित्य में आँचलिकता का समावेश अपरिहार्य रूप से हुआ है। आँचलिक बोली का सांस्कृतिक रुझान अत्यन्त ही मनमोहक और साहित्य श्रीवृद्धि में सहायक होता है। आँचलिक बोली जैसी उन्मुक्तता और जीवंतता ब्रज, अवधी, खड़ी बोली या मैथिली में नहीं है। आँचलिक बोली अभी भी और आज भी अनपढ़ है पर इसके बावजूद इसका खुरदरा सौन्दर्यं मैथिली या ब्रज व अन्य की सुचिकणता की तुलना में कहीं अधिक ऊर्जावान है। आँचलिक बोली संवाद के रूप

में प्रयुक्त हुई है। आँचलिक बोली का मूल रूप खरा है इसलिए संवादों में स्वाभाविकता और जीवंतता आ गई है। आँचलिक बोली का प्रयोग साहित्य की जरुरत, पात्रों की परिवेशगत स्थिति, लोकजीवन, लोकभाषा के कारण यह आँचलिक बोली का रूप अधिक निखर आया है। आँचलिक बोली की सौन्दर्यता तथा बोली की मिठास आपके गद्य साहित्य में दृष्टिगोचर होती है।

7. **पूर्वदीप्ति–** इसे फ्लैशबैक शैली भी कहा जाता है। 'फ्लैश' का अर्थ होता है प्रकाश और 'बैक' का अर्थ होता है पीछे। फ्लैशबैक(पूर्वदीप्ति) यानि पिछले जीवन को प्रकाशित करना, उजागर करना। व्यक्ति के जीवन में उतार–चढ़ाव आते रहते हैं। साहित्य में पात्र अपने वर्तमान जीवन में कभी–कभार अतीत में झाँकता है। उस घटना को याद करता है। कभी–कभी उस घटना पर उस पात्र के भविष्य की झलक होती है। कभी–कभी अपरिचित आकृतियाँ पूर्व परिचित आकृतियों से इतनी मिलती–जुलती हो सकती है कि अतीत की ओर मन को विवश होकर जाना ही पड़ता हैं। पूर्वदीप्ति शैली के कारण मनःस्थितियों का बहुत सूक्ष्मता से अंकन हो जाता है।

सामौर के गद्य साहित्य में फ्लैशबैक शैली का प्रयोग मिलता है। फ्लैशबैक शैली से यह लाभ होता है कि मनोदशा या मनःस्थितियों का बहुत ही सूक्ष्म विश्लेषण संभव हो पाता है। मन की गुफा में सरलता से प्रवेश किया जा सकता है। गद्य को विभिन्न मोड़ों पर अन्विति दी जा सकती है और पात्रों का परिस्थितियों की टकराहट में चित्रांकन किया जा सकता है। आपके गद्य साहित्य में फ्लैशबैक शैली का सशक्त प्रयोग मिलता है। आप अपनी कृति 'हमारे साहित्य निर्माता : रावत सास्वत' में अपने अतीत को याद करते हुए कहते हैं कि– ''दिसम्बर, 1989 में मैं उनसे मिलने गया। सारस्वत बरामदे में सो रहे थे। बैठे हुए। आँखों में चमक आ गई। पूछा समाचार मिल गया क्या? मैंने कहा इसीलिए तो आया हूँ। फिर बैजनाथ जी के समाचार पूछे तथा कहा बैजनाथ जी भी राजस्थानी आंदोलन की नींव के पत्थर हैं। मैंने उन्हें धैर्य बंधाते हुए कहा आप चिन्ता न करें। आपका लगाया वृक्ष आगे घेर–घुमेर बिरछ बनेगा। हम आपके बताए मार्ग पर चलते रहेंगे, जब तक मंजिल नहीं मिल जाती। सुनकर बहुत प्रसन्न हुए।''[45]

8. **साक्षात्कार शैली–** यह आज बहुप्रचलित शैली बनती जा रही है। रेडियो और टीवी ने इसे और अधिक चमका दिया है। इसमें लेखक किसी विशिष्ट व्यक्तित्व से भेंट करता है। साहित्यिक, दार्शनिक, सामाजिक, राजनेता या कलाकार और उसके चिंतन, मान्यताओं, विचारधारा और कृतित्व के विभिन्न पहलुओं पर पूछताछ करता है। इसके साथ ही लेखक उसके रहन–सहन, भाव–मुद्रा, व्यक्तित्व से सम्बन्धित बिन्दुओं को भी टटोलकर अपनी भेंट वार्ता में उभार देता है। इसमें प्रायः उनकी मान्यताओं, चिंतन, लेखन आदि को उसके सोच के आधार पर समझाने का प्रयास करता है, क्योंकि इसमें लेखक उससे अनेक प्रकार के प्रश्न करता है और उसके उत्तर पर अपनी प्रतिक्रिया या किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा की गई टिप्पणी का उल्लेख करके और अपने को अधिक स्पष्ट करने का अवसर भी प्रदान करता है। इसके मूल में दो धारणाएँ काम करती हैं। पहली जिज्ञासा, दूसरी उसके यथार्थ रूप को समझने की भावना। आपके गद्य साहित्य में साक्षात्कार शैली का सफल प्रयोग हुआ है। युगान्तरकारी संन्यासी में आप और स्वामीजी के मध्य साक्षात्कार का सफल अंकन–

''सामौर– प्राचीन काल में विकसित भारत का आधुनिक काल में पिछड़ा बनकर रह जाने का मुख्य कारण क्या है?

स्वामीजी– अंधा अंधा क्यों है? बस

सामौर– भारत की आर्थिक विषमता एवं राजनीतिक दुर्दशा को धर्म और आध्यात्मिकता की सहायता से कहाँ तक सुधारा जा सकता है?

स्वामीजी– जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ कि भारत की आध्यात्मिकता ही उसके सम्मान और महानता का कारण है। हमारी इस आध्यात्मिकता में अर्थ का त्याग हमारे महान् गुणों में माना जाता है। रामायण में भरत के मुँह से कहलवाया गया है– त्रिवेणी संगम पर प्रार्थना करते हुए भरत से जब गंगाजी ने पूछा– क्या चाहते हो? तो भरत ने कहा था– जन्म–जन्म रुचि राम पद यह वरदान न आन। इस उत्तर में हमारी परम्परा की महानता है। संग्रह करना व परिग्रह करना अवगुण माने जाते हैं। इसी कारण हमारे यहाँ वैश्यों की वैश्यवृत्ति को तीसरा स्थान दिया गया है।''[46]

सामौर– दुनिया के विकास और विनाश में वर्तमान विज्ञान की क्या भूमिका?

स्वामीजी– "विज्ञान अपने आप में न किसी का विकास करता है, न विनाश। जिन विचारों से प्रेरित होकर मनुष्य विज्ञान का उपयोग करता है, उसी पर इस बात का दारोमदार है कि वह विज्ञान का क्या और कैसा उपयोग करेगा। हवाई जहाज से भूखों के लिए अन्न, रोगियों के लिए दवा भी बरसा सकते हैं। यदि विरोधियों के प्रति वैर है तो वही हवाई जहाज बम बरसा सकता है। हमने एक बटन दबाया कि कमरे में रोशनी हो गई। उस रोशनी में हम ज्ञान की बातें भी लिख सकते हैं तथा यदि हमारे विचार द्वेष व वैर–विरोध से प्रभावित है तो हम बुराई की बाते भी लिख सकते हैं।

सामौर– आज मॉरीशस में कैसी व्यवस्था है?

मॉरीशस आज बहुत अच्छी स्थिति में है। वहाँ उत्तम व्यवस्था है। पहले मॉरीशस में कोई बसना नहीं चाहता था। आज जो भी मॉरीशसवासी हैं वे सब बाहर से आए हैं। ''संख्या व वोटों की दृष्टि से भारतीय सबसे ज्यादा है। धन की दृष्टि से गोरे ईसाई सबसे धनी हैं। धर्म की दृष्टि से मुसलमान सबसे ज्यादा संगठित हैं। ज़मीन व चीनी के कारखानों के मालिक गोरे हैं। पहले मजदूर या कुली भारतीय ही थे। जब से जनजागरण हुआ है और देश स्वतन्त्र हुआ है, तब से भारतीय नौकरियों में आये हैं। अच्छे शिक्षित हो गये हैं। संगठित हो गये हैं और वे अब व्यापार–धन्धे में भी आ गए हैं।''[40]

मॉरीशस लोक–कल्याणकारी राज्य है। यहाँ शिक्षा मुफ्त है। यहाँ चिकित्सा मुफ्त है। वृद्धावस्था पेंशन है। विधवाओं को सहायता है। वहाँ कोई बिना घर का नहीं हैं। वहाँ कोई बेकार नहीं है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि साक्षात्कार शैली ने इस पुस्तक की उपादेयता को बढ़ा दिया है।

अंलकारिता एवं अर्थ गाभीर्य

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में अंलकारिता एवं अर्थ गाभीर्य प्रकृति चित्रण में प्रकृति का रम्य चित्रण युगान्तरकारी संन्यासी कृति के मॉरीशस में

युगाांतर उपशीर्षक में अलग–अलग मनोभावों व उपमाओं, प्रतीकों के अपुपम बिंबों में देखा जाता है। स्वामीजी ने इन्हीं सात दिनों के अल्प समय में मॉरीशस की प्रकृति को सागर के सौन्दर्य को सदा के लिए हृदयगम कर लिया। 'स्वामीजी को जलपरियों का देश मॉरीशस सूरज की हथेली पर मुसकराते फूल जैसा लगा।' प्रकृति के सुन्दरतम रंगों वाला यह देश स्वामीजी को एक सुहाने सपने काल्पनिक बिंब जैसा लगा।

अंलकारों की अनुपम छटा देखते ही बनती है– ''अफ्रीका, आस्ट्रेलिया एवं भारत जैसी समृद्ध संस्कृतियों से घिरे विशाल हिंद महासागर की गोद में खेलते–इठलाते मॉरीशस को जल पर जीवन का देश कहें या 'जलपरियों का देश,' सूरज की हथेली पर मुसकराते फूलों का देश कहें या प्रकृति के सुन्दरतम रंगों का देश, पलाश के घने वनों वाला देश कहें या मखमली परतों वाला बाग–बगीचों का देश, चाँद से होड़ लेते पर्वत शिखरों वाला देश कहें या कलकल नाद करते झरनों का देश, बलखाते इठलाते निरंतर प्रवाहमान नद–नालों का देश कहें या भरी–पूरी हरियाली के बीच छिपे–बसे शिशु–शावक से गाँवों का देश, इंद्रधनुषी रंग बिखराते आसमान का देश कहें या सौंदर्य की उदात्त कल्पना का देश, पुरातन अभिजात्य और अधुनातन स्थापत्य की सांझी याद का देश कहें या परिष्कृत भाव–भंगिमाओं वाले लोगों का देश, लहलहाते गन्ने के खेतों का देश कहें या दुनिया के सबसे मीठे अनन्नासों, पपीतों, आम, लीची, अमरूद, केले व सेब का देश, हरी साग–सब्जियों व मौसमी फसलों का देश कहें या नारियल के अमृतोपम पानी का देश, एक साथ खिलखिलाते फूलों जैसे जाड़े का देश कहें या सूरज की सतरंगी किरणों से अठखेलियाँ करते इंद्रधनुषी सपनों का देश, आँखों में आशा का उजास भरने वाले प्रकाश का देश कहें या समुद्र तट की रेती के प्राकृतिक बिछौने का देश।' अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रोपम वर्णन है। एक साथ मानस पटल पर अनेकानेक सतरंगी चित्र अंकित होने लगते हैं। मन मॉरीशस में पहुँच जाता है।

उपमानों का अनुपम समुच्च्य 'पलाश के घने वन, मखमली परतों वाले बाग–बगीचे, चाँद से होड़ लेती पर्वत–मालाएँ, हँसी बिखेरते झरने, बल खाती, इठलाती नदियाँ, भरपूर हरियाली के बीच आँख–मिचौली खेलते गाँव तथा इन्द्रधनुषी रंग बिखेरता आसमान देखकर स्वामीजी ने साक्षी दी कि धरती पर मॉरीशस की रचना के बाद ही ईश्वर ने स्वर्ग की रचना की।'

अंलकारों का मणिकांचन स्वरूप 'इसे गन्ने का देश कहूँ या दुनिया के सबसे मीठे अनन्नास का देश कहूँ या पपीता या आम या लीची या अमरूद या केले या सेब का देश कहूँ। मॉरीशस ने सचमुच स्वामी जी का मन मोह लिया। विरोधाभास यह है कि जिन स्वामीजी ने कंचन से मुक्ति पा ली? उनके मन को प्राकृतिक सौंदर्य ने मोह लिया।

बिबों का चित्रोपम उदाहरण आपने अपने मन के सभी इद्रधनुषी रंगों को प्रकृति चित्रण में छिटक दिया है। इसलिए ही प्रकृति का साकार जीवंत चित्रण उभर कर आया है। युगांडा में बारा राष्ट्रीय उद्यान एक बहुत ही रम्य स्थल है, जहाँ एक समय लाखों की संख्या में वन्य पशु थे। यहाँ पर बड़ी ऊँचाई से नील नदी गिरती है और मर्चीशन प्रपात बनाती है। हाथी, सिंह जेबरा, जंगली भैंसे, मगरमच्छ, हिप्पो, विल्डर बीस्ट, जिराफ आदि देखने के लिए संसार के कोने–कोने से पर्यटक प्रतिवर्ष वहाँ आते हैं। मर्चीशन प्रपात तो दुनिया का माना हुआ दर्शनीय स्थल है ही।

रचना प्रक्रिया– भाषा अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। यह पूरी तरह सामाजिक और परम्परागत रूप से अर्जित होती है तथा सभी इसे अनुकरण द्वारा प्राप्त करते हैं भाषा के माध्यम में विचारों का मौखिक व लिखित रूप में परस्पर आदान–प्रदान किया जाता है। भाषा के अनेक रूप व प्रकार विकसित किए गए हैं। हालीडे के शब्दों में– ''कार्य के अनुरूप भाषा में विविधात्मकता आती है। वह विभिन्न परिस्थितियों के अनुरुप बदलती जाती है। वह किसी विषय का कार्य विशेष के लिए सतत् रूप में प्रयोग में लाई जाने के आधार पर तद्नरूप नाम पा लेती है।''[47]

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में प्रगतिशीलता देखी जा सकती है। इनके साहित्य में भाषा के तौर पर विविधता मिलती हैं। आपने अपने गद्य साहित्य के कथ्य अलग–अलग परिवेश से लिए हैं और भाषा के स्तर पर भी परिवर्तन लिए हैं। आपकी भाषा हमारे आस–पास के परिवेश से जुड़ी हुई भाषा है। इसलिए वह पढ़ने वाले और सुनने वाले को समधुर लगती है। आपकी भाषा को निम्नांकित मुद्दों में विभाजित करके विवेचन का प्रयास किया गया है। गद्य साहित्य में आये हुए शब्द प्रयोग, कहावतें, मुहावरों का प्रयोग, अलंकारों का प्रयोग, राजस्थानी भाषा, पंजाबी भाषा, कन्नड़ भाषा, बंगाली भाषा आदि का विवेचन करेंगे।

राजस्थानी भाषा का प्रयोग

भंवर सिंह सामौर ने अपने गद्य साहित्य में राजस्थानी भाषा का भी प्रयोग किया है। इनके साहित्य में राजस्थानी भाषा का स्थान और परिवेश के अनुरूप प्रयोग हुआ है। आपने गद्य साहित्य में राजस्थानी भाषा के शब्दों का प्रचूरता के साथ प्रयोग गद्य में स्वाभाविकता और सप्राणता लाने के लिए किया हैं। आपने गद्य के पात्रों के साथ भाषा के सम्बन्ध में अन्याय नहीं किया है। केवल भाषिक प्रौढ़ता या विद्वत्ता दिखाने के लिए इन्होंने कहीं पर भी राजस्थानी भाषा का प्रयोग नहीं किया हैं बल्कि गद्य साहित्य को प्रवाहमयता व सरसता प्रदान करने के लिए किया है।

सामौर के गद्य साहित्य की विभिन्न कृतियों में आए कतिपय राजस्थानी शब्दों का विवरण निम्नानुसार हैं– लंगोटी, रजवाड़ा, धूंध, घेर घुमेर, बोरों में भरी, खांपवार, टकशाली, दुहाले, ऐठ दिखाना, ठेठ, छबरकाळों, ताकजे, राखज्यो, चालिजै, कह्या, मिल्या, पड़ैली, संचर, पोळी, तोरण, केकरण, ओळग, सुजाण, मीसण, झीनी दृष्टि, अमोलक, पुरखा, आड़े वक्त, काळजे की कोर, मनवार, साख, पगडंडी, रोळा, टोळी, सिकोड़ना, पण्डो, अूलजलूल, राजे–रजवाड़े, छिन्न–भिन्न, सूझ–बूझ, सुवासणी, झंवर, कोढ़ियों, ज्योंही, हड़बड़ी, झांझ, माई का लाल, दुखड़ा, मँढ़ाई, देवलिया, ओछापन, मेंढ़ा, जुबान, झांकना, जामाता, कुण्डाळिया, जौहर– साके, आसोज, तेरस, राखड़ी, उगण, आथण, जुझारू, बैताळ, कांकड,

टूळी, लूंठी, महतावू, मांडण, बीसळ, बळावळ, फाचरां, मूळकत, अवसाण, ढाळतो, दखणियां, चाळ, कळह, परमांण, भांचळिया आदि।

संस्कृत भाषा के वाक्य– सामौर ने गद्य साहित्य में बड़े विचारपूर्वक संस्कृत भाषा के शब्दों और वाक्यों का प्रयोग किया हैं, जिससे साहित्य में जीवंत व्यक्तित्व उपस्थित हुआ है। आप अपनी कृति युगान्तरकारी संन्यासी में स्वामी कृष्णानन्द जी के जीवन के सन्दर्भ में लिखते हैं कि उनका जीवन गीता के अनुरूप था–

''लभंतेब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः।''[48]

निष्काम कर्म के प्रति आप लिखते हैं कि जिस प्रकार अज्ञानी मनुष्य फल की कामना से निरन्तर कर्म में लगा रहता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष को निष्काम–भाव से लोक संग्रह के उद्देश्य की इच्छा से प्रेरित होकर कर्म में लगे रहना चाहिए। इसे गीता के श्लोक के माध्यम से आपने साहित्य में स्थान दिया है–

''सक्ता कर्मण्येविद्वांसो यथा कुर्वंति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्।।''[49]

भोजन से पूर्व किए जाने वाले मंत्रजाप को आपने साहित्य में स्थान देते हुए लिखा है कि–

''ॐ सहना ववतु। सह नौ भुनक्तु। सहवीर्यं करवावहै।
तेजस्वी नावधीमस्तु मा विद्विषावहै।।
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।''[50]

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि आपकी भाषा में प्रसंगोचित परिवर्तन है। सामान्य वार्तालाप में जहाँ इनकी भाषा सामान्य बोलचाल की हो जाती है, वहीं गम्भीर एवं चिन्तनशील विषयों सम्बधित प्रसंगों में और उच्च दर्जे के साहित्य में हिन्दी का गम्भीर और परिष्कृत रूप सामने आता है तो कुछ अवसरों पर वह तत्सम प्रधान तथा अलंकृत बन जाती है। आपकी भाषा अत्यन्त पारदर्शी, बिम्बात्मक और मनोदशाओं की सूक्ष्म थरथराहट को उसके सारे संगीत और लयात्मकता के साथ प्रस्तुत करने में सक्षम है। युगान्तरकारी संन्यासी में बारा

राष्ट्रीय उद्यान एवं मर्चीशन प्रपात का प्राकृतिक सौंदर्य आपने इसी प्रकार चित्रित किया है कि प्रकृति का साकार जीवंत चित्रण उभर कर आया है। युगांडा में बारा राष्ट्रीय उद्यान एक बहुत ही रम्य स्थल है, जहाँ एक समय लाखों की संख्या में वन्य पशु थे। यहाँ पर बड़ी ऊँचाई से नील नदी गिरती है और मर्चीशन प्रपात बनाती है। हाथी, सिंह जेब्रा, जंगली भैंसे, मगरमच्छ, हिप्पो, विल्डर बीस्ट, जिराफ आदि देखने के लिए संसार के कोने–कोने से पर्यटक प्रतिवर्ष वहाँ आते हैं। मर्चीशन प्रपात तो दुनिया का माना हुआ दर्शनीय एवं मनोरम स्थल है ही।

1. शब्द विधान

"वास्तव में शब्द 'ब्रह्म' है, शब्द जीवन–शक्ति है, शब्द जीवनदायक अमृत है और विश्व की समस्त भाषाओं का आधार है।"[51] आपने अपने गद्य साहित्य में भाषा में सौन्दर्य तथा सृजनात्मकता लाने के लिए शब्दों के विविध रूपों का प्रयोग किया है। साहित्य के विभिन्न पात्रों की परिस्थितियों एवं विचारों के अनुरूप देशी–विदेशी, तत्सम्–तद्भव शब्दों की भरमार हुई है। आपके गद्य साहित्य में विभिन्न प्रकार की शब्द योजना का विवेचन प्रस्तुत है–

संस्कृत शब्द(तत्सम् शब्द)

सामौर ने गद्य साहित्य में संस्कृत भाषा के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया हैं, जिससे साहित्य में जीवंतता और सरसता व विचारगाम्भीर्य प्रकट होता है। आपकी कृति 'हमारे साहित्य निर्माता : रावत सारस्वत' में प्रयुक्त तत्सम शब्दावली–अमूल, एकांति, कंलक, द्रवित, माधव, नेतृत्व, स्पृहा, आलोच्य, शिक्षा, निःश्वास, विचित्र, प्रस्ताव, संयोग, जिज्ञासा, यंत्रवत, अह्म, परोक्ष, प्रतिक्षा, भगवान, मस्तिष्क, स्मृति, आस्था, आलिंगन, माया, कन्या, अनुरोध, शीर्षासन, तर्क, तान्त्रिक, आरोह, प्रतीक, प्रतिबिम्ब, क्षुद्र, भातृत्व, दोष, पराजित, कार्य, सन्तोष, स्वर, गन्ध, लक्ष्यपति, तपस्या, मनस्व कल्पना, प्रभुत्व, पराक्रम, वृष्टि दुर्गन्ध, पत्रिका, नैपथ्य, गरिमापूर्ण, शिष्टाचार, लज्जा, स्वाधीन, क्रन्दन, मरुधरा, सृष्टि, जागृति, हस्त, धर्म शांत, अभियान आदि।

सामौर कृत 'लोकपूज्य देवियां' में प्रयुक्त तत्सम शब्दावली– अभिश्राप, अभिशप्त, भव्य, अकिंचन, संकल्प, प्रशंसा, अनायास, पृष्ठभूमि, न्यासी, संस्कृति,

प्रकाश स्तम्भ, पितृ–कुल, सारस्वत, व्यवहृत, जजमानी, सप्तशती, मर्मज्ञ, कुक्षि, पुरस्कृत, साक्षी, किंकर्त्तव्यविमूढ़, कटू यथार्थ, अमृत, मर्म, विकृति, अभिशप्त, दूरदर्शिता, सिद्धहस्त, वाचस्पति, रक्षार्थ, उत्स आदि।

सामौर कृत 'युगाान्तरकारी संन्यासी' में प्रयुक्त तत्सम शब्दावली– अभिजात्य, साक्षात्कार, संक्षिप्त, निष्कासित, चमत्कृत, परिशिष्ट, देदिप्यमान, नक्षत्र, श्रीयुत्, शाश्वत, निष्कर्ष, भाल, ज्योर्तिपिण्ड, कंचनमुक्त, अग्रदूत, पुनरूत्थान, अधिष्ठाता, उदभट्, विद्वान, विदुषी, हृदयगम, स्पर्श, अनिवर्चनीय, वर्जित, कटुस्वर, उत्तम, रूद्राभिषेक, उत्सुक, नवप्रसूता, मरणासन्न, धर्माचार्य, निष्काम, तृप्ति, अतीत, अत्याचार, अन्यत्र, चंद्रिका, आश्रय, गोपालक, अक्षय, उत्साह, उच्च, उपाध्याय, कर्त्तव्य, स्वप्न, कार्तिक, कर्म आदि।

सामौर कृत 'शेखावाटी के यशस्वी चारण' में प्रयुक्त तत्सम शब्दावली– लज्जा, लौह, कदली, क्षत्रिय, क्षेत्र, गायक, अमावस्या, रात्रि, अष्ट, गोस्वामी, ग्राम, हास्य, गृह,घृणा, चित्रकार, मयूर, चतुर्थ, क्षति, यमुना, युवान्, ज्योति, तिलक, तपस्वी, दृष्टि, सन्धि, धैर्य, नक्षत्र, नृत्य, निर्वाह, पक्ष, प्रिय, पवन, पितृ, प्रकट, वत्स, वधू, वाणी, आलस्य, विवाह, काष्ठ, कर्ण, कंटक, कीर्ति, किचिंत, धर्म, निष्ठुर, प्रतिच्छाया, वणिक, भक्त आदि।

सामौर कृत 'चारण बड़ी अमोलक चीज' में प्रयुक्त तत्सम शब्दावली– महर्षि, दृढ़, वाष्प, भ्राता, भिक्षुक, कृष्ण, कृषक, भस्म, मेघ, ग्राहक, मार्ग, श्मशान, राशि, लक्षण, लवण, सरोवर, दुःख, दक्ष, साक्षी, घट, गृहस्थ, गृहणी, श्रावण, वृश्चिक, सूत्र, चक्र, सत्य, शुष्क, सूर्य, श्रेष्ठी, शून्य, श्रृंगार, शिक्षा, हर्ष, तीर्थ, अनुष्ठान, प्रयोजन, सर्वोच्च, आश्रय, सहस्र सृजनधर्मी, पारदर्शिता, गूढ़ार्थ, हर्षोल्लास, सर्पाकृति, मुष्टिका, चैत्र, प्रतिक्षा आदि।

अंग्रेजी शब्द–

सामौर के गद्य साहित्य में अंग्रेजी भाषा के शब्दों का प्रयोग भी देखने को मिलता हैं। ये वे शब्द है जो हिन्दी के गद्य साहित्य में इस प्रकार से समाहित हो गये हैं कि इनका इस्तेमाल अनायास ही नहीं बल्कि स्वाभाविक रूप

में होता है। आपके साहित्य में प्रयुक्त अंग्रेजी भाषा के शब्दों का वर्णन निम्नानुसार है–

सामौर कृत 'चारण बड़ी अमोलक चीज' में प्रयुक्त अंग्रेजी शब्दावली– पेज, कॉलेज, स्टॉफ, टीचर ट्रेनिंग, कार, मास्टर, हाईकोर्ट, लाटरी, कंक्रीट, अप्रोच, मेम्बर, सेमीनार, सर्जन, हैड क्वाटर, प्लास्टिक, बैरा, एशियाटिक रिसर्च, सन्तरी, टिफिन, ड्रामा, हार्ट अटैक, ब्लड, रिसर्च जर्नल, सीजन, म्यूजियम, पोस्टकार्ड, रॉयल एशियाटिक सोसायटी आदि।

सामौर कृत 'युगान्तरकारी संन्यासी' में प्रयुक्त अंग्रेजी शब्दावली– फुट, सुपरिटेंडेंट, ब्यूरोक्रेसी, ड्रैस, अलॉट, पैटर्न, हारमोनियम, रजिस्ट्रार, इण्डियन एन्टीक्वेरी, बोर्ड, बार्डिक एशोसियेशन, आई केम्प, ऑपरेशन, डिवोशन, मील, मूड, ब्रॉडकार्स्टिग कॉरपोरेशन, पोस्ट मास्टर, जनरल, डिप्टी गर्वनर, टाउन क्लर्क, बेरीस्टर, जेब्रा, बिल्डर बीस्ट, युगांडा आदि।

सामौर कृत 'हमारे साहित्य निर्माता : रावत सारस्वत' में प्रयुक्त अंग्रेजी शब्दावली– ह्यूमन, एडमिशन, सर्विस ट्रस्ट, मोबाईल फोर्स, मनीऑडर, लॉज, डॉक्टर, कॉपी, लगेज, कलेण्डर, टीम, गवर्नमेन्ट, ट्रेडेन्ट, 'ओ' नगेटिव, एग्रीमेन्ट, अण्डर, अटैक, फेक्टरी, अप–टू–डेट, अपील, केबल, अरेस्ट, स्कॉलरशिप, आई.ए. एस., एम.बी.बी.एस., आईसक्रीम, ऑटोमैटिक, ऑपरेशन आदि।

सामौर कृत 'शेखावाटी के यशस्वी चारण' में प्रयुक्त अंग्रेजी शब्दावली– ऑफिस, आर्ट गैलरी, पेन्सिल, इंजन, इन्स्टीट्यूट, डाईरेक्टर, पोलिंग, कूलर, टेंट, पंचर, एक्सीडेन्ट, मजिस्ट्रेट, कोड, प्रोफेसर, जूस, कम्प्यूटर, मैनेजर, ऐक्शन, वाइस चान्सलर, फीस, एडवोकेट, ओवर एज, कन्ट्रोल आदि।

सामौर कृत 'लोक पूज्य देवियां' में प्रयुक्त अंग्रेजी शब्दावली– कम्पनी, कमेटी, बस, फार्म, स्टील, मोटर, अगस्त, डबल, पाउण्ड, ब्लाउज, कॉलोनी, म्यूजिक, सीमेन्ट, केक, ब्लेजर, कैम्प, एम्बुलेन्स, कैरियर, पैकिंग, कोर्स, क्लब, गाइड, सीनियर, गेस्ट, चीफ मिनिस्टर, चेयरमैन, जीप आदि।

सामौर कृत 'चूरू मण्डल के यशस्वी चारण' में प्रयुक्त अंग्रेजी शब्दावली– जेल, टाइम टेबल, लोकल, बोगी, रिकार्ड, टैंक, लोन, हेड लाइन, बोनस, वीजा, ट्यूबवेल, डिग्री, डिप्लोमा, दिसम्बर, बुलेटिन, नर्स, स्टाइल, न्यूज पेपर, मशीन, पार्टी, गारन्टी, प्लाट, फाइल, बण्डल आदि।

सामौर कृत 'आऊवा का धरना' में प्रयुक्त अंग्रेजी शब्दावली– बम, बॉर्डर, बैंड, कैबिनेट, बोतल, ऐजेण्डा, ड्राईवर, बोर्ड, ब्लड प्रेसर, मिनट, अल्टीमैटम, टैक्स, एअर फोर्स, मैच, करंट, मेरिट, लेट, कैन्सर, वेकैन्सी, फिल्म, अकाउंट, शर्ट, शैम्पू, सर्किट हाउस, सिनेमा, सीट, जूनियर, सूट, स्कूल, हेड मास्टर, प्राइवेट, हॉस्टल, इन्टरव्यू आदि

फारसी शब्द

सामौर कृत 'चूरू मण्डल के यशस्वी चारण' में प्रयुक्त फारसी शब्दावली– रफ़्तार, परवरिश, मेहरबान, बराबरी, होशियार, दीवार, आवारा, चश्मा, रोशनी, मेहमान, सख्त, नाचीज, शर्म, परहेज, किरायेदार, बख्सीश, सफाई, रिश्ता, लफ्ज़बाजी, मुर्गी, आवाज़, जंग, नौकरी, फाईल आदि।

सामौर कृत 'आऊवा का धरना' में प्रयुक्त फारसी शब्दावली– बाज़ार, अक्षर, चेहरा, रोज़, पारखी, गंवारा, आराम, दरजा, मुनीम, अंगड़ाई, अखाड़चियों, बावरचियों, सिरफिरे, पासंग, सूफी, बजट, अपसरा, फैशन, जफरनामा, नेकनियत, कदीमी, फबना, खलनायक, दस्तावेज, तवारीख, परिपाटी, दलबन्दी आदि।

सामौर कृत 'हमारे साहित्य निर्माता : रावत सारस्वत' में प्रयुक्त फारसी शब्दावली– कद्दावर, बेजोड़, फ़कत, करामात, कबीला, कुली, अहमियत, मौजूद, तुमुलघोष, काफिला, गैरहाजिर, जौखिम, बानगी, कारखाना, मालिक, शर्म, बीमारी, दुकान, कागज, दोस्ती, मजेदार, जमीन, दरवाजा, बीवी, बिस्तर आदि।

सामौर कृत 'चारण बड़ी अमोलक चीज' में प्रयुक्त फारसी शब्दावली– चादर, नाचीज, निशानी, रिश्ता, लफ्फाजी, आमदनी, कारीगर, गवाह, जलेबी, जुकाम, दर्जी, दवा, खास, खैरख्वाह, आफ्त आदि।

सामौर कृत 'लोक पूज्य देवियां' में प्रयुक्त फारसी शब्दावली– आतिशबाजी, आईना, अंगूर, गर्द, जादू, दंगल, मुफ्त, लगाम, जागीर, बेरहम, मोर्चा, वर्ना, सरकार, उम्मीद, किनारा, जुरमाना आदि।

सामौर कृत 'युगाान्तरकारी संन्यासी' में प्रयुक्त फारसी शब्दावली– परदा, पेशा, मलाई, खामोश, मादा, शादी, खरगोश, चाबुक, देहान्त, परवाह, मरहम, जिन्दगी, मुर्दा आदि।

अरबी शब्द

सामौर के गद्य साहित्य में अरबी भाषा शब्दों का प्रयोग भी देखने को मिलता हैं। इन शब्दों का प्रयोग भाषा में भावप्रवणता लाने के लिए हुआ है। सामौर के गद्य साहित्य में प्रयुक्त अरबी भाषा के शब्दों का प्रयोग निम्नानुसार है–

सामौर कृत 'आऊवा का धरना' में प्रयुक्त अरबी शब्दावली– जवाब, मकान, इलाका, दुनिया, तरतीब, आदमी, फौज, शिकायत, मरम्मत, इन्तजाम, इमारत, इन्कार, शराब, मालिक, अजनबी, महसूल, फौरन, हुक्का, खिदमत, खुमार, तसवीर, किताब, साफ, मुश्किल, हाफना, तारीख, हैरान, दवात आदि।

सामौर कृत 'लोक पूज्य देवियां' में प्रयुक्त अरबी शब्दावली– ताकत, दवा, नकल, तरकीब, गुस्सा, नुस्खा, महसूस, जाफरी, तकलीफ, किस्म, इल्जाम, खातिर, लतीफ, अखबार, दुनिया, तकाजा आदि।

सामौर कृत 'शेखावाटी के यशस्वी चारण' में प्रयुक्त अरबी शब्दावली– तबियत, पलंग, आभावान, आबादी, हिसाब, तरतीबवार, बानगिया, सजधज, खूब, चटाइयाँ, कब्जा, हद आदि।

सामौर कृत 'युगान्तरकारी संन्यासी' में प्रयुक्त अरबी शब्दावली– कंकाल, जंजाल, जुल्म, बगैर, इरादा, इशारा, ईमान, जिला, तहसील, नकद, हलवाई, किस्मत, तमाम, किताब, नतीजा, मदद, लायक, हमला आदि।

सामौर कृत 'चूरू मण्डल के यशस्वी चारण' में प्रयुक्त अरबी शब्दावली– इज्जत, उम्र, किला, दुजा, फिक्र, मतलब, अमीर, कसर, खबर, गरीब, तकदीर आदि।

सामौर कृत 'चारण बड़ी अमोलक चीज' में प्रयुक्त अरबी शब्दावली– फायदा, हौसला, हुक्म, हिम्मत, मौसम, दुनिया, दफ्तर, जुलूस, खत्म, औरत, अक्ल, औलाद, कसरत, दाखिल, मजबूर, मौका, हिस्सा, असर, ईमान, जलसा, तमाशा, दिमाग, मुसाफिर, हिरासत आदि।

तुर्की शब्द

सामौर के गद्य साहित्य में तुर्की भाषा के शब्दों का प्रयोग भी देखने को मिलता है। ये वे शब्द हैं जो हिन्दी साहित्य में इस प्रकार से समाहित हो गये हैं कि इन्हें अलग करना हिन्दी भाषा के साथ बेमानी होगी। आपके साहित्य में प्रयुक्त तुर्की भाषा के शब्द–तलाश, चुगल, बहादुर, चेचक, मुगल, कालीन, चाकू, चम्मच, बारूद, लाश, सराय, चारपाई आदि।

पुर्तगाली शब्द

सामौर के गद्य साहित्य में पुर्तगाली शब्दों का प्रयोग भी देखने को मिलता हैं। ये वे शब्द हैं जो आमजन की दिनचर्या में प्रयुक्त होते हैं और हिन्दी भाषा में समाहित हो गये हैं। सामौर के साहित्य में प्रयुक्त पुर्तगाली भाषा के शब्द– आलपीन, गमला, चाबी, पपीता, बाल्टी, आलमारी, कमीज, चाबी, नीलम, सन्तरा, इस्पात, मेज, तौलिया आदि।

द्विरुक्त शब्द

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में द्विरुक्त शब्दों की गिनती करना बहुत ही असंभव है। ये शब्द भाषा में प्रवाह उत्पन्न करने तथा पात्रों का चरित्र विश्लेषण करते समय पाए जाते हैं। इनका प्रयोग साहित्य में भाषागत सौष्ठव लाने के लिए किया गया है। गद्य साहित्य में इन शब्दों का प्रयोग करने से भाषा में प्रवाह उत्पन्न करने से भाषा रोचक बन गई है।

सामौर कृत 'युगान्तरकारी संन्यासी' में प्रयुक्त द्विरुक्त शब्दावली– बन्धु–बांधव, कभी–कभी, अलग–अलग, दूर–दूर, खण्ड–खण्ड, देखते–देखते, साथ–साथ, अहिस्ता–अहिस्ता, गाँव–गाँव, ढाणी–ढाणी, आदर–सम्मान, धीरे–धीरे,

एक–एक, चौदह–चौदह, ज्यों–ज्यों, पृथक–पृथक, अपने–अपने, जहाँ–जहाँ तीस–पैंतीस, दीन–दुखी आदि।

सामौर कृत 'हमारे साहित्य निर्माता रावत सारस्वत' में प्रयुक्त द्विरुक्त शब्दावली– यहाँ–वहाँ, रोम–रोम, खरी–खरी, चलते–चलते, लिखते–लिखते, समय–समय, न्यारी–न्यारी, नस–नस, भाई–भाई, क्षण–क्षण, त्यों–त्यों, हँसते–हँसते आदि।

सामौर कृत 'आऊवा का धरना' में प्रयुक्त द्विरुक्त शब्दावली– लाख–लाख, आते–आते, करोड़–करोड़, अमुक–अमुक, स्थान–स्थान, जन–जन, जल्दी–जल्दी, घर–घर, शुरू–शुरू, बोलते–बोलते, खेत–खेत, देखते–देखते, कुछ–कुछ, सोचते–सोचते आदि।

सामौर कृत 'चूरू मण्डल के यशस्वी चारण' में प्रयुक्त द्विरुक्त शब्दावली– कण–कण, बारी–बारी, भिन्न–भिन्न, घर–घर, बाग–बाग, जगह–जगह, कोने–कोने, बच्चा–बच्चा, सत्य–सत्य, पाँच–पाँच, बैठे–बैठे, छोटी–छोटी, करीब–करीब, बार–बार, होते–होते, चूर–चूर आदि।

सामौर कृत 'लोक पूज्य देवियां' में प्रयुक्त द्विरुक्त शब्दावली– पीछे–पीछे, चाचा–चाची, जैसे–जैसे, टुकड़े–टुकड़े, साथी–साथी, जोर–जोर से, करते–करते, अपनी–अपनी, मनुष्य–मनुष्य, पीट–पीटकर आदि।

सामौर कृत 'शेखावाटी के यशस्वी चारण' में प्रयुक्त द्विरुक्त शब्दावली– अपना–अपना, नई–नई, दूर–दूर, धीरे–धीरे, पकड़–पकड़, पड़े–पड़े, गोल–गोल, चोरी–चोरी, डर–डर, होले–होले, घड़ी–घड़ी, ऊँची–ऊँची, दो–दो, तीन–तीन, तड़फते–तड़फते, धन्य–धन्य आदि।

ध्वन्यार्थक शब्द

सामौर के गद्य साहित्य में ध्वन्यार्थक शब्दों का प्रयोग पात्र और प्रसंगानुसार किया गया है। ध्वन्यार्थक शब्दों के प्रयोग से सामौर के गद्य सहित्य में चार चाँद लग गए हैं। गद्य साहित्य का चमत्कार और सौन्दर्य बढ़ गया है।

आपके गद्य साहित्य में ध्वन्यात्मक शब्द बहुतायत में प्रयुक्त हुए हैं– ऊँ–ऊँ–ऊँ... अह...ह....ह..(रोने की आवाज), गुप गुपा गुप(मुँह चलाने की आवाज), फफक फफक फफक कर(सिसकियां भरकर रोने की आवाज), झड़ी सी लग गई, सूं सूं सूं (जलन की आवाज), ठसा ठस ठस, साँय साँय(हवा चलनेकीआवाज), घिर्र घिर्र(मशीन के चलने की आवाज), पों पों पों(गाड़ी के हॉर्न की आवाज), गुड़गुड़ाना(हुक्का पीने की आवाज), ओई......(चीखने की आवाज), कुटुर कुटुर(चूहे के कुतरने की आवाज), टिक टिका टिक(घड़ी के चलने की आवाज), छप छपा छप(पानी में छलांग लगाने की आवाज), डर्र डर्र डर्र(मेंढ़क की आवाज) आदि इन ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग से गद्य साहित्य में सार्थक रूप परिलक्षित होता है।

जोड़े के साथ आये सादृश्य शब्द

सामौर के गद्य साहित्य में जोड़े के साथ आये सादृश्य शब्दों का प्रयोग पात्र और प्रसंगानुसार किया गया है। जोड़े के साथ आये सादृश्य शब्दों के प्रयोग से आपके गद्य सहित्य में चार चाँद लग गए हैं। साहित्य का चमत्कार और सौन्दर्य बढ़ गया है। आपके गद्य साहित्य में जोड़े के साथ आये सादृश्य शब्द बहुतायत में प्रयुक्त हुए हैं।

सामौर कृत 'युगान्तरकारी संन्यासी' में प्रयुक्त जोड़े के साथ आये सादृश्य शब्द– पल्लू–वल्लू, प्रेजेन्ट–ब्रीजेन्ट, तुड़ा–मुड़ा, लेकिन–वेकिन, कॉलेज–वॉलेज, फिरन–विरन, सेमीनारों–समारोहों, सिट्टी–पिट्टी, आगे–पीछे, गलत–सलत, जाए–जन्में, खाना–वाना आदि।

सामौर कृत 'आऊवा का धरना' में प्रयुक्त जोड़े के साथ आये सादृश्य शब्द– गद्य–पद्य, डिंगल–पिगंल सेठ–साहुकार, उथल–पुथल, कर्ता–धर्ता, लेना–देना, पढ़े–लिखे, सिखाए–पढ़ाए, अर्थ–अनर्थ, बढ़ी–चढ़ी, आध–अधूरा, जीर्ण–शीर्ण, आपा–धापी, अध्ययन–अध्यापन, जैसे–तैसे आदि।

सामौर कृत 'चारण बड़ी अमोलक चीज' में प्रयुक्त जोड़े के साथ आये सादृश्य शब्द– राजा–रानी, संयोग–वियोग, रंग–ढंग, अजर–अमर, आदान–प्रदान, मान–मुनहार, लेखा–जोखा, छुट–पुट, दुःख–दर्द आदि।

सामौर कृत 'हमारे साहित्य निर्माता रावत सारस्वत' में प्रयुक्त जोड़े के साथ आये सादृश्य शब्द– राग–रागिनी, बढ़ाना–चढ़ाना, रहन–सहन, खान–पान, अस्त्र–शस्त्र, ठीक–ठाक, अजर–अमर, नई–नई, उठना–बैठना, सेवा–सूश्रुषा, विचार–विनिमय, बाग–बगीचा आदि।

सामौर कृत 'चूरू मण्डल के यशस्वी चारण' में प्रयुक्त जोड़े के साथ आये सादृश्य शब्द– टूटी–फूटी, खाना–पीना, औढ़ना–बिछाना, दिन–रात, दबे–कुचले, दिन–प्रतिदिन, तेज–तर्रार, ठसा–ठस, लेना–देना, लम्बा–चौड़ा, बड़े–बूढ़े, हिलना–डुलना, घूमना–फिरना आदि।

सामौर कृत 'शेखावाटी के यशस्वी चारण' में प्रयुक्त जोड़े के साथ आये सादृश्य शब्द– हल्ला–गुल्ला, खचा–खच, दौड़ते–हाँफते, बिजली–पानी, छोटा–मोटा, हरी–भरी, साफ–सुथरा, खून–पसीना, दुबला–पतला, लालन–पालन, उल्ट–पुल्ट, यत्र–तत्र, दांए–बांए आदि जोड़े के साथ आये सादृश्य शब्द गद्य साहित्य को सार्थकता प्रदान करते हैं।

विशेषण

सामौर के गद्य साहित्य में विशेषणों का प्रयोग पात्र और प्रसंगानुसार किया गया है। विशेषणों के प्रयोग से आपके गद्य सहित्य में चार चाँद लग गए हैं। साहित्य का चमत्कार और सौन्दर्यं बढ़ गया है। आपके गद्य साहित्य में विशेषण शब्द प्रयुक्त हुए हैं– सुनहरे बाल, रंगीन कागज, शानदार चित्रकारी, अच्छा कवि, युवा लेखक, अनेक खण्ड, बहुत आशाएं, महत्त्वपूर्ण भूमिका, तीस–बतीस राजस्थानी की पुस्तकें, दो करोड़ लोग, चौतरफा दीवारें, बड़ी रियासत, राजस्थानी लेखक, अनेक विशेषांक, सांयकालीन कक्षा, हजारों परीक्षार्थी, कटु टिप्पणी, प्रौढ़ कृत्ति, प्राचीनतम रास काव्य, अच्छा प्रकाश, पुरानी पीढ़ी, पक्के साम्यवादी, दोनों पुस्तकें, नई पीढ़ी, छोटा–सा इतिहास, एकाध प्रसंग, उत्कृष्ट ग्रंथ, सुडौल नाक, सुसंगठित कद्दावर देह, उन्नत ललाट, तेजस्वी आँखें, विरल दन्त पंक्ति, अच्छे खिलाड़ी, भगवा वस्त्र, खतरनाक घोड़ी, सफेद वस्त्र, काला साधु, युगान्तरकारी संन्यासी, सच्चा कर्मयोगी, अनेक महापुरुष, आठों पहर, प्रखर

वक्ता, अल्प समय, इठलाती नदियां, केसरिया धोती, छोटा–सा भाषण, चमकीले कागज, मोटा–ताजा स्वामी, धूमिल प्रकाश, रोबदार मूँछे, दोहरी मार, अनुपम मन्दिर, युगल प्रतिमा, डेढ़ सौ बीघा जमीन, नंगी कटार, मदमस्त हाथी, पापी व्यक्ति, धार्मिक व्यक्ति, दोगुना, चौगुना, तीनों पारियों, चारों पुरुषों आदि विशेषण शब्द आपके गद्य साहित्य में यथोचित रूप से प्रयुक्त हुए हैं।

कहावतें(लोकोक्तियां)

किसी भी भाषा की समृद्धि और प्रभाव क्षमता के प्रतीक कहावतें ही हैं। जिस भाषा में इनका जितना अधिक प्रयोग होता है उससे भाषा की अभिव्यक्ति क्षमता उतनी ही अधिक प्रभावपूर्ण हो जाती है। गद्य साहित्य में कहावतें भाषा सौन्दर्य में सहायक होती हैं। आपके गद्य साहित्य में लोकोक्तियों का प्रयोग पात्र और प्रसंगानुसार किया गया है। कहावतें या कहें कि लोकोक्तियों के प्रयोग से आपके गद्य सहित्य में चार चाँद लग गए हैं। साहित्य का चमत्कार और सौन्दर्यं बढ़ गया है। आपके गद्य साहित्य में प्रयुक्त लोकोक्तियां निम्नलिखित हैं– तिरीयां तेल हम्मीर हठ चढ़े न दूजी बार, जाके पॉव फटी न बिवाई वो क्या जाने पीर पराई, अपनी–अपनी ढफली अपना–अपना राग, चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाए, घर घर मिट्टी के चूल्हे, जिस थाली में खाए उसी में छेद करें, ढाक के तीन पात, थोथा चना बाजै घना, नेकी और पूछ–पूछ, पढ़े पर गुने नहीं, बैठे से बेगार भली, मरता क्या न करता, रंग में भंग पड़ना, सावन के अंधे को हरा ही हरा दिखता है, सोने में सुगन्ध और सुहागा आदि।

मुहावरों का प्रयोग

मुहावरों का प्रयोग लगभग सभी विकसित भाषाओं में होता है। 'मुहावरा' शब्द वस्तुतः अरबी भाषा का है, जिसका अर्थ है अभ्यास। परन्तु आज मुहावरा जिस अर्थ और अभिप्राय के साथ प्रयुक्त होता है उसका यह अर्थ नहीं है। मुहावरा वह वाक्यांश है जो सामान्य शाब्दिक अर्थ के स्थान पर असामान्य अर्थ प्रकट करे। वाक्यांश शब्द से यह स्पष्ट होता है कि मुहावरें का रूप संक्षिप्त होता है। आपके गद्य साहित्य में मुहावरों की भरमार है। मुहावरों के प्रयोग से

साहित्य में नवीन चमत्कारिकता का संचार हुआ है। साहित्य की श्रीवृद्धि के साथ–साथ गद्य में प्रवाहमयता आ गई है। आपके साहित्य में प्रयुक्त हुए मुहावरों का विवरण निम्नानुसार है–

भंवर सिंह सामौर द्वारा रचित हमारे साहित्य निर्माता : रावत सारस्वत नामक कृति में– युद्ध में काम आना, ठेगा दिखाना, भौचक्का रह जाना, ईद का चाँद होना, माथपच्ची करना, धुन में रहना, राजस्थान गूंगा हो गया, राजस्थान की जीभ काट ली, काता–कूता कपास हो गया, कारवां चल पड़ना आदि।

भंवर सिंह सामौर द्वारा रचित युगान्तरकारी सन्यासी नामक कृत्ति में प्रयुक्त मुहावरे– जुगाड़ करना, रोटी–बेटी का व्यवहार होना, प्राणों की आहुति देना, प्राणों की बाजी लगाना, भेड़ों की तरह भाग छूटना, पासंग में नहीं ठहरना, मंत्र मुग्ध होना, मन को कचोटना, चढ़ाई की साख भरना, मति मारी जाना, काल कलवित होना, आँखों में अंगुलियां डालना, बिगुल बजाना, श्री गणेश करना, उखाड़ फैंकना, तांता लगना आदि।

भंवर सिंह सामौर द्वारा रचित लोक पूज्य देवियां नामक कृति में प्रयुक्त मुहावरे– चार चाँद लगाना, मुँह नहीं देखना, चूर–चूर हो जाना, काळजे की कोर, दीवाली मनाना, हिलौरे लेना, जमीन आसमान एक करना, अकाल मौत मरना, जीवन जौखिम में डालना आदि।

भंवर सिंह सामौर द्वारा रचित चारण बड़ी अमोलक चीज नामक कृत्ति में प्रयुक्त मुहावरे– ज़बान लड़खड़ाना, काम हाथ में लेना, दुखड़ा रोना, तूफान मचाना, हाथ होना, बू आना, पेट पालना, चक्कर पर चक्कर लगाना, मुखातिब होना, तिलमिला उठना आदि।

भंवर सिंह सामौर द्वारा रचित आऊवा का धरना नामक कृति में प्रयुक्त मुहावरे– धूल चटाना, खरी बात कहना, किनारा करना, टस से मस नहीं होना, डंके की चोट कहना, आचमन करना, दाद देना, कांटे की तरह खटकना, आँखे खुलना, आड़े हाथों लेना, उन्नीस बीस का फर्क होना आदि।

भंवर सिंह सामौर द्वारा रचित शेखावाटी के यशस्वी चारण नामक कृति में प्रयुक्त मुहावरे– घी के दीपक जलाना, कफ़न सिर पर बांधना, कच्चा चिट्ठा खोलना, कान पर जूँ न रेंगना, कान भरना, चूड़ियां पहनना, जूता चाटना, डूब मरना, तूती बोलना आदि।

भंवर सिंह सामौर द्वारा रचित चूरू मण्डल के यशस्वी चारण नामक कृति में प्रयुक्त मुहावरे– दाने–दाने को तरसना, दो टूक जवाब देना, दिन–रात एक करना, धूल फांकना, नमक मिर्च लगाना, नाम कमाना, पीठ ठोकना, भूत सवार होना, मन खट्टा होना, मन मसोस कर रह जाना, मुँह तोड़ जवाब देना, लाल पीला होना, हाथ धोकर पीछे पड़ना आदि।

काव्य पंक्तियाँ/गीत

भंवर सिंह सामौर ने गद्य साहित्य में भाषा सौन्दर्य हेतु काव्य पंक्तियों तथा गीतों का आधार लिया है। सामान्य पाठक की समझ में आने वाली काव्य पंक्तियां एवं गीत को आपने अपने गद्य साहित्य में स्थान दिया है जिससे गद्य साहित्य को अलग ही रूप प्राप्त हुआ है।

'चूरू मण्डल के यशस्वी चारण' कृति में भटनेर के युद्ध जिसमें सोनगरा अखेराज का पोता व मानसिंह का पुत्र जसवंत अपनी पत्नी का सिर गले में धारण कर मुसलमानों से संर्घष करते हुए रणखेत रहा था, का आँखों देखा वर्णन गीत के माध्यम से–

"जुग पार पखैगा मुज्झ जोवतां, राजमांहि रहतां दिन–रात।

आजस हरहार विजै ओ पावै, जूना देव नवी आ जात।

आहवि आहवि जु तैं आणिया, सुजि जाणु मैं दीठ सही।

कमला तणौ कमळ तौ कंता, किम जुड़ियौ अै बात कही।

महि रामायण सीस लिया मैं, आखै ईस सगति सूं एम।

जाइ आणिया ताइ तू जाणै, कोई न आणियौ जाणै केम।

उतवंग इसा अगैही आणत, नाथ कहै सांभळि निय नार।
देयण हार न मिळियौ दूजो, सोनगिर समोभ्रम जिसो संसार।
आप तणौ त्री तणौ आपरी, भिड़ि भटनेर पड़तै भार।
सिर बे बे जसवंत सोनगिर, दीन्हा हंस बड़ै दातार।
अरधंग कंठ सीस जसै ओपावै, भिळतां गढ़ बिच सार भर।
हर अरधंग तिण देख थरहरी, हर इण पड़सी रखे हर।
वनिता कमळ बांध गळ विढतै, हीलोळियौ जु धीर हरै।
डरी तेण पारवती देखे, रखै कमाळी एम करे।
सीस घरणि चौ गळैमाळ सझि, सिंघ तणौ बढ़ियौ स जगीस।
संकर घरणि देखि तिण संकी, संकर लिए रखे मो सीस।
साति सोनिगरौ मुवा बडै सत, तीयां तणा म्हे लिया तिणि।
कायर कमळ न लां रूद्र कहियौ, रही डरपती रूद्र घरिणि।''[52]

इसी प्रकार दक्षिण भारत अभियान में बीकानेर के शासक पदम सिंह के साथ गाडण गोवर्धन थे। युद्ध मैदान में जब पदम सिंह का घोड़ा कट कर काम आ गया तो गाडण ने अपना पतासा नामक घोड़ा पदमसिंह को दिया था। इस युद्ध में गाडण गोवर्धन ने ऐसी वीरता दिखाई थी कि उसके सत्ताईस घाव लगे। इस युद्ध में वीरता से लड़कर काम आने वाले गोदारा मूलाणी पर गाडण गोवर्धन ने जो गीत लिखा था को आपने साहित्य में स्थान देकर उसे अमर कर दिया गीत के बोल इस प्रकार है–

''मिले घाट विखमौ कळह लाट लोहा मिले, बाज गुण चाडवे घाट बागां।

ऊकटे काट नीराट अध्रियामणौ, खाट खड़ जाट सिर झाट खागां।

पद्मगुख आगली दखणियां पधारण, वधारण खड़ग धड़ करण बावार।

बळाबळ बाज नै महारिण बाजियौ, साद उण रणै सिर सांघणौ सार।
बिजड़ अबझाड़ खळ पाड़ जमदाढ़ बख, विढ़े अवसाण कीधौ वडाळौ।
फाचरां चाचरै हुवौ रिण फाबियौ, चौधरी आवियौ जरां लोह चाळौ।
मूळकत जीवतां संभ हळ मोहरी, दन खड़ग रावतां तणै दावै।
गहण रिण बाज थूं रण थटा गोदारो, पटा मोटा भलां जाट पावै।''[53]

'शेखावाटी के यशस्वी चारण' नामक कृति में सामौर पूर्वजों के सन्दर्भ को गीत के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

''कोल्ह घरे कविराज, जका सुत चिरंजी जाणों।
गंगदास बड़ ग्यांन, बणी सुत गाथ बखाणों।
तोळो जिण घर तेज, गुण्यो टीकम जिण गादी।
बोहड़ जस लिय बहुत, सूरमो टीलो सतवादी।
पूरण पुराण प्रथक, हेमराज उण घर हुवो।
अलमाल भगत रटियो अलख, दुःख भंजण ईसर दुवो।।''[54]

'शंकरदान सामौर' नामक कृति में आप आजादी के युद्ध में सबसे बड़ा स्वतन्त्रता सेनानी शंकरदान सामौर को बताते हुए एक लोक गीत के माध्यम से अपने भाव व्यक्त करते हुए गुनगुनाते हैं—

जठै गियो जंग जीपियां, खटकै विण रण खेत।
तकड़ो लड़ियों तातियों, हिन्दथान रै हेत।
मचायो हिंद में आखी तहलको तांतियै मोटो,
घोटो जेम घुमायो लंक में हणूं घोर।
रचायो रूळंती राजपूती रो आखरी रंग,

जंग में दिखायो सुवायो अथाग जोर।।
हुय हतास राजपूती छंडियो छत्रियां हाथ,
साथ चंगो सोधियो दिक्खणी महा सूर।
बिड़द धार छतीसाँ बंस रो रणां बांको बीर,
नीर धरी हिन्द रो बचायो सागी नूर।।
खजाणां लूटिया सो तो डावोड़ै हाथ रा खेळा,
बेळा गोहा बरसंतां खेसली तोपा भौत।
हरजाणां भराया फौजा पालटी दोयणां हूंत,
फिरंगां जयचन्दां ने खिलातो गियो फौत।।
पळकती अकास बीज कठै ही जावंती पड़ै,
छड़ै तांतियै री व्हैगी इसी ही छलांग।
खळकती नद्यां रा खाळ मांय हूंतो पा'ड़ खड़ै,
लड़ै इणां विधी लाखां हूंत एकलांग।।''[55]

वाक्य विन्यास

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में वाक्य रचना सम्बन्धी नए–नए प्रयोग देखे जा सकते हैं। छोटे–छोटे वाक्य, हिन्दी–अंग्रेजी वाक्य, पूर्ण अंग्रेजी वाक्य, घोषणाओं से युक्त वाक्य इनके गद्य साहित्य में प्रयुक्त हुए हैं। आपके गद्य साहित्य की भाषा में थोड़े से शब्दों में गहरे अर्थ निकाल लाने का सामर्थ्य इन छोटे–छोटे वाक्यों में दर्शाया है। पात्रों के चरित्र–चित्रण तथा पात्रों की मानसिकता पर इसी कारण प्रभाव डाला है, जैसे– 'कारवाँ जारी रखो, सिरफिरे लोग समाज को दिशाहीन कर देते हैं।' कथन में युगान्तरकारी संन्यासी कृति का भावबोध से अभिभूत करने का सामर्थ्य है। इस कथन में आप स्वामीजी के माध्यम

से समाज को ऐसे लोगों से बचने और ऐसे लोगों के तर्कों की परवाह न करके अपने कर्म के प्रति सदैव अग्रसर रहने का संदेश देते हैं।

हिन्दी–अंग्रेजी वाक्य

महाराजा कॉलेज मैगजीन में मेरी पहली कविता प्रकाशित हुई, बिड़ला हाउस कोलकाता, रेडक्रॉस सोसायटी राजस्थान, सहायक लाइब्रेरियन, एम.बी.बी.एस. छात्र, डिग्रियां बांटी गई, आधुनिक टेकनोलॉजी का सहारा लेकर ऑडियो विजुअल के रूप में संग्रहित किया, दूसरा राउण्ड होना था आदि वाक्य आपके साहित्य में परिवेशगत प्रयुक्त हुए है।

पूर्ण अंग्रेजी वाक्य

इण्डियन राइटर्स कण्ट्रीव्यूशन इन इण्डियाज फ्रीडम मुवमेन्टस, दी भगवद् गीता इन डे–टु–डे लाइफ, ए सोर्ट हिस्ट्री ऑफ यंगर लीडर्स, टू बी टेकन अण्डर मेडिकल एडवाइस, चाइल्ड इज दा फादर ऑफ मैन, मेम्बर ऑफ एशियाटिक सोसायटी आदि।

घोषणाओं से युक्त वाक्य

सामौर के गद्य साहित्य में घोषणाओं से युक्त वाक्य जो कि प्रेरणा और नैतिक उपदेश का भाव लिए है, खूब प्रयुक्त हुए हैं। ये वाक्य न सिर्फ पाठक को नैतिक उपदेश देते हैं, बल्कि साहित्य की श्रीवृद्धि में भी चार चाँद लगा देते हैं। जैसे–अपने मुख से अमृत वचन बोलिए, मैं भगवान का प्रतिनिधि हूँ, हिन्दू समाज की गुलामी समाप्त करनी है, कर्मण्ये वाधिकारस्ते...., चले जाओ यहाँ से, जो जहाँ खड़ा हैवो वहीं ठहर जाए, तुम चलो सगंठन की तैयारी करो, गरीबी मिटाओ, भुखमरी भगाओ, गंदगी गायब करो, उद्धार की भावना जगाओ, एकवै मनुष्य जाति, शोषण मत करो, बुरा मत बोलो, वैरमत करो, मानवता की सेवा करो, सभी को सुखी बनाने का प्रयत्न करो आदि।

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में व्यंग्यात्मक शैली का चित्रण युगान्तरकारी संन्यासी कृति में कई संदर्भों में हैं। प्रारंम्भिक विफलता शीर्षक में

प्रातःकाल तैयार होकर स्वामीजी शिविरार्थियों के बीच आए और उपस्थिति ली तो पाया कि पाँच शिविरार्थी उपस्थित नहीं थे। स्वामी जी ने सभी से पूछा कि कहाँ गए? पर किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। अब दिन भर पैंतालीस शिविरार्थियों की कक्षा चली। भोजन हुआ, कीर्तन हुआ, प्रार्थना हुई व रात्रि शयन हुआ। दूसरे दिन प्रातःकाल जब उपस्थिति हुई तो पाँच शिविरार्थी और कम हो गये। स्वामी जी ने सभी से पूछा कि पर किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। यद्यपि सभी पचास नौजवानों ने धार्मिक सेवा शिविर में प्रवेश के समय दस दिन लगातार शिविर में रहने का ही प्रतिज्ञा पत्र भरा था, परन्तु इनमें से भी दस चले गये। वह समझ गए कि वहाँ कोई कैदी नहीं है। स्वामीजी को समझते देर नहीं लगी कि जिस प्रकार दस शिविरार्थी शिविर से चले गये हैं उसी प्रकार बहुत जल्दी ही सभी चले जाएँगे। चिड़ियों की तरह सब वहाँ से उड़ जायेंगे।

एक अन्य उदाहरण में तो व्यंग्यात्मकता की चोट ने भाषा को चुटीला बनाकर और धारदार बना दिया है–'गाँधीजी के समय में समाज और देश के हर क्षेत्र में महान् पुरुषों ने जन्म लिया और आज श्मशानवत् नजर आता है। उन्होंने विनोद में कहा, स्वामीजी, हम तो सभी बन्दर हैं। गाँधी मदारी था, वह डुगडुगी बजाता था और हम सब नाचते थे। उनके निधन के बाद आज अपनी–अपनी डफली और अपना–अपना राग रह गया है।'

व्यंग्यात्मकता शैली का एक और उदाहरण–''धर्म के नाम से धर्माचार्यों ने मनुष्य–मनुष्य के बीच भेद कायम करने के प्रयत्न किए। विदेश जाने को अधर्म मानने वाले और जो चला जाता था, उसे समाज से बहिष्कृत करने को धर्म मानने वाले कौन–से धर्म का प्रचार करते थे, मुझे तो पता नहीं। जो धर्माचार्य विदेश जाने को धर्मच्युति मानते थे, आज विदेशों के चक्कर पर चक्कर लगा रहे हैं तथा जिन्हें यह अवसर नहीं मिला, वे विदेश जाने के लिए उतावले हैं। भारत में ईसाई धर्म का प्रचार क्यों हुआ? क्योंकि हमारे धर्माचार्य हरिजनों, आदिवासियों से हमेशा घृणा करते रहे हैं। उनसे दूर रहने को ही धर्म मानते रहे हैं।''

आपने शैली को अभिनव प्रयोग द्वारा समृद्ध किया है। शैली की विविधता, मौलिकता, प्रस्तुतीकरण का अनूठा अंदाज एवं अभिनव रूप के कारण आपके साहित्य का कलापक्ष अत्यंत प्रभावी बना है। गद्य साहित्य में शैली के अनेक रूपों का प्रयोग किया है, जिसके आधार पर हम कह सकते हैं कि शिल्प की दृष्टि से यह गद्य साहित्य सफलता के उच्चतम् शिखर पर पहुँचा है।

प्रकृति चित्रण करते हुए मॉरीशस उद्यान के प्राकृतिक सौंदर्य की भाषा के प्रतीक बिंब, उपमान एवं चित्रोपमता साकार रूप प्रस्तुत करती है। ''स्वामीजी ने इन्हीं सात दिनों के अल्प समय में मॉरीशस की प्रकृति को सागर के सौन्दर्य को सदा के लिए हृदयंगम कर लिया। स्वामीजी को जलपरियों का देश मॉरीशस सूरज की हथेली पर मुसकराते फूल जैसा लगा। प्रकृति के सुन्दरतम रंगोंवाला यह देश स्वामीजी को एक सुहाने सपने जैसा लगा।

पलाश के घने वन, मखमली परतों वाले बाग–बगीचे, चाँद से होड़ लेती पर्वत–मालाएँ, हँसी बिखेरते झरने, बल खाती, इठलाती नदियाँ, भरपूर हरियाली के बीच आँख–मिचौली खेलते गाँव तथा इन्द्रधनुषी रंग बिखेरता आसमान देखकर स्वामीजी ने साक्षी दी कि धरती पर मॉरीशस की रचना के बाद ही ईश्वर ने स्वर्ग की रचना की। इसे गन्ने का देश कहूँ या दुनिया के सबसे मीठे अनन्नास का देश कहूँ या पपीता या आम या लींची या अमरूद या केले या सेब का देश कहूँ।

बारा राष्ट्रीय उद्यान के प्राकृतिक सौंदर्य की भाषा भी इसी प्रकार है– 'युगांडा में बारा राष्ट्रीय उद्यान एक बहुत ही रम्य स्थल है, जहाँ एक समय में लाखों की संख्या में वन्य पशु थे। यहाँ पर बड़ी ऊँचाई से नील नदी गिरती है और मर्चीशन प्रपात बनाती है। हाथी, सिंह जेबरा, जंगली भैंसे, मगरमच्छ, हिप्पो, विल्डर बीस्ट, जिराफ आदि देखने के लिए संसार के कौने कौने से पर्यटक प्रतिवर्ष वहाँ आते हैं। मर्चीशन प्रपात तो दुनिया का माना हुआ दर्शनीय स्थल है ही।'

एक अन्य प्राकृतिक सौंदर्य की भाषा के उदाहरण में भाषा का लावण्य अपने चरम शिखर पर है– अफ्रीका, आस्ट्रेलिया एवं भारत जैसी समृद्ध संस्कृतियों से घिरे विशाल हिंद महासागर की गोद में खेलते–इठलाते मॉरीशस को जल पर जीवन का देश कहें या जलपरियों का देश, सूरज की हथेली पर मुसकराते फूलों का देश कहें या प्रकृति के सुन्दरतम रंगों का देश पलाश के घने वनों वाला देश कहें या मखमली परतों वाला बाग–बगीचों का देश, चाँद से होड़ लेते पर्वतशिखरों वाला देश कहें या कलकल नाद करते झरनों का देश, बलखाते इठलाते निरंतर प्रवहमान नद–नालों का देश कहें याभरी–पूरी हरियाली के बीच छिपे–बसे शिशु–शावक से गाँवों का देश, इंद्रधनुषी रंग बिखराते आसमान का देश कहें या सौंदर्य की उदात्त कल्पना का देश, पुरातन अभिजात्य और अधुनातन स्थापत्य की सांझी याद का देश कहें या परिष्कृत भाव–भंगिमाओं वाले लोगों का देश, लहलहाते गन्ने के खेतों का देश कहें या दुनिया के सबसे मीठे अनन्नासों, पपीतों, आम, लीच, अमरूद, केले व सेब का देश, हरी साग–सब्जियों व मौसमी फसलों का देश कहें या नारियल के अमृतोपम पानी का देश, एक साथ खिलखिलाते फूलों जैसे जाड़े का देश कहें या सूरज की सतरंगी किरणों से अठखेलियाँ करते इंद्रधनुषी सपनों का देश, आँखों में आशा का उजास भरने वाले प्रकाश का देश कहें या समुद्र तट की रेती के प्राकृतिक बिछौने का देश। अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रोपम वर्णन है।

सामौर के साहित्य में भाषा एवं शैली के मिथकीय उदाहरण का सुंदर चित्रण इस प्रकार है– स्वामीजी ने बताया कि देश की स्वतंत्रता और सेवा में हर व्यक्ति का सामर्थ के अनुसार योगदान महान् होता है। गिलहरी द्वारा भगवान् राम को पुल बाँधने में मदद देने के रूप में देखता हूँ। जो कार्य आपके सामने आए हैं उसे भगवान का भेजा हुआ मानकर करने का प्रयत्न करना चाहिए। मैंने समस्त सेवा को महत्त्व दिया है। सेवा का विभाग नहीं होता।

एक और उदाहरण में– ''भारतीय संस्कृति में मरने के बाद मोक्ष प्राप्ति हेतु गंगा में अस्थि विर्सन किरने की परम्परा है। उसी मोक्ष कामना हेतु भारतीय परम्परा से जुड़ा व्यक्ति दुनिया के किसी भी कोने में रहता हो, उसे गंगा स्नान की इच्छा रहती ही है। यदि यह इच्छा पूरी न हो तो भी वह व्यक्ति चाहेगा कि

मरने के बाद अस्थियाँ तो गंगा में पहुँचे ही। स्वामीजी मॉरीशस के लोगों की इस भावना को जड़. से जानते थे। अतः उन्होंने मॉरीशस में गंगाजल वितरण का अनोखा प्रयोग किया। ह्यूमन सर्विस ट्रस्ट ने यह बीड़ा उठाया तथा ''मॉरीशस में 22,800 बोतल गंगाजल नवम्बर 1984 से जुलाई 1985 तक वितरित किया गया। देश के 82 गाँवों में गंगाजल वितरण अभियान के रुप में समारोह पूर्वक वितरण किया गया।'' गाँवों में सामाजिक–सांस्कृतिक संगठनों ने यह बीड़ा उठाया। लोगों ने अपने घरों में आरती उतारकर गंगाजल ग्रहण किया।''

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य के अभिव्यक्ति पक्ष का अध्ययन करने के पश्चात् निष्कर्ष रूप से यह सामने आया है कि लेखक का अनेक भाषाओं पर अधिकार है। राजस्थानी, गुजराती, भोजपुरी, बंगाली, हिन्दी आदि भाषाओं पर आप बखूबी पकड़ रखते हैं। आपको हिन्दी साहित्य में अद्वितीय महारथ हासिल है। इनका गद्य साहित्य हिन्दी का विशुद्ध गद्य है। जान बूझकर बनाई गई भाषा पर आपका सख्त ऐतराज जाना–पहचाना है, यद्यपि विन्यास या लहजे में वक्रता विदग्धता उनका अपना कौशल है। इनके गद्य साहित्य में भाषा के अनेक सृजनात्मक प्रयोग प्रस्तुत हैं। शब्द योजना में वैविध्य है। प्रसंग के अनुसार भिन्न–भिन्न शब्द योजना का प्रयोग करके आपने संवादों में पैनापन और गहनता ला दी है। गद्य साहित्य में वाक्य रचना के अन्तर्गत विविध पद्धतियाँ प्रयुक्त हैं। अधिकांश वाक्य संगठित, प्रवाहमय और प्रभावशाली हैं, जिनसे वाक्य संरचना में लेखक की सशक्तता का बोध होता है। लेखक ने अपने गद्य साहित्य की भाषा का सौन्दर्य बढ़ाने के लिए विविध भाषा उपकरणों का प्रयोग किया है, जिसमें वे सफल हुए हैं। गद्य की अभिव्यक्ति को कम शब्दों में सारगर्भित एवं प्रभावपूर्ण ढंग से कहने के प्रयोजन से गद्य साहित्य की भाषा में शेरोशायरी, कहावतों, मुहावरों, काव्य पंक्तियों का प्रयोग किया है। गद्य साहित्य में विषयवस्तु, उद्देश्य तथा मूल संवेदना के अनुरूप ही एक विशिष्ट भाषा का आविष्कार किया है। इनके गद्य साहित्य में शैलीगत प्रयोगों का वैविध्य दिखाई देता है। भाषा के साथ–साथ कथा साहित्य में प्रसंग या परिस्थिति के अनुसार भिन्न–भिन्न प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है,

जैसे– वर्णनात्मक शैली, संवादात्मक शैली, काव्यात्मक शैली, फ्लैशबैक शैली, आत्मकथात्मक शैली, व्यंग्यात्मक शैली आदि का प्रयोग करके भाषा को सुगमता से प्रवाहित बनाया है।

सामौर के साहित्य में भाषा एवं शैली की दृष्टि से पर्याप्त विविधता मिलती है। इनके गद्य साहित्य में अनेक स्तर पाए जाते हैं। पात्रों तथा विषय के अनुसार इनकी भाषा में अंतर देखा जा सकता है। गम्भीर ,परिष्कृत एवं प्रौढ़भाषा जहाँ इनकी चिन्तनशीलता को प्रकट करती है वहीं इनके साहित्य में प्रयुक्त हिन्दी की खड़ी बोली का सफल प्रयोग समाज के साथ इनकी अन्तरंगता को प्रकट करता हुआ प्रयुक्त है।

इस प्रकार भंवर सिंह सामौर का प्रस्तुतीकरण शिल्प युगानुकूल अभिनव है। आपका सहित्य शिल्प–योजना की दृष्टि से उत्कृष्ट है। यद्यपि आपके साहित्य का शिल्प–सौष्ठव उनका लक्ष्य नहीं हैं तथापि इन विधाओं के शिल्प के प्रति वे पर्याप्त सजग है। इनके गद्य साहित्य में सम्बन्धित विधा के शिल्प तत्त्वों का उचित मात्रा में सजींदगी के साथ निर्वाह हुआ है। आपकी किसी बात के प्रति संवेदनात्मकता इतनी तीव्र है कि वे उन आवेगों को कई रूपों में प्रकट करना चाहते हैं। आप उस परम्परा के पक्षधर हैं जो साहित्य में कलात्मकता की अपेक्षा भावात्मकता पर अधिक बल देती है। अतः कथ्य के मूल्य पर वे शिल्प का कलात्मक संस्कार नहीं करते। समाज में स्त्रियों की स्थिति में सुधार भी उनका अभीष्ट है, दीन–दुःखी, शोषित–वंचित की स्थिति में सुधार उनका अभीष्ट है। अतः उनके साहित्य में संदेश महत्त्वपूर्ण है, शैली नहीं। फिर भी कलात्मकता की दृष्टि से आपके साहित्य में वे सारी विशेषताएं मौजूद हैं जो किसी साहित्यकार के साहित्य को उत्कृष्ट श्रेणी प्रदान करती है। भाषा शिल्प की दृष्टि से आपका साहित्य बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि विवेच्य गद्य साहित्य का शिल्प अत्यंत आकर्षक, सुगठित एवं व्यवस्थित है। जिसके कारण आपका गद्य साहित्य अत्यंत प्रभावशाली बन गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भीष्म साहनी के साहित्य का अनुशीलन— डॉ. सुरेश बाबर, पृष्ठ 168
2. नालन्दा विशाल शब्द सागर— श्री नवल जी(सम्पादक), पृष्ठ 1344
3. ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी हिन्दी शब्दकोश— एस.के. शर्मा व आर. एन. सहाय(सम्पादक), पृष्ठ 709
4. साहित्य का श्रेय और प्रेय— जैनेन्द्र कुमार, पृष्ठ 370
5. आधुनिक कविता में शिल्प— डॉ. कैलाश वाजपेयी, पृष्ठ 19
6. हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों की शिल्प विधि— डॉ. जवाहर सिंह, पृष्ठ 1
7. हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास— डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, भूमिका भाग
8. हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास— डॉ. श्रीमती ओम शुक्ल, पृष्ठ 22
9. वही
10. पाठ विश्लेषण में शैली विज्ञान की भूमिका— डॉ. सुधा जितेन्द्र, पृष्ठ 9
11. उपन्यासकार जगदीशचन्द्र : संवेदना और शिल्प— कैलाश नाथ पाण्डे, पृष्ठ 16
12. शिवानी का हिन्दी साहित्य, सामाजिक परिप्रेक्ष्य में— डॉ. ज्योत्सना शर्मा, पृष्ठ 107
13. हिन्दी कहानी कला— डॉ. प्रतापनारायण टण्डन, पृष्ठ 383
14. अनुभूति और अभिव्यक्ति का आईना : शैली एवं व्यक्तित्त्व— ऋचा शर्मा, पृष्ठ 36
15. शैली विज्ञान संरचनावाद की परस्परावलम्बिता— डॉ. नगेन्द्र सैनी, पृष्ठ 11
16. नालन्दा विशाल शब्दसागर— सम्पादक श्री नवल जी, पृष्ठ 1358
17. भाषा शब्दकोश— डॉ. रमाकान्त रसाल, पृष्ठ 1471
18. राजपाल हिन्दी विश्वकोश— डॉ. हरदेव बाहरी, पृष्ठ 780
19. शैली और शैली विज्ञान— डॉ. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांषु', पृष्ठ 23—24
20. नगेन्द्र ग्रन्थावली— डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ 87
21. हिन्दी कहानी कला— डॉ. प्रतापनारायण टंडन, पृष्ठ 383
22. शेखावाटी के यशस्वी चारण— भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 44—45
23. चूरू मण्डल के यशस्वी चारण— भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 43—44
24. चारण बड़ी अमोलक चीज— भंवर सिंह सामौर,पृष्ठ 35

25. हमारे साहित्य निर्माता रावत सारस्वत– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 14

26. लोक पूज्य देवियां– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 61

27. हिन्दी उपन्यास : सातवाँ दशक– डॉ. जयश्री बरहाटे, पृष्ठ 171

28. युगान्तरकारी सन्यासी– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 132–33

29. वही– पृष्ठ 62

30. लोक पूज्य देवियां– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 80

31. युगान्तरकारी सन्यासी– भंवर सिंह सामौर,पृष्ठ 20

32. वही– पृष्ठ 47

33. हमारे साहित्य निर्माता : रावत सारस्वत– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 29

34. वही– पृष्ठ 47

35. चूरू मण्डल के यशस्वी चारण– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 31

36. वही– पृष्ठ 68

37. शेखवाटी के यशस्वी चारण– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 16

38. वही– पृष्ठ 37

39. शंकरदान सामौर– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 20

40. चूरू मण्डल के यशस्वी चारण– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 68

41. लोक पूज्य देवियां– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ, 60

42. चारण बड़ी अमोलक चीज– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 24

43. शेखवाटी के यशस्वी चारण– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 46

44. राजस्थानी शक्ति काव्य– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 22–23

45. हमारे साहित्य निर्माता रावत सारस्वत– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 8

46. युगान्तरकारी सन्यासी– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 135

47. राजभाषा हिन्दी का सुबोध और सरल रूप– डॉ. शकिलाखनम, पृष्ठ 110

48. युगान्तरकारी सन्यासी– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 22

49. वही–पृष्ठ 22

50. वही–पृष्ठ 45

51. कृष्णकुमार गोस्वामी– व्यावहारिक हिन्दी और रचना, पृष्ठ 16

52. चूरू मण्डल के यशस्वी चारण– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 30

53. वही–पृष्ठ 45

54. शेखावाटी के यशस्वी चारण– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 34

55. शंकरदान सामौर– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 35–36

पंचम अध्याय

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में जीवन मूल्य

आदर्शवादिता

राष्ट्रीयता

सामाजिकता

नैतिकता

पंचम अध्याय

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में जीवन मूल्य

साहित्य जीवन व जगत की सम्पूर्ण मानवीय संवेदनाओं को बड़ी गहन मार्मिकता के साथ अपनी क्रोड़ में समाहित किए हुए रहता है। वह अपने अतीत के अनुभव से ग्रहण करते हुए वर्तमान जीवन को सुशोभित करता है तथा अपने सृजन में नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना विराट समन्वय की चेष्टा के साथ उच्चादर्शों को स्थापित करने में सहयोग प्रदान करता है। जब समाज परम्परागत मार्ग पर चलने का अभ्यस्त हो जाता है तब उसकी परम्परा और रूढ़ियां उसके संस्कारों को जड़ीभूत कर देती है तथा समाज दिशाहीन जैसा हो जाता है तब एक जागरुक साहित्यकार की आवश्यकता होती है जो जड़ीभूत समाज को एक नवीन क्रान्तिकारी विचारधारा के साथ नई चेतना और नये संस्कारों का स्वर लेकर तीव्र वेग से परिवर्तन की दिशा को सुनिश्चित करे तथा दिशाहीन समाज की जड़ता की बेड़ियों को नवीन विचारों की तलवार की धार से काट सके। ठीक ऐसे ही समाज एवं साहित्य दर्शन के पुरोधा एवं महान् व्यक्तित्व के धनी भंवर सिंह सामौर हैं जिन्होंने अपने विचारों से हिन्दी साहित्य को गौरवान्वित करने में सफलता अर्जित की है।

मानव मूल्यों का पारिभाषिक विवेचन

हिन्दी में प्रयुक्त 'मूल्य' शब्द संस्कृत के 'मूल' धातु के साथ 'यत' प्रत्यय जोड़कर बनाया है जिसका अर्थ है कीमत, मजदूरी आदि। डॉ. नगेन्द्र ने ठीक ही लिखा है ''मूलेन अनाभ्यायते अभिभूयते मूलेन समं व इति मूलः'' अर्थात् किसी वस्तु के बदले मिलने वाला धन या कीमत। 'मूल्य' शब्द अंग्रेजी के 'वेल्यू' शब्द का हिन्दी रुपान्तरण है। वेल्यू शब्द लेटिन भाषा के ''वैलियर'' शब्द से बना है जिसका अर्थ है– 'अच्छा', 'सुन्दर'। इसका आशय इच्छा से है।

मानव मूल्यों में परिवर्तन

मानव मूल्यों के गिरते स्तर को भंवर सिंह सामौर ने अपने साहित्य में एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया है। आपने अपने साहित्य में आजादी के बाद सामाजिक वातावरण में अनुज और अंग्रेज पीढ़ी कितनी अनुदार और संवेदनहीन है, उसको गहरी संवेदना के साथ अनावृत किया है। ऐसे संघर्ष से सामाजिक जीवन जितना दूभर बन जाता है, उसको भी अभिव्यक्त किया है। आज आदर्शवादिता, राष्ट्रीयता, सामाजिकता और नैतिकता जैसे जीवन मूल्यों में बदलाव आने लगा है। संघर्षपूर्ण स्थिति में परिवार टूटते जा रहे हैं। वैश्वीकरण की अंधी दौड़ के मानव ने अपने आप को बिकाऊ बना लिया है।

जीवन मूल्य का अर्थ एवं समानार्थी शब्द

'मूल्य' शब्द सामान्यतः आर्थिक अर्थ में ही अधिक प्रचलित तथा परिचित शब्द है, परन्तु अब इस 'मूल्य' शब्द का अर्थ व्यापक हो गया है। अब इसका प्रयोग वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक स्तर पर सम्पूर्ण मानव व्यवहार के मानदण्ड के रूप में किया जाता है।

मूल्य शब्द की व्युत्पत्ति

हिन्दी में प्रयुक्त 'मूल्य' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की मूल धातु के साथ 'यत्' प्रत्यय लगाने से हुई है, जिसका कोशगत् अर्थ है–"किसी काम की मजदूरी और कीमत।" आदर्शवादी मूल्य को लोकमंगल में खोजते हैं और सत्–चित्–आनन्द ब्रह्म के इन तीनों रूपों में से आनन्द को ही मानते हैं। भारतीय दार्शनिक मोक्ष को ही जीवन का सबसे बड़ा मूल्य स्वीकार करते हैं। संस्कृत व्याकरण के आधार पर मूल्य शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार मानी गयी है– "मूलेन आनाभ्यते अभिमूयते मूलेन समं वा इति मूल" अर्थात् किसी वस्तु के बदले में मिलने वाली धन, कीमत।"[1] किन्तु जिस मूल्य शब्द से हमारा विशेष प्रयोजन है, वह अंग्रेजी के Value शब्द का

समानार्थी है, जो लैटिन भाषा के 'Valere'से बना है। जिसका अर्थ सुन्दर, अच्छा या उत्तम होता है अर्थात् 'मूल्य' शब्द के अर्थ में शिवम् और सुन्दरम् सन्निहित है।

संस्कृत विद्वानों की मूल्य विषयक मान्यताएँ

भारतीय साहित्य में मूल्यों का विवेचन मुख्यतया धर्म के सन्दर्भ में हुआ है। विभिन्न काव्य ग्रन्थों में जिन गुणों को धर्मानुकूल कहा गया है, वे जीवन मूल्यों के ही अंश है। मनुस्मृति में भगवान मनु ने धर्म के दस लक्षण बताये हैं–

''घृति, क्षमा, दमो स्तेयं शांचानिन्द्रियानिग्रहः

धीविद्यासत्यम क्रोधे दशकं धर्म लक्षणम्।''

अर्थात् धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय–निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध ये दस लक्षण हैं। ये मानवीय गुण ही वास्तव में नैतिक मूल्य हैं।''[2]

रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने राम के सर्वगुण सम्पन्न चरित्र का वर्णन करते हुए उनके कुछ गुणों का उल्लेख किया है–

इश्वाकुवंशे प्रभवो रानी नाम जनै श्रुतः

नियतोत्या महावीर्यो द्युतियान् धृतिमान् वशी।

बुद्धि नान्नीतिमान् वाग्मी श्रीमाज्छत्रु निवर्हणः ।।

''इन पंक्तियों में वाल्मीकि ने राम को नियतात्मा, वीर्यवान्, कान्तिशाली, धैर्यशाली, जितेन्द्रिय, नीतिमान, बुद्धिमान और वाक् चतुर आदि गुणों से सम्पन्न बताया है ये गुण वस्तुतः शाश्वत मूल्य हैं।''[3]

भृतहरि का नीतिशतक उत्तरवर्ती संस्कृत साहित्य का एक प्रमुख नीतिग्रन्थ है। कवि ने मनुष्य के गुणों का एक श्लोक में इस प्रकार वर्णन किया है–

येषां न विद्या न तपो दानं न ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः

ते मृत्युलोके भुति भारभुताः मनुष्य रूपेण मृगश्चरानी।''

''भृतहरि कहते हैं कि जिन व्यक्तियों में विद्या, तप, ज्ञान, दान, शील, गुण धर्म आदि नैतिक गुण नहीं होते, वे लोग धरती पर बोझ स्वरूप हैं और मनुष्य के रूप में पशु ही हैं।''[4] भृतहरि के द्वारा निर्दिष्ट ये गुण भी नैतिक मूल्य के ही पर्याय हैं। मूल्य विचार की दृष्टि से भारतीय संस्कृति में वर्ग चतुष्ठय एक सुभाषित विचारणीय प्रतीत होता है–

''आहारनिंद्राभ्यमैथुनंच सामा–यमेतम् पशुमि नाराणाम्

धर्मों हितेषु अधिकोविशेष, धर्मेणहीनः पशुभि समान ।।''[5]

यहाँ धर्म को उत्कृष्ट मूल्य मानते हुए कहा गया है कि धर्म के अभाव में मनुष्य पशुओं से श्रेष्ठ नहीं है। भारतीय परम्परा के अनुसार धर्म एक ऐसा मूल्य है, जो मानव जीवन की इहलोक एवं परलोक की उन्नति का साधन है और इससे मनुष्य आत्मिक शान्ति का लाभ प्राप्त कर आनन्दित होता है।

पाश्चात्य विद्वानों की मूल्य विषयक मान्यताएँ

पाश्चात्य विद्वानों ने अच्छे–बुरे की छानबीन 'मूल्य' के संदर्भ में की है। एच. एम. जॉनसन के मतानुसार ''मूल्यों को एक धारणा या मान के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह धारणा सांस्कृतिक हो सकती है और व्यक्तिगत भी। उसके द्वारा उचित या अनुचित स्वीकार्य या अस्वीकार्य, अच्छे या बुरे का शास्त्रीय

विवेचन किया जाता है और नैतिकता की कसौटी पर परखा जाता है।''[6] इस परिभाषा के अनुसार मूल्य समाज की भावनाओं से सम्बद्ध होते हैं।

अर्बन ने मूल्य की तीन परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं–

1. ''जो मानवीय इच्छा की तुष्टि करे, वही 'मूल्य' है।''[7]
2. ''मूल्य वह वस्तु है जो जीवन को सदैव विकास की ओर ले जाती है और उसे सुरक्षित रखती है।''[8]
3. ''मूल्य ही अन्तिम रूप से तथा लक्ष्य की दृष्टि से मूल्यवान है, जो व्यक्तियों को विकास अथवा आत्म विकास या आत्मानुभूति की ओर ले जाती है।''[9]

अर्बन की परिभाषा से यही स्पष्ट होता है कि मूल्य विकासोन्मुखी होते हैं। जीवन में बाधक न होकर साधक सिद्ध होते हैं।

'मूल्य' को परिभाषित करते हुए ''कलकहान'' कहते हैं– ''मूल्य स्पष्ट अथवा सामुदायिक विशेषता के नाते एक ऐसी वांछित संकल्पना है, जो उपलब्ध लक्ष्यों, साधनों एवं साध्यों के चुनाव को प्रभावित करते हैं।''[10]

वुडस के अनुसार– ''मूल्य दैनिक जीवन में व्यवहार को नियंत्रित करने के सामान्य सिद्धान्त हैं। मूल्य केवल मानव व्यवहार की दिशा निर्धारण ही नहीं करते, बल्कि अपने आप में आदर्श और उद्देश्य भी होते हैं मूल्यों में केवल यही नहीं देखा जाता है कि वह सही या गलत है।''[11]

लोगार्ड्स के अनुसार– ''सभी मानवीय सम्बन्ध और व्यवहार मूल्य ही हैं।''[12] यह परिभाषा मूल्य को समाज सापेक्ष स्वीकार करती है। विद्वानों के निष्कर्षानुसार मूल्य उन्हीं व्यवहारों को कहा जाता है, जिनमें मानव जीवन का हित समाविष्ट हो, जिनकी रक्षा करना समाज अपना सर्वोच्च कर्त्तव्य मानता है।

हिन्दी विद्वानों की मूल्य विषयक मान्यताएँ

हिन्दी के विभिन्न दार्शनिकों और विद्वानों ने मूल्य की परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं। आर.के. मुकर्जी के अनुसार– ''जो कुछ भी इच्छित, वांछित है, वह मूल्य है।''[13]

डॉ. प्रभाकर माचवे ने मूल्यों को 'नीतिशास्त्रीय वेल्यू' का पर्यायवाची मानते हुए कहा है कि ''मानवीय क्रियाओं में आचार–व्यवहार में, अच्छाई या शिवत्व का मूल्य क्या है, यही नीतिशास्त्र का विषय है।''[14]

डॉ. देवराज ने मूल्यों को सर्वश्रेष्ठ आचरणीय कार्य–व्यापार मानते हुए कहा है कि ''मूल्य वे होते हैं, जिनकी मनुष्य कामना करता है। जो मनुष्य की सार्वभौम संवेदना को आवेगात्मक अर्थ देते हुए दिखाई देते हैं।''[15]

रोहित मेहता के अनुसार ''मूल्य न तो किसी मशीन द्वारा उत्पादित वस्तु है और न ही यह किसी सरकार द्वारा निर्मित कानून है। मूल्य तो जीवन के प्रति एक गुण है, एक अन्तर्दृष्टि है, एक अवधारणा है, एक दृष्टिकोण है।''[16]

प्रोफेसर मैकेन्जी के अनुसार– ''मूल्य से हमारा आशय उस विचार से है, जो एक विचारशील प्राणी के चिन्तन का परिणाम हो।''[17]

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार– ''मूल्य और प्रतिमान समानार्थी शब्द है। दोनों ही मानव निर्मित कसौटियाँ हैं, जिनके सहारे साहित्य का मूल्यांकन किया जाता है। मनुष्य के कुछ वैयक्तिक व्यवहार होते हैं, परन्तु समाज, नगर, प्रदेश, प्रान्त, राष्ट्र और समाज का सदस्य होने के नाते उसे कुछ सामाजिक बंधनों को स्वीकार करना पड़ता है।''[18]

मानविकी पारिभाषिक कोश में 'मूल्य' के विषय में लिखा है कि प्रत्येक मूल्य जीवन के किसी विशेष क्षेत्र या पहलू से सम्बन्धित हैं।''[19]

मूल्य और जीवन मूल्य

मूल्य मनुष्य के आत्मिक उन्नयन के साथ भौतिक उन्नति के भी समर्थक हैं। मूल्य के सन्दर्भ में 'जीवन' तथा 'मानव' दो शब्द विशेष विचारणीय है। 'जीवन' शब्द से 'स्व' का बोध ध्वनित होता है, जबकि मानव शब्द स्व के साथ परहित के आदर्शात्मक लक्ष्य को अभिव्यंजित करता है। डॉ. धर्मपाल सैनी जीवन—मूल्य और मानव—मूल्य के अन्तर को परिभाषित करते हुए कहते हैं— ''जीवन—मूल्य क्रियात्मक होते हैं, जबकि मानव—मूल्य लक्ष्यात्मक अथवा आदर्शात्मक।''[20]

आधुनिक मानवतावाद की अवधारणा से भी 'मानव' शब्द परहित का परिचायक है। कुछ मूल्यवादी समीक्षक जीवन—मूल्य तथा मानव—मूल्य दोनों को 'ह्यूमैन वैल्यूज' का ही पर्याय मानकर दोनों के अन्तराल को स्वीकार नहीं करते हैं।''[21]

मूल्य और मानव मूल्य

मूल्य के अर्थ में दो विशेषताओं का होना अनिवार्य है। एक तो यह है कि वह दृष्टिकोण अर्थात् वैचारिक सत्य, सुन्दर और शिवम् से युक्त हो, दूसरा वह मनुष्य चिन्तन का, उसकी विचारणा का परिणाम हो। अन्य शब्दों में, जीवन—मूल्य चिन्तन के आधार पर जहाँ नितान्त वैयक्तिक सत्य है, वहीं लक्ष्य की दृष्टि से उसे समाज स्वीकृत, सुन्दर तथा शिव या शुभगामी होना चाहिए। संक्षेप में भारतीय संस्कृति का चरम लक्ष्य सत्यं, शिवं, सुन्दरम् युक्त मानवीय विचारणा या चिन्तना का निचोड़ ही जीवन मूल्य कहलाता है।

मूल्य और तथ्य

''तथ्य यथार्थ का प्रदर्शन अथवा प्रदर्शित होने वाली एक वास्तविकता है।''[22] यही वास्तविकता जब इच्छा को प्राप्त करने में खाली हो जाती है, तब मूल्य का रूप

धारण कर लेती है। एक उदाहरण द्वारा उसे समझा जा सकता है– ''तृप्ति यात्रा द्वारा निर्मल जल का शोध एक तथ्य है। प्यास बुझ जाने पर जल के मूल्य का उसे बोध होता है। इस प्रकार तथ्य मात्र वास्तविकता होने के साथ–साथ मूल्य का प्रथम चरण है।''[23]

मूल्य और आदर्श

''आदर्श शब्द 'दृश' धातु में 'आ' उपसर्ग तथा 'घड्' प्रत्यय लगाने से बना है, जिसका अर्थ 'नमूना' और 'दर्पण' होता है।'' साहित्य में आदर्श का अर्थ है– ऐसी चीज, विचार या धारणाएं जो प्रदर्शन करने के योग्य हैं अर्थात् नमूना बन सकती हैं, वे आदर्श हैं। शाब्दिक अर्थ के अतिरिक्त इस शब्द का जो भावार्थ प्राप्त हुआ है, उसके अनुसार आदर्श दृष्टिकोण का लक्ष्य होता है। मनुष्य वर्तमान स्थिति से असंतुष्ट होकर कल्पना से निर्मित दृष्टिकोण के आधार पर जिन उच्च नैतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक और सौंदर्यपरक प्रतिमानों की स्थापना कर लेता है, वे ही आदर्श कहलाते हैं।

Persons& Value के लेखक ब्राइटमैन के अनुसार– ''मूल्य और परिस्थिति और तर्कवादी अभिधारणा से उत्पन्न परिस्थिति पर विश्वास करना ही मूल्य है।''[24] कहने का आशय यह है कि जिन परिस्थितियों को हम जीते हैं उनके अनुभवोंपरान्त जो मान्यता अथवा विश्वास जन्मती है, वहीं मूल्य है। आदर्श और मूल्य का सापेक्ष संबंध है, क्योंकि व्यक्ति के मूल्यों के अनुसार उसका आदर्श निश्चित होता है और आदर्श की प्राप्ति के लक्ष्यानुरूप ही वह नवीन मूल्यों का निर्माण तथा पुरातन मूल्यों का रूपान्तरण करता है। दार्शनिक मत में आदर्शवाद, विज्ञानवाद या प्रत्ययवाद का पर्याय है। इसी सन्दर्भ में डॉ. मुन्शीराम के कथन से सिद्ध है कि ''आदर्श वह है, जो सबके लिए प्राप्तव्य हो । भौतिक आदर्श ऐसा नहीं है। आध्यात्मिक आदर्श सबकी साझी सम्पत्ति है।''[25] इसलिए आदर्श और मूल्य, इन दोनों में सामान्यता दिखाई देने पर भी दोनों एक नहीं हो सकते।

मूल्य और नॉर्म

श्री रविन्द्रनाथ मुकर्जी के अनुसार– ''व्यक्ति तथा समूहों के व्यवहारों या आचरणों को नियन्त्रित व नियमित करने तथा उन्हें समाज द्वारा मान्य एक उचित स्तर पर बनाए रखने के लिए सामाजिक अन्तः क्रियाओं के दौरान पनपे हुए नियमों, आदर्शों और मूल्यों की व्यवस्था को नॉर्म कहते हैं।''[26]

मूल्य और वर्जनाएँ

वर्जनाएँ व्यवहार के उन तरीकों को कहते हैं, जिन्हें समाज उचित नहीं समझता है जैसे– झूठ नहीं बोलना, चोरी न करना आदि। राज ने टेबू की परिभाषा में लिखा है कि ''टेबू अथवा वर्जनाएँ एक प्रकार के निषिद्ध कार्य हैं, तो किसी समूह विशेष के समस्त व्यक्तियों में सामान्य रूप से मान्य होते हैं। सामाजिक एवं जैविक, दोनों ही दृष्टियों से वर्जनाएँ मान्य होती हैं एवं इनकी प्रभावशीलता आन्तरिक अनुरोध पर होती है, न कि बाह्य नियन्त्रण पर'''[27] वर्जनाओं में लोक कल्याण का भाव निहित होता है।

मूल्य और नैतिकता

समाज में शान्ति सुव्यवस्था बनाये रखने हेतु व्यक्ति के लिए जिन सुनिश्चित और सुव्यवस्थित आचार प्रणालियों का निर्धारण किया जाता है, उन्हें नैतिकता की संज्ञा दी जाती है। नीतिशास्त्र मानव की आचार संहिता है। समाज द्वारा निर्धारित मान्यताएं नीति शब्द में अन्तर्भुक्त हो जाती हैं। नैतिकता का श्रेय व्यवहार को परिष्कृत करना है, जबकि मूल्य मानव जीवन की शुभ, दिशा, मुहुर्त् लक्ष्य एवं उच्च आदर्शों की ओर प्रेरित करते हैं। मूल्य यदि लक्ष्य है, तो नैतिकता उन्हें प्राप्त करने की राह। उर्मिल गम्भीर का कथन है कि ''नैतिकता और मानव मूल्य का पालन ही मनुष्य को पाश्विक कोटि से निकालकर मानवता के धरातल पर स्थापित करता है।''[28] अतः नैतिकता और मानव मूल्य समाज के आधार स्तम्भ हैं।

जीवन मूल्य : अभिप्राय

जीवन मूल्य मानव समूह, देश और काल से सम्बन्धित हैं। मानव समूह देश और काल के परिवर्तन से मूल्य बदलते रहते हैं। आज से हजारों वर्ष पहले जो मूल्य थे, वे आज नहीं हैं, क्योंकि काल परिवर्तन से मूल्य भी परवर्तित हो जाते हैं। इसी प्रकार विभिन्न देशों के विभिन्न रूप हैं। देश के बदलने से मूल्य भी बदल जाते हैं।

जीवन मूल्य : परिभाषा

अर्थशास्त्र से विकसित मूल्य शब्द साहित्य में व्यापक धरातल पर ऐसे प्रतिष्ठित हुआ कि इसे एक निश्चित परिभाषा के कटघरे में बाँधना अत्यन्त कठिन है– हेनरी ऑसवार्न के अनुसार– ''वे मूल्य जो मानव के आन्तरिक सहज स्वरूप के सबसे निकट प्रतीत होते हैं, जीवन मूल्य कहलाते हैं''

डॉ. जगदीश गुप्त के अनुसार– ''जीवन मूल्यों का तात्पर्य उन मूल्यों से है, जो मानव के आन्तरिक सहज स्वरूप के सबसे निकट प्रतीत होते हैं तथा उसके संवेदात्मक व्यक्तित्व से सबसे अधिक सीधे और गहन रूप से सम्बद्ध हैं। उनकी विशेषता इसी में है कि मानवीय संवेदनाओं की उनमें मुक्त और उदार स्वीकृति है। जीवन में उन मूल्यों की प्रतिष्ठा का अर्थ मानवता और मानवीयता की प्रतिष्ठा है। उनके बिना मानव अस्तित्व निरर्थक है।''

श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा के अनुसार–''अनुभूति जीने की अधिकार–वाच्छा को कलाकार किसी भी कर्म श्रृंखला के माध्यम से व्यक्त करने की चेष्टा करता है, तो वही वह जीवन मूल्यों की स्थापना करता है।''

इन परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि मूल्य एक धारणा है, जिसका सम्बन्ध मानव से है। 'मूल्य' व्यक्ति को सही दृष्टि प्रदान करते हैं। 'मूल्य' कथनी और करनी में एकरूपता लाते हैं।

जीवन मूल्य, स्वरूप और महत्त्व

स्वरूप– भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही विचार धाराओं के अन्तर्गत मूल्य मीमांसा एक महत्त्वपूर्ण विषय रहा है। मूल्य मीमांसा मूलतः दर्शनशास्त्र का विषय है। यद्यपि यह एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में विकसित हो रहा है। ''मूल्य मीमांसा अंग्रेजी शब्द 'एक्जिओलोजी' का हिन्दी रूपान्तरण है। 'एक्जियोलोजी' शब्द यूनानी शब्द 'एक्सियस' और लॉगस से बना है। 'एक्सियस' का अर्थ मूल्य या कीमत है तथा 'लॉगस' का अर्थ तर्क, सिद्धान्त या मीमांसा है। अतः एक्जियोलॉजी या मूल्य मीमांसा का तात्पर्य विज्ञान से है, जिसके अन्तर्गत मूल्य या स्वरूप, प्रकार और उसकी तात्त्विक सत्ता का अध्ययन या विवेचन किया जाता है।''[29]

आधुनिक युग में दर्शन की ही एक शाखा विशेष रूप में मूल्य मीमांसा द्रुतगति से पल्लवित हो रही है। यही कारण है कि आज का दार्शनिक 'मूल्य सिद्धान्त' का अध्ययन करते समय मूल्य शब्द के प्रति चेतन और गम्भीर है।''[30] किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि मूल्य सिद्धान्त आधुनिक युग की ही अनूठी देन मान ली जाए।

भारतीय दर्शन के अन्तर्गत पुरुषार्थ को ही जीवन मूल्य के रूप में मान्यता दी गई। पुरुषार्थ का मूल अर्थ उन प्रयत्नों से है, जिन्हें जीवन के उद्देश्य की पूर्ति हेतु किया जाता है। हिन्दू जीवन दर्शन ने मानव जीवन के चार उद्देश्य अर्थात् मूल्य स्वीकार किए हैं– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। श्री देवीप्रसाद गुप्त लिखते हैं कि– ''हमारे महाकाव्यों का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की अर्थात् चतुवर्ग की प्राप्ति माना गया है। इसमें प्रतिपादित शाश्वत जीवन मूल्य भोग, योग और कर्म हैं।''[31]

धर्म का अर्थ है जो धारण करे और पुरुषार्थ के सन्दर्भ में मानव द्वारा व्यष्टि और समष्टि के प्रति नैतिक कर्त्तव्यों को धारण करना ही धर्म है। इस दृष्टि से धर्म का सम्बन्ध नैतिक मूल्यों से है। ''धर्म उन नैतिक नियमों को कहते हैं। जिनके पालन से व्यक्ति और समाज दोनों की ही उन्नति और कल्याण होता हो। जिन पर चलने से व्यक्ति को सुख, शान्ति समाज में सन्तुलन, सामंजस्य और शान्ति स्थापित हो।''[32]

अर्थ से आशय गृहस्थी चलाने, परिवार के बसाने और धार्मिक कार्यों को पूर्ण करने हेतु आवश्यक भौतिक वस्तुओं से है। चतुवर्ग में मोक्ष की प्राप्ति धर्म के समान अर्थ को भी उपयोगी माना गया है। भारतीय दार्शनिकों ने आत्मज्ञान, आत्मविकास, आत्मानन्द, तेजस्वित सहजता, विवेक आदि साध्यात्मक या स्वलक्ष्य मूल्य माने हैं। ये मूल्य की प्राप्ति में उपयोगी होने के कारण इनकी महत्ता किसी भी रूप में कम नहीं होती है। दया, करुणा, त्याग, अहिंसा, उदारता, अपरिग्रह, लोकमंगल कामना, सदाचरण तथा विनम्रता आदि को साधना या निमित मूल्य माना है। ये साधनात्मक मूल्य हैं। अधिकांश अवसरों पर साधनात्मक मूल्यों के साथ यश प्राप्ति या प्रतिष्ठित होने का अभिशाप अपनी संगति बनाये रखता है। इन मूल्यों के पालन में से किसी एक का ही वरण संभवहो सकता है। भारतीय मत में काम को मात्र ऐन्द्रिक सुख और यौन तुष्टि के रूप में नहीं लिया गया, बल्कि मानसिक प्रक्रिया तथा रागात्मिका वृत्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। काम मनुष्य की ऐषणाओं को जगाता हुआ उनको भौतिक संकल्पों की ओर अभिमुख करता है। अर्थ के समान काम सम्बन्धी मूल्य भी धर्म से सम्बद्ध होकर ही साध्यात्मक मूल्य की ओर अग्रसर होते हैं। इसलिए काम, धर्म से संयुक्त होकर मोक्ष प्राप्ति में सहायक बनता है। ''मोक्ष वह अवस्था है, जहाँ जीव एक ओर संसार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है और दूसरी और ईश्वर में लीन हो जाता है। वैयक्तिक जीवन के दृष्टिकोण को मोक्ष, धर्म, अर्थ और काम का स्वाभाविक परिणाम है।''[33]

''जीवन के चरम मूल्य के अर्थ में मोक्ष का अर्थ मानव जीवन की स्वतन्त्रता ही है।''[34] डॉ. राधाकृष्णन् पुरुषार्थ को जीवन के मूल्य स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि ''अपना अस्तित्त्व बनाये रखना आत्मा की निर्मलता को बनाये रखना ही जीवन का लक्ष्य है। मानव केवल भौतिक सम्पत्ति और ज्ञानार्जन से ही संतुष्ट नहीं रह सकता। उसका ध्येय है– आत्म साक्षात्कार करना।''[35] इस प्रकार स्पष्ट है कि जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में भारतीय चिन्तन ने सर्वांगीण मानव जीवन की व्यवस्था को लक्ष्य मानकर चार पुरुषार्थ अथवा मूल्यों की प्रतिष्ठा की है।

मूल्य का समन्वित स्वरूप

जीवन मूल्यों के संबंध अनेक मत प्रचलित है। पुरातन काल में ईश्वर के प्रति आस्था और धर्मपरक दृष्टि मानव मूल्यों के केन्द्र बिन्दु थे। आज के युग में हर वस्तु को उपयोगिता की दृष्टि से आंकने का प्रचलन हो गया है, परन्तु उपयोगिता के आधार पर मूल्य का विवेचन सम्भव नहीं है, क्योंकि मूल्य के नये–नये आयामों का सम्बन्ध भौतिक उपयोगिता तक सीमित नहीं है। अर्थशास्त्र में 'मूल्य' को उपयोगिता के आधार पर ही परिभाषित किया जाता रहा है। अर्थ मनुष्य के समस्त व्यवहार का केन्द्र बिन्दु है। अतः उसका व्यवहार 'उपयोगिता' के आधार पर आंका जाता है, किन्तु मूल्य अधिकांशतः अतिवैयक्तिक होते हैं, वे भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में विकसित होते हैं। मूल्यों के आधार पर व्यक्ति अपने विचार बदलता है। मूल्य सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करते हैं वे ही सामाजिक सम्बन्धों का निर्धारण करते हैं। व्यक्तियों का व्यवस्थित व्यवहार ही संस्कृति में सम्मिलित किया जाता है तथा संस्कृति व्यवहार के प्रतिमान सिखाती है। व्यक्ति के सभी व्यवहार संस्कृति नहीं कहे जा सकते। वे ही व्यवहार संस्कृति के अन्तर्गत आते हैं, जिनका सम्बन्ध व्यक्ति से न होकर समष्टि से होता है तथा जनरीतियां तथा परम्पराएँ ही मूल्यों का उद्गम स्रोत होती हैं। ई.बी. टायलर ने संस्कृति की महत्ता को इस प्रकार स्पष्ट किया है कि ''संस्कृति वह जटिल समग्रता है, जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून, प्रथा

इसी प्रकार की अन्य विशेषताओं तथा आदतों का समावेश रहता है, जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में प्राप्त करता है।"[37] मूल्य केवल मानव व्यवहार को दिशा ही नहीं प्रदान करते, अपितु वे अपने आप में एक आदर्श भी प्रस्थापित करते हैं, इतना ही नहीं मूल्य का एक ओर उद्देश्य होता है। मूल्य मानव जीवन को स्थायित्व प्रदान करते हैं। मूल्यों के द्वारा सामाजिक विघटन रुकता है, सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होता है, मूल्यों से सुरक्षा, शान्ति, प्रगति होती है और अव्यवस्था रुकती है।

जीवन–मूल्य : संरचना और प्रभावक आधार

जीवन मूल्य के संरचना और प्रभावक आधार मूल प्रवृत्तियाँ तथा सहज क्रियाएँ होती हैं। इसलिए भूख–काम, जीवनेच्छा आदि से संबंधित शारीरिक मूल्य उसे अपने शारीरिक बोध से ही मिल जाते हैं। शरीर संबन्धी आवश्यकताएँ आधारभूत आवश्यकता होती है, जिनकी पूर्णता पर ही आगे के पराजैविक–सामाजिक–बौद्धिक और भावनात्मक मूल्यों का निर्माण होता है। भूख, काम, जीवनेच्छा के अतिरिक्त सामूहिकता, सहानुभूति और आत्म गौरव आदि ऐसी मूल प्रवृत्तियाँ हैं, जिनसे मनुष्य दूसरे व्यक्ति, परिवार तथा समाज और उनकी विभिन्न संस्थाओं के साथ व्यवहार करने लगता है और इस प्रकार कुछ विशिष्ट प्रकार की वैचारिक इकाईयों का निर्माण हो जाता है। इनके बाद भी मनुष्य की जिज्ञासा, धार्मिकता, विधायकता आदि मूल प्रवृत्तियों के अनुसार धर्म, दर्शन, कला साहित्य आदि से सम्बन्धित धारणाओं का निर्माण होता है। समग्रतः मनुष्य का संपूर्ण कायिक, मानसिक तथा सामाजिक व्यवहार उससे प्राप्त मूल्य प्रवृत्तियाँ से संचालित होता है और यह व्यवहार संचालन ही जीवन–दृष्टियों या वैचारिक इकाईयों का निर्माण करता है, जिनके शिवम्, सुन्दरम् रूप को ही मूल्य का नाम दिया जाता है। मूल्य संरचना के निर्माणक तथा प्रभावक आधारों को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया गया है– जैविक आधार और पराजैविक आधार।

जैविक आधार

जैविक आधार से आशय मनुष्य की जैविक शारीरिक संरचना से है। मूल्य के निर्माणक तथा प्रभावक जैविक आधारों के अन्तर्गत शारीरिक संरचना, मूल प्रवृत्तियाँ, संवेग, प्रेरणा, अनुभूतियाँ, अभिवृत्तियाँ, सहानुभूतियाँ, अनुकरण, सुझाव, अभिरुचि, पूर्वधारणा, तर्क आदि को सम्मिलित किया जाता है।

(1) शारीरिक संरचना

मानव के सम्पूर्ण शरीर की रचना परस्पर सम्बन्धित छोटे–छोटे असंख्य कोशों से मिलकर हुई है। मानव शरीर रचना में इन कोशों के अतिरिक्त वाहकाणु भी होते हैं, जिनके माध्यम से मनुष्य को पैतृक विशेषताएं प्राप्त होती हैं। शरीर संरचना ग्राहक कोशों, स्नायु कोशों, प्रभावक कोशों तथा वाहकाणुओं का संश्लिष्ट संयोजन होती है। माता–पिता की विचारधारा और दृष्टिकोण की विशेषताएँ वाहकाणुओं के द्वारा संतान के शरीर में सवंमित हो जाती है, संतान के बनने वाले मूल्यों में उसकी शरीर संरचना का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। इसी प्रकार शरीर संरचना में सहायक वातावरण भी मूल्य निर्माण में प्रभावी होता है।

(2) मूल प्रवृत्तियाँ

मनुष्य की सम्पूर्ण क्रियाएँ मूलतः मूल प्रवृत्तियों से ही संचालित होती हैं। मूल प्रवृत्तियों का योगदान सामाजिक मूल्यों के निर्माण में महत्त्वपूर्ण है। ''मूल प्रवृत्तियाँ विशेष उत्तेजनाओं की प्रतिक्रिया के वंशानुक्रम प्राप्त तरीके हैं, जो जीवन के संघर्ष में उपयोगी होने के कारण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में सवंमित होते रहते हैं।''[38] अतः मूल प्रवृत्तियाँ ही जीवन मूल्यों की जननी है।

(3) संवेग

संवेग मूल प्रवृत्ति की कार्य प्रणाली में सहायक होते हैं। जब ये उत्पन्न होते हैं, तब मनुष्य की मांसपेशियों में हलचल होने लगती है। मूल प्रवृत्तियाँ किसी भी जाति के सभी सदस्यों में समान होती हैं। उद्वेगों में वैयक्तिक भिन्नता भी हो सकती है और इस दृष्टि से यह बहुत सम्भव है कि संवेगों की भिन्नता के कारण भिन्न–भिन्न व्यक्तियों के जीवन मूल्यों में अन्तर हो। कामुक और संयमित जीवन तथा गुस्सैल और शान्त स्वभाव वाले व्यक्ति के जीवन मूल्यों में निश्चित रूप से अन्तर होगा, जबकि काम और युयुत्सा मूल प्रवृत्तियाँ दोनों में समान रूप से व्याप्त है।

(4) प्रेरणा

प्रेरणा वह शक्ति है, जो एक व्यक्ति को कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। वह व्यक्ति के व्यवहार की दिशा निर्धारित करती है और उसकी क्रियाओं की गति का उद्देश्य प्राप्ति तक संचालन करती है। रविन्द्रनाथ मुकर्जी के शब्दों में– ''प्रेरणा व्यक्ति की वह जैविक और अर्जित मन, शारीरिक प्रक्रिया या चालक शक्ति है, जो व्यक्ति को कि नहीं प्राणी शास्त्रीय व सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति न होने तक क्रिया के लिए प्रेरित करती रहती है।''[40]

(5) सहानुभूति

मेक्डूगल लिखते हैं कि– ''दूसरे के दुख में दुखी होना या दूसरे किसी व्यक्ति या प्राणी में एक विशेष भावना अथवा उद्वेग को देखकर अपने में भी उसी तरह की भावना या उद्वेग का अनुभव करना ही सहानुभूति है।''[41] दूसरे की स्थिति को उसी रूप में अनुभूत कर लेना पारस्परिक सम्बन्ध की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। वस्तुतः मित्रता का मूलाधार यही गुण है। सहानुभूति के माध्यम से समाज में

संगठन और एकता स्थापित होती है। दूसरे की पीड़ा से द्रवित होकर ही व्यक्ति कल्याणकारी कार्यों में सलंग्न होता है।

(6) अभिरुचि

व्यक्ति की अभिरुचियों का निर्माण और विकास पारिवारिक तथा सामाजिक परिपेक्ष्य में होता है। जैसे–जैसे व्यक्ति का सामाजीकरण शुरु होता है, वैसे–वैसे ही अभिरुचियाँ भी निर्मित और विकसित होती चलती है। व्यक्ति को जिस प्रकार का पारिवारिक वातावरण मिलता है, उसी के अनुरुप उसकी अभिरुचियों का निर्धारण होता है। समाज व्यक्तियों में जिस प्रकार की अभिरुचियों का निर्माण करता है, उसी के अनुसार किसी समाज के साहित्यिक, वैज्ञानिक, आध्यात्मिक और कलात्मक मूल्यों का सृजन होता है।

(7) तर्क

तर्क ज्ञान और व्यवहार दोनों को एकता की ओर ले जाने का आवेग है। सिद्धांत के क्षेत्र में व्यक्ति जीवन के विभिन्न अनुभवों से जो ज्ञानकरण संचित करता है, तर्क उन्हीं को वैज्ञानिक एकरूपता प्रदान करता है। इसी के आधार पर व्यक्ति के उसूल या सिद्धान्त निर्मित होते हैं। जहाँ मनुष्य की तर्कशक्ति प्रबल होगी, वहाँ उसके मूल्य पूर्वधारणाओं और अभिव्यक्तियों से संचालित नहीं होंगे बल्कि उसका स्वरूप उसकी तर्कशक्ति के द्वारा ही निर्धारित होगा।

पराजैविक आधार

मूल्यों के निर्माणक तथा प्रभावक पराजैविक आधार के अन्तर्गत मनुष्य के जीवशास्त्रीय तत्त्वों के अतिरिक्त अन्य तत्त्वों को सम्मिलित किया गया है। पराजैविक के तीन भाग किये गये हैं– 1. सामाजिक 2. प्राकृतिक 3. मानविकी।

सामाजिक आधार

मनुष्य एक मनोजैविक व्यक्ति के साथ–साथ सामाजिक व्यक्ति का संश्लिष्ट रूप है। इन दोनों ही प्रकार के रूपों में उसकी अनेक शरीरिक, मानसिक तथा सामाजिक आवश्यकताएं होती है और उन आवश्यकताओं की पूर्ति के बिना उसका अस्तित्त्व संभव नहीं हो सकता। इसलिए उसे इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु क्रियाशील होना पड़ता है। यह क्रियाशीलता ही मनुष्य को सामाजिकता में प्रवेश दिलाती है। मनुष्य के विकास में जन्म से मृत्युपर्यन्त सामाजिकता का अपरिहार्य स्थान होता है। मनुष्य का व्यवहार, आचार–विचार, जीवन दृष्टि अथवा जीवन मूल्यों का निर्धारण समाज के द्वारा ही सम्भव हो पाता है।

प्राकृतिक आधार

प्राकृतिक दशाएं एवं प्राकृतिक साधन– युद्ध मनुष्य द्वारा लाई गयी संयोजित संहारात्मक क्रान्ति है, जबकि भूकम्प, बाढ़, महामारी, अकाल आदि प्रकृति द्वारा मानवता के ऊपर किया गया आक्रमण है। संयोग दोनों में ही होता है। मनुष्य की व्यवस्था में विश्रृंखलता का ही परिणाम है। भूकम्प, बाढ़, महामारी ये सभी मनुष्य के अस्तित्त्व के लिए चिन्त्य हैं। इसलिए तो इन सब के आगमन पर मनुष्य के उच्चत्तर मूल्य धर्म, दर्शन, कला, नैतिकता सभी सिमटकर रह जाते हैं तथा प्राणों के संघर्ष में समाहित हो जाते हैं।

''एक देश की जलवायु भी उसके नागरिकों के दृष्टिकोण को प्रभावित करती है, क्योंकि जलवायु से भौतिक जीवन प्रभावित होता है और भौतिक जीवन में उसके विचार आदि देश की भौतिक समृद्धि के आधार पर उस देश में पाये जाने वाले भौतिक साधन भी प्रभावित होते हैं। भौतिक साधनों की प्रचुरता व्यक्ति के जीवन को ऊँचा उठाती है, उसके जीवन स्तर को प्रभावित करती है, बशर्तें कि उसका उपयोग देश के कल्याण को ध्यान में रखकर किया जाए। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक साधनों

में भी परिवर्तनों के नकारात्मक परिणाम और खनिज पदार्थों की कमी के फलस्वरूप विकल्पों के विकास का प्रयत्न मनुष्य की आविष्कार करने वाली प्रतिभा को जाग्रत करते हैं।''[4] इसी तरह देश की भौतिक सम्पदा का प्रभाव वहाँ के नागरिकों के जैविक तथा पराजैविक सभी प्रकार के मूल्यों पर पड़ता है।

मानविकी आधार

पराजैविक मानविकी आधार भी जीवन मूल्यों के प्रतिष्ठापन में महत्त्व रखते हैं। वस्तुतः धर्म, दर्शन, कला, साहित्य और नीति ये सभी जीवन की व्याख्याएं होती हैं। यह मानव जीवन को समझ लेने के प्रयास से उत्पन्न हुए दृष्टिकोण ही तो हैं। जीवन के बदलाव के साथ इनमें भी परिवर्तन आना स्वाभाविक है और इनके परिवर्तन से जीवन का बदल जाना भी अपेक्षित है।

(1) धर्म

किसी उच्चत्तर, श्रेष्ठ और पवित्र शक्ति पर विश्वास करके उससे प्रार्थना, पूजा या आराधना के माध्यम से भावनात्मक सम्बन्ध स्थापित करना ही धर्म है। विश्व के सभी धर्म जिस किसी भी अलौकिक शक्ति में विश्वास रखते हैं, वह मानवीय शक्तियों से अधिक सत्य, सुन्दर, सामर्थ्यवान, सार्वभौमिक तथा कल्याणकारी मानी गई है। मनुष्य में अपनी सीमाओं को पहचानकर एक असीम सत्ता की कल्पना की है और जिसको उसने अपने श्रेष्ठ और सुन्दरतम् मूल्यों की भेंट चढ़ा दी है। अतः धर्म ने सभी संस्कृतियों को भिन्न–भिन्न रूप में व्यापकता के साथ प्रभावित किया है।''[43]

(2) दर्शन

मानव जीवन के चरम मूल्यों का अन्वेषण दर्शन का विषय है, लेकिन चिन्तन दृष्टियों की भिन्नता के अनुसार दार्शनिक दृष्टिकोणों में भी भिन्नता मिलती है। यह दृष्टिकोण की भिन्नता ही जीवन मूल्यों के निर्माण में अनेक रूपता उत्पन्न करती है।

चिंतन एक सतत् धारा प्रवाह है, जो कि सामाजिक परिवेश को प्रभावित करती है। सच यह है कि मानव संस्कृतियों को जितने मोड़ वैचारिक क्रान्तियों से मिले हैं, शायद उतने सशस्त्र क्रांतियों से भी नहीं ।

(3) विज्ञान

विज्ञान आधुनिकता का आधार स्तम्भ है, क्योंकि मनुष्य ने अपने सम्पूर्ण इतिहास में यांत्रिक आविष्कारों और वैज्ञानिक उपलब्धियों को इतनी अधिक मात्रा और तीव्र गति से कभी नहीं भोगा था, जितना कि आधुनिक युग में। इसलिए आज विज्ञान मनुष्य की जीवन प्रक्रिया में परिवर्तन लाने वाले तत्त्वों में से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। विशेष रूप में विगत तीन शताब्दियों में हुए परिवर्तनों ने तो संसार की ही कायापलट कर दी है। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि आज के मानव दर्शन को स्वरूप देने में जितना हाथ विज्ञान का है, उतना अन्य और किसी का नहीं ।

जेम्स बी. कानेन्ट ने लिखा है कि ''हमारी संस्कृति का प्रत्येक स्त्री और पुरुष नैतिक तथा आचार मूल्यों के निर्धारण में चेतन तथा अवचेतन दोनों ही रूप से वैज्ञानिक धारणाओं का उपयोग करता है। प्रयोगशालाओं में वैज्ञानिकों द्वारा किए जाने वाले प्रयोगों का भी जीवन मूल्यों के निर्धारण पर प्रभाव पड़ता है।''[44]

(4) शिक्षा

शिक्षा जहाँ एक ओर मनुष्य के वैयक्तिक व्यक्तित्व को विकसित करती है, वहीं उसके सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यक्तित्व को भी गति देती है। शिक्षा का महत्त्व व्यक्ति की चिंतन शक्ति, अभिरुचि, आवश्यकता, क्षमता आदि के विकास तथा उसकी सामाजिकता और सांस्कृतिकता के निर्माण की दृष्टि से है। वस्तुतः शिक्षा का कार्य और कुछ नहीं बल्कि मनुष्य की सांस्कृतिक पूँजी का उसकी अगली पीढ़ी में सुसंस्कृत ढंग से प्रवेश कराना है। शिक्षा के कारण ही एक–एक व्यक्ति विगत हजारों वर्षों की सांस्कृतिक विरासत का संवाहक बन जाता है अर्थात् वह अपने

सामयिक क्षणों के मूल्यों से ही संबन्धित नहीं होता बल्कि विगत से चले आ रहे सम्पूर्ण मनुष्य जाति के जीवन मूल्यों से जुड़ा रहता है। शिक्षा के प्रचार प्रसार के कारण पृथ्वी पर बिखरी सभी संस्कृतियां परस्पर एक दूसरे के प्रति आकर्षित होती हुई समीप आती जा रही है, और उनमें एकरूपता बढ़ रही है। डॉ. देवराज के शब्दों में– ''..........शिक्षा का विशिष्ट उद्देश्य है, शिक्षार्थी के व्यक्तित्व का गुणात्मक विकास... दुनियां के महान् लोगों की बौद्धिक और आवेगात्मक प्रक्रियाओं में साझेदार बनकर शिक्षार्थी अपने व्यक्तित्व का विकास करता है।''[45]

(5) साहित्य और कला

जीवन को सुन्दर और श्रेष्ठतर रूप में देखने की चाह से प्रेरित होकर ही मनुष्य साहित्य तथा अन्य कलाओं का सृजन करता है। जीवन को सुन्दर और सुयोजित रूप में प्रस्तुत करने के लिए साहित्य और कलाओं में कल्पना का सहारा लिया जाता है। बौद्धिक कला के माध्यम से कलाकार कुछ इस प्रकार के कल्याणमय चिंतन को जन्म देता है, जो कि जीवन का मार्गदर्शन कर सके और भावनात्मक कल्पना के सहारे वह अभिव्यक्ति में ऐसी रमणीयता का सृजन करता है, जो जीवन में सौष्ठव उत्पन्न करके उसे आनन्दित कर सके। सत्य में शिवम् तथा सुन्दरम् का समावेश करके जीवन की सुष्ठ पुनर्व्याख्या प्रस्तुत करना ही लक्ष्य है। इस दृष्टि से साहित्य में तथा कलाओं में जीवन मूल्यों का यथार्थ अंकन तो होता ही है, साथ ही उनके स्वरूप का उदात्तीकरण भी होता है। साहित्य में उदात्त मूल्यों के चित्रण से साहित्य अध्येता निश्चित रूप से प्रभाव ग्रहण करता है और अपने जीवन मूल्यों को भी उसी के अनुरूप दिशा देता है।

जीवन मूल्यों का वर्गीकरण और संक्रमण

मूल्यों का वर्गीकरण

प्राचीन युग में मानव अपने भाग्य का स्वयं निर्माता नहीं था। वह स्वयं अपने व्यवहार का निर्धारण नहीं कर सकता था। मूल्यों का निर्धारण राज्य, धर्म, एवं समाज के द्वारा किया जाता था, किन्तु आज वैसा नहीं है, इस मत को व्यक्त करते हुए डॉ. देवराज उपाध्याय कहते हैं कि ''मनुष्य अपना कर्ता धर्ता स्वयं है। अर्थों तथा मूल्यों का निर्णायक भी वही है।''[46]

''अर्बन का मूल्य विभाजन जहाँ एक ओर मनोविज्ञान तथा मूल प्रवृत्तियों के विकास से सम्बन्धित है, वहीं दूसरी ओर वह मनुष्य के सांस्कृतिक विकास को भी अपने में समाहित कर लेता है।''[47] मूल्यों के विकास की दृष्टि से सर्वप्रथम जीवन मूल्यों को जैविक और पराजैविक दो भागों में विभाजित किया गया है।

(1) जैविक मूल्य (शारीरिक मूल्य)

जैविक अर्थात् शारीरिक मूल्यों से अभिप्राय मनुष्य के शरीर हित से संबन्धित प्राणी शास्त्रीय वैचारिक दृष्टियों से है। शारीरिक स्तर पर जैविक मूल्य ही मनुष्य के साध्यात्मक मूल्य होते हैं, लेकिन उत्तरोत्तर विकास के साथ–साथ उसके साध्यात्मक मूल्य जैविक स्तर से ऊपर उठकर उसकी सामाजिकता और उसके बाद आध्यात्मिकता से जुड़ जाते हैं। तब शारीरिक मूल्य उच्चत्तर मंजिल के लिए साधन का कार्य करते हैं।

(2) पराजैविक मूल्य (सामाजिक तथा मानविकी मूल्य)

मनुष्य पशु से भिन्न कल्पनाप्रिय, तर्कशील चैतन्य प्राणी है, जिसके पास भूख, काम, भय, जीवनेच्छा की मूल प्रवृत्तियों के अतिरिक्त सामूहिकता, आत्मगौरव, विधायकता, जिज्ञासा, धार्मिक भावना भी विद्यमान रहती है, जो कि समाज में

उपलब्ध सांस्कृतिक, दार्शनिक, साहित्यिक, धार्मिक कलात्मक आदि अन्यान्य प्रकार के वातावरण से प्रतिक्रियान्वित होकर मूल्यों का सृजन करती है। पराजैविक मूल्य जैविक मूल्यों के बाद ही अस्तित्त्व में आते हैं।

डॉ. देवराज ने लिखा है कि– ''मनुष्य केवल उपयोगिता की परिधि में ही जीवित नहीं रहता। उसमें कुछ ऐसी रुचियां भी पायी जाती है, जो उपयोगिता का अतिक्रमण करती है। वह बौद्धिक जिज्ञासा तथा सौंदर्य की भूख से भी पीड़ित होता है और इस प्रकार एक सांस्कृतिक प्राणी के रूप में जन्म लेता है।''[48] जीवन के विकास क्रम में जैविक मूल्यों का स्थान पहले आता है, जैविक मूल्य साध्यात्मक होते हैं, किन्तु इन आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद मनुष्य पराजैविक अपेक्षाओं की ओर आकर्षित होता है और इस स्थिति में साधनात्मक मूल्यों का कार्य करते हुए साध्यात्मक मूल्यों की प्राप्ति का साधन मात्र बनकर रह जाते हैं। पराजैविक मूल्यों को भी दो उपविभागों में वर्गीकृत किया गया है– (1) सामाजिक, (2) मानविकी

(1) पराजैविक सामाजिक मूल्य

सामूहिकता, सहानुभूति आदि मूल प्रवृत्तियों के कारण एक व्यक्ति दूसरे, परिवार, राज्य तथा अन्य सामाजिक संस्थानों से व्यवहार रखता है और इन व्यवहारों के प्रति निर्मित जीवन दृष्टि ही सामाजिक मूल्यों का निर्माण करती है।

मूल्य चेतना के विकास का दूसरा स्तर व्यक्ति के जैविक स्वरूप से ऊर्ध्वगामी होकर उसकी सामाजिकता तथा संस्कृति एवं आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो जाती है। यही महत्त्वपूर्ण मोड़ मनुष्य को पशु से भिन्न बनाता है और मनुष्य को विशिष्ट सांस्कृतिक प्रमाण की ओर गतिशील बनाता है। उपयोगिता की परिधि में घिरे न रहकर निरन्तर उद्‌विकास की ओर क्रियाशील रहना मनुष्य की प्रकृति प्रदत्त विशेषता है। इसी विशेषता के परिणामस्वरूप वह जीवनेच्छा, भूख और काम संबन्धी जैविक मूल प्रवृत्तियों की तुष्टि के अतिरिक्त उसमें विद्यमान अन्य मूल

प्रवृत्तियों, सामूहिकता, सहानुभूति, जातीय सुरक्षा एवं सन्तानोत्पति आदि की प्रेरणा से सामाजिकता की ओर अग्रसर होता है। ये ही मूल प्रवृत्तियां व्यक्ति की सामाजिकता का आधार होती है। इन्हीं से सम्बन्धित मूल्यों को पराजैविक सामाजिक मूल्य कहा जाता है। सामाजिक मूल्यों की विद्यमानता एवं संरक्षण अत्यावश्यक है, क्योंकि ''सामाजिक मूल्य सामाजिक जीवन के रक्षा कवच होते हैं।''[49]

(2) पराजैविक मानवीय मूल्य

मनुष्य की कतिपय पिपासाओं का सम्बन्ध उसके भावनात्मक तथा वैचारिक स्तर से होता है। भावना और विचार ये दोनों मनुष्य के शारीरिक और सामाजिक व्यक्तित्व के चारों ओर एक तीसरे व्यक्तित्व के वृत्त का निर्माण करते हैं। यह वृत्त अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म और कलात्मक होता है। इस वृत्त की सीमा में आने वाले मूल्यों को मानविकी तथा आध्यात्मिक मूल्य कहा जाता है। इन्हीं सामान्य शब्दावली को दार्शनिक, धार्मिक, शैक्षणिक, नैतिक, कलात्मक, साहित्यिक आदि मूल्यों के नाम से अभिहित किया जाता है। सर्वप्रथम जैविक मूल्यों का निर्माण होता है और उसके बाद पराजैविक का, साथ ही यह तथ्य भी प्रकट करता है कि मानव के सांस्कृतिक विकास में भी सर्वप्रथम जैविक मूल्यों के बाद पराजैविक मूल्यों का निर्माण होता है ।

मूल्यों का वर्ग संक्रमण

जब किसी युग और समाज में अन्यान्य कारणों से मूल्यों के प्रति अनास्था का निर्माण हो जाता है तो पुराने मूल्य टूटकर बिखर जाते हैं और आस्थाहीन समाज नये मूल्यों को भी सहजता से नहीं अपना पाता है। तब मूल्य में संकट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ऑस्वेड स्वेंगलर लिखते हैं कि– ''प्रत्येक सभ्यता के जीवन में एक ऐसा मोड़ अवश्य आता है, जब उसके भीतर की मान्यताएं टूटने लगती हैं। आन्तरिक विश्वास अवरुद्ध हो जाता है।''[50] इस संदर्भ में डॉ. धर्मवीर भारती लिखते हैं कि ''हम में वस्तुतः व्यापक संवेदना होनी चाहिए कि विश्वव्यापी

मानवीय विघटन की चरम वेदना को हम आत्मसात् कर सकें, चाहे वह एशिया में हो या यूरोप में या अफ्रीका में।''[51] डॉ. गिरीराज शर्मा ने युगीन परिस्थितियों के बारे में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि– ''आज के वैज्ञानिक युग में असम्भाव्य वस्तु पर भी विजय पाने के पश्चात् मानव को शान्ति नहीं मिलती है। वह पुनः मानवतावाद की ओर झुका हुआ है और आत्मिक शान्ति की वास्तविकता को जानना चाहता है। जीवन की भांति ही जीवन मूल्यों में गतिशीलता का क्रम रहता है और व्यक्ति अपने परिवेश के अनुसार बाह्य स्वरूप का थोड़ा बहुत भेद कर लेता है।''[52] वर्तमान स्थितियों में मानव जीवन में शान्ति नहीं है। मानव उस शान्ति के लिए सद्भाव और मित्रता स्थापित करता है। उसकी सारी तलाश विश्व शान्ति की ओर केन्द्रित हो चली है।

जीवन मूल्य और साहित्य

साहित्य और जीवन मूल्यों का परस्पर संबन्ध

साहित्य पाठकों को जीवन के यथार्थ से जोड़ता है और नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था उत्पन्न करता है। साहित्य के संदर्भ में मूल्य शब्द समाज कल्याण और मानव हित तक ही सीमित नहीं है, अपितु उसका क्षेत्र व्यापक और विस्तृत हो जाता है। इसकी पुष्टि करते हुए मुंशी प्रेमचन्द ने कहा है कि ''साहित्य का प्रयोजन मनोरंजन जरूर है, पर यह मनोरंजन वह है जिसमें हमारी कोमल और पवित्र भावनाओं को प्रोत्साहन मिले। हम में सत्य, अहिंसा, निःस्वार्थ सेवा, न्याय आदि देवत्व के जो अंश है, वे जाग्रत हो....... मनुष्य जिस समाज में रहता है, उसमें मिलजुल कर रहता है, जिन मनोभावों से वह अपने मेल के क्षेत्र को बढ़ा सकता है, वही सत्य है। जो वस्तुएं भावनाओं के इस प्रवाह में बाधक होती हैं, वे सर्वथा अस्वाभाविक है, परन्तु यदि स्वार्थ, अंहकार और ईर्ष्याओं की ये बाधाएं न होती तो हमारी आत्मा के विकास को शक्ति कहाँ से मिलती? शक्ति तो संघर्ष में है। हमारा

मन इन बाधाओं को परास्त करके अपने स्वाभाविक कर्म को प्राप्त करने की सदैव चेष्टा करता रहता है। इसी संघर्ष से साहित्य की उत्पत्ति होती है।''[53]

साहित्यकार का उत्तरदायित्व दोहरा होता है। इस संदर्भ में डॉ. जगदीश गुप्त का मत है– ''कला और साहित्य दोनों एक प्रकार से जीवन का ही परिविस्तार करते हैं। एक मानव मूल्य को ऊपर से ओढ़कर यदि कलाकार अपनी कृति को प्रभावपूर्ण बनाने की चेष्टा करता है, तो वह प्रकारान्तर से दूसरे मानव मूल्य का निषेध करता है, ...मानव मूल्यों की स्थापना साहित्यकार से इस बात की उपेक्षा रखती है कि वह साहित्यिक मूल्यों को भी उतना ही समादर प्रदान करें, जितना मानव मूल्यों को क्योंकि तत्त्वतः दोनों एक ही हैं।''[54] साहित्य जीवन और समाज में सुधारक की भांति उनकी त्रुटियां दूर करता है। साहित्य और जीवन मूल्यों के संबंध को डॉ. धर्मवीर भारती के अनुसार सत्साहित्य वही हैं, जिसमें समाज का सच्चा कल्याण हो। जो साहित्य सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर प्रकाश नहीं डालता तथा उसकी उलझनों को सुलझाने में सहायता नहीं करता है, वह सच्चा साहित्य नहीं है। साहित्य और जीवन मूल्य के संबंध को स्पष्ट करते हुए मैथ्यू अर्नल्ड ने ''साहित्य को जीवन की व्याख्या कहा है।''[55]

डॉ. नेमीचन्द जैन साहित्य और मूल्यों के संदर्भ में अपना मत प्रकट करते हुए कहते हैं कि– ''मूल्यों का प्रश्न वास्तव में साहित्य के उद्देश्य अभिप्राय और धर्म की उपलब्धि से संबन्धित है। प्रत्येक युग में ये उद्देश्य किस भांति प्रतिफलित तथा रूपायित होते हैं और अलग–अलग युगों में उनमें पायी जाने वाली विविधता के स्रोत क्या है, साहित्य में मूल्यों की समस्या इसी स्रोत के साथ जुड़ी है।''[57]

जीवन मूल्यों का संबन्ध जीवन के लक्ष्य से होता है। इस विषय में डॉ. रघुवंश का कथन है कि ''रचनाकार समाज की संपूर्ण व्यवस्था के विरुद्ध खड़े होकर उसके समस्त मूल्यों को नकार कर प्रतिष्ठित आदर्शों की चुनौती देकर भी अपनी रचना प्रक्रिया में कि नहीं न कि नहीं मूल्यों की भूमिका प्रस्तुत करता है।''[58] गद्य

अभिव्यक्ति का एक धारदार माध्यम होने के कारण यह दायित्व निभाने में पूर्णतया समर्थ है।

साहित्यिक मूल्यों की रचना प्रक्रिया पर जीवन मूल्यों का प्रभाव

डॉ. रामविलास शर्मा के मतानुसार ''साहित्यिक मूल्यों की रचना प्रक्रिया जीवन सापेक्ष है और साहित्यिक मूल्य निर्माण में जीवन मूल्यों का अनिवार्य प्रभाव होना भी स्वतः सिद्ध है। कोई भी साहित्य युगीन जीवन मूल्यों से निरपेक्ष नहीं होता।''[59]

साहित्य के मूल्य जीवन मूल्यों से ही निर्धारित होते हैं। साहित्यकार केवल उन्हें नयी भाव मूर्तता प्रदान करके ग्राह्य और सर्वजन–संवेध बना देता है, जिससे उसकी कृति मनुष्य की चेतना और उनके आचरण को नियंत्रित करने वाली सहज प्रवृत्तियों को अधिक संस्कृत और अपने सामाजिक परिवेश के प्रति अधिक जागरुक बनाती है–युग युगान्तर।''[60]

साहित्य का विषय मानव जीवन है। इस संदर्भ में राम गोपाल सिंह चौहान का कथन प्रासंगिक है– ''ऐतिहासिक परिस्थितियों की द्वन्द्वात्मक परिणति में जीवन मूल्यों का निर्माण होता है, जो इतिहास की बदली हुई स्थिति में जीवन की श्रेष्ठता का मानदण्ड बन जाते हैं। अतः भिन्न–भिन्न कालों में भिन्न–भिन्न साहित्यिक मूल्यों की स्थापना हुई है।''[61] स्पष्टतः जब जीवन विकासशील है तो उसको समझने की जीवन दृष्टि अथवा जीवन मूल्य भी परिवर्तनशील होंगे और उनसे प्रभावित साहित्यिक मूल्यों के निर्माणक तत्त्वों में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक है।

जीवन मूल्यों के संक्रमण पर साहित्य–प्रदत्त मूल्यों का प्रभाव

मूल्य निर्माण एवं मूल्य संक्रमण के अनेक कारण हैं, किन्तु साहित्य में जीवन की व्यापकता को गहराई से प्रभावित करने की क्षमता होती है। एक तो साहित्यकार

मानव की भावनाओं और विचारों को जीवन की सामान्य शब्दावली में अधिक कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है। दूसरे साहित्य में व्याप्त आशावादिता, कल्पनाशीलता, सौंदर्यप्रियता और लोक कल्याण की भावना जीवन के कटु यथार्थ से संघर्षरत, निराश और असहाय मनुष्य को नवीन स्फूर्ति प्रदान करके उसके जीवन पर गहरा, व्यापक और हित प्रेरक प्रभाव डाल सकता है। इसलिए दार्शनिकों एवं विचारकों की अपेक्षा व्यक्ति की जीवन दृष्टि का आधार अधिकतर साहित्य प्रदत्त जीवन सिद्धान्त ही होते हैं। मध्यकालीन् उत्तर भारतीय जीवन पर तुलसी के प्रभाव को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इन शब्दों में स्वीकारा है कि– ''आज का उत्तर भारत तुलसीदास का रचा हुआ है। वे ही इसके मेरुदण्ड हैं।''[62]

शम्भूनाथ सिंह लिखते हैं– ''साहित्य दृष्टि ही नहीं, अन्तर्दृष्टि भी देता है।''[63] डॉ. शम्भूनाथ सिंह लिखते हैं कि– ''साहित्य में जीवन मूल्य ऊपर से आरोपित नहीं होते हैं, बल्कि वे साहित्यकार के अनुभूत सत्य होते हैं, जो उनकी आत्मोपलब्धि की प्रक्रिया में रूपायित होकर अपनी सुन्दरता, उदात्तता और महत्ता के कारण समाज द्वारा जीवन मूल्यों के रूप में स्वीकृत किये जाते हैं।''[64] आज का साहित्यकार मूल्य संक्रमण अर्थात् प्राचीन और नवीन जीवन मूल्यों का अंकन करता है।

साहित्य और मूल्य सम्बन्ध : विभिन्न विद्वानों के अनुसार

साहित्यकार युगीन स्थितियों के प्रति अधिक संवेदनशील होता है। ये स्थितियाँ उनके मानस को उत्तेजित करती हैं। वह विक्षोभ भरा साहित्य लिखता है। इस संबंध में डॉ आनन्द प्रकाश दीक्षित कहते हैं कि– ''मैं इसे मात्र एक स्थिति की संज्ञा देता हूँ। इसे ह्रासकालीन जीवन स्थिति मानता हूँ और मूल्य कहने की अपेक्षा मूल्य विघटन कहना ज्यादा उचित समझता हूँ। जब एक पूरी की पूरी जाति अपनी स्थिति से असंतुष्ट हो, जब चारों ओर के माहौल के प्रति नाराजगी जाहिर करती हो, तब यह कैसे मान लिया जाए कि जो वह 'मूल्य' है या मूल्यवान है।''[6]

साहित्य और मूल्य में सहस्रबुद्ध के विचार है कि– ''पुराने जीवन–मूल्य उद्हवस्त हो गये हैं। आज विज्ञान का युग है, यंत्र युग है। युग के अनुसार अब नये मूल्य प्रस्थापित हो रहे हैं, परन्तु यह केवल आभास है। जीवन के मूल्य सनातन और चिरन्तन होते हैं। उनका बाह्य स्वरूप, उन्हें प्रकट करने के साधन, परिस्थिति, परिमाण क्रम ये बातें बदली होगी। परन्तु मूल्य वे ही हैं और भविष्य में भी वे ही रहेंगे। पात्र के आकार से जिस प्रकार पानी बदलता नहीं, काष्ठ के प्रकार से जैसे अग्नि तत्त्व बदलता नहीं, मूर्ति के रंग रूप से जैसे परमात्मा तत्त्व परिवर्तित नहीं होता, वैसे ही आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक अथवा अन्य कोई परिवर्तित परिस्थिति से जीवन मूल्य नहीं बदलते ।''[66]

इसी तरह डॉ. रामदरश मिश्र एवं नरेन्द्र मोहन ने हिन्दी कहानी में अभिव्यक्त जीवन मूल्यों को आज के परिवेश में रखकर देखा है। वे कहते हैं कि– ''आज की कहानी में शाश्वत मूल्यों की जगह मानवीय मूल्यों की चर्चा अधिक मिलती है। समकालीन हिन्दी कहानी की यही सार्थकता है कि वह अपने समय के बाह्य तथा आन्तरिक, सामाजिक, मानसिक संघर्ष की अभिव्यक्ति है। आज प्रत्येक व्यक्ति के भीतर पुरातन और नूतन के मध्य जो संघर्ष चल रहा है, उसे उन कहानीकारों ने विभिन्न रूपों में देखा है।''[67]

गद्य और जीवन मूल्य

साहित्य जिन मानव मूल्यों को ग्रहण कर उनके स्वरूप को अभिव्यक्त करता है, वे साहित्यिक मूल्य कहलाते हैं। मानव मूल्यों का सम्बन्ध देशकाल सापेक्ष होता है।

सामौर के गद्य साहित्य में जीवन मूल्य

आदर्शवादिता

साहित्य वस्तुतः लेखक के अनुभव का प्रतिफल होता है। साहित्यकार अपने आदर्शवादी सपनों के बल पर साहित्य को नवीन ऊँचाईयों पर पहुँचाता है। साहित्यकार अपने श्रेष्ठतम् आदर्शों के बल पर साहित्य को नई दिशा देता है। साहित्यकार अपने आदर्शों के बल पर समाज के साथ साक्षात्कार चाहता है, क्योंकि वह जानता है कि साहित्य का समाज में अस्तित्त्व आदर्श के कारण ही है। उसे पता होता है कि आज का भयावह यथार्थ व्यक्ति मानस को मथता है, जिसके कारण जीवन विषम से विषमत्तर होता जा रहा है। आज हमारे समाज में विषमताएँ और विसंगतियां हैं। सड़ी गली और रूढ़िवादी सामाजिक व्यवस्था को हराने के प्रति आक्रोश है। यह सोच दृढ़ होती जा रही है कि एक स्वस्थ समाज की रचना कैसे की जाए, जो आज के परिवेश के अनुकूल हो। जो रूढ़ियुक्त हो और पारम्परिक, मर्यादित व स्वतंत्र भी हो, समाज और व्यक्ति दोनों का महत्त्व हो, अनुपयोगी व्यवस्था को परिवर्तित करने वाली हो। स्वतन्त्रता के बाद भारतीय जनजीवन में सर्वाधिक परिवर्तन हमें व्यक्ति के समाज के आदर्शवादी पक्ष में परिलक्षित होते हैं। समय के साथ स्वतन्त्र परिवेश में व्यक्ति के आदर्शवादी सामाजिक सम्बन्ध बदलने लगे हैं। पुरातन मान्यताओं का विरोध होने लगा है तथा नवीनता के प्रति आग्रह भी बढ़ा है। जिससे व्यक्ति का मानस बदला है और ऐसा लगता है कि स्वतन्त्रता से पूर्व व्यक्ति कुछ और ही था। उसका रहन–सहन, खान–पान आदि बदला हुआ नजर आ रहा है। यह परिवर्तन बहुत पहले शुरु हो गया था, किन्तु उसका आधिक्य और मुखर रूप स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ही लक्षित हुआ है। यह सच है कि वर्तमान परिस्थितियों के गहरे प्रभाव ने समाज और आदमी की सोच, सिद्धान्तों और आदर्शों को बदला है, यहाँ तक कि पूरी शख्सियत ही बदल चुकी है।

भारतीय संस्कृति महान् और विश्व विख्यात रही है। भारतीय संस्कृति बड़ी जटिल है, जिसे समझना कठिन कार्य है। इसका कारण है कि इसमें अंतर्विरोध अधिक है। भारत की प्राचीन संस्कृति, यज्ञ संस्कृति, प्राचीनता की आधुनिक प्रासंगिकता, परम्परागत रीतियां और लोक विश्वास, नारी का महत्त्व, पतिव्रत धर्म, पूर्वजों के प्रति सम्मान की भावना, धार्मिक, सांस्कृतिक स्थलों का महत्त्व, गंगा महात्म्य, धर्म का रूप, कर्तव्य परायणता, धर्म, आदर्श राजा, सद्वृत राजा की प्रतिज्ञा, न्याय प्रियता, प्रकृति प्रेम, राष्ट्रप्रेम, कला दृष्टिः विभिन्न कलाएं, ब्रह्म की व्यापकता, सृष्टि के नाना तत्त्व में एकता का आभास, आत्मा परमात्मा, जीव जगत् और ईश्वर की अभेद प्रतीति, अतीत का गौरव आदि का सहज, स्वाभाविक, मनमोहक रमणीय स्वरूप ही है।

पाश्चात्य समाज की परम्परा शुरू से ही नागरिक जीवन के नियमन और विकास पर निर्भर रही है, जबकि भारतीय संस्कृति नागर सभ्यता तक कभी सीमित नहीं रही है। भारतीय संस्कृति किसान संस्कृति और लोक संस्कृति रही है। प्रसिद्ध जर्मन विचारक लुईजे रिंजर ने भारतीय संस्कृति का अध्ययन करके अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं– ''गीता जैसा सुन्दर ग्रंथ मैंने अपने जीवन में कभी नहीं पढ़ा, कभी नहीं देखा। इसकी दार्शनिक गहनता अद्वितीय है। गौतम बुद्ध की शिक्षाएं तथा योग सिद्धान्त किसी भी व्यक्ति की जीवन धारा को मोड़ सकते हैं। युग के अंतः विज्ञान का अध्ययन करते समय कई समाधान समाधि में मिले हैं। भारतीय आध्यात्म की विशिष्टता है कि शरीर, आत्मा और बुद्धि का एकीकरण। इसे ही आज का पश्चिमी जगत् पाना चाहता है।''[68]

शोषण के विरुद्ध आपके साहित्य मे अनेक प्रसंग मिलते हैं। जब जब भारतीय धरा पर अत्याचार बढ़े हैं यहाँ के वीर सपूतों ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई है। जनमानस मरने के लिए भी पीछे नहीं हटा है। आपकी कृति 'आऊवा का धरणा' साक्षी है। आप लिखते हैं कि ''मरुधरा की यह परम्परा रही है कि सभी शासनधारी एक का दुःख सबका दुःख समझते हैं। इसलिए ब्राह्मण, चारण आदि समय–समय पर सभी लोग तन–मन से उन पीड़ितों के साथ हो गए। जब यह पापी राजा उदय

सिंह खैरवा ग्राम में था तब उसने परम्परा से चले आ रहे चारणों के शासनों को हस्तगत करके दुर्बुद्धि का परिचय दिया। खैरवा ग्राम में राजा को आया हुआ सुनकर सभी शासनधारी उससे मिले। तब राजा ने अन्य शासनधारियों के ग्राम भी जब्त कर लिए। सभी छः वर्ग के लोगों को उसने क्रोधित कर दिया। इसी बात पर राजा के सिर पर मरने के लिए सभी लोग आऊवा ग्राम में एकत्रित हुए। आऊवा ग्राम के एक कामेश्वर महादेव मन्दिर को बीच में करके निश्चय के साथ ही लोग धरने पर बैठे। गोपाल दास चंपावत आदि अच्छे योद्धाओं ने मोटे राजा से कहा कि तुम धूर्त लोगों ने ही धरना दिलवाया है।''[69]

आज का साहित्य आधुनिकता के परिवेश से लबरेज है। इसमें आधुनिकता का प्रभाव स्पष्ट उभर कर सामने आया है। महानगरीय जीवन, जीवन की त्रासदी,, मानव की कुण्ठा, दमित वासनाओं के दुष्परिणाम, मानव की बढ़ती इच्छाएं, आकांक्षाएं, परिणामतः होने वाली समस्याएं, अपनी स्थिति से अधिक आगे बढ़ने का प्रयास आदि की वजह से मानव भीतर ही भीतर टूट कर बिखर रहा है। उसकी टूटन और यह बिखराव उसे बर्बाद कर रहा है। यह आज के जीवन का यथार्थ है जिसे आपने अत्यंत सहज रूप से साहित्य में व्यक्त किया है। आपका गद्य साहित्य आज के तथाकथित आधुनिक मानव का दपर्ण है।

राष्ट्रीयता

आज बदलते परिवेश में उन संस्कारों की आवश्यकता है, जिससे सामाजिक और राष्ट्रीय चरित्र बने। संसार में राष्ट्रीयता जबकि एक अभिशाप बन चुकी है, तो भी हमारे देश में उसका जितना विकास अपेक्षित था उतना विकास नहीं हुआ। भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के लिए राजनीतिक और राष्ट्रीय मूल्यों का निमार्ण कर देश हित को प्रमुखता देना अनिवार्य है। क्योंकि देश में राष्ट्रीय भावना के नहीं होने पर देश की एकता और अखण्डता को खतरा हो सकता है अर्थात् राष्ट्र की एकता अखण्डता विघटित हो सकती है। आपके साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना कूट–कूट कर भरी पड़ी है।

आऊवा का धरना कृति राष्ट्रीयता से ओतप्रोत एवं ऐतिहासिक है। इस धरने का भी एक रोचक इतिहास है। ''चारणवाला गोविन्द बोगसा के शासन का एक गाँव था। जब जोधपुर के किले पर मुगलों का अधिकार हो गया तो राजघराने की महिलाओं को वहाँ से निकालकर सिवाना की पहाड़ियों में भेजा गया । राज घराने की महिलाएं जिस रथ में आरुढ़ होकर जा रही थी, उस रथ का एक बैल चारणवाला गाँव के पास थक गया तो राज सेवकों ने आव देखा न ताव और पास में खेत जोत रहे किसान से बलात् बैल छीनकर रथ में जोत लिया। यह सूचना गाँव के शासनकर्ता गोविन्द बोगसा को मिली तो वह घटना स्थल पर आया और उसने राजसेवकों को ललकारा कि चारणों के शासन क्षेत्र में मर्यादा उल्लंघन की तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई? यदि राजा ही मर्यादा को तोड़ेगा तो समाज का अस्तित्व कैसे बचेगा? ऐसा कहकर गोविन्द बोगसा ने रथ से बैलों को खोल लिया। इस घटना के कई दशक बाद संवत् 1640 में उदय सिंह जोधपुर का शासक बना। उसने संवत् 1643 में चारणवाड़ा गाँव जब्त कर लिया। जिस किसी ने विरोध किया उसे समझाने की चेष्टा की, उसी की जागीर जब्त करते–करते लगभग सभी चारणों की जागीरें जब्त कर ली। चारणों ने सामूहिक रूप से इसका विरोध किया पर राजा उदयसिंह टस से मस नहीं हुआ। तब चारणों ने धरने का ऐलान किया तो राजा ने अहिंसक अवज्ञा की इजाजत नहीं दी। यह बात जोधपुर के सामन्तों को अच्छी नहीं लगी। जोधपुर के प्रधान गोपालदास चांपावत के साथ पीपाड़, रायपुर, बेगड़ी के सामन्त राजा को समझाने के लिए गये पर राजा के कान पर जूं तक नहीं रेंगी। ऐसी हालात में चारणों के शासन की मर्यादा की रक्षा के लिए गोपाल दास चांपावत नें बड़ा निर्णय लिया तथा अपनी जागीर पाली का पट्टा राजा को सौंप दिया और कहा कि आऊवा की जागीर मेरे पूर्वज चांपा राठौड़ की स्थापित की हुई हैं। उसका जोधपुर से कोई लेना देना नहीं है। चारण आऊवा में धरना देंगे तथा मैं उनकी सेवा में रहूंगा।''[70]

सामौर का साहित्य राष्ट्रीयता की भावना से लबरेज है। मूल्य संक्रमण के इस दौर में राजनीतिक परिस्थितियां भी कम जिम्मेदार नहीं है। 'यथा राजा तथा

प्रजा' की पारम्परिक उक्ति के अनुसार नीतिहीन सत्ता केन्द्रित राजनीति ही सारे नैतिक अवमूल्यन की जड़ है। राजनीति के क्षेत्र में हमारे देश को बहुत संत्रास भोगना पड़ा है। प्रजातन्त्र के नाम पर कुर्सी हथियाने के हथकण्डे, चुनाव प्रचार के समय किए गए वायदे, नोटों के बदले वोट की राजनीति, दलदल और राजनीतिक दांव पेंच, रुपयों के बल पर बनती और टूटती सरकारें, राजनीतिक परिवेश में व्याप्त अनीति और अनाचार की कुछ तस्वीरे हैं जो भारतीय राष्ट्रवाद को कमजोर बनाती है। आपके साहित्य में इन पर करारी चोट की गई है। राष्ट्रप्रेम को स्पष्ट करते हुए आप लिखते हैं कि ''धरती पर संकट आये, मनुष्यता पर संकट आए, स्त्रियों की इज्जत पर संकट आए तो चाहे राजा हो, चाहे रंक हो सभी अपने प्राणों की बाजी लगाकर इन तीनों संकटों को टालते हैं। जीते जागते ये संकट नहीं आने देते हैं।''[71] भारतीय समाज में भी इतिहास के विविध मोड़ों पर परिवर्तन की दिशाएं सदैव ही उजागर होती रही हैं, किन्तु द्वितीय महायुद्ध के बाद से भारतीय समाज में जो स्पष्ट परिवर्तन हुए हैं, वे अपनी प्रकृति में काफी विद्रोही है। इतनी बड़ी और मौलिक सामाजिक क्रांन्ति इस देश में पहले शायद कभी नहीं हुई। भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति ने इस क्रांति को ओर भी उग्रता तथा तीव्रता प्रदान की है। आपके साहित्य में स्पष्ट सामने आता है कि साहित्य के कलाकारों ने राष्ट्रीयता के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहन किया। आप लिखते हैं कि– ''जिसने अपने शक्ति के कीर्तिमान रचे जो अपने हठ के लिए स्वतन्त्र था, सोहनपाल की गद्दी की लाज उसी के पुत्र लोहठ की भुजाओं पर है। दुष्ट दूर से ही जिसके नाम से कांपते हैं तथा उसके द्वारा स्थापित मर्यादाओं का पालन करते हैं। ऐसी आन–बान–शान का धनी राजराणा बोबाराव अपने पिता लोहट का उत्तराधिकारी हुआ।''[72]

पिछले दिनों पश्चिमी सीमान्त पर शत्रु ने हमारे अस्तित्त्व को ललकारते हुए युद्ध की घोषणा की। इस पर प्रतिक्रिया स्वरूप सम्पूर्ण देश सभी पारस्परिक मतभेदों को विस्मृत कर चुनौती का प्रत्युत्तर देने के लिए हुंकार उठा। युद्ध को पुनीत पर्व के रूप में देखने वाला राजस्थान का साहित्यकार युद्ध की ललकार को सुन कर

प्रत्युत्तर दिये बिना निश्चेष्ट कैसे बना रहता ? उसकी प्रेरक, ओजस्विनी वाणी वीरता एवं शौर्य के अभिनन्दन हेतु तत्पर हुई। भारतीय सेना ने आक्रांता के अदम्य माने जाने वाले पैटन टैंकों व सैबर जैट विमानों को मिट्‌टी के खिलौनों की भांति ध्वस्त कर वीरता के इतिहास में स्वर्ण पृष्ठ लिखा। अद्‌भुत था सूरमाओं का रण कौशल। विजय–वरण के साथ ही भारतवर्ष के लम्बे और विविधता भरे इतिहास में एक बहुत गौरवान्वित अध्याय की वृद्धि हुई है। इन परिस्थितियों में साहित्यकार का दायित्व और भी बढ़ गया था। भारत शांति का उपासक रहा है, परन्तु आत्मरक्षार्थ स्वाधीनता तथा सिद्धान्तों के अस्तित्व की अक्षुण्णता के लिए किये जाने वाले युद्ध में भारतीय जन मानस को आदर्शों के प्रति जागरुक रखना भारतीय साहित्यकारों का ही कर्तव्य था। वे साहित्य के माध्यम से देश को नई प्रेरणा देकर राष्ट्र के प्रति गौरव भावना के प्रसार से जन मन तथा सीमा पर खाई में जूझने वाले सैनिकों को नई दृष्टि प्रदान कर मूल्यवान कार्य किया है।

''सन् अठ्ठारह सौ सत्तावन की क्रांति का महान् स्वतन्त्रता सेनानी तांत्या टोपे को अपने बुरे दिनों में आश्रय देने का श्रेय बोबासर को ही है। लक्ष्मण गढ़ (सीकर) से रतनगढ़ के रास्ते बोबासर लाने वाले शंकरदान सामौर ही थे। वहाँ उनका स्वागत करने वाले उनके भाई पृथ्वी सिंह सामौर थे। उन्होंने उन्हें अपने गढ़ में शरण देकर सचमुच अपने आप को गढ़वी साबित कर दिया तथा उसकी भारी कीमत भी चुकाई। क्रोधित फिरंगियों ने गढ़ को बारूद से उड़ा दिया। धळकोट की बाड़ छापते वक्त आज भी तोपों के गोले मिलते हैं।''[73]

सामाजिकता

सामाजिकता मनुष्य की जन्मजात प्रकृति प्रदत विशेषता है। सामूहिकता की मूल प्रवृत्ति उसे सदैव समूह अथवा समाज में रहने के लिए प्रेरित करती रही है, सामाजिकता को उसके निजी व्यक्तित्व का विकास ही कहना चाहिए इसलिए एक सामाजिक व्यक्ति के निजी व्यक्तिगत अंश और उसके सामाजिक अंश में स्पष्ट

विभाजन नहीं हो सकता है। व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की स्थिति उनके इन दोनों अशों के सम्मिश्रण में ही निहित होती है। अतः व्यावहारिक सुविधा और वैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से भले ही जैविक और अजैविक का वैचारिक स्तर पर विभाजन मान लिया जाए, किन्तु स्थूल रूप से इनको दो स्वतन्त्र सत्ताओं के रूप में देखा जाना असम्भव है।

भंवर सिंह सामौर सामाजिक चेतना से सम्पन्न ध्येयधर्मी रचनाकार हैं। वे एक कला साधक की अपेक्षा जीवन के व्याख्याता अधिक है। इनकी कोई भी रचना ऐसी नहीं है, जो वर्तमान समाज के किसी न किसी अंग को स्पर्श न करती हो। साहित्य वस्तुतः रचियता के अनुभव का प्रतिफल होता है। साहित्यकार किसी न किसी परिवेश में सांस लेता है। यह विशेष परिवेश उसे कुछ अनुभव प्रदान करता है। ये अनुभव उसकी प्रेरणा बनते हैं। इस प्रकार रचना में चारों ओर के वातावरण का प्रत्यांकन होना स्वाभाविक हो जाता है। रचनाकार का व्यक्तित्व तो कभी गौण नहीं होता, परन्तु यह सिद्ध अवश्य हो जाता है कि रचना उसके परिवेश की निर्मिति है। रचना के वस्तु तत्त्व पर समकालीन भौतिक परिवेश का प्रभाव रहता है। साहित्य को स्वयं ही सामाजिक घटना कहा जा सकता है। इसका कारण है कि मूल अनुभूति चाहे वह कितनी भी वैयक्तिक हो या चित्रित वह समाज से ही उत्पन्न हो सकती है।

''समाज से अभिप्राय सामुदायिक जीवन से है। समाज व्यवस्था का नियमन अनवरत रूप से इस प्रकार किया जाता है कि व्यक्ति की सुरक्षा बनी रहे। समाज निर्माण के आरम्भिक काल में सामुदायिक व्यवस्था का स्वरूप सरल था। क्रमशः समाज व्यवस्था जटिल होती गई। यहाँ तक कि समाज वर्गों में विभक्त हो गया और समाज में एक वर्ग व्यवस्था बन गई। वर्ग व्यवस्था का अर्थ है—व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध।''[74] अतः साहित्य और समाज के पारस्परिक सम्बंध की उपेक्षा नहीं की जा सकती। साहित्य और समाज का संबंध जटिल हुआ करता है क्योंकि समाज और साहित्यकार दोनों के दृष्टिकोण एक दूसरे के प्रति परिवर्तित होते रहते

हैं। साहित्य यदि एक ओर समाज का दर्पण है तो दूसरी ओर समीक्षा भी। साहित्य अपनी स्वायत सत्ता रखता है। उस रूप में वह समाज से अप्रभावित रहता है।

वर्तमान बदलते हुए सन्दर्भों को साहित्य आत्मसात करते हुए हमें नवीन परवर्तित मूल्यों की जानकारी प्रदान करता है। साहित्य ही एक ऐसा साधन है जिसकी सहायता से हम अपने समय के समाज को देखते हैं और परखते हैं। क्योंकि इसमें पल–पल बदलते हुए समय सन्दर्भों का आकलन होता है साहित्य और समाज अन्योन्याश्रित है। समाज का प्रतिबिम्ब साहित्य में दिखाई पड़ता है। समाज की धुरी के स्त्री और पुरुष दो पहिये हैं। जब स्त्री शब्द जेहन में आता है तो अनेक भाव तरंग आँखों के सामने तरंगायित होने लगती हैं। कभी शक्ति, भक्ति, नीति, मर्यादा, सभ्यता और संस्कृति की संरक्षिका और पौषिका रूप ध्यान हो आता है। तो कभी उसका शोषित, दीन–हीन, प्रताड़ित, द्वंद्व युक्त अशक्त, अपमानित, तिरस्कृत, विक्षिप्त और टूटा हुआ प्रेम में छला हुआ रुप सामने आता है, तो कभी स्वतंत्रता को स्वछन्दता मायने मे अपनाने के लिए विद्रोही रुप, भौतिकता की पराकाष्ठा, हृदयहीन एवं अपने नैसर्गिक गुणों को खोता और अन्तःहीन खालीपन लिये नारी का वो रुप सामने आता है जिसे समाज भिन्न–भिन्न रुपों में भूनता रहा, भूनता आया है। नारी के सन्दर्भ में विरोधाभासी धाराणायें भारतीय समाज में व्याप्त रही हैं। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की आधार नारी का स्वरुप प्रत्येक युग में बदलता रहा है। वैदिक काल में ''यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवताः'' कहकर नारी के समाज में समान और महत्त्व को उजागर किया गया है वहीं भक्ति काल में नारी को मानव समाज को पथभ्रष्ट करने वाली कामिनी, माया, मोहिनी आदि के रुप में चित्रित किया गया है। तो रीतिकाल में नारी को अत्यन्त ही शोषित पीड़ित व दासी के रुप में चित्रित करते हुए तुलसीदास ने लिखा है कि– ''ढोल, गंवार, क्षुद्र, पशु, नारी। सकल ताड़न के अधिकारी।'' इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि नारी का भारतीय समाज में विभिन्न कालों में स्वरुप और समान सदैव परिवर्तित रहा है वर्तमान में

राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में नारी अपनी अलग ही पहचान बना रही है व पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी नजर आ रही है।

भारत में नारी जागरण पर आधारित साहित्य सृजन की झलक बींसवी सदी के उतरार्द्ध में दिखाई देती है। यद्यपि आदिकाल से लेकर स्त्री लेखन का स्त्री विद्रोह का स्वर मुखरित होता रहा है तथापि एक आन्दोलन के रूप में स्त्री मुक्ति को लक्ष्य बनाकर लिखे गये साहित्य की शुरुआत सन् सत्तर के बाद ही दिखाई देती है इसका मूल कारण नारी के अपने स्वत्व की पहचान ही है। यह स्वत्व बोध नारी शिक्षा का ही परिणाम है। शिक्षा के परिणाम स्वरूप नारी अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुई है। नारी अपने गुलाम मानसिकता वाली छवि, सती, साध्वी या पति परमेश्वरी को तोड़कर स्वतंत्र वजूद स्थापित करने के लिए कसमसाहट महसूस कर रही है। इसे नारी मुक्ति के लिए स्त्री ने लेखन प्रारम्भ किया। यह स्त्री लेखन उसको काफी हद तक शक्ति प्रदान कर रहा है। सन् सत्तर के बाद का स्त्री लेखन नारी को आत्म पहचान और आत्मबल प्रदान करने वाला है। इस लेखन परम्परा में कृष्णा सोबती मैत्रयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, चित्रा मुदगल, नासिरा शर्मा, महादेवी वर्मा, उषा प्रियवंदा, गीतांजली श्री, प्रभा खेतान, मन्नू भंडारी, डॉ. नमीता सिंह, अमृता प्रीतम, ममता कालिया आदि ने अपनी लेखनी द्वारा सामाजिक रुढ़िवादिता के प्रति विद्रोह, नारी मन का असंतोष, पुरुष अहम् को झेलता अर्न्तमन, वर्तमान के प्रति आशा–निराशा के भाव बखूबी प्रकट किये हैं। सामाजिक व राजनीतिक चिंतन, आर्थिक और दैहिक शोषण से स्वतंत्रता की आकांक्षा, समाज के बंधन नकारती विद्रोही स्त्री रचना के विषयवस्तु के रुप में पर्दापण कर रही है। साथ ही नारी की उस संवेदना, नाजुकता, सूक्ष्म मधुरता को व्यक्त कर रही है, जो एक नारी जीवन के हर मोड़, हर पड़ाव पर अनुभव करती है। इस साहित्य में नारी संघर्ष, अर्न्तद्वंद्व, स्वाभिमान, जीवन शक्ति व आत्मशक्ति को ढूंढ़ने के प्रयास, दायित्वों का निर्वहन, मानवीय और सामाजिक मूल्यों की सुरक्षा में व्यक्तित्व को विलीन करने वाला स्वरूप चित्रित हुआ है। नारी को सर्वाधिक सशक्त रूप संकल्पशील नारी के रुप में चित्रित

किया गया है। इस स्त्री लेखन ने स्त्री से संबन्धित बहुत से ऐसे मिथक जो स्त्री के उपहास के लिए रचे गये थे, को निर्भय होकर बिना किसी अपराध बोध के तोड़ने में काफी हद तक सफलता प्राप्त की है। यह स्त्रीवादी लेखन सम्पूर्ण मानवता की मुक्ति का आकांक्षी हो सकता है।

सामाजिक जीवन चेतना द्वारा भी परिचालित होता है, परन्तु परिवेश भी चेतना को नियंत्रित करता है। परिवेश चेतना, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से रचनाकार के मन मस्तिक को ढक कर रखती है। साहित्यकार भी समाज का एक परिवेश और साहित्य रचना के संबंध सूत्रों में कई मोड़ आना स्वाभाविक है। समाज पिछले तीन चार दशकों में काफी बदला है। ''स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय जन जीवन में सर्वाधिक परिवर्तन हमें व्यक्ति के सामाजिक पक्ष में लक्षित होता है। समय के साथ स्वतन्त्र व्यक्ति के सामाजिक सम्बन्ध बदलने लगे हैं, पुरातन मान्यताओं का घोर विरोध होने लगा है, नवीनता के प्रति आग्रह बढ़ा है। फलतः व्यक्ति का मानस भी बदला है और ऐसा लगता है कि जैसे स्वातन्त्रयोत्तर भारत का निवासी स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व कुछ और ही था। उसका रहन–सहन, खान–पान आदि बदला हुआ नजर आया है। वह परिवर्तन बहुत पहले ही प्रारम्भ हो गया था, किन्तु उसका आधिक्य अथवा मुखर रूप स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ही लक्षित हुआ''[75] यह सच है कि वर्तमान परिस्थितियों के गहरे प्रभाव ने समाज और आदमी की सोच, सिद्धान्तों और आदर्शों को बदला है, यहाँ तक कि उसकी पूरी शख्सियत ही बदल चुकी है। इसका कारण ऐतिहासिक भले ही रहा हो, वह निरन्तर जद्दोजहद कर रहा है।

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में सामाजिक मूल्यों का आशय व्यक्ति की सामाजिकता का उन्नयन करने वाली जीवन दृष्टियों से है। साथ ही मनुष्य की सामूहिकता, जातीय सुरक्षा, सुहानुभूति तथा सन्तानोत्पत्ति आदि मूल प्रवृत्तियों की तुष्टि से संबंधित उन प्रतिमानों से है, जो मनुष्य की सामाजिकता के उत्थान हेतु आवश्यक होते हैं।

आज समाज में भ्रष्टाचार, जातिवाद, प्रान्तीय भाषा का भेद, झूठ, अन्याय, बेईमानी, जीवन मूल्यों में गिरावट, पारिवारिक झगड़े, अन्धविश्वास, रूढ़िया, पुरानी मान्यताओं, अनुशासनहीनता आदि कई मुद्दे हैं, जो समाज रूपी दीवारों में सीलन रूपी घुन बनकर सभ्यता रूपी प्लास्टर को कुरेद रहे हैं। वर्तमान में समाज बाल विवाह, विधवा विवाह तथा दहेज जैसी समस्या से भी अछूता नहीं रहा है, जिसके चलते आत्महत्या, कन्याओं का दुःखद वैवाहिक जीवन तथा दो परिवारों में वैमनस्य, तनाव आदि देखे जा सकते हैं।

सामाजिक आन–बान–शान के लिए मानव समाज ने सदैव श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। मनुष्य कभी भी ऐसे समय विमुख नहीं हुआ है। उसने अपने सम्मान की सदैव परवाह की है। सफल नहीं होने की दशा में ऑनर कीलिंग की भावना से अपने आत्म सम्मान की रक्षा की है। आपका साहित्य का ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है। ''मंडोवर पर उस समय अधर्म की राह पर चलने वाला शासक हम्मीर प्रतिहार शासन करता था। एक बार उसी राज्य का निवासी एक ब्राह्मण गौना करवाकर अपनी विवाहिता को लेकर लौट रहा था। तब राजा की नजर उस पर पड़ गई। उस निकृष्ट प्रतिहार शासक ने उस ब्राह्मण से उस स्त्री को बलात् छीन लिया। तब वह ब्राह्मण उस कुकृत्य के विरोध में अपनी माँ और दो गायों के साथ जल कर मर गया।''[76]

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत् और सनातन नियम है। उसी की परिणति वर्तमान समाज में सर्वत्र देखी जा सकती है। आज समाज में सर्वत्र संघर्ष व्याप्त है, जिसका परिणाम है– नवीन स्थापनाएँ, नये आदर्श, नये मूल्य अर्थात् नया समाज। प्राचीनता के प्रति विद्रोह और नवीनता के प्रति आग्रह बढ़ता जा रहा है। लगता है मानवता भटक रही है और लक्ष्य तक पहुँचने के लिए आतुर है। पुरातन के प्रति विद्रोही मानव अपने अतीत से विरक्त होकर, वर्तमान को ही सब कुछ समझता हुआ प्रगति के पथ की ओर बढ़ने का दावा कर रहा है। आपके गद्य साहित्य में समाज के बदलते स्वरूप का चित्रण बखूबी हुआ है तथा इसमें नवीनता के दर्शन हो रहे हैं।

सामौर का गद्य साहित्य विश्वव्यापी मूल्य संक्रमण के प्रभाव से अछूता नहीं है। वैसे भी चेतना का सम्बन्ध मनोविज्ञान से है और चेतना की प्रमुख विशेषताएँ हैं– ''निरन्तर परिवर्तनशीलता अथवा प्रवाह। इस प्रवाह के साथ–साथ विभिन्न अवस्थाओं में एक अविच्छिन्न एकता और साहचर्य। चेतन का प्रभाव हमारे अनुभव, वैचित्र्य से प्रभावित होता है और चेतना की अविच्छिन्न एकता हमारे व्यक्तिगत तादात्म्य के अनुभव से ।''[77]

नव परिवर्तित मूल्यों का मानव के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक सभी पक्षों पर प्रभाव पड़ा है जिसके परिणामस्वरूप समाज के मूल्यों, प्रतिमानों में उतार चढ़ाव आ रहा है। कल का समाज आज नहीं रहा है और कहा नहीं जा सकता है कि कल का आने वाला समाज कैसा होगा? इस सम्बन्ध में एक विद्वान का कथन है कि– ''आज हमारी परम्पराएं टूट रही हैं और नवीन आस्थाएं जन्म ले रही है। युग के साथ जो चलने में समर्थ हैं, युगानुकुल अपने आपको बदलने में जो सक्षम है, उनका अस्तित्व मान्य होगा। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम बदलते हुए सामाजिक मूल्यों को समझने का प्रयास करें।''

भंवर सिंह सामौर ने अपने गद्य साहित्य में परम्परागत धारा को नवीन दिशा दी है। आप द्वारा चित्रित सामाजिक मूल्यों में, वैचारिक जगत में, प्रतिमानों में स्पष्ट रूप से नवीनता झलकती है परम्पराओं के प्रति विद्रोह है, नवीनता का आकर्षण है, जब आस्थाओं में विश्वास है तथा अपने अस्तित्व के प्रति जागरुकता है। परम्परागत मूल्यों के प्रति अनास्था तथा नूतन मूल्यों के प्रति खोज की छटपटाहट आपके गद्य का प्रतिपाद्य है गद्य में वर्णित मूल्यों का विवेचन समाज में व्याप्त संघर्ष की स्थिति को उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों पर निर्भर है, जिससे कि जनजीवन में मूल्यों के प्रति चेतना जाग्रत हुई है। सामाजिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, जातीयता, प्रान्तीयता से उपजी संकीर्णता और अनेक घातक प्रथाओं के प्रति जीवनियों में विक्षोभ का स्वर भी मुखरित हुआ है और अपनी जीवनियों के माध्यम से आपने समाज को दिशा देने का यथार्थ प्रयास किया है। कहीं सामाजिक रूढ़ियों पर कुठाराघात किया गया है

तो कहीं सामाजिक परिवेश के अन्तर्गत आती हुई परम्पराओं और सामाजिक बंधनों पर गहरी दृष्टि डाली गई है।

भंवर सिंह सामौर ने अपने गद्य साहित्य 'लोक पूज्य देवियां' में परम्परागत सामाजिकता को स्पष्ट करते हुए झंवर के बारे में लिखा है कि ''तैलिया या झंवर करने का तरीका यह होता था कि तेलिया या झंवर करने वाला व्यक्ति या समूह निरन्तर विधिवत चलते चाड़ाऊ काव्य पाठ की साक्षी में तेलिया या झंवर करने की निश्चित तिथि की घोषणा कर अपने कपड़े तेल से सिंचित करवाता रहता था। विश्वस्त अंगरक्षक सुरक्षा के लिए तैनात रहते थे जिससे सत न उतर जाए। नियत तिथि पर सूर्योदय (आधा बाहर आधा अन्दर) के समय तेलिया करने वाला व्यक्ति या करने वाले व्यक्ति स्वयं अपने हाथ से आग लगाकर सूर्य के सामने कदम (पांवडे) भरते थे। उस समय तेलिया करने वाला व्यक्ति सामूहिक जन शक्ति का पुंज बन जाता था तथा वह मुँह से जो भी कह देता था वह फलित हो जाता था। इसी प्रकार झंवर में अग्निस्वरूप बन आत्म बलिदान कर दिया जाता था। दूसरे को मार लेना या दूसरे के हाथ से मर जाना उतना वीरत्वपूर्ण नहीं जितना इन शक्ति पुत्रों और पुत्रियों का हर्षोल्लास के साथ उत्सव मनाकर मृत्यु का वरण करना होता था। सचमुच आत्म बलिदान का यह रूप विश्व में बेजोड़ है।''[78]

सामौर ने समाज की सामूहिकता पर बल दिया है। व्यक्ति अपने आप में एक समाज होता है तथा उसके प्रयास समाज के लिए अतुलनीय होते हैं। वह समाज का अभिन्न अंग होता है। आज की भौतिकता, उपभोगतावादी संस्कृति और यांत्रिकता ने मानव जीवन में स्वार्थपरता, कुटिलता, विवेक–शून्यता और हृदयहीनता जैसी शक्तियों को विकसित किया है, जिसमें मानवीय संबन्ध अपनी पूरी ऊष्मा खो चुके हैं। इस संवेदनशीलता का सर्वाधिक प्रभाव परिवार पर पड़ा है।आज हमारे पारिवारिक एवं सामाजिक सम्बन्धों में कहीं संवेदना, कहीं स्वार्थ का, तो कहीं अपने अंहकार का घुन लग गया है और ये सम्बन्ध व्यक्ति के सुख का कारण होने की बजाय दुःख का कारण बन रहे हैं। ऐसी स्थिति में आपका कथन कि व्यक्ति से

समाज और समाज से व्यक्ति है। व्यक्ति के कार्य समाज के लिए एवं समाज के कार्य व्यक्ति के लिए हैं।

सामौर ने रावत सारस्वत के माध्यम से समाज और मनुष्य को संदेश दिया है कि ''रावत सास्वत समाज में से ही थे। उनके सामने राणा प्रताप ने सुविधाओं को ठुकराकर असुविधाओं को स्वीकार करने के साहस की रोमांचित करने वाली साहित्य परम्परा थी तो साथ ही परिवार की सांमन्ती प्रथाएं भी उसी वेग से साथ थी। राजस्थान के स्वतन्त्रता संग्राम के अदभुत उद्घोष भी सामने थे तो मीरां के विष का प्याला पीने वाली यंत्रणादायी गाथा भी थी। कदीमी संस्कार भी साथ थे तो सतरंगी राजस्थानी संस्कृति की छत्रछाया भी थी। वे जानते थे कि इतिहास विरोधाभासों का समन्वय करता है। इसी कारण उन्होंने इतिहास के दंश को झेला। इतिहास एवं समाज के पुनर्सृजन में बिना समय खोये, बिना किसी का इन्तजार किये लग गये। निष्ठा और निस्वार्थ भाव से लगे थे इसलिए विचारों को आचार में बदल दिया। जैसा चाहा समाज में वैसा माहौल खड़ा कर दिया। सामूहिकता एवं सघंर्ष को एक पगडण्डी में बदल दिया। उस पगडण्डी पर आजीवन चलते रहे तथा चलते रहने वालों की एक लम्बी कतार भी खड़ी कर गए। उस कतार में उमंग भी भर गए कि न्याय प्राप्त करके रहेंगे। रावत सारस्वत के समूहगत विचार का दायरा इतना फैला कि वह आज आन्दोलन बनता जा रहा है। यही रावत सारस्वत की ऐतिहासिक प्रसंगिकता है।''[79]

साहित्यकार समाज का संवेदनशील सदस्य होने के कारण सामाजिक जीवन की यथार्थ स्थितियां उसे सामान्य व्यक्तियों की तुलना में अधिक तीव्रता से प्रभावित करती है। साहित्यकार प्रकृति से ही संवेदनशील, कल्पनाशील और भविष्यदर्शी होने के कारण उसकी रचनाएं मानव जाति के लिए एक निश्चित दिशा देने का प्रयास करती है। साहित्यकार केवल दिशा ही नहीं देता बल्कि अपने समकालीन समाज को सजग और सचेत भी करता है। साहित्यिक परिवेश में पैदा होने और चारण समाजी वातावरण में पोषित होने के कारण समाज के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण का विकास आपके साहित्य में सहज रूप से हुआ है।

सामौर के साहित्य में नारी का वात्सल्य रूप चित्रित हुआ है। नारी वात्सल्य की प्रतिमूर्ति के रूप में चित्रित की गई है। जो कि समाज का अनन्य अंग है,नारी के वात्सल्य को विश्व का बेजोड़ अमूल्य निधि कहा जाता है। राजस्थानी शक्ति काव्य में इसे इन शब्दों में चित्रित किया है– ''मातृ वात्सल्य की प्रतीक इन देवियों ने अपने आचरण से मनुष्य–मनुष्य के बीच भेद के भाव को अस्वीकारा एवं संदेश दिया कि मनुष्य में कोई बड़ा–छोटा, छूत–अछूत नहीं है। माता के लिए सभी संतानवत हैं। इसी कारण करणी देवी के साथ ही उनके ग्वाले दशरथ मेघवाल की पूजा होती है। नागल देवी ने तो दलित दम्पत्ति को अपनी गोद में ही धारण कर रखा है। सर्वप्रथम दलित दम्पति को नारियल चढ़ाया जाता है। जांनबाई ने तो दलितों–वंचितों के अधिकार की रक्षार्थ अपने ओरस पुत्र तक को त्याग दिया था। जाहल देवी ने लाधवा मेर की मर्यादा की रक्षार्थ अपने ही आत्मीय जनों से संघर्ष किया था। बोधाबाई ने नंगे भूखे मातृविहीन बालकों को अपनाकर माता का वात्सल्य दिया। धानबाई ने मरी हुई कुत्तिया के पिल्लों को स्तनपान करवाकर पोषण किया। इन देवियों के ऐसे परिचयों से शक्ति काव्य सराबोर है। समता व वात्सल्य के इसी संदेश के कारण यह काव्य आज भी लोकप्रिय है।''[80]

नारी स्वाभिमान

स्वातंत्र्यपूर्व नारी की स्थिति शिक्षा के अभाव में सोचनीय थी। वह घर में, परिवार में और समाज में उपेक्षित थी। घर में सास ससुर तथा पतिदेव की इच्छानुसार ही रहती एवं कार्य करती थी। वह आर्थिक दृष्टि से परतंत्र और समाज से प्रताड़ित थी। नारी को प्रेम करने का अधिकार नहीं था। नारी केवल उपभोग की वस्तु मानी जाता थी। पुरुषों की उद्दाम विषयवासना का वह शिकार हो चुकी थी। ''सामन्ती व्यवस्था में नारी एक वस्तु है, सम्पत्ति है, सम्भोग और सन्तान की इच्छा पूरी करने वाली मादा है।''[81]

स्पष्ट है कि स्वतंत्रतापूर्व नारी उपभोग्या नारी के रूप में समझी जाती थी। स्वातंत्र्योत्तर नारी की स्थिति में बदलाव आया है। भारतीय नारी के जीवन एवं समाज में उसकी स्थिति को लेकर निरंतर परिवर्तन आ रहे हैं। ''युद्ध, स्वतंत्रता और

बाद के तेजी से बढ़ते औद्योगिकीकरण, शहरीकरण की परिस्थितियां नारी के आत्मनिर्भर, आत्मनिर्णायक होने की नयी स्थितियों ने उसके स्वरूप और मानसिक गठन को और परिणामतः पुरुष के साथ उसके सम्बन्धों को भी बदला है।''[82]

सामौर ने नारी के स्वाभिमान को साहित्य में स्थान दिया है। समाज में नारी अर्द्धांगिनी के रूप में चित्रित की गई है। स्त्री पात्रों के सौन्दर्य शक्ति, साहस, सूझबूझ के बड़े उज्ज्वल चित्र प्रस्तुत किए हैं। समाज में नारी के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण के बावजूद भी प्राचीन संस्कार ने अभी पीछा नहीं छोड़ा है। अभी भी स्त्री को एक छाया की जरुरत होती है, नहीं तो उसका जीना लोग हराम कर दें क्योंकि समाज में स्त्री के प्रति परम्परागत मूल्य धारणा अभी पूर्णतः समाप्त नहीं हुई है। नारी समाज की धुरी है। नारी के बिना समाज की कल्पना भी असम्भव ही नहीं बल्कि नामुमकीन भी है सामौर के साहित्य में वर्तमान परिदृश्य में नारी को जो स्वाभिमानी जीवन यापन करना चाहिए उसे सरिता मक्खन के माध्यम से अभिव्यक्त किया है– ''वह अपनी नेतृत्व शक्ति के प्रति कुछ सशंकित थी। स्वामी जी ने उसमें साहस भरा, हिम्मत बंधाई तथा कहा यह तो इस स्वामी का काम है। तुम्हें करना ही है। यह स्वामी हर प्रकार से तुम्हारी सहायता करेगा। इससे उसमें साहस आया तथा वह कार्य करने लगी। फिर क्या था, थोड़े ही समय में युवतियों वाला आंन्दोलन और उसकी आवाज देशभर में पहुँच गई। सरिता में भी आत्मविश्वास जगा। स्वामी जी उसके पूर्ण मानस का विकास करने की भावना से उसे मध्य अफ्रीका में साथ ले गये। स्वामी जी ने अकेले ही कार्य करने के लिए जाबिया का क्षेत्र सौंपा। पहले तो वह अकेले कार्य करने में हिचकिचाई, परन्तु जब उसको ऐसा कार्य करने में सफलता मिली तब वह अपनी पूर्ण शक्ति व पूरे विश्वास के साथ सेवा संगठन के क्षेत्र में उतर गई। उसने खूब कार्य किया। मध्य अफ्रीका के लोग अधिकांशतः गुजराती हैं। उनमें वह सरिता बहिन के नाम से पुकारे जाने लगी। उन्होंने एक सफल सत्याग्रह भी किया था''[83]

आतिथ्य सत्कार

सामौर के साहित्य में सामाजिक मूल्य के तौर पर अतिथि सम्मान को बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि वर्तमान परिदृश्य में अतिथि सत्कार की परम्परा लुप्तप्राय सी होती जा रही है। ऐसे में साहित्य द्वारा आतिथ्य प्रेम को व्यक्त करना किसी महान् कार्य से कम नहीं है। भारतीय समाज में बढ़ रही चेतना के परिणाम स्वरूप अब मानवता के वे मोर्चे बदल गये हैं, जिनके विरुद्ध वह संघर्ष किया करती थी। जाति, सम्प्रदाय, धर्म के संरक्षण का सवाल अब उतना चिन्तनीय नहीं रहा है, जितना रोज़ी रोटी का सवाल है। आर्थिक, राजनीतिक, बौद्धिक जटिलताओं के परिवेश में जीवन को संघर्ष करते हुए पार कर लेने का सवाल है।

वस्तुतः आज के व्यक्ति के पास जीवन की जटिलताएं ही इतनी है कि साम्प्रदायिक भेदभाव पर विचार करने के लिए उसके पास फुर्सत ही नहीं है और न ही उसे इन विषयों की उपयोगिता में कोई तथ्य नजर आता है। इस प्रकार के परिवर्तित दृष्टिकोण में साम्प्रदायिकता का स्थान ही नहीं रह जाता है। खान–पान और शादी–विवाह सम्बन्धी साम्प्रदायिक मूल्य भी अब उतनी कट्टरता से नहीं निभाये जाते। आज के प्रगतिशील चिन्तन में इन जाति धर्म की संकीर्णताओं का कोई स्थान नहीं रहा है। यह परिवर्तित दृष्टिकोण समानता के सामाजिक मूल्य की व्यापकता उदारता का ही सूचक है। इस प्रकार सम्प्रदायिक कट्टरता के निवारण में और सामाजिक समानता के मूल्य निर्वाह में जाति धर्म की परिवर्तित भावना का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इस सामाजिक मूल्य को आपके साहित्य में एक उदाहरण में देखा जा सकता है। ''लूणा वहाँ पहुँचा तो मेहमान आए हुए थे। भोजन के थाल आए तो एक थाल बीठू के लिए भी आया। लूणा बीठू ने भोजन करने से पहले सांखलों से वचन लिया कि मैं तीन बार तागा करने के कारण घायल हूँ। अब भोजन आ गया है तो मैं उसका निरादर नहीं करूंगा पर यदि मेरी मृत्यु हो जाए तो सींथल मे सोभा व बींदा उदावत के दरवाजे के सामने मेरा अन्तिम संस्कार किया जाए। सांखलों ने वचन दे दिया।''[84]

नैतिकता

परिवर्तन चक्र के साथ मूल्य चक्र भी घूमता रहता है। भारतीय समाज परम्परागत नैतिक मान्यताओं को तिलांजलि देकर नवीन नैतिक मान्यताओं को अपना रहा है। आज विधवा विवाह के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। आज विधवा विवाह समस्या अनैतिक नहीं, बल्कि उदात्त कर्म माना जाता है। भारतीय समाज में विधवा विवाहों का प्रसार दिन प्रतिदिन होता जा रहा है। अनेक मामलों में बड़े भाई के देहान्त के बाद छोटा भाई भाभी से विवाह कर लेता है। मूल्य संक्रमण के इस दौर में नैतिकता के अर्थ बदल रहे हैं।

नैतिक शब्द का अर्थ आचरण से सम्बधित है। नैतिक शब्द 'नीति' से बना है। समाज धर्म और राज्य द्वारा निर्मित नियमों के अनुकूल चलना ही नीति है और उन नियमों के अनुकूल आचरण से संबन्धित मूल्य ही नैतिक मूल्य है। दया, त्याग, पवित्रता, सत्य आदि शाश्वत मूल्यों को नैतिक मूल्य कहा जा सकता है। समाज, राज्य तथा धर्म के द्वारा स्वीकृत व्यवहार ही मूल्य के अन्तर्गत आते हैं।

नैतिक तथा आचरण शब्द एक दूसरे से विशेष रूप से जुड़े हुए हैं, क्योंकि जहाँ आचरण होगा, वहीं नैतिकता स्वतः ही आ जाएगी। भौतिक मूल्यों से धर्म और चरित्र का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि व्यक्ति स्वभावतः ही धार्मिक है तो नैतिकता उसके जीवन मे स्वतः ही उतरती चली जाएगी। धर्म, त्याग, सत्य, दान, दया, पुण्य, मानवता, पवित्रता, शान्ति आदि मनोवृत्तियां नैतिक मूल्यों के ही सहायक अंग हैं। अतः जहाँ ये मनोवृत्तियां अभिव्यक्त होगी, वहीं सच्चे मूल्यों की स्थापना होगी। कहने का तात्पर्य यह है कि नैतिकता बनावटी न हो, स्वतः ही जीवन में उतरनी चाहिए। 'जीवन' में यदि धर्म समा जाए तो जो भी व्यक्ति करता है, वह नैतिक ही होता है। नैतिकता के लिए नीति की शिक्षा नहीं, धर्म की शिक्षा अपेक्षित है। सौन्दर्य मूल्य और नैतिक मूल्य एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। यद्यपि कुछ विद्वान इनमें अन्तर भी मानते

हैं। जब तक नैतिकता नहीं होगी, तब तक सौन्दर्य मूल्यों का उदय होना सम्भव नहीं है। अतः नैतिकता ही तो सौन्दर्य का आधार स्तम्भ है।

भारतीय समाज में नैतिक मूल्यों के प्रति विशेष आदर रहा है। यही कारण है कि समाज और शासन के प्रति निष्ठावान रहने की परम्परा भारतीय जनता में विशेष रूप से विद्यमान रही है। हमारे यहाँ आचरण की पवित्रता को अधिक महत्त्व दिया गया है। मूल्य के दो भेद माने जाते हैं। एक शाश्वत मूल्य और दूसरा समाज सापेक्ष जीवन मूल्य। शाश्वत मूल्य ये सर्वमान्य आचरण सिद्धान्त के अन्तर्गत आते हैं। ये मूल्य किसी भी समय और परिस्थिति में नहीं बदलते। वस्तुतः नैतिक मूल्यों का जन्म ही सामाजिक आवश्यकता के साथ हुआ है। जीवन मूल्य विकसित होने के बाद विश्व नैतिकता के रूप में स्वीकार किया गया, जिन्हें दूसरी ओर समाज सापेक्ष जीवन मूल्य रूढ़िवादी व्यवहार की चुनौती देते हैं। जो मूल्य एक युग में नैतिक लगते हैं, वे ही दूसरे युग में अनैतिक लगने लगते हैं। ये मूल्य समाज तथा देश के अनुसार बदलते रहते हैं जो बात एक देश में नैतिक मानी जाती है, वही दूसरे देश में अनैतिक हो सकती है जैसे उन्मुक्त यौन सम्बन्ध कई पाश्चात्य देशों में उतने वर्जित नहीं है, किन्तु भारतीय समाज में आज भी इन्हें वर्जित और घृणित माना जाता है।

सामाजिक मूल्य हर युग में साहित्य को प्रभावित करते हैं जागरुक साहित्यकार सदैव नये मूल्यों का आग्रही होता है। शायद इसलिए कालीदास को भी लिखकर ''पुराण मित्येव न साधु सर्वम्''[85] भी घोषणा करनी पड़ी थी । भारतीय साहित्य ने मूल्यों के सन्दर्भ में आज अनिश्चिय की स्थिति दिखाई देती है। जैसे–जैसे समाज में नैतिक मूल्यों का विकास होता है, वैसे–वैसे साहित्य के समीक्षात्मक मानदण्ड भी बदल जाते हैं। पुराने साहित्य में सच्चाई और ईमानदारी पर प्रत्यक्ष जोर दिया जाता था, परन्तु आज अभिव्यक्ति का स्वरूप बदल गया है। मूल्य विघटन के इस युग में ईमानदार व्यक्ति के हिस्से में पीड़ाएं ही अधिक आती हैं। यह भी मूल्यों के प्रति साहित्य का अप्रत्यक्ष आग्रह ही है।

प्रत्येक समाज में नैतिक मूल्यों की विशिष्ट परम्परा रही है। उच्चता, श्लील, अश्लील के अपने मानदण्ड होते हैं। समाज की उच्छृंखलता पर नैतिक मूल्यों का नियंत्रण रहता है। वर्तमान परिस्थितियों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज ने परम्परागत नैतिक मान्यताओं को अस्वीकार करने की प्रक्रिया अपनायी है। आज का युवा वर्ग जैसे प्राचीन नैतिकता के जुए से मुक्त होने की शपथ ही ले चुका है परम्परागत नैतिक मूल्यों के भंजन में परिस्थितियों ने गंभीर भूमिका निभाई है। अतः इसी पृष्ठभूमि पर नैतिक मूल्यों का विवेचन अपेक्षित है।

सामौर ने नैतिकता को विशेष रूप से चित्रित करते हुए 'आऊवा का धरना' में जब मोटा राजा ने अक्खा को तलवार भेज कर कहलवाया कि वह मृत्यु का वरण कर सकता है लेकिन राजा नहीं झुकेगा तब अक्खा ने राजा द्वारा भेजी गयी कटार को अपने पेट में घोंपकर अपनी ईहलीला समाप्त करने का निश्चय किया तब धरने पर एक खिड़िया शाखा का वयोवृद्ध चारण था। तब वह मृत्यु के भय से भागकर अपने घर चला गया। ''घर पहुँचने पर शादी करके लौटे दुल्हे के रूप में ही पुत्र ने वापस आने का कारण जानना चाहा तो उस लज्जित होते हुए पिता ने कहा कि मुझसे मृत्यु का वरण नहीं हुआ। तब लज्जित पुत्र ने अपना गठजोड़ा छुड़ाकर घर में प्रविष्ट होती दुल्हन को दरवाजे पर ही छोड़कर दुल्हे के वस्त्रों में ही बंधे मोड़ (सेहरा), कंकन डोर सहित उस खिड़िया चारण का वह पुत्र धरना स्थल पर शीघ्रता से आया । धरने को छह रोज बीत चुके थे सातवें दिवस हृदय में प्रातःकाल ही अटल मरने का उद्देश्य धारण कर स्वादिष्ट रसों वाला भोजन बनाया गया। एक स्थान पर सभी लोग भोजन करने के लिए एकत्रित हुए। वह दुल्हा वेशधारी भोजन करने वालों की अग्रिम पंक्ति में प्रविष्ट हुआ। तब लोगों ने उसे हँसी करते हुए देखा, भोजन परोसने के समय भी परोसने वालों ने मजाक में कहा कि पिता एवं पुत्र को भोजन प्रिय है। इसलिए इस दुल्हे को दो पत्तल परोसो। एक यह यहाँ खाएगा व दूसरी अपने पिता के लिए साथ ले जाएगा। इससे वह क्रोध में तिलमिला उठा और सुबह होते ही उसने सबके सामने कटार से दो खतरनाक घाव किए और

कहा कि एक मेरे परम पूज्य पिता के लिए तथा दूसरा मेरे लिए। इस प्रकार उसने अपने पूर्ण शरीर को क्षत विक्षत करके प्राण त्याग दिए।''[86]

सामौर के साहित्य में न सिर्फ मानव का मानव के प्रति प्रेम जाग्रत और व्यक्त अवस्था में वर्णित है बल्कि पशुओं के प्रति प्रेम भी व्यक्त हुआ है। आपके साहित्य में इसके अनेक उदाहरण देखने का मिलते हैं– ''गुजरात के समीप मीती नामक गाँव में सौ सवा सौ गाय भैंस रखने वाला एक बड़ा चारण परिवार रहता था। इस परिवार में बाईस कन्याएं थी। एक समय एक नील गाय का बच्चा कहीं से भटकता हुआ इस चारण की शरण में आ गया। बाईस कन्याओं ने बड़े चाव के साथ पाला पोसा। वह गाय भैसों के साथ ही रहने लगा। बड़ा होने पर चरते–चरते दूर दूर तक जाने लगा। इसी प्रकार चरते–चरते वह रोझ माधवपुर के राजा मघराज वाघा की नजर में आ गया। मघराज ने घोड़े पर सवार होकर उसका पीछा किया और उसके पीछे चारण की बस्ती में आ गया। रोझ को खड़ा देखकर मघराज ने भाले से प्रहार किया। बाईस देवियां पानी भरने गई हुई थी। लौटकर देखती है कि भाले के प्रहार से रोझ तड़प रहा है। रोझ को बचाने के लिए देवियों ने मघराज को फटकारा कि तुझे राजा किसने बना दिया? चारणों की बस्ती में आकर मर्यादा तोड़ते कुछ तो शर्म करो। उसके जीव दया विरोधी क्रूर कृत्य के विरोध में बाईस देवियों ने झंवर (जौहर) कर आत्म बलिदान किया।''[87]

सामौर के साहित्य में पक्षियों के प्रति प्रेम के उदाहरण भी देखने का मिलते हैं। ''सोन बाई छत्रावा के लीला शाखा के चारण के घर जन्मी। छत्रावा के पास बहती बैण नदी के किनारे गायों को पानी पिलाने पहुँची तो नदी के किनारे कुरजां पक्षियों की डार चुग्गा पानी करती हुई जल क्रीड़ा कर रही थी। इतने में मांगरोल का राजा शिकार के लिए आता दिखाई दिया। सोनबाई ने सोचा कि मेरे सामने इतने निरीह प्राणियों का शिकार होगा। मन ग्लानि से भर गया। तुरन्त पानी में उतर कर अपने हाथ की लकड़ी से सभी पक्षियों को आकाश में उड़ा दिया। मांगरोल दरबार सोन बाई को धमकाने के लिए आया तथा कहा जिन्दा जला दूंगा। सोन बाई

ने उत्तर दिया कि यही तो रास्ता देख रही हूँ। जीते जी आँखों के सामने जीव हिंसा नहीं होने दूंगी ।''[88]

सामौर के गद्य साहित्य में जीवन मूल्यों की दो स्थितियां सामने आती हैं एक तरफ हमारे भारतीय संस्कारों से जुड़े मूल्य हैं, जो कालखण्ड में तीव्रगति के साथ परिवर्तित हुए हैं। पाश्चात्य संस्कृति ने हमारे जीवन को अन्दर तक अर्थात् गहराई तक प्रभावित किया है। हमारी भारतीय परम्पराएं धीरे–धीरे टूटती चली गई हैं। संयुक्त परिवार, ग्राम स्वराज्य, अतिथि सेवा, भाईचारे की भावना आदि परम्पराएं बिखरती हुई दिखाई देती हैं। हर क्षेत्र में एक यांत्रिकता आ गई है। वेश–भूषा, खानपान, और रहन–सहन सभी में हमनें पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण किया है। यह परिवर्तन अच्छा है या बुरा है, यह कहना अनावश्यक है। परन्तु यह सत्य है कि पाश्चात्य प्रभाव ने हमारे जीवन को ऊपर से ही प्रभावित नहीं किया बल्कि अन्दर तक बदल दिया है। इस परिवर्तन से हानि के साथ लाभ भी हुआ है। अस्पृश्यता, जातिभेद, दहेजप्रथा, बालविवाह और वैधव्य जीवन सरीखी सदियों पुरानी कथाएं भी अपने आप मिटने लगी हैं। हम अपने आप को एक परिवर्तित युग में खड़ा पाते हैं, जो हमारे परम्परागत समाज से सर्वथा भिन्न है।

भंवर सिंह सामौर ने जीवन का हर कोना छान मारा है। जीवन की कोई भी पीड़ा उनकी नज़रों में अछूती नहीं रही है। उन्होंने अपने गद्य साहित्य में शाश्वत मूल्यों के विघटन और परम्परागत मूल्यों के संक्रमण को अनेक रूपों में चित्रित किया है। साहित्यकार को जीवन की स्थितियों का निर्लिप्त भाव से चित्रण करना है। समस्याओं को जान लेना ही काफी नहीं है। उसका कृत्रिम समाधान करना भी आवश्यक है और आप इस लक्ष्य में पूर्णतः सफल हैं। आपके साहित्य में विषयवस्तु की दृष्टि से एक ठहराव आ गया है, परन्तु यह ठहराव गद्य साहित्य का नहीं है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में बदलती हुई परिस्थितियों ने साहित्यकारों को जो कैनवास प्रदान किया था, वह आज तक ज्यों का त्यों बना हुआ है। स्थितियां तनिक भी नहीं बदलती है, बदली है तो केवल इतनी कि पहले मूल्य संकट की स्थिति सीमित थी, अब और अधिक व्यापक हो गई है। आज भ्रष्टाचार सर्व व्यापक हो गया

है। जीवन का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं जिस पर उसका प्रभाव नहीं पड़ा हो। इन स्थितियों ने बुद्धिजीवी वर्ग को एक सदृश्य निराशा से भर दिया है। इस निराशा की छाया हिन्दी गद्य साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक है, किन्तु यह स्थिति स्थायी नहीं है। साहित्यकार का रथ समाज का मार्गदर्शन करते हुए सदा आगे बढ़ता रहा है। रास्ता ऊबड़–खाबड़ हो तो सफर कष्टसाध्य हो जाता है, पर साहित्यकार रुकता नहीं है। इसलिए आपके गद्य साहित्य में निबन्धों, जीवनियों, कहानियों आदि की संख्या नगण्य नहीं है, जिनमें शाश्वत मूल्यों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। साहित्यकार शाश्वत मूल्यों के प्रति सदैव ही आस्थावान रहा है। चाहे वह भारतेन्दु युग का गद्य साहित्य हो, चाहे प्रेमचन्द युगीन कहानियों की आदर्शोंन्मुख यथार्थवादी कहानी या निबन्ध या जीवनियां हो अथवा आज की अति यथार्थवादी व आदर्शवादी कहानी, नाटक, निबन्ध, जीवनी आदि गद्य विधाएं हो साहित्यकार सर्वत्र मूल्यों के प्रति आग्रही होता है। साहित्यकार की यह आस्था ही पाठकों को मूल्यों के प्रति शाश्वत करती है। बुराई कितनी भी शक्तिशाली क्यों न हो, अच्छाई को हरा नहीं सकती। यह विश्वास ही आपकी प्रगति का आधार है।

सन्दर्भ सूची

1- संस्कृत हिन्दी कोश– आमटे, वामन शिवराम, पृष्ठ 812

2- हिन्दी शब्द कोशवसु– श्री मगेन्द्रनाथ, पृष्ठ 238–39

3- मनुस्मृति– पृष्ठ 6–12

4- वेदव्यास– वाल्मिकी रामायण पृष्ठ, 8–10

5- भृर्तहरि श्लोक– 13

6- वही श्लोक– 14

7- A Systematic Introduction&- Janson, H.M. Sociology, Page 49

8- Fundamental's of Ethic-Aurba, Page 16

9- वही– पृष्ठ 17

10- वही– पृष्ठ 18

11- Ed. Charles Morries of Human Value- Kalkahan, Page, 11

12- बदलते मूल्य और आधुनिक हिन्दी नाटक– डॉ. ओम प्रकाश सारस्वत, पृष्ठ 6

13- The Development of Social Tho ughat- Logards, Page 636

14- Mukarji; Dr. R.K.- The social Structure of Values, Page 21

15- हिन्दी कोश''भाग,1– माचवे, डॉ. प्रभाकर, पृष्ठ 658

16- संस्कृति का दार्शनिक विवेचन– डॉ. देवराज, पृष्ठ 168

17- The Initiative Philosophy- Page 39

18- आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य– डॉ. राजपाल, डॉ. हुकुमचन्द, पृष्ठ 61

19- हिन्दी साहित्य कोश भाग,1– माचवे, डॉ. प्रभाकर एवं धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ 658

20- मानविकी पारिभाषिक कोश– वर्मा, धीरेन्द्र, पृष्ठ 203

21- Dictionary of Sociology and related Sciences- Hevry Parti Fairchild and Others; Page, 113

22- संस्कृत हिन्दी कोश– आमटे, वामन शिवराम, पृष्ठ 146

23- Philosophy of Values, The Cultural Heritage of Indian- Hirriyana M, Page 645

24- मानव मूल्य और साहित्य– भारती, धर्मवीर, पृष्ठ 21
25- वैदिक संस्कृति और सभ्यता– डॉ. मुंशीराम, पृष्ठ, 51
26- मुकर्जी, डॉ. रवीन्द्रनाथ– सामाजिक मनोविज्ञान की रूपरेखा, पृष्ठ 466
27- Social Psychology- Katz & Schanck, Page 56
28- उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन– श्रीवास्तव, प्रतापनारायण पृष्ठ 54
29- हिन्दी विश्व कोश खण्ड, 9– पृष्ठ 305–6
30- Contemporary Philosophic Problem- Perry, R.S.Page, 488
31- हिन्दी महाकाव्यःसिद्धान्त और मूल्याकंन– गुप्त, डॉ. देवीप्रसाद, पृष्ठ 23
32- भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास– आत्रेय, भीखनलाल, पृष्ठ 619
33- भारत में समाजशास्त्र, प्रजाति और संस्कृति– भट्ट, गौरीशंकर पृष्ठ 261
34- संस्कृति का दार्शनिक विवेचन– डॉ. देवराज, पृष्ठ 176
35- पूर्व–पश्चिम भारतीय जीवन– डॉ. राधाकृष्णन्, पृष्ठ 9
36- मानव मूल्य और साहित्य– धर्मवीर भारती, पृष्ठ 21
37- E.B. Primititive culture- Tvlar, Page 1 Newyork
38- हिन्दी साहित्य, एक आधुनिक परिदृश्य–सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय, पृष्ठ 9
39- सामाजिक मनोविज्ञान की रूपरेखा– मुकर्जी, रवीन्द्रनाथ, पृष्ठ 93
40- वही– पृष्ठ 147
41- स्वातन्त्रयोत्तर कथा साहित्य– शर्मा और सीताराम, पृष्ठ 20
42- Religion is the belief in spiritual beings", Primiline Culture- Tylor, Edward B, Page 160
43- स्वातन्त्रयोत्तर कथा साहित्य– शर्मा, सीताराम, पृष्ठ 22
44- संस्कृति का दार्शनिक विवेचन– डॉ. देवराज, पृष्ठ 368–69
45- साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन– उपाध्यााय डॉ. देवराज, पृष्ठ 28
46- Fundamentals of Ethics- Urban Page, 164
47- संस्कृति का दार्शनिक विवेचन– डॉ. देवराज, पृष्ठ 165

48- उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त– मुकर्जी, रवीन्द्र, पृष्ठ 531
49- साहित्य और आधुनिक युग बोध– ऑस्वेड स्पेंगलर, पृष्ठ 9
50- मानव मूल्य और साहित्य– धर्मवीर भारती, पृष्ठ 68
51- हिन्दी नाटक व मूल्य संक्रमण– डॉ. गिरिराज शर्मा, पृष्ठ 28
52- हिन्दी कहानी, संवेदनशीलता, सिद्धान्त प्रयोग– वर्मा, डॉ. भगवानदास, पृष्ठ 13
53- नई कविता, स्वरूप और समस्या– डॉ. जगदीश गुप्त, पृष्ठ 22
54- Essay's in Critisism- Page 120
55- मानव मूल्य और साहित्य– धर्मवीर भारती, पृष्ठ 103
56- बदलते परिदृश्य– डॉ. नेमीचन्द जैन, पृष्ठ 14
57- आलोचना, अक्टूबर–दिसम्बर– डॉ. रघुवंश, पृष्ठ 3
58- आस्था और सौन्दर्य– डॉ. रामविलास शर्मा, पृष्ठ 17
59- आलोचना के मान– डॉ. शिवदान सिंह चौहान, पृष्ठ 6
60- आधुनिक हिन्दी साहित्य– डॉ. शिवदान सिंह चौहान, पृष्ठ 347–48
61- हिन्दी साहित्य की भूमिका– द्विवेदी, आचार्य हरि प्रसाद पृष्ठ 86
62- व्यक्ति और सृष्टा– डॉ. शम्भूनाथ सिंह, पृष्ठ 92
63- वही– पृष्ठ 92
64- स्वाधीनताकालीन हिन्दी साहित्य के जीवन मूल्य– डॉ. रामगोपाल शर्मा, पृष्ठ 17
65- जीवन मूल्य भाग 1–सहस्रबुद्ध, पृष्ठ 195
66- हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा संस्मरण– डॉ.रामदरश मिश्र एवं नरेन्द्रमोहन, पृष्ठ 120
67- हिन्दी कहानी, अपनी जबानी– डॉ. इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ 31
68- भारतीय चिन्तन एवं पाश्चात्य जगत्– प्रभाकर माचवे, पृष्ठ 156
69- आऊवा का धरना– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 26–27
70- वही– पृष्ठ 10
71- चूरू मण्डल के यशस्वी चारण– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 18

72- वही– पृष्ठ 22

73- वही– पृष्ठ 35

74- साहित्य का समाजशास्त्र– डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ 6

75- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन– डॉ. भैरूलाल गर्ग भूमिका से उद्धृत

76- आऊवा का धरना– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 69

77- हिन्दी साहित्य कोश– धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ 289

78- स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य संक्रमण– डॉ. हेमेन्द्र पानेरी, भूमिका, पृष्ठ 23

79- लोक पूज्य देवियां– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 68

80- हमारे साहित्य निर्माता : रावत सारस्वत– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ–48

81- राजस्थानी शक्ति काव्य– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ–16

82- औरत होने की सजा– अरविन्द जैन, पृष्ठ 20

83- एक दुनियां समानान्तर– राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 34

84- युगान्तरकारी संन्यासी– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 82–83

85- आऊवा का धरना– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 71

86- 'मालविकाग्निमित्र, प्रथम अंक– कालीदास, श्लोक संख्या 2

87- आऊवा का धरना– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 30–31

88- वही– पृष्ठ 88

89- वही– पृष्ठ 89

षष्ठ अध्याय

भंवर सिंह सामौर का गद्य साहित्य में योगदान

गद्य साहित्य लेखन

निबंध लेखन

जीवनी लेखन

राजस्थानी भाषा साहित्य

षष्ठ अध्याय

भंवर सिंह सामौर का गद्य साहित्य में योगदान

गद्य साहित्य लेखन में योगदान

लोक देवी साहित्य : लोक पूज्य देवियां

किसी नयी विधा को लेकर साहित्य इतिहास का लेखन करना अत्यंत कठिन कार्य है। भंवर सिंह सामौर की प्रथम कृति इतिहास लेखन के रूप में लोक पूज्य देवियां है। इनका प्रथम इतिहास लेखन ही गहन शोध व अध्ययन से विवेचित किया गया है। सम्पूर्ण तथ्य प्रामाणिक हैं। आज तक इस प्रकार का दूसरा इतिहास नहीं लिखा गया। अतः इस अछूते एवं नवीन विषय पर इतिहास लेखन करके अपना विशेष योगदान दिया है।

इस पुस्तक के प्रारम्भ में देवी पूजा की अवधारणा लोक शास्त्र और विज्ञान का विकास विषय पर गहन विवेचन प्रस्तुत किया गया है, फिर देवियों से संबधित साहित्य का विस्तृत विवेचन किया गया है। ''देवी हिंगलाज''[1] से लेकर अब तक इस परम्परा में अवतरित देवियों का परिचय दिया गया है। इसके साथ ही इन लोक देवियों से संबंधित रम्मतों का वर्णन भी इस साहित्य में परिचय के रूप में दिया गया है।

चारण देवियों की ऐतिहासिक परम्परा

चारण देवियों के अतीत से जुड़कर हम हमारे ही भविष्य से जुड़ने का उपक्रम कर रहे हैं। इन चारण देवियों की ऐतिहासिक परम्परा हमारे सामाजिक संघर्ष का आत्म विश्लेषण है। इस पुस्तक में चारण देवियों को एक ऐसी ही निरंतर संघर्षशील सामाजिक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसके माध्यम से समाज गतिशील होता है। हमारा युग इन देवियों के समय से भी ज्यादा विध्वंसकारी दबाव से ग्रस्त

है। इसलिए आज हम संघर्ष के द्वारा इस स्थिति में परिवर्तन के लिए इन चारण देवियों के चरित्र की रोशनी में इस आशा से झांकना चाहते हैं कि इन देवियों के संघर्ष की किरणें हमारे संघर्ष की निराशा के अंधकार को आलोकित करेंगी।

समाज में लोक देवियों की भूमिका एवं महत्त्व

इन देवियों से संबंधित अधिकतर ऐतिहासिक घटनाएं सामान्य एवं समान लगती है पर भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में घटित होकर भिन्न–भिन्न परिणाम प्रस्तुत करती है। समाज में उनकी भूमिका का महत्त्व उनके संघर्ष का स्मरण करने वाले व उसके प्रति श्रद्धा रखने वाले बहुसंख्यक लोगों के कारण है। इन देवियों ने अपने युग की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति देते हुए बताया कि तुम्हारी जरुरतें क्या हैं? तथा उन्हें किस प्रकार पूरी करना है? ''इन्होंने जो कुछ लोकहित के कार्य किए वे युग चेतना के प्रतीक बने। इसी कारण ये देवियां चमत्कारों के कारण महान नहीं बल्कि अपने आत्मबल के कारण महान बनी तथा उसी आत्मबल से मनुष्यता को जागृत कर उसे प्रसारित भी किया।''[2] समाज में इनका अभूतपूर्व योगदान है।

सामाजिक शक्ति का निर्माण एवं प्रतिनिधित्व

इन चारण देवियों में स्थित अतिविशिष्ट व्यक्तित्व की पहचान ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है जिसने मानव चिंतन को परिवर्तित करने वाली सामाजिक शक्ति का निर्माण एवं प्रतिनिधित्व साथ–साथ किया। चारण देवियों की हजारों वर्षों की निरंतर प्रवाहमान परम्परा बीते हुए समाज से मौजूदा समाज का साक्षात्कार है जिसे अतीत में उल्लेखनीय मानकार वर्तमान में ग्रहण कर रहे हैं। आज के आलोक में ही बीते युग की देवियां हमारी श्रद्धा का केन्द्र बन सकी हैं और उनके अतीत के आलोक ने ही हमारे वर्तमान को आलोकित किया है। अतीत के संघर्ष को आज के मनुष्य के लिए सरल बनाना और आज के समाज को उस संघर्ष से जोड़कर आत्मविश्वासी

बनाना ही इन देवियों की लीलाओं का मर्म है। समाज की स्थिरता जीवन की पवित्रता और मनुष्य की नीतिमत्ता का आधार स्तम्भ ये देवियां हैं। ''समुद्र से भी बड़े संकट के सामने ये जूझी हैं। अनेक कष्ट एवं यातनाएं झेली हैं। सांसारिक अग्नि ज्वाला को अपने रक्त के छींटों से बुझाकर संतप्त समाज को शीतलता प्रदान करने वाली ये देवियां शील, स्वधर्म एवं पवित्रता के लिए मौत के सामने भी कठोर से कठोर अनुष्ठान करती हैं। इन देवियों ने बड़े से बड़े राज्यों के साथ बलवान से बलवान समूहों के साथ, सामाजिक रूढ़ियों के साथ अन्याय के हर प्रसंग के साथ निर्भय होकर संघर्ष किया, जूझी पर कभी पीछे हटने का नाम नहीं लिया।''[3] संस्कृति की रक्षा के लिए चले आ रहे हजारों वर्षों के इस शक्ति आंदोलन का संक्षिप्त परिचय ही इस पुस्तक का मूल योगदान है। आपने लोक देवियों के इतिहास में चारण शब्द की उत्पत्ति चारणों का इतिहास, निवास स्थान आदि की जानकारियां देकर सारगर्भित बना दिया है।

चारण समाज

चारण परम्परा का समाज में सदियों से ही मान सम्मान रहा है। देवी के पुत्र के रूप में चारण सदैव पूजनीय रहे हैं। इन्हें देवी के वंशज के रुप में जाना जाता रहा है। यह भी माना जाता है कि राजा तो क्या देवताओं की भी यदि चारण मदद नहीं करते तो राक्षस विजित होते। अर्थात् सुर–असुर युद्ध में चारणों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। भंवर सिंह सामौर की गिनती आधुनिक युग के प्रबुद्ध साहित्यकारों में की जाती हैं। आपको राजस्थानी एवं हिन्दी की महान् परम्परा विरासत में मिली। इन दोनों परम्पराओं को पुष्ट करने का कार्य किया राजस्थान की संस्कृति ने। ईरान से इण्डोनेशिया तक पुष्ट प्रवाहमान संस्कृति का हृदय स्थल भारत है। भारत का हृदय स्थल राजस्थान है। राजस्थान के पुष्कर से ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की ऐसी लोक एवं शास्त्र की मान्यता है। राजस्थान का अरावली पर्वत विश्व का सबसे प्राचीन पर्वत है। साथ ही वेदों की ऋचाएं भी सरस्वती नदी के

किनारे रची जाने की लोक मान्यता है। राजस्थानी की शब्दावली में वैदिक संस्कृत के शब्दों की भरमार है। अपनी संस्कृति अलग–अलग पूजा पद्धतियों एवं तीर्थों को समाज कुल के रूप में मान्यता देती है। शिक्षण के केन्द्र गुरुकुल बनकर प्रतिष्ठित हुए। कुल मर्यादा का गर्व स्वीकृत हुआ। अपने समाज में जाति में जाति व्यवस्था ने समाज को ही खंडित नहीं किया बल्कि जाति को भी खंड–खंड कर दिया। यह विभाजन स्थान आधारित है। चारण भी इससे अछूते नहीं रहे।

राष्ट्र निर्माण में चारणों का योगदान

ये लोग युद्ध क्षेत्र में राजा के सदैव साथ रहते तथा अपनी ओजस्वी वाणी से राजा को युद्ध क्षेत्र में डटे रहने का हौसला प्रदान करते थे। चारण समाज को सामाजिक चेतना का वाहक, सामुदायिक जीवन शैली का प्रतीक, समता स्वतन्त्रता का पर्याय, सामाजिक जीवन में संघर्ष का साथी, संस्कारों के निर्माता आदि संज्ञाओं से भी विभूषित किया जाता है। हमारे राष्ट्र के निर्माण में चारणों के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है। देश के इतिहास में मान, सम्मान, गर्व आदि की देन में चारणों का महत्त्व किसी भी स्तर पर कम नहीं है। चारण सदैव सत्य के उपासक, संस्कृति के रक्षक, वीरता के पुजारी, दुराचार के दुश्मन और अत्याचार के घोर विरोधी रहे हैं। चारणों का आचरण धर्मपुरुष की भांति होने के कारण पूजनीय, नमन करने योग्य, सत्य के हिमायती अर्थात् सच कहने की हिम्मत (साहस) रखने के कारण पूजनीय एवं वीरता के पुजारी रहे हैं। चारणों ने अन्याय, अत्याचार, दुराचार के विरोध में जूझते हुए आत्म बलिदान किया। इन्होंने कमजोर वर्ग की रक्षा के लिए हँसते–हँसते अपने प्राणों की बाजी लगाई।

चारण का शाब्दिक अर्थ

1. पशुपालन युग में पशुता पर लगाम लगाने के कारण ये चारण कहलाए अर्थात् चराने वाला चारण।

2. वैदिक युग में वेदों के चरणों (अंगों) की व्याख्या करने के कारण चारण शब्द नए अर्थ में प्रचलन में आया।
3. चरण (पद) को जो गति प्रदान करे वो चारण कहलाता है।
4. युग चेतना के संवाहक के रूप में चारणों ने विरुद धारण किया है।

शंकरदान सामौर ने अपने एक डिंगल गीत में समाज के नेता के रूप में सामाजिक मर्यादाओं को स्थान देने वाले पुरुष के रूप में चारणों की गिनती की है। इन्होंने चारणों की गणना सामाजिक नेतृत्व की लगाम थामने वाले मर्यादा पुरुष के रूप में की है। इन्होंने चारणों को ऐतिहासिक बताते हुए उनकी मर्यादाओं का बखान किया है। उनके अनुसार चारण राजा को भी दण्ड देने वाले थे। ये राजा डंडी कहलाते थे। इसका तात्पर्य यह है कि राज सत्ता से भी उपर उठकर जो नैतिक सत्ता होती है, उसके प्रतीक चारण थे। जिस नैतिक सत्ता से राजा भी डरता था। चारण कलम और हथियार दोनों के धनी थे अर्थात् दोनों कलाओं में पारंगत थे।

चारणों का भौगोलिक विस्तार

लोक पूज्य चारण देवियों और कवियों की अगुवाई में राक्षसों, असुरों, यवनों, हूणों, पठानों, मुगलों आदि विदेशी आक्रांताओं से देश रक्षा हित युद्ध होते रहे। अंग्रेज आक्रान्ताओं से भी चारण देशप्रेम की भावना हेतु संघर्षरत रहे। चारणों की समाज में इस जुझारु प्रवृत्ति के कारण एवं चारणों की महत्त्वपूर्ण भूमिका के कारण बंगाल में 'वीर चारण दल' नाम का एक संगठन भी बना था। यूरोप में चारण (बारड़) का चयन होता है। ''वेल्स और आयरलेण्ड में आज भी बारड़िक एसोसियेशन (चारण एसोसियेशन) कार्यरत हैं। वहाँ चयन हुए चारण (बारड़) को सम्मानित करने हेतु उसे घोड़े पर बैठाकर जुलुस निकाला जाता है। ऐसा माना जाता है कि चारणों की भूमि ही स्वर्ग भूमि है जो नेपाल से लेकर तिब्बत और ईरान तक फैली हुई है।''[4] इस देवभूमि से लेकर चारणों का पलायन रेगिस्तानी क्षेत्र की ओर होता रहा है। चारणों को सामन्ती युग में जो जागीर प्रदान की जाती थी उसे मुख्य रूप से 'शासन' के

नाम से पुकारा जाता था। चारणों के नाम सम्मान हेतु राजाओं द्वारा लाख पसाव–क्रोड़ पसाव के रूप में लाख–लाख और करोड़–करोड़ रुपये पुरस्कार स्वरूप समय–समय पर प्रदान किये जाते थे। इसके साथ–साथ राजा–महाराजा चारणों को हाथी घोड़े, सोने–चाँदी के आभूषण, हथियार, गाँव आदि देकर सम्मानित करते थे। राजा अपने पुत्र को भी चारणों को भेंट स्वरूप प्रदान करते थे। राजा स्वयं चारण को हाथी पर चढ़ाकर स्वयं घोड़े पर चढ़कर उसके साथ–साथ चलकर उसके प्रति सम्मान प्रकट करते थे। कभी–कभी राजा चारण का पैर अपने कंधों पर रखकर उसे हाथी पर चढ़ा कर उसके प्रति सम्मान व्यक्त करता था। कभी–कभी राजा खुद चारण की पालकी को कंधा देकर अपने आपको धन्य मानता एवं गौरवान्वित महसूस करता। चारण जाति सदैव स्वाभिमानी दृढ़ प्रतिज्ञ एवं संकल्पवान थी। जिसकी वजह से चारणों के गाँव अथवा मोहल्ले में निवास करने वाले दूसरे लोग खुद की पहचान चारणों के शासन में रहने वाला 'चारण' कहकर बताते थे। चारण बारहठ, बारैठ, गढ़वी, पात, दैव आदि नामों से जाने जाते हैं। चारण जाति राजस्थान, सिंध, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली आदि में निवास करती है। विरल आबादी के रूप में चारण जाति उत्तरप्रदेश, हिमाचल, कश्मीर और सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप में निवास करती है। वैसे अपवाद के तौर पर चारण विश्व के अनेक देशों में निवास करते हैं।

चारणों के मुख्य भेद

चारणों के मुख्य भेद मारू, काछेला, सोरठिया (परजिया), और तुम्बेल (तमिल)है। मारू चारणों में एक सौ बीस शाखाएं मानी जाती हैं। दोलजी मोतीसर के शब्दों में एक डिंगल गीत में परिचय देते हुए कहा गया है कि–

'साखां सो बीस बंचावण सूरा, दौले हेलविया दातार।'

''चारणों की शाखा के लिए बीसोत्तर शब्द प्रयुक्त होता है। जिसका अर्थ है कि चारणों के मूल वंश वृक्ष (तरु) बीस माने जाते हैं। जिनकी अनेक शाखाएं, उपशाखाएं फली फूली। इस वंशवृक्ष की सात प्राचीन शाखाएं मानी जाती हैं। वंशवृक्ष का विवरण निम्नानुसार हैं–

1. **नरहा–** इस चारण शाखा के अन्तर्गत नरहा, नांधू, जगट, नरेसा, देवल, दधवाड़िया, गूहड़, बोगसा, पायक, झीबा, नेचड़ा, केहरा, गोहेला, गोरवियाला, घूघड़, पालिया, पांडरसींगा, बुत्रड़ा, मालिया, मूलिया, मोयंल, रबाई, राजैया, लूणल, नरेला, जलपसा, नायक, सींगड़ियां आदि पचास शाखाएं आती हैं। नरहा शाखा की उपशाखा के अन्तर्गत बावड़ा, डाडावाला, जासील, अभाणी, जुगानी, राधवानी, जगानी, जामोमर, रायसीयानी, भायानी, पुतानी, देवानी, नागैयां, राबा, गोखरू, लोया, कीड़िया, जामंग, जैसल, जालफवा, जालग, नांधन (जासील), गोयेल, राजवेद, सूड़ा, जोगड़ा(राबा), मनोहरदासोत, अजावत(नांधू), माधोदासोत, प्रयागदासोत, द्वारकादासोत, हरभाणोत(दधवाड़िया) आदि अनेक उपशाखाएं आती हैं।
2. **अवसूरा–** इस शाखा के अन्तर्गत अवसूरा सामौर, गढ़वी, बणसूर, आसिया, लालस, समहड़, देवका, धूला, साहवा, सूंघा, साहसी, सूंरू, होनां, साजका, बुधसी, झूझार, गीयड़, मूलरव, खात्रा, मोखू, दरंगा, जसगार, जालिया, कवड़िया, कूनां, कुवार, नागलाणी, पसिया, भुवा, मालका, लूणियां, बणासिया, बलदा आदि सैंतीस शाखाएं आती हैं। इसके अलावा इसमें कमलावत, चांपसिंहघोत, ठाकुरसियोत, मेहाजलका, महेशदासोत, जगमालोत, दयालदासोत(सामौर), जुगतावत(बणसूर) आदि उपशाखाएं आती हैं।
3. **चौराड़ा–** इसमें चौराड़ा, कविया, खिड़िया, थेहड़, आंबा, लांबा, चेड़, चीबा, मेंमल(मेदमल), देंवगड़ा, गोरा भाकवीर, गड़दिया, कापड़ी, कवल, लूणग, कांटा, बीकल, कोलूं(कोलवा), डोडिया, देवसूर, देसिया, धोलिया, पड़यार, भड़, माला, राजिया, वजिया, बड़गामा, वरणसी, वासिया, वानरिया, वीरम, सड़ा, समा, सोदैया, सोमातर, हुंतल, कांथल, लोवड़िया(लोरिया), लाखातर, मेंजल, कुरणा, कानवा आदि

नामों की चालीस शाखाएं और अलूदासोत, किसनावत, नरूका, भवानीदासोत, गंगदासोत(कविया), लुमावत, भैंरूदासोत, धरमावत, सेवावत, धनावत, सूजावत (खिड़िया) आदि उपशाखाओं के समुदाय आते हैं।

4. **मारू–** इसमें मारू, किनीया, कोचर, देथा, सौदा, सुरतानिया, सीलगा, कापल, घरट, घूघरिया, दांती, आला, ऊका, पाल्हू, भारमल, रांता, वाधिया, सतिया आदि बीस शाखाओं और उपशाखाओं के समुदाय आते हैं।
5. **चऊवा–** इसमें चऊवा, झूला, बरसड़ा अरडू, आलगा, लांगड़िया, मूंजड़ा, गांगिया, गीड़ा, घोड़ा, चाटका, माणकव, राजवला, राजा, वीरड़ा, साबा, सोमणिया आदि शाखाओं और उपशाखाओं के समुदाय आते हैं।
6. **गाडण–** इसमें गाडण, बाडवा, बाटी, पाँचालिया, रतड़ा, सीरण, लाधवा, बीढ़ा, पूसैया, लापैया, भारा, मूला, कतोरा, पीठड़िया आदि शाखाओं के अलावा लधानी, हदानी(बाटी), सिवदासोत, केसौदासोत, चोलावत, झांझनौत(गाडण) आदि उपशाखाओं के समुदाय आते हैं।
7. **तुंबेल (तमिल)–** इसमें काग, गूघंड़ा, धानड़ा, शांद, बढ़ड़ा, भाचकन, बूढ़ायच, भीडां, तुंगल, मोड़, रूढ़ायच, बेमल, संघड़िया आदि बीस शाखाओं और कराणी, कमाणी, कान्हाणी, भोजराणी, भुवा, रयाणी, मंधरिया, बीसलपुरी, पुनाणी, खेतसीयाणी, लाखानी, भारानी, मेघानी(मघारिया), वडल, जाम, वरीया, धूप, सागर आदि उपशाखाओं के समुदाय आते हैं। इससे साढ़े तीन (पाहड़े) समुदाय बने। पहला समुदाय नरहा और अवसूरा का, दूसरा समुदाय चौराड़ा और मारू का, तीसरा समुदाय चउवा और गाडण का। आधा समुदाय तुंबेलों का माना जाता है। इस प्रकार चारणों के तीन समुदाय बेवड़ी शाखा का (बेवड़िया दुशाखिया) माने जाते हैं। तुंबेल एकशाखिया–इको वड़िया चारण माने जाते हैं। इसके पश्चात तेरह अन्य तरू(वंशवृक्ष) उपर्युक्त सात तरूओं (वंशवृक्षों) में मिल बीसोतर वरण बनाया। ये तेरह तरू भी इकशाखिया (इकोवड़िया) चारण माने जाते हैं। जिनका विवरण निम्नाकित है–

8. **वाचा–** इसके अन्तर्गत आढ़ा, सांदू, महिया, भान, देवायत, कड़वा, सलकन, नागसी, देबा, ईढ़, खढ़ता, भोजग, चांपा, वली आदि शाखाओं के समुदाय और बुधिया (भान) दुरसावत, कान्हावत(आढ़ा), रामावत, मालावत(सांदू) आदि अनेक उपशाखाओं वाले समुदाय हैं।

9. **मीसण–** यह समुदाय मीसण, मेसमां, मेंहगू, लांगा, लांगाबदरा, गेलवा, कुंचाला, आदि आठ शाखाओं एवं बाढ़ा(गेलवा), चाचावत, मीसण आदि उपशाखाओं वाले समुदाय हैं।

10. **गाघड़ा–** यह समुदाय गाघड़ा, गुढ़ायच, उढ़ास, सिआल, गूढ़ड़ा आदि शाखाओं उपशाखाओं से बना है।

11. **रेढ़ा–** यह रेढ़ा, टापरिया, नेतरमा, सेढ़ा, छांछला, मूंजा, जाखा, नागचड़ आदि शाखाओं एवं उपशाखाओं वाला समुदाय है।

12. **भांचलिया–** इस शाखा में भांचलिया, भादा, सिंढायच, सवायच, चांचड़ा, चड़िया, मसूरा आदि शाखाओं एवं ऊजल रामानी, डोसानी, नाथुरामका आदि उपशाखाओं के समुदाय आते हैं।

13. **नइया–** यह नईया, बालिया, लालिया, मालरव, मांकड़का आदि शाखाओं–उपशाखाओं वाला समुदाय है।

14. **घांघणिया–** यह घांघणिया, मधुड़ा, मालविया, रवसी, माटा, ऊमटा, अनेकवल, जेठी, रवधरा, रांदल, चारणिया, सुखणा, गेगाट, रवनाग आदि सौलह शाखाओं एवं धीरियां तुरियां(घांघणिया) इत्यादि उपशाखाओं वाला समुदाय है।

15. **बीजल–** इसमें बीजळ एवं फूनडा शाखा और उपशाखाएं आती हैं।

16. **रांणगिया–** यह रांणगिया इत्यादि 16 शाखाओं उपशाखाओं वाला समुदाय है।

17. **मेहडू–** इसमें केशरिया, महियारिया, साखरा, सोहला, रेणग, जीवाधरा इत्यादि शाखाओं वाला समुदाय एवं जाड़ावत, लालावत, नेतसीयोत(मेहडू) आदि उपशाखाओं के समुदाय आते हैं।

18. **म्हादा–** यह महादा, कारिया, ढीकरिया, बीजड़, बाला इत्यादि शाखाओं और उपशाखाओं वाला समुदाय है।

19. **रोहड़िया–** यह बीठू, सांवल, कलहठ, मकस, हाहणिया, धीरण, हड़वेचा, गूंगा, ओलेचा, गादू, पूनसोत और आल्हा नाम की बारह शाखाओं एवं करतिया, पात्रोड़, भाद्रेचा, मोखा, आसावत, दीतावत, जैमलोत, ईसराणी, लूणावत, देपावत, अमरावत, चाहड़ोत, देवायत, त्रिभनोत, भीमावत, अक्खावत, लक्खावत, पातावत, किसनावत, जागावत, हाफावत, संकरावत, पाल्हावत, नगराजोत, सूजावत, अचलावत, लाखन, पूना, नरसिंधा, डूंगरोत, हमीरा, मूला, पीघा, नगानी आदि उपशाखाओं वाला समुदाय है ।

20. **रतनू–** यह रतनू, मेता इत्यादि 41 शाखाओं और रवां रीछां, चांदा, भरमा, भोला, नाला, चीबा जीया अयाची आदि उपशाखाओं वाला समुदाय है।''[5]

इसके अलावा भी चारणों के कई और अलग–अलग समुदाय माने जाते हैं। जैसे ''लीला, ठाकरिया, जाखला और आसनिया आदि समुदाय प्रमुख माने जाते हैं। बिणजारों में एक बड़ा समुदाय चारणों का है। गिर के पहाड़ों में पशुधन पालने वाले चारणों का भी अलग पहचान रखने वाला समुदाय है।''[6] गिर तो सिंह, सिद्ध और चारणों के लिए ही प्रसिद्ध है। वैसे समस्त संसार में चारणों के छोटे–बड़े अनेक समुदाय पाये जाते हैं। गोलकुण्डा का शाब्दिक अर्थ भी चारणों की पहाड़ी ही माना जाता है।

देवी के उपासक

चारण मुख्य रूप से देवी के उपासक रहे हैं। महाभारत में जो देवी स्तुति की गई है उसमें स्पष्ट लेख है कि चारण आपको भिन्न–भिन्न रूपों में स्मरण करते हैं। काश्मीरी विद्वानों की भी मान्यता है कि वहाँ के पण्डितों ने चारणों से ही कौल धर्म की दीक्षा ली और स्वयं कौल कहलाने लगे। स्वर्ग (सरग माथै–तिब्बत) से धरती पर आने के सन्दर्भ में भी चारणों की यह मान्यता है कि स्वयं देवी का यह वचन दिया हुआ है कि समय–समय पर मैं तुम्हारे यहाँ अवतार लेती रहूँगी। इसी कारण चारण के घर में उत्पन्न लड़की माताजी की 'सुवासनी' मानी जाती है। चारणों में

देवी के नौ लाख साधारण (नवलाख लोवड़ियाल) एवं चौरासी असाधारण (चौरासी चारणी) अवतार हुए हैं। चारण तो आपस में अभिवादन भी 'जय माता जी' की कह कर करते हैं।

चारण मुख्य रूप से हिंगलाज देवी के उपासक हैं। आवड़देवी व अन्य चारण देवियाँ हिंगलाज देवी की ही अवतार मानी जाती है। ''करणी जी''[7] ''आवड़ देवी''[8] की पूजा करती थी। इन लोक पूज्य चारण देवियों की प्रारंभ से ही एक परम्परा चली आ रही है। ईरान, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, सिंध, पंजाब, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, तेलंगाना, आंध्रप्रदेश, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, उतराखंड एवं उत्तरप्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों तक, कश्मीर एवं दिल्ली के लोगों में इन देवियों की मान्यता आज भी विद्यमान है। स्थान–स्थान पर इन देवियों के मंदिर एवं धाम बने हुए हैं। वहाँ इनकी पूजा के साथ–साथ इनकी स्मृति में लक्खी मेले भरते हैं। ये हमारी सांस्कृतिक विरासत के प्रतीक हैं। इस नवीन विषय पर लोक देवियों के इतिहास का सृजन कर गद्य साहित्य लोन में आपने अपना अमर योगदान दिया है।

शक्ति आदोलन का इतिहास राजस्थानी शक्ति काव्य

राजस्थानी शक्ति काव्य में भक्ति आंदोलन की तरह ही शक्ति आंदोलन का इतिहास विस्तार से वर्णित है। इस पुस्तक में लगभग एक सौ साठ कवियों की रचनाओं को स्थान दिया गया है। इस पुस्तक का मुखबंद भूमिका अड़तीस पृष्ठों की गद्य हिन्दी भाषा में है, जो कि सराहनीय ही नहीं बल्कि आपके बहुमुखी व्यक्तित्व को प्रकट करता है। यह उच्चकोटि के गद्य साहित्य के योगदान को विशेष महत्त्व दिया गया है।

विश्व साहित्य में बेजोड़

''शक्ति काव्य का शाब्दिक अर्थ होता है, ऐश्वर्य एवं पराक्रम का काव्य। यह ऐश्वर्य एवं पराक्रम स्त्री के शक्ति रूप से ही प्राप्त होता है। इसीलिए राजस्थानी

साहित्य में स्त्री महिमा की अद्भुत अभिव्यक्ति हुई है। जबकि अन्य भाषाओं के साहित्य में स्त्री का चित्रण केवल श्रृंगार की पुतली के रूप में हुआ है। राजस्थानी साहित्य में जैसे पुरुष वैसी ही स्त्रियां भी। सामाजिक मर्यादा की रक्षा में वे पुरुषों से आगे ही रही है। शक्ति काव्य में जिस आदर व श्रद्धा से स्त्री जीवन की अभिव्यक्ति की गई है वह विश्व साहित्य में बेजोड़ है। स्त्री की शक्ति रूप में पूजा मातृ रूप में वन्दना, वीरांगना के रूप में प्रशस्ति, मार्ग निर्देशिका के रूप में अनुसरण, बहिन के रूप में प्रेरणा तथा गृहलक्ष्मी के रूप में स्वागत की अभिव्यक्ति की गई है। अवसर आने पर वह चण्डी का रूप धारण कर जौहर की ज्वाला का वरण कर शक्ति के अजस्र स्रोत का प्रतीक बन जाती थी। मन वचन कर्म से करुणा का विस्तार स्वावलम्बी जीवन, सत्य में आस्था, सहिष्णुता, धैर्य, निडरता, शरणागत, वात्सल्य, दानशीलता, आत्मबलिदान की भावना आदि उच्च आदर्शों के रक्षार्थं अनुपम वीरता के साथ मर मिटने की भावना इन देवियों में निरंतर स्त्री चरित्र की विशेषताओं के रूप में प्रवाहमान है। यही इस काव्य की विशेषताएं बन गई हैं। इन देवी स्वरूप स्त्रियों का उद्देश्य समाज में साहस का संचार कर उसे सद्मार्ग पर चलाना था। इस हेतु इन्होंने पवित्रता, विश्वास एवं धर्म पालन का अखण्ड रूप समाज के सामने अपने आचरण के माध्यम से अभिव्यक्त किया। इसी कारण स्त्री के सबला रूप को इतनी सजगता से अभिव्यक्ति देने में आपका अमर योगदान रहा है।

पशुपालन युग का विकास

समाज की आदिम अवस्था से पशुपालन युग व खेती की तरफ आगे ले जाने का कार्य चारण समाज ने किया है। पशुत्व को लगाम देने(संस्कारित करने व कराने) व चराने का प्रारम्भिक अर्थ धारण करने वाले शब्द चारण(चराने वालों) को ही अपनी पहचान के रूप में अद्यावधि धारण कर रखा है। आज भी चारणों का बहुसंख्यक समाज पशुपालक है पशुओं को पालतू बनाने में इन्होंने गजब का परिचय दिया। बैल को नाथ से, ऊँट को नकेल से, घोड़े को लगाम से, हाथी को अंकुश से,

सिंह को चाबुक से, किसी को पाँव से, किसी को सींग से वश में कर प्रेम से ऐसा पालतू बनाया कि फिर तो ये प्राणी सामाजिक जीवन के अस्तित्व का आधार बन गए। चारण समाज की अधिसंख्य देवियां पशुपालक थी। आदिम संस्कारों का रूढ़ि के स्तर तक पालन करने वाली असुर संस्कृति पशुपालन को किसी भी कीमत पर स्वीकार करने को तैयार नहीं थी। इसीलिए पशुपालक समाज व्यवस्था को तहस नहस करने में उसने कोई कौर कसर नहीं छोड़ी। पशुओं के अपहरण की घटनाओं से इतिहास भरा है। इन लोकपूज्य देवियों ने ही वन, पशु, पक्षियों की रक्षा हेतु बड़े से बड़े राजपुरुषों से भी लोहा लेने में कभी संकोच नहीं किया। ये सभी देवियां सरल, शांत, निराभिमानी, ओजस्विनी, तपस्विनी एवं दीप्तिवान होते हुए भी सत्ता से निर्लिप्त रहीं। भक्ति, शांति एवं विद्या का अवदान उन्हें विरासत में मिला। सामाजिक मर्यादाओं का अनुरक्षण कर इन्होंने समाज को एक व्यवस्था दी। अन्नपूर्णा के रूप में समाज की आकांक्षाओं को तृप्ति दी। अत्याचारी शासकों के अत्याचारों से समाज की रक्षा की। इसीलिए इस शक्ति काव्य परम्परा की समाज में आवश्यकता व लोकप्रियता बनी रही।

मूल मंत्र : पुरुषार्थ एवं लोकहित

अत्याचारी शासन व्यवस्था को उखाड़कर सदाचारी शासन व्यवस्था की स्थापना में इन देवियों की महत्ती भूमिका रही है। अन्याय व अनीति को इन देवियों ने कभी नहीं स्वीकारा। स्वकर्म में पुरुषार्थ ही इन देवियों का मूल मंत्र था। किसी भी व्यक्ति व समाज के अधिकारों की रक्षा के लिए बलवान से बलवान सत्ताधीशों के जुल्मों का व जुल्म करने वालों का इन्होंने अन्त किया। आवश्यकता पड़ने पर आत्मबलिदान देकर भी जुल्म रोके व निरभिमान बने रहकर लोकहित साधा।

मातृ वात्सल्य की प्रतीक इन देवियों ने अपने आचरण से मनुष्य–मनुष्य के बीच भेदभाव को अस्वीकारा एवं संदेश दिया कि मनुष्य में कोई छोटा–बड़ा, छूत–अछूत नहीं है। माता के लिए सभी सन्तानवत समान है इसी कारण करणी देवी

के साथ ही उनके ग्वाले दशरथ मेघवाल की भी पूजा होती है। नागल देवी ने तो दलित दम्पत्ति को अपनी गोद में ही धारण कर रखा है। सर्वप्रथम दलित दम्पत्ति को नारियल चढ़ाया जाता हैं। ''जांनबाई''[9] ने तो दलितों, वंचितों के अधिकार की रक्षार्थ औरस पुत्र तक को त्याग दिया था। जाहल देवी ने लाधवा मेर की मर्यादा की रक्षार्थ अपने ही आत्मीय जनों से संघर्ष किया। ''बोधीबाई''[10] ने नंगे भूखे मातृविहीन बालकों को अपनाकर माता के वात्सल्य का परिचय दिया। धांनबाई ने मरी हुई कुत्तिया के पिल्लों को स्तनपान कराकर पोषण किया। इन देवियों के ऐसे परिचयों से शक्ति काव्य सराबोर है। समता व वात्सल्य के इसी संदेश के कारण यह काव्य आज भी लोकप्रिय है।

अपने सिद्धान्तों की रक्षार्थ आवड़ देवी ने सिन्ध के अत्याचारी शासक ऊमर सूमरा से लोहा लिया व अनेक दैत्यों का दलन किया। खोड़ियार देवी ने वल्लभी के शिलादित्य को सत्ता से उखाड़ा। देवल देवी ने जायल के जींदराव खींची से संघर्ष झेला। करणी देवी ने अत्याचारी कान्हा राठौड़ का वध किया। बैचरा देवी ने पाटण के आक्रान्ता क्रूर सुल्तान को मुर्गों को मारकर खा जाने का मजा चखाया। नागल देवी ने जूनागढ़ में राव माण्डलिक को शासन की मर्यादा खोने पर सत्ता से उखाड़ फेंका। कामेही देवी ने जामनगर के जाम शासक लाखण को समाज विरोधी आचरण के लिए भस्म कर दिया। राजल देवी ने अकबर के लम्पट आचरण को ललकारा व नौरोजा परंपरा से मुक्ति दिलाई। गीगाय देवी ने अजमेर के आक्रान्ताओं से लोहा लिया। चांपल देवी ने जालौर के सुल्तान जब्बल खां की ऊँटनियों को सिन्ध के सिरोही आक्रान्ताओं से छुड़ाकर लाने हेतु बाहरू(आक्रान्ताओं का पीछा करने वाले दल के नेतृत्व) का कार्य किया। चन्दूबाई ने पोकरण के अत्याचारी ठाकुर सालिमसिंह से संघर्ष कर उसे नष्ट किया। राणंबाई ने कोटड़े के ठाकुर राठौड़ कुंवरपाल खोखर से संघर्ष किया। देमां देवी ने गुढ़ा मालानी के भाखरसिंह के साथ संघर्ष किया। सुन्दरबाई व सतबाई ने बोधरा मेर से संघर्ष किया। जैतबाई ने ईडर के राजकुमार कल्याणमल व उसके मामा मानजी महीड़ा के समाज विरोधी व्यवहार

के विरुद्ध संघर्ष का नेतृत्व कर रास्ता दिखाया तथा उसी मानजी महीड़ा की पत्नी व पुत्र को खातू बोरैया से बचाकर शरण दी व कहा कि पिता की नीचता का फल पुत्र को क्यों मिले? पुनसरी देवी ने अनाचारी बाकर खान को खत्म करके उसके अत्याचारों से लोगों को मुक्ति दिलाई। बाईस देवियों ने रोझ(नीलगाय) की रक्षार्थ माधवपुर के राजा मघराजवाजा से संघर्ष किया। सोनबाई ने मांगरोळ दरबार अब्दुल खालिक के शिकार से कुरजा पक्षियों की जलक्रीड़ा करती पूरी डार को ही बचाया। हरियां देवी ने शिव के अत्याचारी हाकिम से, जीवाबाई ने भुज के राव खेंगार से, वानूदेवी ने सींधल(सोढ़ा) राजपूतों से, केसरबाई ने बैणप के चौहान शासक जसवंतसिंह से तथा बैनल देवी ने जूनागढ़ के अत्याचारी शासकों से लोहा उसी प्रकार लिया जिस प्रकार परंपरा से संघर्ष चला आ रहा था। नारी के उदात्त चरित्र को मुखरित करने में आपके साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है।

प्रकृति संरक्षण का महत् संदेश

प्रकृति के निकट के जीवन जीने वाली इन देवियों ने वन पशु एवं पक्षियों के मध्य जीवन व्यतीत कर इन्हें संरक्षण दिया। आज भी राजस्थान में स्थान–स्थान पर इन देवियों द्वारा स्थापित बड़े–बड़े ओरण पशु पक्षियों के स्वच्छन्द विचरण स्थल के रूप में वनस्पति जगत के संरक्षित केन्द्र बने हुए हैं। इस कारण भी ये देवियां व इनसे संबंधित काव्य लोकप्रिय है। व्यावहारिक जीवन में घर के छोटे मोटे कार्य दुहना बिलौना, भोजन बनाना, खिलाना आदि इन देवियों की दिनचर्या के अंग थे। रेशमी वस्त्र व रत्नजड़ित स्वर्णाभूषणों से इन देवियों ने कोई वास्ता न रखकर भेळिया लोवड़ी धाबळा जैसे ऊन के साधारण वस्त्र धारण कर उन्हें असाधारण देवत्व का प्रतीक बना दिया। सात्त्विक जीवन शैली का मूल मंत्र देकर पूरे चारण समाज को ही इन देवियों ने देवी पुत्रों, देवी पुत्रियों का समाज बना दिया। समाज में दृढ़ आस्था व ऐसा विश्वास भर दिया कि यदि समाज में कवि एवं देवियों की निरंतरता जारी रखना चाहते हो तो त्यागमूलक सात्त्विक जीवन व्यवहार अपनाना सीखो। पाँच

पीढ़ियों तक निरंतर दोनों पक्षों(निज परिवार एवं संबंधियों) के सात्त्विक जीवन का परिणाम परिवार में कवि अवतरण के रूप में प्राप्त होता है। सात पीढ़ियों तक निरन्तर दोनों पक्षों(निज परिवार एवं निजी संबंधियों) के सात्त्विक जीवन का परिणाम परिवार में सगत(शक्ति देवी) अवतरण के रूप में प्राप्त होता है। इस धारणा के योगदान से सात्विक जीवन शैली बनने लगी।

शेखावाटी के चारणों के साहित्य का इतिहास : शेखावाटी के यशस्वी चारण

इस साहित्य में सीकर और झुंझुनूं जिलों के चारण साहित्य का इतिहास वर्णित है। इसमें हर गाँव हर ढाणी के चारणों के साहित्य का शाखावार विवरण तैयार किया गया है। इस पुस्तक के प्रारम्भ में चारण परम्परा का विस्तार से विवेचन किया है। इसके बाद शेखावाटी में चारणों की शाखाओं और उनके गाँव के नाम का विस्तृत विवेचन किया है। ''इसके अंतर्गत रोहड़िया बारहठों में बीठू, किसनावत, मकस, जागावत, पल्हावत और हड़वेचों के इतिहास को विस्तार से विवेचित किया है। इसी प्रकार खिड़िया, कविया, नांधू, दधवाडिया, देवल, गूहड, रतनू, सांदू, गाडण, किनिया, सिढायच, मूहड़, लालस, मैहंगु, काछेला, इत्यादि शाखाओं को दिए गए ताम्रपत्र, पट्टा, परवाना आदि के आधार पर प्रमाणित कर उनके इतिहास का वर्णन किया है।''[11] इस पुस्तक के परिशिष्ट में ताम्रपत्र, पट्टा और राज्य अभिलेखागार के चित्र दिए गए हैं जो सामौर जी का अद्वितीय योगदान है।

अद्वितीय राष्ट्र प्रेम

देश के इतिहास को गौरवपूर्ण सार्थकता देने में चारणों का भी योगदान कम नहीं है। चारणों को केवल कलम जीवी कोम के रूप में ही देश में जाना जाता है। यह पुस्तक विद्वानों की इस धारणा को बदलेगी। चारण कलम चलाने में जितने सिद्धहस्त थे, उतने ही तलवार चलाने में भी प्रवीण थे। ''अकेले अलू कविया के पुत्र नरू के वंशजों ने अगली आठ पीढ़ियों में ही अपने परिवार के पचपन योद्धाओं को

युद्ध भूमि में खो दिया।''[12] अलू कविया के बड़े पुत्र किसना के वंशजों का भी युद्ध में प्राणोत्सर्ग नरू के वंशजों से कम नहीं है।

इनके अलावा देवकरण ''बीठू''[13], ''मूलसिंह सांदू''[14], ''देवीदान पाल्हावत''[15], ''पनजी खिड़िया''[16], मेघराज''किशानवत''[17], ''दानजीमहडू''[18], हणूंतसिंह मेहडू, ''महारिख जागावत व सूजा जागावत''[19] आदि सभी इस संघर्षोन्मुखी चेतना से विमुख नहीं थे। सभी संघर्ष की इस ज्वाला में प्रवेश कर कंचन बन कर युद्ध नायक के रूप में सामने आते हैं। इसी कारण शेखावाटी विश्व की वह वीर वरदाइनी भूमि बन गई है, जिस पर वीरों ने राष्ट्र एवं उसकी संस्कृति की रक्षा के लिए हँसते–हँसते प्राणों की बाजी लगाई है। वीरांगनाओं ने प्रेरक शक्ति बनकर अपने आत्मीय जनों पति, पुत्रों व भाइयों को हँसते–हँसते लोक हित के लिए युद्ध भूमि में भेजकर राष्ट्र प्रेम का अद्वितीय परिचय दिया है। दूसरी तरफ चारण योद्धा कवि बंधुओं ने तो सेनापति के साथ कदम से कदम मिला कर रक्त बिन्दुओं के अक्षरों से राष्ट्रीय साहित्य का निर्माण किया है। ओज एवं दर्प से ओतप्रोत इन महान योद्धा कवियों की शेखावाटी के लोगों ने जो आरती उतारी है, उसी से चारण काव्य के एक नए अध्याय का पुण्य मंगलाचरण हुआ है। यह बात देश के लोगों तक पहुँचाने में सामौर जी का योगदान रहा है।

चूरू के चारण साहित्य का इतिहास चूरु मंडल के यशस्वी चारण

चूरू मंडल के यशस्वी चारण नामक कृति में चूरू जिले के चारण साहित्य का इतिहास वर्णित है। इस पुस्तक के प्रारम्भ में चारण परम्परा की विस्तृत जानकारी वर्णित है। चूरू जिले के चारणों के साहित्यकारों का तहसीलवार वर्णन गाँव सहित दिया गया है। इस पुस्तक में चूरू जिले के यशस्वी चारणों का साहित्य, शिक्षा, विज्ञान, शास्त्र आदि क्षेत्रों में प्राप्त विभिन्न उपलब्धियों पर विभिन्न शाखाओं यथा सामौर मेहडू, गाडण, सिंढ़ायच, नांधू, आढ़ा, मीसण, खिड़िया, बीठू, मोखा, चाहड़ौत, आसावत, लखावत, कविया, लालस, दधवाडिया, रतनू, जगट, सूंघा को

विभिन्न शासकों, सामन्तों, राजाओं, जागीरदारों द्वारा प्रदत्त ताम्रपत्र पट्टे, परवाने, फरमान और राज्य अभिलेखागार के आधार पर प्रमाणित इतिहास का इस पुस्तक में वर्णन किया गया है। इस नवीन विषय चूरू मंडल के यशस्वी चारण पर इतिहास का सृजन कर गद्य साहित्य में आपने अपना अमर योगदान दिया है।

चूरू की धरती सरस्वती नदी के प्रवाह क्षेत्र में आती थी। वेदों की ऋचाएं भी इसी धरती पर रची गई हैं। यह क्षेत्र महाभारत काल में कुरु जांगल प्रदेश के नाम से विख्यात रहा है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से कुरु शब्द से ही चूरू शब्द बना है। जांगल का प्रतीक जांगलू नामक गाँव बीकानेर के पास आज भी मौजूद है। चूरू मण्डल का यह क्षेत्र चारणों के लिए भी ऐतिहासिक एवं साहित्यिक महत्त्व वाला रहा है। चूरू मण्डल के चारणों से संबंधित विवरण से अनेक नवीन जानकारियां प्राप्त होती है। राजस्थानी साहित्य का प्राचीन काव्य अचलदास खींची री वचनिका इसी क्षेत्र के दस्सूसर गाँव के शिवदास गाडण द्वारा रची गई थी। इस काव्य की सबसे प्राचीन प्रति भी दस्सूसर गाँव के निकट स्थित पड़िहारा गाँव में लिखी गई थी। आसा बारहठ को क्रोड़ पसाव की एवज में कर्मसिंह द्वारा अपना पुत्र तक भेंट करने की घटना इसी मण्डल में घटित हुई थी और इसी घटना से अभिभूत होकर आसा बारहठ ने अपने जीवन का उत्तरार्द्ध इस मण्डल में व्यतीत किया। भक्त कवि केसवदास गाडण को भी अपने जीवन का उत्तरार्द्ध इसी मण्डल में बिताने का सुयोग मिला था।

शंकर बारहठ को भी सवा क्रोड़ पसाव इसी मण्डल में प्राप्त हुआ था। शंकर बारहठ ने इसी पुरस्कार के बाद इसी धरती को अपनाकर इसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित की।चारण कवियों में सर्वप्रथम कविराजा का खिताब प्राप्त करने वाले हेम सामौर भी इसी मण्डल के थे। सिद्ध अलूनाथ कविया ने भी इसी क्षेत्र को अपने चरणों से कृतार्थ किया था। वे जहाँ रहे उस गाँव की पहचान ही उनके नाम से ज्ञापित हुई तथा वह गाँव अलू कविया री नीमड़ी के रूप में ही प्रसिद्ध हो गया।

अकबर का अंतरंग सभासद लक्खा बारहठ भी इसी धरती के गाँव धीरदेसर को प्राप्त कर यहीं का हो गया। लक्खा के पुत्र भक्तकवि नरहरिदास का विवाह इसी धरती की पुत्री नारायणी देवी(गणेशदास सामौर की पुत्री व कविराजा हेम सामौर की बहिन) के साथ हुआ था। कविराजा करणीदान कविया जैसे महान कवि का भी इसी मण्डल की धरती से अंतरंग संबंध रहा है। वे वर्षों तक चूरू में रहे थे। विदेशी आक्रान्ता कामरान को ललकार कर भागने को मजबूर करने वाली घटना भी इसी मण्डल के साथ जुड़ी हुई है और उस ऐतिहासिक घटना का साक्षी रूप में छंद रचने वाले सूजा बीठू भी इसी क्षेत्र के कवि थे।

''गाडण गौवर्धन जैसे योद्धा कवियों ने भी इसी धरती को यशस्वी बनाया था। दक्षिण के बड़े युद्ध में इनके सत्ताइस घाव लगे थे। मान रतनू ने इसी धरती की प्रतिष्ठा के लिए अपने प्राण न्यौछावर किये थे। लूणकरण कविया ने भी इसी धरती की इज्जत के लिए प्राणोंत्सर्ग किया था।''[20]

अठ्ठारह सौ सत्तावन की क्रांति के समय भी यहाँ के चारणों की भूमिका यशस्वी रही है। अठ्ठारह सौ सत्तावन के क्रांतिवीर जनकवि शंकरदान सामौर की भूमिका तो इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। ''तांत्या टोपे को मुसीबत के वक्त शरण देने वाले पृथ्वीसिंह सामौर भी इसी मण्डल के यशस्वी सपूत थे।''[21] इन्हीं सब जानकारियों को प्राचीन सन्दर्भों से जोड़ा गया है। वेदों पुराणों से लेकर अद्यावधि तक प्राप्त पुस्तकों, पट्टों, परवानों, ताम्र पत्रों एवं साक्षी के छंदों का उपयोग प्रमाण के रूप में पुस्तक में वर्णित प्रसंगों के साथ किया गया है। इसी संदर्भ में गौरव के साथ यह कहा जा सकता है कि देश के वीर योद्धाओं के शौर्य एवं साहस को जागृत व जीवित रखने हेतु इस क्षेत्र के चारणों ने योद्धा एवं कविरूप में समान भाव से योद्धाओं के शौर्य को जीवित रखा व उन वीर गाथाओं को काव्य रूप में प्रस्तुत कर इतिहास की अभूतपूर्व सामग्री समाज को दी। उन्होंने एक नई साहित्यिक एवं जीवन शैली देकर योद्धाओं के स्वतंत्रता संग्राम को इतिहास में अमर कर दिया।

हमलावरों की अजेयता की धाक से निराश समाज को यहाँ के चारणों ने अपने युद्ध कौशल एवं काव्य कौशल के बल से आशावान बनाकर संजीवनी शक्ति प्रदान करने में अभूतपूर्व योगदान प्रदान किया।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के आंदोलन का इतिहास : आऊवा का धरना

इस पुस्तक में विक्रमी संवत् 1643 में आऊवा(मारवाड़ जंक्शन) में हुए धरने का सम्पूर्ण इतिहास वर्णित है। इस पुस्तक में धरने का अर्थ, स्वरूप, आऊवा का धरना, आऊवा धरने पर चंद्रप्रकाश देवल की नई कविताएं, आऊवा धरने पर रचित ऐतिहासिक पुस्तकों का मूल विवरण, राजस्थान एवं गुजरात में हुए धरनों का संक्षिप्त परिचय नाम से विवरण इस पुस्तक में विस्तृत रूप से वर्णित है। इस पुस्तक में राजस्थानी की कविताओं का अनुवाद वर्णित होने से पुस्तक की सरलता सहजता और लोकप्रियता में चार चांद लग गये हैं।

आऊवा का धरना विश्व इतिहास की वह ऐतिहासिक घटना है जिसने लोक के इतिहास में अपनी अमिट छाप छोड़ी है। इस घटना का उल्लेख तो सभी इतिहासकारों ने किया है लेकिन उसे प्रचलन में सूचना देने से ज्यादा महत्त्व नहीं दिया है। इस धरने का सिलसिलेवार विवरण देने के लिए यह पुस्तक तैयार की गई है। इसी संदर्भ में धरना शब्द के अर्थ एवं स्वरूप का विवरण भी प्रस्तुत किया गया है। इस धरने से संबंधित साहित्य भी प्रचुर मात्रा में लिखा गया तथा लिखा जाता रहा है जिसका भी इस पुस्तक में यथा स्थान उपयोग किया गया है। आऊवा धरने पर मिलने वाली सामग्री का विस्तार से विवरण देने का प्रयास किया गया है। यह सामग्री राजस्थान व गुजरात में यत्र तत्र बिखरी पड़ी हैं इसे संकलित कर यहाँ प्रस्तुत किया गया है। इस पर अभी और भी शोध की आवश्यकता है। चार सौ अठ्ठारह वर्ष पूर्व घटित इस घटना को आज भी लोक ने अपने मन से दूर नहीं किया है। यह हमारे समाज के लोक इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना है। इसी दृष्टि से इसे प्रस्तुत भी किया गया है।

आऊवा का धरना विश्व इतिहास की विश्रुत घटना है। इसके संबंध में इतिहास ग्रन्थों में चालू चर्चा अवश्य मिलती है। कहीं फुट नोट के रूप में तो कहीं फुटकर जानकारी के रूप में विवरण मिलता है। अभी तक कोई ऐसी पुस्तक नहीं मिलती जिसमें युग चेतना के सबल संवाहक इस धरना परंपरा की व्यवस्थित जानकारी विवेचन के साथ प्रस्तुत की गई हो। धरना विषयक अब तक सामने आई जानकारियां दो प्रकार की है। प्रथम, धरने से संबंधित रचनाएं एवं स्मारक स्थान पर हस्तलिखित प्रतियों व देवलियों, स्मारकों के रूप में समकालीन व बाद के काव्य प्रेमियों द्वारा संकलित कर सहेजे गए तथा जन साधारण ने उसे लोकमुख पर धारण कर जीवित रखा। द्वितीय, इतिहासकारों ने भी इस आऊवा धरने पर प्रसंग आने पर संक्षिप्त पाद टिप्पण या विवरण दिया है।

चारणों की दृष्टि में धरना कोई सामान्य कर्म नहीं था। इस परंपरा को निरन्तरता देने के लिए चारणों ने काव्य रचे। इन काव्यों से लोगों में वीरता एवं उत्साह का ऐसा संचरण हुआ कि देश एवं देश का इतिहास गौरवान्वित हो गया। लोगों ने अन्याय एवं अत्याचार का न केवल सामना किया अपितु उन अत्याचारियों को धरने के बल धूल भी चटाई। इसके लिए शक्ति आराधना का काव्य भी रचा गया। इसी काव्य ने लोगों को मृत्यु के भय से मुक्त किया। यही इस काव्य की सार्थकता एवं योगदान है। इसीलिए चारणों ने धरना स्थल पर मृत्यु के वरण को श्रेष्ठ कर्म माना। ऐसे मरण को उत्सव व अनुष्ठान का रूप दिया। इसी दर्शन के बल पर पीड़ित, दलित तथा निरुपाय समाज भयमुक्त होकर धरना स्थल पर जूझने की आकांक्षा लेकर बड़ी से बड़ी राजशक्ति से लोहा लेने को तत्पर रहा।

इस पुस्तक का लेखन का योगदान यह है कि लोग जानें कि इतिहास की किसी घटना को कैसे समझा जाए? क्योंकि तथ्य कुछ और होता है, कारण कुछ और होता है व परिणाम कुछ और होता है। घटना के इतिहास होने या नहीं होने से कोई खास फर्क नहीं पड़ता है। आऊवा के धरने की छोटी से छोटी घटना भी

इतिहास की बड़ी से बड़ी घटना से भी बड़ी है। लेकिन इस घटना की ऐतिहासिक व्याख्या तक पहुँच पाना आसान नहीं है। इतिहास घटनाओं के प्रमाण चाहता है। लेकिन प्रमाण इतिहास को खंड–खंड कर देता है, क्योंकि प्रमाण का खंडन किया जा सकता है। आज मोटा राजा तो इतिहास के किसी अंधेरे कोने में अज्ञातवास भोग रहा है, पर आऊवा धरने की घटना से जुड़े साहित्यकारों का बलिदान आज भी जीवित है। इसीलिए वे सब साहित्यकार अभूतपूर्व है जबकि उनका समकालीन सर्वोच्च पदासीन मोटा राजा भूतपूर्व बन कर रह गया है। साहित्य एवं इतिहास के इस सूक्ष्म भेद को समझकर ही हम आऊवा धरने के सही संदेश तक पहुँच सकते हैं। इतिहास के प्रत्येक युग में अनेक घटनाएं घटित होती हैं उनके प्रमाणीकरण की समस्या सबसे जटिल होती है। हम जानते हैं कि केन्द्रीय नेतृत्व द्वारा विवश होकर पद त्याग करने वाला मुख्यमंत्री भी अस्वस्थता या अन्य कारण का बहाना बनाकर पद से हटता है। जबकि वास्तविक अर्थ में तो उसे हटाया जाता है। इस घटना की तथ्यात्मक व्याख्या क्या इतिहास द्वारा हो सकती है?

राजस्थान के सामन्ती इतिहास की यह वह घटना है जिसके कारण ''राजा के आदेश के खिलाफ सत्य के आग्रह की रक्षा हेतु सैंकड़ों सृजनधर्मी बुद्धिजीवियों ने राजधानी से दूर एक छोटे से स्थान आऊवा गाँव में अपना आत्मोत्सर्ग किया व आऊवा को विश्व विख्यात बना दिया।''[22] इसीलिए आऊवा सृजनधर्मियों का तीर्थ स्थल बन गया। तत्कालीन कवियों के सामने सत्ता के दो चरित्र थे। एक चरित्र तो विदेशी आक्रांताओं के आश्रय के सहारे पनप रहा था। दूसरा स्वतंत्र रूप में पनपना चाहता था। कवि किसका साथ दे? तो कवि तो निश्चय ही स्वातंत्र्य चेतना का ही पक्ष लेगा। इसमें जोखिम जानते हुए भी चारण कवियों ने उचित का ही पक्ष लिया तथा इतिहास के कलुश को अपने रक्त के छींटों से धो दिया। अनुचित सत्ताधारी के नाम को ही लोक में अवाच्य बना दिया। ''मोटा राजा के उत्तराधिकारी द्वारा चारण कवियों को पुनः मारवाड़ में लाने की घटना भी इस बात की पुष्टि करती है कि उस लोक निंदा से नया राजा छुटकारा पाना चाहता था।''[23] अब आप समझ गए होंगे

कि आऊवा का धरना कोई साधारण जागीर की बहाली का मामला नहीं था। जागीरें एवं सम्मान मिलने छिनने का अन्तहीन सिलसिला तो कवियों के सामने सदा से ही रहा है। यह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए सृजनधर्मियों द्वारा लड़ा गया स्वतंत्रता की रक्षा का संग्राम था। कविता को जीवित रखने के लिए कलमकार की अस्मिता की रक्षा के लिए किया गया उत्सर्ग था।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सत्ता तीन प्रकार से बाधित करती है। एक सत्ता के खिलाफ कुछ भी न कहने की पाबन्दी से। दूसरा सत्ता के पक्ष में कहने की बाध्यता से। तीसरा सत्ता के पक्ष में न कहो तो सत्ता के विरोधी के पक्ष में भी न कहने की आज्ञा से। सत्ता विरोध का स्वर सर्वप्रथम साहित्यकार ही अभिव्यक्त करता है। वही विपक्ष की भूमिका निभाता है। वही सत्ता को लोक निंदा का पात्र बनाता है। इसी संदर्भ में आज के मीडिया के संकट को समझने की जरुरत है। यह संकट पलायन से हल नहीं हो सकता। इसीलिए इस संकट का सामना उन साहित्यकारों ने वहीं संघर्ष के आह्वान के साथ किया। क्योंकि आऊवा चांपा राठौड़ द्वारा स्थापित ठिकाना था। चांपा योग्य होते हुए भी व्यवस्था के छल से जोधपुर के उत्तराधिकार से वंचित किया गया। चंद्रसेन के साथ भी यही इतिहास दोहराया जा रहा था। चंद्रसेन साहित्यकारों की दृष्टि में योग्य उत्तराधिकारी था जबकि मोटा राजा उदयसिंह उसके पासंग में भी नहीं ठहरता था। धरना आयोजित करने वाले इन्हीं समकालीन साहित्यकारों ने अपनी कविताओं में चंद्रसेन की तुलना महाराणा प्रताप से की है।

इसलिए आऊवा धरने का तात्कालिक कारण कुछ भी बन गया हो। मूल बात तो सत्ताधारी के अवचेतन में वही चंद्रसेन वाला प्रश्न खटक रहा था। इसीलिए यह आऊवा धरने का प्रसंग आज भी उतना ही प्रासंगिक है। आज भी मोटे राजाओं की कोई कमी नहीं है। नाम बदल गए हैं। पद बदल गए हैं। यह बात हर सत्ता

संगठन पर आज भी लागू होती है। इसीलिए आज भी यह प्रसंग साहित्यकारों, चिन्तकों व लोकजन को उद्वेलित करता है।

इस घटना के चार सौ अठ्ठारह वर्ष बाद ये कविताएं देने का औचित्य यह है कि मोटा राजा कविता का विरोधी था। आज का कवि भी यह सवाल उठाता है कि हम किसके पक्ष में खड़े हैं? तथा हमें किसके पक्ष में खड़ा होना चाहिए? क्योंकि यह प्रश्न तो हर युग में रहा है तथा रहेगा। इसी संदर्भ में अक्खा बारहठ के बलिदान के दृष्टान्त को लेना चाहिए। वह कवियों को समझाने के लिए धरना स्थल पर गया था पर समस्या की गंभीरता को समझ खुद मर कर अमर हो गया। जीवित रहता तो अन्य लोगों की तरह लांछित होता। हमारे पूर्वजों की विचार भूमि के रूप में आऊवा का धरना स्थल तो चिह्नित है ही। इस संदर्भ में जब आपने देश के जाने माने साहित्यकार डॉ. चंद्रप्रकाश देवल से चर्चा की तो उन्होंने आऊवा धरने से संबंधित अपनी कविताएं सुनाई। तब आपको पुस्तक के औचित्य की बात तुरन्त समझ में आ गई तथा आपने उनके द्वारा रचित कविताओं को इस पुस्तक में सम्मिलित करने का निर्णय लिया। ''लोक स्मरण एवं पुस्तक से बड़ा कोई स्मारक नहीं होता। स्मारक स्थल पर तो लोक को जाना पड़ता है, जो सबके लिए संभव नहीं है पर लोक मानस तक इस स्मारक का विचार बीज पहुँचाने के लिए यह पुस्तक तैयार की गई है जो लोक की चेतना में सोए बीज को अंकुरित करती है। इसी कारण यह पुस्तक लोक चेतना के प्रतीक आऊवा गाँव एवं आऊवा की भूमि के बलिदानी सृजनधर्मियों एवं उनके सहयोगियों को ही समर्पित की गई है।''[24] आगे अन्य धरनों का भी विवरण देकर आपने सराहनीय योगदान दिया है।

संपादित शक्ति आदोलन का इतिहास प्राचीन राजस्थानी काव्य

डॉ. देव कोठारी राजस्थानी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अकादमी, बीकानेर के अध्यक्ष एवं भंवर सिंह सामौर इस अकादमी के कार्य समिति सदस्य थे। डॉ. कोठारी ने आपसे आग्रह किया कि समग्र रूप से प्राचीन राजस्थानी काव्य की

समस्त धाराओं के संग्रह का सृजन किया जाए एवं उसमें उन विद्वानों की विद्वता का पूर्ण विवरण वर्णित किया जाए। इसी आग्रह को ध्यान में रखते हुए आपने प्राचीन राजस्थानी काव्य नामक पुस्तक का सम्पादन किया। इस पुस्तक में उद्योतन सूरी, शालिभद्र सूरी, प्रज्ञा तिलक सूरी, चन्दबरदाई, ढोला मारू रा दूहा, पदमनाभ, श्रीधर, नरपति नाल्ह, शिवदास गाडण, बीठू सूजा, ईश्वरदास बारहठ, पृथ्वीराज राठौड़, दुरसा आढ़ा, समयसुन्दर, जसनाथ, जांभोजी, मीराबाई, बहादर दाढ़ी, सायांजी झुला, तेजोजी सामौर, कील्ह सामौर, कान्ह बारहठ, मेहा गोदारा, अलुजी कविया, शंकर बारहठ, चांपसिंह सामौर, जिनहर्ष, कुंभकरण सांदू आदि की रचनाएं संकलित हैं। सम्पादकीय में राजस्थानी काव्य का विस्तार से वर्णन करके इस पुस्तक की सौंदर्य वृद्धि में चार चाँद लगा दिये हैं। इस पुस्तक में इन कवियों की प्रामाणिक कृतियों से लोकजन का परिचय आपने करवाया है।

निबंध लेखन में योगदान : चारण बड़ी अमोलक चीज(निबंध संग्रह)

इस पुस्तक में गजानन महतपुरकर का आलेख 'मनीषी समर्थदानः ''राष्ट्रीय पत्रकारिता''[25] नाम से पुस्तक के प्रारम्भ में है। फतेह सिंह मानव का ''राजस्थान का अपूर्व इतिहासकार : बारहठ कृष्णसिंह''[26], लक्ष्मणदान घांघणिया का ''युद्ध और कविता का सिपहसालार : करणीदान कविया''[27], फतेहसिंह मानव का ''सिद्ध भगवद भक्तः अलूनाथ जी कविया''[28], फतेहसिंह मानव का ''संतकवि : ओपाजी आढ़ा''[29], फतेहसिंह मानव का ''राजिया के सोरठे''[30] और उनके रचयिता श्री कृपाराम खिड़िया', बद्रीदान गाडण का ''चारण बड़ी अमोलक चीज''[31], डॉ. आनंद मंगल वाजपेयी का ''स्वाभिमान के प्रतीकः दुरसा जी आढ़ा''[32], बद्रीदान गाडण का ''कल्याणदास गाडण और उनका नागदमन''[33], डॉ. कुसुम माथुर का ''कलम का बांका : बांकीदास आसिया''[34] और प्रोफेसर शंकर सहाय सक्सेना का ''अप्रितम क्रान्तिवीर : जोरावर सिंह बारहठ''[35] नामक आलेख संकलित कर सम्पादित किये गए हैं। इन आलेखों में यह स्पष्ट किया गया है कि चारण साहित्य ही हमें सिखाता

है कि स्वतन्त्रता की रक्षा हेतु हमें लड़ना भी पड़ता है, मरना भी पड़ता है। इस परम्परा का इन कवियों ने जींवत बनाए रखा है।

चारण साहित्य शोध संस्थान अजमेर के अध्यक्ष ओंकारसिंह लखावत ने बताया कि चारण साहित्य शोध संस्थान की स्थापना के पीछे अहम उद्देश्य यह था कि राजस्थानी के प्राचीन विलुप्त और अर्वाचीन साहित्य पर शोध एवं प्रकाशन की व्यवस्था हो। उत्कृष्ट उद्‌बोधनात्मक साहित्य के रचनाकार और उनकी रचनाएं आम पाठक को उपलब्ध हो सके। इस दिशा में संस्थान अपने सीमित साधनों के बावजूद लगातार प्रयत्नशील है।

पिछले वर्ष से संस्थान के फीचर सेवा संभाग द्वारा जारी चारण वार्ता पुस्तकाकार रूप में आपके सामने आए यही इच्छा इस प्रकाशन के पीछे रही है। समय–समय पर राजस्थान के साहित्यकारों द्वारा लिखित आलेखों का यह संग्रह चारण रचनाकारों के जीवन वृत्त एवं उनके कृतित्त्व की सामान्य जानकारी प्रदान करने में सक्षम है। इन आलेखों को पढ़ने के बाद यदि किसी पाठक के मन में किसी रचनाकार को पूरा पढ़ने की लालसा जगे तो संस्थान में उपलब्ध साहित्य उनकी यह ज्ञान पिपासा शांत कर सकेगा और आपका यह प्रयास सफल होगा। सभी प्रकाशनों में सरल भाषा के प्रयोग के पीछे भी यही मंशा रही कि गाँव–गाँव और ढांणी–ढांणी तक ये ग्राह्य हो सके।

भंवर सिंह सामौर द्वारा लिखित लोक पूज्य देवियां इस पुस्तकमाला के प्रथम पुष्प के रूप में और उसके बाद श्री करणी माँ की 600वीं जयन्ती के अवसर पर डॉ. चन्द्रप्रकाश देवल द्वारा संपादित माताजी रा छन्द प्रकाशित की गई। तीसरे पुष्प के रूप में राजस्थानी एवं ब्रजभाषा के विद्वान श्री अक्षयसिंह रत्नू की अक्षय केसरी प्रताप चरित्र राजस्थानी एवं हिन्दी के विद्वान संपादक हृदय श्री फतेहसिंह मानव एवं भंवर सिंह सामौर द्वारा संपादित इस पुस्तकमाला का यह चतुर्थ पुष्प 'चारण बड़ी अमोलक चीज' के साथ संस्थान अपने चौथे स्थापना दिवस 9 जून

1989 को आपके हाथों समर्पित करने किया है। संस्थान आलेखकारों का आभारी है जिन्होंने श्रम साध्य कार्य कर इसे सफल बनाया।

सामौर द्वारा रचित कृति 'चारण बड़ी अमोलक चीज' में आत्मकथात्मक शैली प्रयुक्त हुई है। संत कवि ओपा जी आढ़ा का परिचय आत्मकथात्मक शैली में इस प्रकार प्रस्तुत किया है– ''मध्यकालीन राजस्थान के सबसे ज्यादा महिमा–मण्डित, समलंकृत, और राष्ट्रीय–चेतना के प्रथम कवि दुरसा आढ़ा (विक्रम संवत् 1599 से विक्रम संवत् 1712) से सातवीं पीढ़ी में संत कवि ओपा आढ़ा थे। दुरसा आढ़ा इसी भारमल (दुरसा के ज्येष्ठ पुत्र) चंदाजी, मानजी, अजबसिंह, बगतसिंह, ओपा आढ़ा। इनकी माता का नाम सुवा कुँवर था। प्राकृतिक सौन्दर्य से अभिमंडित और तपोभूमि की तरह विख्यात अर्बुदाँचल में ओपा आढ़ा के सरल जीवन और भक्तिमय काव्य रचना इतनी प्रसिद्ध हो गई थी कि इन्हें एक सिद्ध की श्रेणी में गिना जाता था।

जीवनी लेखन में योगदान : युगान्तरकारी संन्यासी (जीवनी)

स्वामी कृष्णानंद सरस्वती के अभूतपूर्व कार्यों एवं उदात्त चरित्र को मुखरित करने में आपके साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है। यह पुस्तक शासन सत्ता से कोसों दूर रहकर सेवा की महिमा स्थापित करने वाले स्वामी कृष्णानंद सरस्वती के द्वारा मॉरिशस में किये गए कार्यों पर आधारित है। मॉरीशस में कृष्णानन्द स्वामी को महात्मा गाँधी के रूप में उनके किए गए कार्यों के फलस्वरूप याद किया जाता है।

स्वतन्त्रता का महत्त्व

''मॉरीशस प्रवासी भारतीयों का प्रथम देश है जो 12 मार्च 1992 को स्वतंत्र हुआ। उसका प्रशासन तंत्र भारतीयों के हाथों में आया। सन् 1956 से ही स्वामी जी का प्रवासी भारतीयों में काम करने का क्षेत्र बन गया था। मॉरीशस स्वामीजी की कर्मभूमि और प्रयोगभूमि है।''[35] आजाद होने पर मॉरीशस के घर–घर में उस दिन दीपावली मनाई गई। वह दिन अभूतपूर्व था। लोग अपने मित्रों को अपने घर में

आमंत्रित करते थे तथा साथ बैठकर खा–पी रहे थे। ''उस दिन लोगों ने डेढ़ सौ वर्षों की गुलामी के बाद प्रथम बार स्वतन्त्र देश की वायु में साँस लिया था।''[36]

स्वामी कृष्णानंद सरस्वती की महिमा का उल्लेख मॉरीशस में उनकी याद में बनाया गया ढाई एकड़ में बना स्मारक साक्षी है। यह पुस्तक इतनी चर्चित रही कि इसके फ्रेंच, अंग्रेजी ओर क्रियोल में अनुवाद की योजना बनी। परम् पूज्य स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज सरस्वती भारतीय ऋषियों–संतों की परंपरा के प्रतीक थे। सत् रूपी परम तत्व का जिसने साक्षात्कार कर लिया हो, वह संत होता है। संत अपना परिचय प्रकाश में न आने देना ही श्रेयस्कर समझते हैं।

स्वामी कृष्णानन्द जी सरस्वती युगांतरकारी संन्यासी थे। वे आधुनिक विश्व के परम प्रकाशमय ज्योतिर्पिण्ड थे। उनका सुदीर्घ जीवनकाल संपूर्ण बीसवीं शताब्दी को घेरे था। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में एक और जहाँ देशी राजे–रजवाड़े थे, वहीं दूसरी ओर विदेशी शासक अंग्रेज थे। इसी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में देश की जनता ने इन राजाओं, नवाबों व अंग्रेजों को उखाड़ फेंका। इस घटना का केवल भारतीय राजनीति पर ही नहीं बल्कि समूचे भारतीय जीवन, भारतीय समाज, कला, संस्कृति और विचार पद्धति पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

स्वामीजी ने परंपरा की रूढ़ियों को नकार कर मानव सेवा की परंपरा का सूत्रपात कर भारतीय चिंतन एवं क्रिया की धारा में एक युगांतर उपस्थित किया। इस संदर्भ में निःसंकोच कहा जा सकता है कि आधुनिक युग की समग्र स्वाधीन चेतना के गुरू स्वामी कृष्णानंदजी ही हैं। जिन्होंने स्पष्ट कहा कि ''जिसने सेवा धर्म अपना लिया वह सारे बंधनों से मुक्त हो गया। सभी मनुष्य भाई–भाई हैं। सभी मनुष्य एक जाति के हैं। श्रेष्ठता सेवा से होती है, जन्म से नहीं।''[37] स्वामीजी के समय में और उससे पहले भी देश के धार्मिक आंदोलनों के रूप में जनता का जागरण तीन परंपराओं के रूपों में प्रकट हो रहा था। स्वामीजी को उन सबको

आत्मसात् करने का सुयोग मिला। इसी कारण साहसी स्वामीजी हमारी संत परंपरा की अनुपम एवं अद्‌भुत निधि है। उन्हें युगावतारी कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगा।

अपने युग की इन विराट धाराओं को आत्मसात करके भी स्वामीजी किसी एक धारा में बंधे नहीं। युग की आवश्यकता के अनुरूप स्वामीजी ने सर्वसाधारण को सेवा का एक सरल और सीधा मार्ग दिखाया। सेवा के इस सरल एवं सीधे मार्ग को प्रशस्त करने के लिए उन्होंने मनुष्य को मनुष्य की सेवा मनुष्य की हैसियत से ही करने की बात कही तथा धर्मगत, जातिगत, रंगगत, भौगोलिक सीमागत, वंशगत, संस्कारगत, विश्वासगत और शास्त्रगत विषमताओं के जाल को छिन्न–भिन्न करने के लिए अदम्य साहस के साथ संपूर्ण विश्व को अपनी कर्मस्थली बनाकर नई परंपरा डाली।

इस प्रकार स्वामीजी ने संसार भर में अपने सेवाकार्यों द्वारा अपने युग की आचार प्रवणता तथा सामाजिक अन्याय पर लगातार आक्रमण करते हुए ईश्वर की उपासना के लिए मनुष्य की सेवा का संदेश दिया। इस विराट सेवा आंदोलन के सबसे प्रमुख कृती नेता के रूप में उनका सेवाकार्य आज के दिग्भ्रमित व टूटे हुए मनुष्य को जोड़कर एक जीवंत भविष्य देता है।

स्वामीजी प्रेम भाव को जीवन का मूल मंत्र मानते थे। उनकी दृष्टि मे सच्चा धर्म वही है, जो मनुष्य को मनुष्य से प्रेम की सीख दे। इसी सर्वव्यापी प्रेम के कारण मनुष्य मात्र की महत्ता उनकी दृष्टि में बड़ी थी। आज निराशा के गहन कुहासे में स्वामीजी के प्रेम भाव के ये विचार आशा रूपी आलोक की तीव्र और तीखी किरणें हैं, जिनसे घृणा में डूबा संसार आज भी बहुत कुछ प्रेम का प्रकाश पा सकता है। अपनी दार्शनिक चेतना में स्वामीजी परम स्वतंत्र विचारक थे। उनकी मान्यता थी कि व्यक्ति स्वयं अपने संस्कारों एवं योग्यताओं से युक्त विश्व की एक स्वतंत्र इकाई है। परम स्वतंत्र व्यक्तित्त्व की प्रतिष्ठा ही उनके विचार दर्शन का मूल आधार था।

स्वामीजी ने दर्शन की अनुभूति धर्म को प्रदान की तथा धर्म की चेतना जीवन को दी। जिससे दर्शन, धर्म एवं जीवन को मनुष्य की श्रेष्ठतम प्रेरणाओं का प्रतीक बना दिया। स्वामीजी ने दर्शन एवं धर्म की संधि में सेवा का रुप संवारने की चरम प्रतिभा का परिचय दिया। उन्होंने सेवा के सहारे हृदय की प्रवृत्तियों को इंद्रियों के विष से मुक्त करने का मार्ग सुझाया। इस प्रकार स्वामीजी ने दर्शन की नीरसता व धर्म की गंभीरता को सेवा के विश्वास से जोड़कर जीवन का अंग बना दिया।

स्वामीजी का सेवा दर्शन सहज कोटि का है। उन्होंने सेवा का रूप स्थिर करने में बड़ी सतर्कता से काम लिया। अपने युग से समस्त संशयों एवं तर्कों को दूर करने तथा दर्शन और धर्म को जीवन में उतारने का एकमात्र अवलंब वे सेवा को ही मानते थे। सेवा मानवीय गुण है। सेवा व्यक्तितत्त्व को ऊँचाई देनेवाला तत्व है। सेवा के माध्यम से व्यक्ति सबके हृदय के सिंहासन पर आसीन हो सकता है। इसी कारण मंदिरों मठों में भगवान या संतों की पूजा भी सेवा कहलाती है। आज सेवा की भावना का लोप होता जा रहा हैं संबंधों के रेशमी धागे कच्चे सूत की तरह टूटते जा रहे हैं। इसी कारण उन्होंने सेवा के माध्यम से ईश्वर और मनुष्य में एकरुपता स्थापित की। उन्होंने शताब्दियों की विचारधारा को गति प्रदान करते हुए उसमें नवीन प्रेरणाओं की तरंगें उठाई।

इस प्रकार स्वामीजी प्राचीन मान्यताओं एवं युग संभूत व्यावहारिक प्रयोगों के बीच एक सुदृढ़ सेतु के समान थे। युग की प्रवृत्तियों के भीतर उनकी पैठ गहरी थी। उनकी प्रयोग पटुता मानवता के मनोविज्ञान से मेल खाती हुई उन्हें संपूर्ण विश्व में एक अग्रगामी सामाजिक तथाा धार्मिक नियामक के रूप में प्रस्थापित करती है ।

स्वामीजी जिस सेवायोग का प्रतिपादन करते थे, वह सहज सेवायोग है। यह सुगम साध्य एवं आचरण की पवित्रता पर आधारित है। सांसारिक परिस्थितियों में काम, मद, दंभ आदि को त्यागना सरल नहीं है। यह तो उन्हीं संतों द्वारा संभव है, जिन्होंने अपने जीवन को सदैव सत्संग में व्यतीत किया है तथा अभ्यासपूर्वक

पवित्र जीवन जीया है। स्वामीजी इस सत्य एवं मनुष्य स्वभाव से परिचित थे। अतः उन्होंने सेवा का एक सरल मार्ग बनाया, जिस पर हर कोई चल सकता है। वह रास्ता है संतों का संग अर्थात् सत्संग, प्रभु गुणगान अर्थात् भजन, दीन–दुखियों को प्रभु के समान समझना अर्थात् मानव सेवा एवं भगवान पर अगाध विश्वास यानी छलरहित जीवन का रास्ता, जिस पर साधारण व्यक्ति भी सरलता से चल सकता है। यह लोकसेवा परंपरा अपनी संपूर्ण विशेषताओं में स्वामीजी के रचनात्मक कार्यों की अभिव्यक्ति बन गई।

स्वामीजी के सेवायोग से एक नवीन मनुष्य की रचना संभव है। सेवा को जीवन की सभी समस्याओं का अमोघ उपाय मानकर स्वामीजी ने सेवा का सुगम एवं व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया। सेवा को सहज साध्य मानकर लोकसेवा शिक्षण के लिए उन्होंने सेवा शिविरों का संचालन कर अपने युग के संशयग्रस्त लोगों को धर्म के सुदृढ़ पथ पर अग्रसर भी कर दिया। परंपरा एवं प्रयोग का ऐसा सुंदर समन्वय किसी संत में नहीं मिलेगा। क्षण–क्षण में भूत एवं भविष्य बनते वर्तमान मनुष्य के विकास की कल्याणमय जीवन की इतनी सुंदर स्वस्थ संवेदना ही स्वामीजी की न्याय और समता पर आधारित लोकसेवा की प्रेरक शक्ति थी। संक्षेप में स्वामीजी निसर्ग सिद्ध प्रतिभावाले क्रांतिदर्शी संत थे। स्वांतः सुखाय सेवा में तल्लीन होते हुए भी दूसरों को उसमें लीन करने की क्षमता रखते थे। मानव सेवा के विविध आयामों के साथ स्वामीजी के हृदय का रागात्मक सामंजस्य देखकर उनकी सूझ–बूझ तथा अन्तः प्रवेशिनी सूक्ष्म दृष्टि पर विस्मय विमुग्ध कर देने वाले योगदान को उजागर करने हेतु यह पुस्तक रची गई।

हमारे साहित्य निर्माता रावत सारस्वत(जीवनी)

आजादी के बाद राजस्थानी भाषा की मान्यता को लेकर जो आंदोलन हुए हैं, उनमें आंदोलनकारियों में रावत सारस्वत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रावत सारस्वत ने संस्था से अधिक अकेले ने ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया। सारस्वत ने 1953 ई. में

राजस्थान भाषा प्रचार सभा की स्थापना कर राजस्थानी भाषा के महत्त्व पर पुरजोर कार्य किया। उनके इस कार्य में आचार्य रामनिवास हारीत, चंद्रसिंह बिरकाली, रानी लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत, चौधरी कुम्भाराम आर्य ने महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान कर अपनी उपस्थिति दर्ज की। इस पुस्तक में परम्परा एवं व्यक्तित्व, रावत सारस्वत का युग, बहुआयामी व्यक्तित्व, महत्त्व एवं मूल्यांकन अध्यायों में विभाजित कर साहित्यिक शैली में वर्णित किया गया है। इस पुस्तक के परिशिष्ट में रावत सारस्वत के लेखन की बानगी का स्वरूप प्रदान करने वाले आलेख, कविताएं, अनुवादित अंश प्रकाशित हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले शुरू हुआ अखिल भारतीय राजस्थानी सम्मेलन, दिनाजपुर जिस प्रकार ऐतिहासिक गिना जाता है, उसी प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राजस्थानी आंदोलन का रावत सारस्वत द्वारा किया गया कार्य ऐतिहासिक रहा। एक व्यक्ति किस प्रकार संस्था गठित कर काम कर गया, यह देखना हो तो रावत सारस्वत द्वारा किया गया राजस्थानी आंदोलन का काम देखना चाहिए। सन् 1953 में राजस्थान भाषा प्रचार सभा का जयपुर में विधिवत गठन कर काम प्रारंभ किया। उनके सहयोगी बने आचार्य रामनिवास हारीत, चंद्रसिंह बीरकाली, रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत, चौधरी कुम्भाराम आर्य। सारे देश में राजस्थानी समर्थकों की एक टीम बन गई।

राजस्थानी भाषा प्रचार सभा का कार्यालय बनीपार्क में अपने घर में प्रारंभ किया। निरन्तर 24 घण्टे वे सभा के कार्य में लगे रहते। बैठते, सोते एवं चलते वे इसी धुन में लगे रहते थे। उन्होंने राजस्थानी आंदोलन का प्रारम्भ दो दिशाओं में किया। एक तो लोगों का राजस्थानी से जोड़ने के लिए राजस्थानी की परीक्षाएं समस्त देश में शुरू की। इसमें उन्हें खूब सफलता मिली। हजारों लोग परीक्षाओं में सम्मिलित होते। दूसरा राजस्थानी लेखकों की टीम खड़ी करने के लिए राजस्थानी की पत्रिका ''मरुवाणी''[39] प्रारंभ की। मरूवाणी राजस्थानी की वह उल्लेखनीय पत्रिका बनी जिसने राजस्थानी लेखन को नया आयाम दिया। इस कार्य ने ही रावत सारस्वत को ''महावीर प्रसाद द्विवेदी का दर्जा दिलाया।''[40]

रावत सारस्वत राजस्थानी आंदोलन को खड़ा करने के लिए अकेले ही जीवट से जूझते रहे। उन्होंने संपादन व अनुवाद का कार्य भी संभाला। खुद तो लगे ही, अन्य लोगों को भी इस काम में लगाया। आधुनिक राजस्थानी के महल को खड़ा करने के लिए प्राचीन राजस्थानी साहित्य को आधार बनाया। इसके लिए प्राचीन नामी गद्य–पद्य ग्रंथों का संपादन किया। साथ ही देश दुनिया में क्या लिखा जा रहा है, यह बताने के लिए अनुवाद का काम हाथ में लिया। दूसरे लेखकों द्वारा भी अनुवाद करवाए।

उनकी इतिहास की दृष्टि की भी कोई तुलना नहीं। ''मीणा इतिहास उनकी आदिम इतिहास की पीठिका कहा जा सकता है।''[41] शब्द चर्चा में भी उनकी गहरी पैठ थी। पत्रिका मरुभारती में इस संदर्भ में उनके कई आलेख छपे। शब्दों के सांस्कृतिक अर्थों के विश्लेषण में उनका कोई सानी नहीं। रावत सारस्वत अच्छे कवि थे। उन्हें लिखने का समय ही नहीं मिला। कविता की एक पुस्तक ''बखत रै परवाण''[42] अंतिम समय में छपी।

राजस्थानी के ऐसे सपूत रावत सारस्वत उम्र बहुत कम लाए थे। चूरू के इस राजस्थानी सपूत की स्मृति में चूरू के लोगों ने उनके ऋण से उऋण होने के लिए एक आयोजन उनके जन्म दिवस के अवसर पर बाइस जनवरी को करना शुरू किया। चूरू की एक सड़क का नामकरण श्री रावत सारस्वत मार्ग किया गया। उनकी स्मृति में राजस्थानी में काम करने वाले को प्रतिवर्ष सम्मानित करने का निश्चय किया गया। प्रतिवर्ष स्मारिका भी निकाली जाती है।

इसी संदर्भ में श्री बैजनाथजी पंवार चाहते थे कि रावत सारस्वत की स्मृति में कोई स्थाई कार्य हो। इस हेतु राजस्थान के उभरते युवा लेखक दुलाराम सहारण पर दृष्टि गई। एक संस्था गठित कर उसके सचिव का कार्य दुलाराम सहारण को सौंपा गया। भंवर सिंह सामौर अध्यक्ष और बैजनाथ पंवार सरंक्षक बने। अन्य युवा साथियों को दुलाराम सहारण ने अपने साथ लिया। इसी प्रकार बात में से बात

निकलकर उनके नाम से एक पुरस्कार की स्थापना की गई। रावतजी के पुत्र सुधीर सारस्वत आगे आए। इसी क्रम मे स्थाई रूप से उनके नाम से चूरू के विश्वविख्यात गोइन्का परिवार के साहित्यकार श्याम गोइन्का द्वारा स्थापित कमला गोइन्का फाउन्डेशन द्वारा रावत सारस्वत पत्रकारिता पुरस्कार की घोषणा उनका ऐतिहासिक योगदान है। स्मारकों में सबसे बड़ा स्मारक पुस्तक ही होता है। अन्य स्मारक तक तो व्यक्ति को चलकर जाना पड़ता है, पर पुस्तक स्वयं व्यक्ति के हाथों तक पहुँचती है। इसी दृष्टि से रावत सारस्वत पर समग्र रूप से यह पुस्तक तैयार की गई।

'हमारे साहित्य निर्माता : रावत सारस्वत' नामक कृति में आत्मकथात्मक शैली अत्यंत ही मार्मिक रूप में प्रयुक्त हुई है– ''रावत सारस्वत का जन्म 22 जनवरी, 1921 को चूरू में सारस्वत ब्राह्मणों के कुर्विलाव नख में पिताश्री हनुमान प्रसाद सारस्वत के घर माता श्रीमती बनारसी देवी(श्री स्नेहीराम औझा की पुत्री) की कुक्षि से हुआ। अपने आठ भाई–बहनों(चार भाई, चार बहिन) में रावत सारस्वत सबसे बड़े थे। वर्तमान में इस पीढ़ी में कोई भी भाई या बहिन जीवित नहीं हैं।

मीणा जाति का इतिहास

रावत सारस्वत के इतिहास को उठाकर देखते हैं तो हमें यह पता चलता है, कि मीणा जनजाति राजस्थान की गौरवशाली भूमि के सपूत ही नहीं बल्कि इस देश की प्राचीनतम और आदिम जातियों में से एक है। ऐतिहासिक व पुरातात्विक प्रमाण इस बात के साक्षी हैं कि मीणा जनजाति इस देश के मूल निवासी हैं तथा यह एक शासक कौम भी रही है। यह जाति एक बहादुर व स्वच्छन्द प्रकृति की जीवट वाली कौम है जो कभी टूटी नहीं, कभी झुकी नहीं। मीणा जनजाति की प्राचीनता को नकारा नहीं जा सकता। वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, बौद्ध व जैन ग्रन्थ आदि में भी (मत्स्य जाति, आदिम जनजातियों) को किसी न किसी रूप में उल्लेखित किया है।

मीणा शब्द संस्कृत के मीन अर्थात् मछली से आया है मीन से इसकी उत्पत्ति कई अर्थों में महत्त्वपूर्ण है। विष्णु के दशावतारों में मत्स्यावतार सर्वप्रथम है। विष्णु के अवतार जीवन की उत्पत्ति व विकास को दर्शाते हैं और इनमें मत्स्यावतार या मछली सर्वप्रथम जल से जीवन की उत्पत्ति की ओर इंगित करती है, इस प्रकार 'मीणा' जनजाति का 'मीन' से सम्बन्ध इसकी सबसे प्राचीनता का द्योतक हो सकता है। प्रागैतिहासिक शैल चित्रों में मछली का चित्र अंकन मिलता है। हड़प्पा व मोहनजोदड़ो संस्कृति के मृदपात्रों, मुद्राओं पर भी मछली का अंकन मिलता है। सिन्धु लिपि में भी 'मत्स्य' के समान चिह्न मिलता है।

शिवराजपुर से प्राप्त मानवाकृति के सीने पर मछली का अंकन है, जो अपने आप में अद्विितीय है। मीणा जनजाति ने मछली से अपने को समीकृत कब व कैसे किया, यह एक शोध का विषय है। इतिहासकारों द्वारा "8वीं–9वीं शताब्दी तक मीणों का राजनीतिक प्रभुत्व भारतीय स्तर पर भी स्वीकारा है, परन्तु बाद में 11वीं–12वीं सदी में कछवाहों के आगमन से इनका पतन शुरू हुआ और ये विनाश के कगार पर पहुँचने लगे। मीणों के जनपदों–मेवासों को कछवाहों ने समाप्त किया तथा अपना प्रभुत्व स्थापित किया।"

आमेर के राजा भारमल के समय में 16वीं शताब्दी में नाई (नहान) का अन्तिम मीणा राज्य अपने अधीन किया। खोहगंग में चान्दा वंश के मीणा शासन करते थे। यह इतिहास सम्मत है, कि चांदा वंश के मीणों ने महिशमति नगर को त्यागकर चान्दोड़ स्थान में व वहाँ से आकर खोहगंग में राज्य स्थापित किया। यहाँ पर गढ़, कोट, कुएं, छतरियां, तालाब, नक्कार खाना, बावड़ी आदि का निर्माण कराया जो आज भी पुरावंश के रूप में खंडित पड़े हैं। ये मीणा जाति के गौरवशाली अतीत के भग्नावशेष आज भी हमारे पूर्वजों की यादें ताजा कर देते हैं।

इन शासकों की दास्तान बहुत दर्द भरी है, जिसके चारों ओर मीणा इतिहास के पन्ने बिखरे पड़े हैं। खोहगंग के शासक आलण सिंह चांदा मीणा पर धोखे से

दुल्हेराय कच्छावा ने वार कर इनका राज्य संवत् 1010 ई. में अपने अधीन कर लिया व इनके कुटुम्ब के 1444 निहत्थे लोगों की दीपावली के दिन तालाब के किनारे अपने पूर्वजों को तर्पण करते वक्त हत्या कर दी। इस प्रकार मीणों के गणराज्य खोहगंग, मांच, नहाण, गैटोर, झोटवाड़ा व आमेर इनसे चले गये।

मीणा जाति शक्तिशाली योद्धा के रूप में अपने अस्तित्व को बनाये रखने के प्रति सजग एवं सक्रिय रही है, परिणाम स्वरूप संघर्षमय जीवन बिताते रहने के कारण अपने इतिहास को सुरक्षित रखने में असमर्थ रहे। इनके राजकाज, बहादुरी आदि के कारनामों पर आगे के शासकों, इतिहासकारों, साहित्यकारों आदि ने पर्दा डाल दिया तथा इस शूर–वीर व योद्धा जनजाति का इतिहास मात्र किवदन्तियों, अनुश्रुतियां, जागाओं तथा चारण–भाटों की बहियों में ही सिमट कर रह गया। आजकल हम जो इतिहास पढ़ते हैं, वह वास्तव में केवल विजयी जातियों का इतिहास है, जो महलों में बैठकर महलों में रहने वालों के इशारों के अनुसार लिखा गया है। यही कारण है कि उसमें राजस्थान के मीणा जाति के इतिहास को या तो अनदेखा किया गया है या तोड़–मरोड़ कर पेश किया गया है, या उनके इतिहास व सांस्कृतिक धरोहर को भी राजपूतों का ही बना लिया गया।

आज सभी बुद्धिजीवी, राजाओं और युद्धों के राजनीतिक इतिहास के स्थान पर, जन–जन के सांस्कृतिक इतिहास लेखन के महत्त्व और जरूरत को भली–भांति समझ चुके हैं। पारस्परिक इतिहास लेखन में प्रायः लाखों लोगों के राज्य में सिर्फ चंद लोगों के चंद कार्यों को उनकी ही इच्छानुसार उन पर आश्रित कुछ लोगों द्वारा वर्णित किया जाता था। इस इतिहास से प्रायः राजाओं की वंशावली, उनके द्वारा लड़े गये युद्धों व राज्य विस्तार के विषय में ही सूचनाएँ मिलती है। इसके अतिरिक्त तत्कालीन समाज, उनके रहन–सहन, धार्मिक, रीति–रिवाजों, शिक्षा, सामाजिक, आर्थिक स्थित, संस्कृति इत्यादि महत्त्वपूर्ण पक्षों पर अत्यल्प अथवा नहीं के बराबर प्रकाश पड़ता था।

ऐसे ही इतिहास लेखन से आज राजस्थान के इतिहास में यहाँ के प्राचीनतम अर्थात् मूल निवासियों का उल्लेख लगभग नगण्य है। समस्त विद्वान इस विषय पर मतैक्य हैं कि मीणा राजस्थान के प्राचीनतम निवासी ही नहीं बल्कि यहाँ के मूल निवासी भी हैं। वे इसी भूमि के पुत्र हैं परन्तु इस प्राचीनतम जाति के क्रमबद्ध इतिहास लेखन के गंभीर प्रयास अभी तक नहीं हुए हैं और आज जो मीणाओं का थोड़ा बहुत इतिहास उपलब्ध है वह उनकी प्राचीनता को देखते हुए पूर्णतः अपर्याप्त व अधूरा है। इनके अतीत की बहुत सी बातों का अभी उजागर होना बाकी है।

मीणा जाति के इतिहास पर लिखने वाले सभी लेख इस विषय पर एक मत हैं कि मीणा शब्द की उत्पत्ति, मीन अर्थात् मत्स्य या मछली से हुई है। मीणा अपनी उत्पत्ति विष्णु के प्रथम अवतार मत्स्यावार से मानते हैं। जिसकी कथा मत्स्य पुराण में सविस्तार दी गई है। इसके अतिरिक्त वैदिक व अन्य पौराणिक साहित्यों में भी मत्स्य जाति का उल्लेख मिलता है।

महाकाव्य युग तक आते–आते मीणाओं के राजवंश स्थापित हो गये थे। महाभारत काल में यह प्राचीन क्षेत्र, कला व संस्कृति का प्रमुख केन्द्र था। परम्परानुसार वर्तमान बैराठ को सम्राट विराट की राजधानी कहा जाता है। इन्हीं राजा विराट के दरबार में रहकर महाभारत के नायक पाँच पांडवों ने अपने अज्ञातवास के बारह वर्ष बिताये थे।

छठीं सदी ई. पूर्व सम्पूर्ण उत्तर भारत सोलह महाजन पदों में बटा था, जिसमें एक मत्स्य जनपद का वर्णन मिलता है। निश्चय ही इसका नाम इस क्षेत्र में रहने वाली मत्स्य या मीन नाम के मूल निवासियों के कारण पड़ा होगा। हिन्दू, बौद्ध व जैन साहित्य में भी मीन जाति का उल्लेख यत्र–तत्र प्राप्त होता है, परन्तु ये सभी उल्लेख बहुत सीमित जानकारी उपलब्ध कराते हैं। अतः मीणा जनजाति के क्रमबद्ध

इतिहास को जानने, समझने व लिखने के लिए पुरातात्विक साक्ष्यों का अध्ययन व विश्लेषण ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

जहाँ इतिहास मौन है, वहाँ पुरातत्व मुखर हो उठता है। इतिहास का क्षेत्र बहुत सीमित है वहीं पुरातत्व, जो इतिहास के पुनर्निमाण की वैज्ञानिक विधि है, प्राचीन समाजों, जन–सामान्य तथा उनकी विभिन्न गतिविधियों के समस्त प्रमाणों का सूक्ष्म अध्ययन करता है। पुरातत्व सिर्फ विशाल दुर्गों, भव्य राजप्रसादों, देवप्रसादों, खजानों की खोज तक ही सीमित नहीं है। पुरातत्व में खोज होती है, मानव से सम्बद्ध लगभग हर चीज, जैसे–जमीन में समाए भूतकाल के विशाल नगरों, छोटी–बड़ी बस्तियों, वहाँ रहने वाले प्रत्येक जन–जन के घरों, उनके सार्वजनिक स्थलों, पूजा स्थलों, कार्य व व्यापार स्थलों, रहने, खाने बनाने, अनाज भरने के स्थानों, धातु पिघलाने वाली भट्टियों उनके द्वारा उपयोग में लाये गये भोजन का भी अध्ययन कर पुरातत्ववेता प्राचीन समाज का प्रमाणों पर आधारित विस्तृत एक सम्पूर्ण चित्र बनाने का प्रयास करता है।

मीणा जनजाति का प्रमुख क्षेत्र प्राचीन मत्स्य क्षेत्र भी पुरातात्विक दृष्टिकोण से अत्यन्त प्राचीन व महत्वपूर्ण है। यह क्षेत्र पाषाणकाल से ही मानव की कार्यस्थली रहा है। भानगढ़ व बैराट के निकटवर्ती क्षेत्रों में पुरातत्वविदों को प्राप्त पाषाणकालीन हथियार जैसे– हस्तकटार, परशु, खुरचनी इत्यादि मिले हैं। इन खोजों से प्रमाणित होता है कि 'सावणी नदी' के निकटवर्ती क्षेत्रों में पाषाणकालीन मानव विचरण करता होगा। इसी प्रकार बैराठ में भी पाषाणकालीन उपकरण प्राप्त हुए हैं।

हरसोरा, बानसूर व बैराठ के निकट शैलाश्रयों में प्राप्त शैलचित्र इस बात के प्रमाण हैं कि प्रागैतिहासिक काल में मानव इस क्षेत्र में निवास करता था। उनकी ये कलाकृतियां तत्कालीन इतिहास को महत्त्वपूर्ण प्रमाण प्रदान कर सकती हैं। इन चित्रों के वैज्ञानिक अध्ययन से तत्कालीन समाज के विषय में प्रामाणिक जानकारियाँ प्राप्त हो सकती है।

शैलाश्रय आदिमानव की क्रीड़ा स्थली रही है। ये मानव को प्राकृतिक आपदाओं एवं उसकी भविष्यवाणियों से बचने के लिए आश्रय स्थल थे। यहीं पर मानव ने रहकर अपनी कला एवं अभिरुचियों की अभिव्यक्ति चित्रों के माध्यम से की है। ये चित्र सामान्यतया गेरूआ रंग से बने मिलते हैं। यह गेरूआ रंग पहाड़ियों में उपलब्ध हेमेटाइट पत्थर को पीस कर वसा के साथ मिलाकर तैयार किया जाता था। इसके अलावा कुछ शैलाश्रयों में उकेर कर बनाई हुई आकृतियाँ मिलती हैं। ऐसी ही आकृतियाँ हाजीपुर (अलवर) में स्थित शैलाश्रय से प्रकाश में आयी हैं।

आदिमानव की यह कलाकृतियाँ न केवल उनके कलापक्ष को उजागर करती हैं, अपितु उनकी आहार–विहार, दैनिक कार्यकलापों, सामाजिक ढाँचे एवं स्वरूप, अस्त्र–शस्त्र, तत्कालीन जन्तु–वनस्पति एवं भौगोलिक पक्ष को भी दर्शाते हैं। हाजीपुर से प्राप्त शैलाश्रय में अंकित रेखाचित्र अवश्य ही उनका तत्कालीन जातियों से सम्बन्ध दर्शाते हैं। यहाँ पर अंकित मछली की आकृति को सम्भवतः यहाँ की प्राचीन मीणा जाति के लोगों ने अपने निवास स्थलों पर अंकित किया है। वैज्ञानिक एवं मानवशास्त्रीय अध्ययन से यह बात प्रामाणिक हो चुकी है कि मानव अपनी प्राचीन परम्पराओं एवं रीतियों से सहस्र सदियों तक जुड़ा रहता है। यह परम्पराएँ किसी न किसी प्रकार से उस समाज का अंग होती हैं। समय के प्रवाह के साथ उनका मूल स्वरूप थोड़ा बहुत परिवर्तित अवश्य हो जाता है, परन्तु उसकी आत्मा वहीं रहती हैं। इसके अनेक उदाहरण पुरातात्त्विक साक्ष्यों से मिलते हैं। जैसे हड़प्पा से प्राप्त कांसे की नर्तकी की प्रतिमा जो बाँए हाथ में चूड़ियां पहने हैं आज भी कच्छ एवं राजस्थान में जाति विशेष की महिलाएं कुहनी के ऊपर इसी प्रकार की चूड़ियाँ धारण करती हैं।

इसी प्रकार से राजस्थान की आदिम जातियों ने जन–जीवन में मत्स्य (मीन, मछली) की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस क्षेत्र में प्राचीनकाल में मछली का शिकार कर अपनी उदर पूर्ति करते रहे होंगे। इसीलिए

इस आदिमानव ने मछली का अंकन अपने निवास स्थान, उन शैलाश्रयों में किया होगा। वैज्ञानिक पक्ष को देखें तो हम पाते हैं कि आज भी सभी जनजातियां अपने समाज में किसी न किसी से सम्बन्ध स्थापित कर उसे उपयोग के लिए निषिद्ध करती हैं या उसे अपने पूर्वजों से सम्बन्ध स्थापित मानकर उसकी पूजा–अर्चना करती रही हैं। इन तथ्यों के प्रकाश में निश्चय ही यह मीन आकृतियाँ मीणा समाज से सम्बन्धित मानवों की अभिव्यक्ति रही होगी।

आद्यैतिहासिक (प्रोटोहिस्टोरिक) काल में भी इस क्षेत्र में मानव द्वारा की गई विकसित बस्तियाँ थी। गणेश्वर के उत्खनन से प्राप्त प्रमाणों से ज्ञात होता है कि ये ताबें के धातुकर्म से भली–भाँति परिचित थे। यहाँ बड़ी संख्या में तांबे के मछली पकड़ने के कांटे मिले हैं जो इस क्षेत्र में मछली पालन अथवा मछली के शिकार के प्रमाण हैं। यह क्षेत्र आज भी मीणा बाहुल्य क्षेत्र है। आश्चर्य नहीं कि गणेश्वर संस्कृति के निर्माता मीणा जाति के पूर्वज ही रहे होंगे।

राजगढ़ के समीप 'संकट' नामक स्थान से चित्रित धूसर रंग के बर्तन प्राप्त हुए हैं। इन चित्रित धूसर पात्र परम्परा के निर्माताओं को महाभारत कालीन माना जाता है। यह स्पष्टतः ज्ञातव्य है कि महाभारत काल में यह प्रदेश मत्स्य देश के नाम से जाना जाता था। यदि साहित्यिक साक्ष्यों को पुरातत्व विज्ञान की दृष्टि से देखते हैं तो यह प्रामाणित हो जाता है कि यह प्राचीन स्थल 'संकट' महाभारत काल की एक बस्ती था और यह क्षेत्र मत्स्य देश का ही अंग है। इसलिए इन विशिष्ट प्रकार के पात्रों की उपलब्धता उन साहित्यिक मान्यताओं को बल देती है कि प्राचीन मत्स्य देश ही मीणा जनजाति का आदि देश है। इसके अतिरिक्त बाण–गंगा, भीमलता, भीमगदा इत्यादि स्थलों से प्राप्त प्राचीन अवशेष भी महाभारत कालीन प्रतीत होते हैं। वस्तुतः इन स्थानों के नाम भी महाभारत के नायक, पाँच पाण्डवों के नाम पर रखे गये हैं।

छठीं सदी ई. पूर्व में एक सामाजिक एवं धार्मिक जन जागृति का प्रवाह हुआ। उसके फलस्वरूप भारत में जहाँ दूसरा नगरीकरण प्रारम्भ हुआ वहीं पर इसी नगरीय भोग–विलास के परित्याग का उद्‌घोष बुद्ध एवं महावीर ने किया। यह संक्रमण काल था जब एक ओर यहाँ बड़े–बड़े गणराज्यों एवं राजतंत्रों का शासन विस्तृत भू–भागों पर फैला था। यहाँ राज एवं गणराज्य एक–दूसरे की सीमाओं का अतिक्रमण कर अपनी–अपनी सीमाओं का विस्तार कर रहे थे। जिसके कारण छोटी–छोटी जनजातियां एवं जनपदों का गणराज्यों में विलय हो रहा था। वर्तमान उत्तरप्रदेश, हरियाणा एवं राजस्थान की सीमावर्ती भाग, अलवर एवं आस–पास के क्षेत्र मत्स्य जनपद में आते थे। मत्स्यदेश की प्रथम राजधानी उप्पल्लव थी उसके उपरान्त इसकी राजधानी विराट नगर स्थानान्तरित हो गयी थी। आज विराट नगर की पहचान वर्तमान वैराठ से की जाती है। यहाँ के पुरातात्त्विक उत्खनन से प्राप्त सामग्री से इसकी प्रामाणिकता सिद्ध होती है। यहाँ से प्राप्त सम्राट अशोक द्वारा लिखवाया गया शिलालेख एवं प्राप्त स्तूप बौद्ध धर्म के विस्तार की सीमा निर्धारित करते हैं।

इन पुरातात्त्विक साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि कुछ समय के लिए सम्राट अशोक ने यहाँ की पूर्व शासित मीणा जाति को पदोच्युत कर अपना अधिकार कर लिया था।

ईसा के एक सदी पूर्व मत्स्य क्षेत्र में पुनः आदिवासी शासकों ने जनपदों की स्थापना की। यहाँ से प्राप्त जनजातीय सिक्के इसके प्रमाण हैं। कालान्तर में शकों ने इस क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया। कुशाणों के पतन के साथ ही इन जनजातियों ने पुनः अपनी स्वतंत्रता कायम कर ली। इन्होंने युद्धों में कुशाणों व हूणों को पराजित कर दिया। इसके द्वारा प्रचलित 'योद्धानाम' अर्थात् योद्धाजन विजय मुद्रा लेख अंकित यह सिक्के इसी ओर इंगित करते हैं। इनका राज्य लगभग छठवीं

शताब्दी तक चलता रहा। राजगढ़ से प्राप्त 960 ई. का महेन्द्रादित्य परमेश्वर का शिलालेख इस क्षेत्र में गुर्जर प्रतिहारों का शासन होने की ओर इंगित करता है।

पूर्व मध्यकाल में यह क्षेत्र पुनः कुछ समय के लिए मीणा जाति के अधीन रहा होगा। देवली के खण्डहरों से प्राप्त पाषाण शिला जिस पर दो मछली उसके ऊपर मोर नीचे कमल का अंकन है। जे. एस. बक्सी इसको राज्य चिह्न होने की सम्भावना व्यक्त करते हैं। यह ऐतिहासिक सत्य है कि सभी राजवंशों ने अपने राज चिह्न उन्हीं आकृतियों, पशुओं और पक्षियों को रखा है जिनसे उस राजवंश का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कोई न कोई सम्बन्ध रहा है। इसकी प्राप्ति से इस मत को बल मिलता है कि शिला पर अंकित यह मछली आकृतियाँ एवं जिनको सुनियोजित रूप बनाकर अलंकृत किया गया है, निश्चय ही किसी मीणा शासकों द्वारा शासित क्षेत्र का राज्य चिह्न रहा होगा।

ऐतिहासिक दुर्ग भानगढ़ और अजबगढ़ के प्राचीन मंदिरों के गर्भगृह के द्वार पर उकेरी आकृतियों के हाथ में मछली को दिखाया गया है। शिवराजपुर से प्राप्त मानवाकृति के सीन पर 'मछली' का अंकन है। यह आकृतियाँ जिनके साथ मछली का अंकन किया गया है यह किसी ऐसे व्यक्तियों की है जिनका पूर्वकाल से मछली के साथ कोई सम्बन्ध रहा होगा। इसका सम्बन्ध यदि मध्यकाल की सामाजिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि की गहनता से देखा जाए तो इस पर कुछ प्रकाश डाला जा सकता है।

राजस्थानी जनश्रुति में आज तक नौ नाथ और चौरासी सिद्ध हुए हैं। इन सिद्धों में मत्स्येन्द्र नाथ का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। अन्य पंथों एवं धर्मों की भाँति इस नाथ सम्प्रदाय को कभी राजकीय आश्रय तो नहीं प्राप्त हुआ परन्तु इनकी जन–साधारण में काफी मान्यता रही है। इनके गीत आज भी लोक साहित्य में मिलते हैं। इन सिद्धों को अपने निश्चित लक्षण एवं चिह्न विशेष से पहचाना जाता है। मत्स्येन्द्रनाथ के हाथ में या उनके निकट मछली का अंकन किया

जाता है। सम्भव है कि भानगढ़, अजबगढ़, शिवराजपुर से प्राप्त पुरुष आकृतियाँ जिनके साथ मछली का अंकन दिखाया गया है, वह आकृतियाँ मत्स्येन्द्रनाथ की हो। यह मत्स्येन्द्रनाथ वास्तव में जिस जाति के रहे होंगे उसका सम्बन्ध 'मछली' से रहा होगा, जिसको उनके लक्षण के रूप में दर्शाया गया है।

उपर्युक्त तथ्यों में साम्य के आधार पर अधिक बल इसलिए मिलता है कि वर्तमान में अलवर नाथों का प्राचीन केन्द्र रहा है। यहीं पर भर्तृहरी का प्राचीन मंदिर बना है। यह भर्तृहरी गोरखनाथ के शिष्य थे। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यहाँ से प्राप्त आकृतियाँ एवं कला वस्तुएँ निश्चित ही मछली से सम्बन्धित जाति से अपनी साम्यता रखती है जो सम्भवतः यहाँ की मीणा जाति ही रही होगी।

अंततः प्रश्न यह उठता है कि मीणा जनजाति ने मछली से अपने को सर्वप्रथम स्वीकृत कब और कैसे किया। इस दिशा में नवीन खोज मीणाओं के इतिहास ओर प्राचीनता को सिद्ध करने में महत्त्वपूर्ण साबित होगी। विभिन्न पुरातात्त्विक उत्खननों के पश्चात् यह देखा गया है कि परम्पराएँ, रीति–रिवाज व उपयोग की वस्तुएँ हजारों–हजारों साल भी बिना परिवर्तन के जस की तस निरन्तर चलती रही है। अतः मत्स्य क्षेत्र के किसी अतिप्राचीन स्थल से प्राप्त पुरावंशों का वर्तमान मीणा जनजाति की परम्पराओं से तुलनात्मक अध्ययन उनकी प्राचीनता और इस क्षेत्र में उनकी उत्पत्ति को निर्विवाद सिद्ध कर सकता है। वर्तमान में मीणा जनजाति द्वारा प्रयुक्त विभिन्न चिह्नों, रीति–रिवाजों इत्यादि का ज्ञात तिथि वाले पुराशेषों से तुलनात्मक अध्ययन उनकी प्राचीनता को सिद्ध करने में सफल होगा। राजस्थान में विगत वर्षों में हुए पुरातात्त्विक अन्वेषण एवं उत्खनन द्वारा प्रकाश में आये पुरास्थलों यथा–विराट नगर, गणेश्वर जोधपुरा, सोनारी का घाट, नोही, आहड़, बालाथल, गिलुण्ड, लाछुड़ा, ओझियाना आदि से प्राप्त पुरातात्त्विक प्रमाणों से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि यह जनजाति अपने प्रारम्भिक काल में शैलाश्रयों, घास–फूस से बनी झोपड़ियों तथा पत्थरों एवं मिट्टी की बनी कच्ची ईंटों से निर्मित

मकानों में रहती थी। ओझियाना उत्खनन से प्रकाश में आये प्रमाणों से स्पष्ट है कि ये लोग अपने घरों की दीवारों पर गोबर व मिट्टी के मिश्रण का लेप करके उन पर विभिन्न आकृतियों का चित्रण किया करते थे।

''मीणा जाति वीर योद्धा होने के साथ–साथ कृषक भी थे। उत्खनन से प्राप्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि ये लोग मुख्यतः ज्वार, बाजरा, मक्का, गेहूँ, जौ, ग्वार, मटर, सरसों व धान आदि की खेती करते थे।

कृषि के साथ–साथ ये लोग पशुपालन भी करते थे। यह जानकारी हमें ओझियाना उत्खनन में काफी मात्रा में उपलब्ध हुई, सांड़, गाय, भेड़,–बकरी, बैल, भैंस आदि की मिली हड्डियों व मृण आकृतियों से होती हैं। इन हड्डियां का Analysis डेक्कन कालेज Research institute, Pune के Dr. P.P. Goglekar द्वारा दी गयी रिपोर्ट से पुष्टिकरण होता है।''[18]

उत्खनन में मिले मिट्टी के बर्तनों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ये लोग संभवतः लाल, काले मृदुभाण्ड, चित्रित धूसर मृदुभाण्ड (पेन्टेग्रेवेयर) प्रयोग में लाते थे, इनकी आकृतियाँ छोटे मुँह की घड़ानुमा सुराही, कटोरे, तश्तरियाँ, लोटे, हांडियाँ आदि प्रमुख हैं। उत्खनन में पत्थर की ओखली, सिलबट्टे आदि भी मिले हैं। जिससे ज्ञात होता है कि यह जनजाति अनाज को कूट–पीसकर प्रयोग में लाती थी उत्खनन में मिले चूल्हें, भट्टियाँ और उनसे मिली जुली हुई हड्डियों से ज्ञात होता है कि ये लोग मांस को आग पर भून कर एवं पका कर खाते थे।

इसके अतिरिक्त उत्खनन से प्राप्त अस्त्र–शस्त्रों में मुख्यतः तीर कमान, गोले, फरसे, भाला, कुल्हाड़ी, गंडासा, धारिया पत्थर के उपकरण आदि भी प्राप्त हुए हैं जो इस बात की पुष्टि करते हैं कि यहाँ की जनजाति के लोग इन अस्त्र–शस्त्रों का प्रयोग युद्ध व शिकार करने में करते थे।

''पुरातत्वविद् डॉ. एच. डी. सांकलिया ने आधुनिक अन्वेषण व शोध द्वारा 'साइन्स टुडे' नामक पत्रिका में प्रकाशित अपने लेख में मीणा जाति (द्रविड़–प्रजाति) माना है, तथा सिन्धु घाटी की सभ्यता के पतन के बाद ये द्रविड–प्रजाति दक्षिण में चले गये। पुरावशेषों पर चित्रित व अंकित जानवरों के चिह्न इनके संबंध सूचक माने जाते हैं।''[19]

पुरातत्ववेता रेवखेड फादर हेरास ने 'जनरल ऑफ द काशी हिन्दू विश्वविद्यालय 1937 ई. में लिखा है कि ''मोहनजोदड़ो से मीन (मछली) चिह्न से अंकित जो मुद्राएं प्राप्त हुई हैं, उससे इस बात की पुष्टि होती है कि मीणा जनजाति आर्यों से पहले ही इस देश में रहने वाले मीनगण चिह्न धारी लोगों की सन्ताने हैं।'

''करौली में यादवों का शासन प्राचीन काल से चला आ रहा है पर इस क्षेत्र के मीणे सदैव प्रबल रहे हैं। मीणों के कई विशिष्ट गौत्र करौली के आस–पास पाये जाते हैं। 'झिर' गाँव के झिरवाल मीणे उनमें एक हैं। करौली के राजा गोपाल पाल जो अकबर के समकालीन थे, जिन्होंने मीणों का दमन किया और करौली शहर की रक्षा के लिये बाहर पनाह बनाई।''[21]

मीणा इतिहास के लेखक रावत सारस्वत के अनुसार मीणा लोग आर्यों से पहले ही भारत में बसे हुए थे व इनकी संस्कृति व सभ्यता काफी बढ़ी–चढ़ी थी। ये अरावली पर्वत श्रृंखला में बसे थे व दुर्गों का उपयोग करते थे, जहाँ इनके स्रोत आज भी हैं।

'ओझियाना' उत्खनन से फेयांस और कार्नेलियन के मनके एवं मिट्टी के केक प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार के मनके एवं केक हड़प्पा सभ्यता के पुरास्थलों से प्राप्त मनकों एवं केक से साम्य रखते हैं। यद्यपि आहड़ सभ्यता के लोग हड़प्पा से भिन्न अरावली पर्वत घाटी के मूल निवासी थे, परन्तु प्राप्त उपकरणों से ज्ञात होता

है कि आहड़ सभ्यता के लोगों के साथ दूर दराज का संबंध अवश्य था। ये उपकरण यहाँ के मूल निवासियों की प्राचीनता के सूचक हैं।

ओझियाना उत्खनन में मिले इन उपकरणों व मृदुपात्रों के आकार प्रकार के साम्य को नजर में रखते हुए क्या यह कहा जा सकता है कि सिन्धु सभ्यता के लोग अहाड़ियन्स के ही पूर्वज रहे होंगे?

मत्स्य क्षेत्र में स्थित पुरातात्त्विक स्मारकों में प्रमुख रूप से हर्षमाता मंदिर आभानेरी, नीलकण्ठ–महादेव मंदिर, भानगढ़ व अजबगढ़, रणथम्भौर, चित्तौड़ के स्मारक व हर्षनाथ शिव मंदिर व भैरव मंदिर, सीकर की अधिकांश प्रतिमाओं में लोकवाद्यों का चित्रण मिलता हैं। जिनमें ढ़ोलक, खंजीरी, चिमटा, झाँझ–मंजीरा, अलगोजा, खरताल व बंसी प्रमुख हैं। ये लोकवाद्य आज भी यहाँ मीणा जाति द्वारा प्रयोग में लाये जाते हैं। प्राचीनता को देखते हुए उपर्युक्त ऐतिहासिक व पुरातात्त्विक प्रमाण बहुत सीमित जानकारी उपलब्ध कराते हैं। इनके अनसुलझे एवं अज्ञात पक्ष को उजागर करने के लिए यहाँ के असंख्य बिखरे ऐतिहासिक व पुरातात्त्विक साक्ष्यों को एक धागे में पिरोकर एक नवीन पहचान देने की आवश्यकता हैं। यहाँ की प्राचीनतम मीणा जनजाति पर अभी तक बहुत ही कम कार्य किया गया है। इस जाति के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व राजनीतिक पहलुओं का व्यवस्थित शोध इनसे जुड़े पुरा स्मारकों का अध्ययन पुरास्थलों का सुव्यवस्थित ढ़ंग से उत्खनन प्राप्त पुरातात्त्विक साक्ष्यों का अध्ययन व विश्लेषण मीणा जनजाति के गौरवशाली इतिहास को उजागर व प्रकाशित करने में सफल सिद्ध होगा, क्योंकि हमारे समाज से जुड़ी मीणा विरासत पुरातात्त्विक अतीत के अवशेष उनकी जीवन्त कहानी है। जिसमें उनके अतीत की धड़कनें हैं।'' पुरातत्त्व के आधार पर लिखित इतिहास यथार्थ को वाणी देकर आपने विशिष्ठ अजर, अमर योगदान प्रदान किया है।

राजस्थानी भाषा साहित्य में योगदान

शंकरदान सामौर(जीवनी)

'शेखावाटी के यशस्वी चारण' में सामौर चारणों की महत्ती भूमिका का उल्लेख करते हैं कि जब समाज के संघर्षी सूर वीरों को समाज भूल जाता है तो उसकी पराकाष्ठा की यशस्वी बातें स्मरण कराकर चारण ही उसे समाज में स्मरणीय बनाते हैं। इसकी बानगी सामौर की काव्यात्मक शैली–

''आखै मान सुणो अधपतियाँ, क्षत्रियाँ कोई न करज्यौ खीज।
वरदायक बहता मद वारण, चारण बड़ी अमोलक चीज।''[37]
''बार बार रसना रटै, दस दिस ना दातार।
मो त्रस्ना तोसूं मिटै, किसना राजकंवार।।''[38]

इस पुस्तक में शंकरदान सामौर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का वर्णन है। इस पुस्तक में परम्परा और जीवन चरित, राज और समाज, रचनाएं, युगबोध, महिमावान जनकवि के नाम से शंकरदान सामौर के कृतित्व एवं व्यक्तित्व का विवेचन किया गया है। परिशिष्ट में कविताओं की बानगी ओर उनके सन्दर्भ दिये गए हैं। यह पुस्तक सम्पूर्ण भारत में चर्चा का विषय रही। देश के इतिहास में वीरता और बलिदान हेतु राजस्थान भारत में ही नहीं बल्कि विश्व में अपनी अद्भुत मिशाल रखता है। राजस्थान की धरती का कण–कण वीरता के रंग में रंगा हुआ है। राजस्थान की धरती पर बना झोपड़ा भी देश भक्तों की यादगार का गर्व धारण किए हुए मिलता है। आपके दादाजी चतरदान जी सामौर बचपन में हमें एक दोहा जो शंकर दान सामौर द्वारा रचित था, सुनाते थे–

''थिन झुंपड़ियां रा धणी, भुज थां भारथ भार।

हो थेही इण मुलक रा, सांचकला सिणगार।।''

इसी दोहे से प्रेरित होकर भंवर सिंह सामौर ने 'शंकरदान सामौर' नामक कृति की रचना की। जब राजस्थान के संदर्भ में साहित्य संस्कृति और इतिहास पर नजर डालते हैं, तो समझ में आता है कि लोक पूज्य चारण देविया और कवियों की अगवानी में ही देश रक्षा का युद्ध दानव, असुर, यवन, शक, हूण, अरबी, पठान, मुगलों आदि के खिलाफ शुरू हुआ युद्ध अंग्रेजों के शासन काल में भी जारी रहा। इस प्रकार स्पष्ट है कि चारणों ने यहाँ हमेशा ही परदेशी हमलावरों के खिलाफ मुकाबले की जोत को जलाए रखा। इस बात के साक्षी झंवर और साका है। हजारों वर्षों से इस धरती के पुत्र और पुत्रियों ने चारण के बिड़दाने से देश की रक्षा के लिए बलिदान करने की होड़ सी लगाए रखी है। गाँव–गाँव और ढाणी–ढाणी में झुझारू वीरों के त्याग और बलिदान की यश गाथाएं, जीवित समाधी, निशान रूप सहित मंदिर, देवल और कविताएं इस बात की साक्षी है।

चारण बलिदान परम्परा की इसी जोत ज्वाला के प्रतीक स्वतन्त्रता के निर्भीक दीवाने शक्ति पुत्र शंकरदान सामौर का देश को आजाद कराने में बहुत बड़ा योगदान रहा है। शंकरदान सामौर का जन्म छोटे से गाँव बोबासर (सुजानगढ़) में हुआ। शंकरदान सामौर ने अपनी कृषि कार्य में तल्लीनता के बल इतना बड़ा कार्य कर दिखाया कि वे स्वतन्त्रता संग्राम की लड़ाई में प्रथम साके की अगुवानी करने के साक्षी बने। आज शंकर दान सामौर को विभिन्न पर्वों व त्योहारों पर गीतों में भी गाया जाता हैं। इस स्वतन्त्रता के निर्भीक, दीवाने, शक्ति पुत्र, अमर पात्र पर पुस्तक रचना आपका स्तुत्य योगदान सिद्ध होता है।

मरण–त्यूंहार

सन् 1965 में पाकिस्तान ने भारत पर हमला किया। युद्ध के नायक थे प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री। लाहौर तक तिरंगा फहरा दिया गया। इस अवसर पर युद्ध की कविताओं का संकलन जीवन कविया के साथ मिलकर भंवर सिंह सामौर ने तैयार किया। युद्ध और सृजन ऐसा प्रतीत होता है, मानों दोनों परस्पर

विरोधी हैं। युद्ध अपनी सम्पूर्ण विध्वंसात्मक विभीषिका को लिए सृजन के प्रतिरोध में खड़ा हुआ है। शांति के क्षणों में किये गये साहित्य सृजन में शास्त्रीय मानदण्डों की ओर बढ़ने का यत्न तथा सौन्दर्य एवं कलागत पूर्णता की प्रवृत्ति लक्षित होती है। इसके ठीक विपरीत युद्ध कालीन सृजन में उत्तेजन सशक्त भाव प्रवाह होता है और मनोबल को निरन्तर ऊँचे धरातल पर रखने की क्षमता तथा विरोधी तत्त्वों के ध्वंसावशेषों पर नव्य सृजन का मुक्त उद्घोष। युद्ध मानव जीवन में आद्यन्त एक प्रश्न चिह्न के रूप में ही उपस्थित हुआ है। चिन्तन के शैशव से ही मानव मनीषी इस समस्या पर अपने विचार अभिव्यक्त करते रहे हैं। दार्शनिकों ने शुष्क सैद्धान्तिक रूप में ही परीक्षण किया तो समाज सुधारक ने इसे अभिशाप या कभी वैमनस्य को तिरोहित करने के लिए वरदान कहकर छोड़ दिया। परन्तु कवि जो जन–मन का प्रतिनिधि होता है, जिसके कण्ठ में युग वाणी प्राप्त कर मुखरित हो उठता है, मानव जीवन के सौख्य तथा शान्ति के क्षणों को कम्पित कर विनष्ट कर देने वाले युद्ध के विषय पर मनन कर अपनी सशक्त भावधारा को काव्य के कलेवर में व्यक्त करता है। प्रत्येक देश में कवि या कलाकार वहाँ के बुद्धिजीवी वर्ग में गिना जाता है अतः युद्ध की संकटापन्न घड़ियों में उसका दायित्व सीमा पर जूझने वाले सैनिक से कम नहीं होता। वह देश के आन्तरिक मोर्चे पर जन–मन की शक्ति को प्रेरित कर त्याग देशप्रेम, वीरत्व प्रभृति उदात्त भावनाओं को सजग रखता है। पिछले दिनों पश्चिमी सीमान्त पर शत्रु ने हमारे अस्तित्व को ललकारते हुए युद्ध की घोषणा की। इस पर प्रतिक्रिया स्वरूप सम्पूर्ण देश सभी पारस्परिक मतभेदों को विस्मृत कर चुनौती का प्रत्युत्तर देने के लिए हुंकार उठा। युद्ध को पुनीत पर्व के रूप में देखने वाले राजस्थान का साहित्यकार युद्ध की ललकार को सुन कर प्रत्युत्तर दिये बिना निश्चेष्ट कैसे बना रहता? उसकी प्रेरक, ओजस्विनी वाणी वीरता एवं शौर्य के अभिनन्दन हेतु तत्पर हुई। भारतीय सेना ने आक्रांता के अदम्य माने जाने वाले पैटन टैंकों व साईबर जैट विमानों को मिट्टी के खिलौनों की भांति ध्वस्त कर वीरता के इतिहास में स्वर्णपृष्ठ लिखा। अद्भुत था सूरमाओं का रण कौशल। विजय–वरण के साथ ही भारतवर्ष के लम्बे और विविधता भरे इतिहास में एक बहुत गौरवान्वित

अध्याय की वृद्धि हुई है। इन परिस्थितियों में साहित्यकार का दायित्व और भी बढ़ गया था। भारत शांति का उपासक रहा है, परन्तु आत्मरक्षार्थ स्वाधीनता तथा सिद्धान्तों के अस्तित्व की अक्षुण्णता के लिए किये जाने वाले युद्ध में भारतीय जन मानस को आदर्शों के प्रति जागरुक रखना भारतीय साहित्यकारों का ही कर्तव्य था। वे साहित्य के माध्यम से देश को नई प्रेरणा देकर राष्ट्र के प्रति गौरव भावना के प्रसार से जन मन तथा सीमा पर खाई में जूझने वाले सैनिकों को नई दृष्टि प्रदान कर मूल्यवान कार्य कर सकते हैं। युद्ध की घड़ियों में सच्चे कलाकार, साहित्यकार और बुद्धिजीवी का कर्तव्य है कि वह मनोबल को ऊँचा रखने के साथ ही उदात्त भावनाओं, त्याग, शौर्य, वीरत्व को जागृत करे। यदि साहित्यकार अपने इस दायित्व को पूरा करने में यत्नशील रहता है तो उसका श्रम एवं योगदान स्तुत्य और अभिनन्दनीय है।

संस्कृति री सनातन दीठ

इस पुस्तक में संस्कृति के महत्त्व एवं समाज में उसके योगदान को रेखांकित किया गया है। संस्कृति की सनातन दीठ ही व्यक्ति और उसके जीवन को वर्तमान, भूत और भविष्य को एक साथ जीवित रखने में सहायक है। संस्कृति ही मानव जीवन का सांस्कृतिक आइना है जो उसका मार्ग प्रशस्त करती है। सनातन की दीठ के दो अर्थ है, प्रथम वर्तमान में जीवित रहते हुए अतीत से जुड़कर भविष्य के सुनहरे सपनों को उत्साह के साथ संजोये रखना तथा प्रकृति के साथ उत्साहित जीवन व्यतीत करना। दूसरा संस्कृति ही मनुष्य और उसके समाज व देश का आधार स्तम्भ होती है। संस्कृति की आधारशिला पर ही मनुष्य आकाश की भांति विस्तार पाता है। अपना मान–सम्मान, कीर्ति यश प्राप्त करता है। संस्कृति की सनातन दीठ के कारण ही मनुष्य अपनी सनातन परम्परा से जुड़ा रहता है। संस्कृति का अपना कोई आकार नहीं होता है, वह तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। सांस्कृतिक परम्परा की उत्पत्ति का रहस्योद्घाटन करना ही आपका उद्देश्य है।

लोक नीति काव्य

लोकतान्त्रिक व्यवस्था में लोक को साक्षर करने के लिए लोक साहित्य का महत्त्व स्वयं सिद्ध है। लोक साहित्य लोगों का पाठ्यक्रम होता है। इसी के सहारे लोक जीवन अपनी मंजिल की और बढ़ता है। जहाँ कहीं भी बाधा आती है, वहाँ यह लोक साहित्य अंधेरे में प्रकाश की किरण के समान मार्ग दिखाता है। इस काव्य में चूरू मण्डल के लोकनीतिकारों का काव्य विशेष रुप से संकलित किया गया है। साथ ही इस जनपद में लोक मुख पर अवस्थित आस पास के जनपदों का लोक साहित्य भी संकलित किया गया है। खासतौर पर सीकर जनपद का लोक साहित्य संकलित किया गया है। सीकर जनपद के लोकप्रिय जनकवि कृपाराम खिड़िया के सोरठों को इस संकलन में सम्मिलित किया है। साहित्य से जुड़कर कृपाराम खिड़िया का सेवक राजिया अमर हो गया। राजिया को सम्बोधित इन सोरठों के बाद राजस्थानी में संबोधन काव्य की एक निराली परम्परा चली जो आज भी अनवरत है। इस संकलन को पुस्तक रुप में संग्रहित करते समय यह ध्यान रखा गया कि महात्मा गाँधी पुस्तकालयों के माध्यम से यह लोगों के हाथों में जाएगा। इसलिए सरल राजस्थानी भाषा के लोक शिक्षण से जुड़े लोक प्रचलित काव्य को इसमें स्थान देकर आपने एक अनूठा योगदान प्रदान किया है।

साहित्येत्तर कार्य

लोक भारती भवन बोबासर, चूरू के माध्यम से भंवर सिंह सामौर ने लोकहित में अनेकानेक योगदान दिए हैं। आपने पुस्तकालय आंदोलन चलाया, कोई भूखा नहीं सोये, अशिक्षित नहीं रहे, समाज सेवा शिविरों की शुरूवात की। इन कार्यों की राजस्थान सरकार ने प्रशंसा की और इसका विस्तार सम्पूर्ण राजस्थान में किया। राजस्थानी लोक वाचिक परम्परा के संरक्षण हेतु आपने राष्ट्रीय साहित्य अकादमी नई दिल्ली और रूपायन संस्थान बोरून्दा के सहयोग से 3 मार्च से 7 मार्च 2002 में एक राष्ट्रीय कार्यशाला का आयोजन लोक भारती भवन बोबासर में किया। इस

कार्यशाला में 21 घण्टे की सीडी सैट और लगभग डेढ़ घण्टे की एक फिल्म भी बनाई गई। जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर के इलेक्ट्रॉनिक मीडिया रिसर्च सेन्टर और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के सहयोग से लोक भारती भवन बोबासर के नाम पर परम्परा की 'जीवन्त विरासत का प्रतीक' नाम से एक डोक्यूमेन्ट्री फिल्म भी बनवाई। यह फिल्म संसार भर में चर्चित रही। लोक भारती भवन बोबासर के माध्यम से आपने राजस्थान और गुजरात के लगभग 50 गाँव और शहरों में पुस्तकालय स्थापना के लिए पुस्तकों के सैट वितरित किये हैं। आपने राजस्थानी रसधार के नाम से दो खण्डों में राजस्थानी दोहे सम्पादित किए हैं। एक पुस्तक दूहा कथा कोश नाम से सम्पादित की है।

अनुवाद

सामौर ने भर्तृहरि के श्रृंगार शतक का राजस्थानी भाषा में सिणगार सतक नाम से अनुवाद किया है। गुजरात के सुप्रसिद्ध गुजराती कवि जयन्त पाठक की कविता की पुस्तक 'अनुनय' का राजस्थानी भाषा में 'अरज' नाम से अनुवाद किया है। गुजराती कवि जगदीश जोशी की पुस्तक 'वमल नां वन' का राजस्थानी में 'वमल रा वन' नाम से अनुवाद कर राजस्थानी कवियों में अपनी ख्याति अर्जित की। आपका राजस्थानी निबन्धों का संकलन राजस्थानी संस्कृति री सनातन दीठ में राजस्थानी संस्कृति, संस्कृति को मीडिया की चुनौती, राजस्थानी लोग कलाएं एवं लोक संगीत राजस्थानी साहित्य की सांस्कृतिक विरासत, राजस्थानी संस्कृति की लोक चेतना, छन्दों की प्रासंगिकता और वर्षा तुम्हारे कितने नाम आदि निबंध संकलित हैं।

आपके हिन्दी साहित्य में निबंधों का संकलन 'राजस्थानी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना' नाम से प्रकाशनाधीन है। इस पुस्तक में राजस्थानी वात साहित्य, राजस्थानी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना, गोगाजी एवं उनकी लोकगाथा, राजस्थानी वात साहित्य में कथानक रूढ़िया, राजस्थानी साहित्य का प्रवृत्यात्मक मूल्यांकन, राजस्थानी साहित्य में लोक चेतना, राजस्थानी वात साहित्य एवं हिन्दी कथा साहित्य का तुलनात्मक

अध्ययन, वीर सतसई में प्रयुक्त वीर तत्त्व के प्रतीक वैण सगाई अंलकार, डिंगल गीत हमारे विद्यालय और राजस्थानी भाषा, नाथ पथ की समाज को देन, हमारा समय और साहित्य की चुनौतियां वर्तमान सांस्कृतिक संकट और रचना कर्म राजस्थान के रंगमंच की स्थिति और समस्याएं कविपूजक राजस्थान, वंशावली परम्परा आदि निबंध संकलित हैं।

भंवर सिंह सामौर के यात्रा वृत्तांत और संस्मरण भी बहुत ही लोकप्रिय है। कोलकाता, हैदराबाद, हरिद्वार, गुजरात और आबू पर्वत का यात्रा वृत्तांत अत्यंत ही रोचक और मार्मिक हैं। इन यात्रा वृत्तांतों को पढ़ते समय पाठक ऐसा महसूस करता है कि मानों स्वयं उसी यात्रा में तल्लीन है। आपके संस्मरण लोकप्रिय ही नहीं बल्कि मंत्र मुग्ध कर देने वाले हैं।

आप जिस प्रकार गद्य में अपनी छाप रखते हैं ठीक उसी प्रकार पद्य में भी विशिष्ट पहचान रखते हैं। आपकी कविताएं इतनी सटीक है कि लोगों के कंठों का हार बन चुकी हैं। कई कविताएं तो लोकोक्ति बन गई है। आपकी कविताओं के दो संकलन है, प्रथम कोई कियां ही और दूसरी घर परिवार। इन कविता संकलनों में समाज, राजनीति, धर्म आदि की विद्रूपताओं पर सार्थक व्यंग्य किया गया है। आप का कविता के क्षेत्र में महत्त्वपूण योगदान है। कविता के माध्यम से पाठक श्रोता के हृदय को झकझोर कर रख देते हैं तथा अपने भावों को पाठक एवं श्रोता को हृदयगम आत्मनुभूत करा देते हैं।

वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग– आपने अपने साहित्य में वैज्ञानिक शब्दावली को भी स्थान दिया है। आप शक्ति के सन्दर्भ में 'राजस्थानी शक्ति काव्य' में शरीर के संदर्भ में लिखते हैं कि– ''वैज्ञाानिक मान्यता के अनुसार भी कण–कण में शक्ति निहित है। लोक में भी पदार्थों की शक्ति गति से मापी जाती है। चलने–फिरने, भार उठाने, कार्य करने, सोचने, समझने का सामर्थ्य या गति ही शक्ति कहलाती है। गति या शक्ति सभी जड़ या चेतनों में होती है। एक परमाणु के विखण्डन से इतनी ऊर्जा

उत्पन्न होती है कि उससे बड़े से बड़ा देश नष्ट हो सकता है। हमारा शुक्र जीव कणों से बना है। जिन्हें कोष कहा जाता है। प्रत्येक जीवकण में भी गति होती है। ये व्यवस्थित रूप में एक दूसरे के प्रति आकृष्ट और विकृष्ट होते हैं। इसी प्रकार जड़ पदार्थों का प्रत्येक कण अणु और परमाणु भी अनेक विधुत कणों से बनता है। विधुत दो प्रकार का होता है– पोजिटिव और नेगेटिव। पोजिटिव के चारों ओर नेगेटिव एक सैकेण्ड में एक लाख अस्सी हजार मील की रफ्तार से गतिमान है। इसी प्रकार परमाणु, प्रभाणु, कर्षाणु तथा सर्गाणु के सम्बन्ध में समझना चाहिए तथा इससे आगे वाणी भी मौन हो जाती है। आधिभौतिक(मेटा फिजिकल) पृष्ठभूमि में देखें तो पुरुष प्रकृति का चित्रण वराह तन्त्र में मिलता है जिसके अनुसार स्त्री में गर्मी–सर्दी, बीमारी आदि सहन करने की शक्ति पुरुष से चौगुनी ज्यादा होती है। उसके 121 नाड़ियाँ पुरुष से ज्यादा हैं। इस धरती पर जितने भी कार्य होते हैं वे नेगेटिव चार्ज(रिसीवर) के माध्यम से ही सम्पन्न होते हैं– खाना, पीना, देखना, सुनना, बोलना, विचारना आदि।''[43]इसी प्रकार सामौर ने ''गणितीय सिद्धान्त को भी साहित्य में जगह दी है–''पॉजिटिव 5 × नेगेटिव 2 = $10X^5$(पंच तत्त्व)=50 + ईथर की सारी गद्य साहित्यिकता अर्थवान लगती है।''[44]

अतः हम कह सकते हैं कि आपका साहित्य के नवीन, और अनछुए नवीन विषयों पर प्रामाणिक मौलिक कार्य करने हेतु साहित्य जगत में अविस्मृणीय, अजर, अमरव स्तुत्य योगदान है।

सन्दर्भ सूची

1. लोक पूज्य देवियां– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 18
2. वही– पूर्वकथन
3. वही– पृष्ठ 2
4. वही– पृष्ठ 4
5. वही– पृष्ठ 4–6
6. वही– पृष्ठ 6
7. वही– पृष्ठ 40
8. वही– पृष्ठ 26
9. वही– पृष्ठ 56
10. वही– पृष्ठ 57
11. शेखावाटी के चारण– भंवर सिंह सामौर, दो शब्द
12. वही– पृष्ठ 40
13. वही– पृष्ठ 25
14. वही– पृष्ठ 46
15. वही– पृष्ठ 28
16. वही– पृष्ठ 30
17. वही– पृष्ठ 27
18. वही– पृष्ठ 48
19. वही– पृष्ठ 27
20. चूरू मंडल के यशस्वी कवि– भंवर सिंह सामौर, दो शब्द
21. वही– पृष्ठ 36
22. आऊवा का धरना– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 10
23. वही
24. वही– पृष्ठ 14

25. चारण बड़ी अमोलक चीज– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 1

26. वही– पृष्ठ 5

27. वही– पृष्ठ 13

28. वही– पृष्ठ 27

29. वही– पृष्ठ 36

30. वही– पृष्ठ 46

31. वही– पृष्ठ 52

32. वही– पृष्ठ 60

33. वही– पृष्ठ 70

34. वही– पृष्ठ 81

35. युगान्तरकारी संन्यासी– भंवर सिंह सामौर पृष्ठ 69

36. वही– पृष्ठ 73

37. वही– पृष्ठ 139

38. हमारे साहित्य निर्माताः रावत सारस्वत– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ–15

39. वही– पृष्ठ 9

40. वही

41. वही

42. वही– पृष्ठ 15

43. लोक पूज्य देवियां– भंवर सिंह सामौर, पृष्ठ 12

44. वही

उपसंहार

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का अनुशीलन के प्रथम अध्याय में उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया हैं। इसमें चारण समाज की प्रमुख परम्पराएं, वंश भास्कर का स्वर्णिम पृष्ठ, उनके कुल की गौरव गाथा वर्णित है। भंवर सिंह सामौर का वंश वृक्ष, जन्म एवं माता–पिता, हस्त रेखा विशेषज्ञ की उनके प्रति भविष्यवाणी, शिक्षा एवं नियुक्ति, विवाह, परिवार, गुरुजन, सहपाठी साथियों का विवेचन किया गया है। आपकी चारित्रिक विशेषताओं में– श्रेष्ठ शिक्षक, बहुमुखी प्रतिभा के धनी, लेखक निर्देशक एवं अभिनेता, सादा जीवन, सार्वमांगलिक परिकल्पना के काव्यकार, स्पष्ट मृदुभाषी श्रेष्ठ वक्ता, साहसी निडर एवं दृढ़संकल्पी, आस्थावान, देवी उपासक, नई सोच नई दृष्टि के जनक, साहित्य में शब्द यज्ञ के सारथी आदि विशेषताओं को अभिव्यक्त किया गया है। उनके सन्दर्भ में विविध विद्वानों के कथनों की काव्यमय प्रस्तुति को सप्रमाण बताया है। जीवन परिस्थितियों में चारणों की जुझारु परम्परा, सामाजिक परिवेश, परिवेश एवं प्रभाव, सम्मान की विस्तृत विवेचना की गई है।

भंवर सिंह सामौर का कृतित्व में–साहित्य सृजन की प्रेरणा, गद्य साहित्य का सृजन संसार, लोक पूज्य देवियां, चारण बड़ी अमोलक चीज, युगान्तरकारी संन्यासी, राजस्थानी शक्ति काव्य, शेखावाटी के यशस्वी चारण, चूरू मंडल के यशस्वी चारण, आऊवा का धरना, प्राचीन राजस्थानी काव्य, हमारे साहित्य निर्माता रावत सारस्वत, शंकरदान सामौर, मरण–त्यूंहार, संस्कृति री सनातन दीठ, लोक नीति काव्य, साहित्येत्तर कार्य, अनुवाद आदि साहित्यिक कृतियों की विषय वस्तु पर प्रकाश डाला गया है।

महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण ने 'वंश भास्कर' में हरसूर सामौर और उनकी अगली पीढ़ियों का विस्तारपूर्वक इतिहास प्रस्तुत किया है। अठ्ठारह सौ सत्तावन की

क्रांति के वीर जन कवि शंकरदान सामौर भंवर सिंह सामौर के पूर्वज थे। आपका जन्म चूरू जिले की सुजानगढ़ तहसील के बोबासर गाँव में 15 अगस्त 1943 ई. को हुआ। इनके पिता श्री उजीणदान सामौर और माता नान्हीं कंवर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। आपका विवाह बठोठ (सीकर) में कुसुम कंवर के साथ सम्पन्न हुआ। आपका कॉलेज व्याख्याता में चयन हुआ और राजकीय लोहिया महाविद्यालय चूरू में नियुक्ति हुई।

आप सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक और औपनिषदिक आभा के रचनाधर्मी हैं। वे भारतीय प्रज्ञा के प्रतिनिधि गद्यकार और सर्वमांगलिक परिकल्पना के काव्यकार हैं। हिन्दी नवलेखन में वे एक गरिमामय अभिजात शैली के प्रवर्तक सिद्ध हुए हैं। सामौर का व्यक्तित्व उनकी साहित्यिक शैली बनता गया। वह लगातार नवीन विषयों की खोज करते हैं एवं सामाजिक सरोकारों से सरलता और स्वतंत्र लेखन की खोज में सदैव आगे बढ़ते रहे हैं।

द्वितीय अध्याय– आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य और भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का वैशिष्टय में आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य का स्वरूप और विकास, भंवर सिंह सामौर की गद्य दृष्टि के अतंर्गत हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा, हिन्दी गद्य का उद्‌भव एवं विकास, प्रारम्भिक गद्य रचनाएं, भारतेन्दु युग में गद्य का विकास, द्विवेदी युग मे गद्य का विकास, हिन्दी निबन्ध विधा का विकास– भारतेन्दु युग (1873 ई.– 1900 ई.), द्विवेदी युग (1900 ई.– 1920 ई.), शुक्ल युग (1920 ई.– 1940 ई.), शुक्लोत्तर युग (1940 ई के उपरान्त), हिंदी साहित्य का जीवनी–साहित्य, भंवर सिंह सामौर की गद्य दृष्टि– सामाजिक दृष्टि में– सेवाकार्य, युवाओं की समस्याएँ एवं समाधान, उपेक्षित वृद्धों को सम्मान, जन्मदात्री, पोषणकर्मी को आश्रय, पशुपालन युग के प्रतीक पुरूष, समाज के सारथी, समाज एवं सत्ता के सेतु, लोकहित में समाज निर्माण, चारण समाज अमूल्य रत्न, धार्मिक दृष्टि में– धर्म एवं सम्प्रदाय, धर्माचार्य, आध्याात्मिक दृष्टि, मनुष्य केवल मनुष्य, संगठन में आस्था और

विश्वास, अहिंसा मार्ग के हिमायती शैक्षिक दृष्टि में– अज्ञानता का विरोध, लोक साक्षरता एक अभियान, अनुवाद की महत्ता, आर्थिक दृष्टि, स्वास्थ्य जीवन में सर्वोपरि, नैतिकता व्यक्तित्व का मूलाधार, आदर्श मानवीय जीवन का नियामक, वैज्ञानिक तर्क शक्ति, वैचारिक सार, सांस्कृतिक दृष्टि में– ईश्वर के प्रति आस्थिक भाव, गंगाजल की पावनता, गोदान जीविका का आधार, राजनीतिक दृष्टि में– राजा से भी महान् कविराजा, व्यंग्यात्मकता, स्वतंत्रता के प्रति दृष्टि, गुलामी व स्वतंत्रता में भेद, हर सांस देश हित में, भय से मुक्ति, सामरिक चिंतन, जीवदया भाव, प्रकृति संरक्षक, वृक्षों की रक्षा, दूर दृष्टि, वसुधैव कटुम्बकम् भाव की लोक मंगलकारी दृष्टि पर प्रकाश डाला है।

सामाजिक दृष्टि का मूल आधार धर्म, संस्कृति, परम्परा एवं इतिहास की भूमि पर आधारित है जिसका प्रचार समस्त विश्व में है। उनके अनुसार विविध सेवा कार्यक्रमों की लम्बी सूची है जैसे 'कोई भूखा ना सोए' से लेकर 'नेत्र शिविर', 'बवासीर निर्मूलन', 'स्वास्थ्य सेवा', 'आयुर्वेद केन्द्र', 'सद् साहित्य प्रकाशन', 'कार्यकर्त्ता प्रशिक्षण', 'असहाय सहायता' आदि तक भी रूकती नहीं है। उनका सेवा मार्ग सत्संग से संगठन की ओर होता हुआ सेवा तक पहुँचता है। उनके अनुसार सेवा योग है अर्थात् सेवा धर्म है। उन्होंने देखा कि विश्व भर में भारतीय वृद्ध बहुत ही उपेक्षित हैं। उन्हें कोई पूछने वाला नहीं है। आपने वृद्धों की समस्या समाधान हेतु वृद्धों को लाकर भोजन करवाना या बस में भोजन ले जाकर भोजन कराने का मार्ग दिखाया। निराश्रित स्त्रियों के लिए भी एक आश्रम स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त किया। धार्मिक दृष्टि में प्रतिपादित किया है कि धर्म किसी से बैर रखना नहीं सिखाता। इसलिए गाँधीजी वाली सर्वधर्म प्रार्थना को अपनी प्रार्थना में स्थान दिया। वे सभी धर्मों का आदर करते थे। आध्यात्मिक दृष्टि में विश्व में भारत का बड़ा सम्मान है, क्योंकि भारत ने वेद, उपनिषद्, रामायण, गीता, महाभारत, राम और कृष्ण, गौतम व गाँधीजी को जन्म दिया। शैक्षिक दृष्टि में वह मैकाले ने जो लकीर खींच दी उस लकीर को जो केवल अंग्रेजो के ऑफिसों में बाबू बनकर

काम करने हेतु दी जाती थी। उसको तोड़ डालने का आगाज करते हैं। वह लोकतान्त्रिक व्यवस्था में लोक को साक्षर करने के लिए लोक साहित्य का महत्त्व स्वयं सिद्ध करते हैं। आर्थिक दृष्टि में ज्ञान प्राप्त होने के बाद आपने अनुभव किया कि ''बिना पैसे (धन) के भी साधारण ही नहीं अच्छा जीवन चल सकता है। आप के अनुसार धन का सदुपयोग दान करके समाज का उत्थान करने में है। इस दानरूपी जीवन दर्शन के आधार पर वह स्वस्थ समाज के विकास में निजी धन के योगदान की नींव रखना चाहते हैं। अहिंसक दृष्टि में किसी भी प्रकार के जीव को हानि पहुँचाना हिंसा है। हिंसा केवल मात्र शस्त्रों से नहीं होती, कठोर वचन, ईर्ष्या, द्वेष आदि भावों से भी होती है। सामरिक दृष्टि में बताया है कि गीता ने इस विश्व को एक पवित्र कर्म भूमि माना है। धर्म के अतर्गत कार्य करने वाला व्यक्ति ही श्रेष्ठ है। पुण्य की प्राप्ति के लिए पाप का नाश करना परम कतर्व्य है। पाप के नाश के लिए धर्म युद्ध आवश्यक है। चारण बड़ी अमोलक चीज निबंध संग्रह व चारण साहित्य हमें सिखाता है कि स्वतन्त्रता की रक्षा हेतु हमें लड़ना भी पड़ता है, मरना भी पड़ता है। इस परम्परा को इन कवियों ने जीवंत बनाए रखा है।

दूर दृष्टि में एक चिंतन को जगाया है। 1992 में आजाद होने वाला मॉरीशस आज एक लोक–कल्याणकारी राज्य है। यहाँ शिक्षा मुफ्त है। यहाँ चिकित्सा मुफ्त है। वृद्धावस्था पेंशन है। विधवाओं की अनेक प्रकार से सहायता की जाती है। वहाँ कोई बिना घर का नहीं है। वहाँ कोई बेकार नहीं है। भारत तो उससे पहले 1947 में आजाद हुआ था यहाँ भी ऐसी व्यवस्थाएँ होनी चाहिए। आज भारत में बेरोजगारी सबसे बड़ी समस्या है।

तृतीय अध्याय– भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का कथ्य में जीवन दर्शन एवं समाज में– धर्मावतार युगान्तरकारी संन्यासी के जीवन का मूल मंत्र प्रेमभाव, सहज सेवा दर्शन, सहज सेवायोग, लोकसेवा, कंचनमुक्ति, मोक्ष, निष्काम भाव से लोक संग्रह, अभिनव प्रयोग में गंगाजल वितरण, गोदान उत्सव, रामायण और गीता का

वितरण, सर्वे भवन्तु सुखिन की विश्व मंगल और मानवतावादी भावों को प्रकट किया है। प्रकृति चित्रण में—सहज प्राकृतिक जीवन, प्राकृतिक जीवन शैली, नीलगाय, कुरजा, मुर्गों, उँटनियों आदि वन्य जीवों की रक्षा, पशुपालन व कृषि कार्य की महत्ता, मॉरीशस जलपरियों का देश, रेती के प्राकृतिक बिछौने का देश, स्वर्ग की रचना का प्रेरक मॉरीशस, बारा राष्ट्रीय उद्यान एवं मर्चीशन प्रपात का प्राकृतिक सौंदर्य के संरक्षण की महत्ता प्रतिपादित की है। राष्ट्रीयता में— जन्मभूमि से प्रेम, स्वतन्त्रता की रक्षा, अठ्ठारह सौ सत्तावन की क्रांति में क्रांतिवीर शंकरदान सामौर का योगदान, राजस्थानी शक्ति काव्य, युद्ध नायक शेखावाटी के यशस्वी चारण, वीर प्रसूता भूमि शेखावाटी, स्वतंत्रता संग्राम का आगाज, चूरू मंडल के यशस्वी चारण, शौर्य रूपी संजीवनी शक्ति के प्रेरक चूरू के योद्धा, आत्मोत्सर्ग की पावन भूमि आऊवा, प्राचीन राजस्थानी काव्य का परिचय, रावत सारस्वत का अद्वितीय व्यक्तित्व व कृतित्व, पुस्तक सबसे बड़ा स्मारक है यह तथ्य उजागर किए हैं। व्यंग्य में— प्रेम के नाम से पापाचार, मैकाले की शिक्षा गुलामी में खींची लकीर, धर्माचार्य तोते, अपनी—अपनी डफली और अपना—अपना राग पर आधारित व्यंग्य पर कटाक्ष को दर्शाया गया है। आधुनिक बोध में—भारतीय चिंतन एवं क्रिया में युगांतर, विश्व शांति की कामना, वर्तमान विज्ञान पर आधुनिक बोध, तुलनात्मक आधुनिक बोध, हर व्यक्ति का कर्म महान्, लोक पूज्य देवियां आधुनिक बोध की प्रतिनिधि में नारी की महिमा को अभिव्यक्त किया है। समकालीन चिंतन धाराएँ एवं विमर्श में— लोक साक्षरता का महायज्ञ, समकालीन चिंतन, समकालीन चिंतन और युद्ध—काव्य, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, मरण—त्यूंहार, सैनिकों को नई दृष्टि व प्रेरणा प्रदान करना, समकालीन विमर्श मानव चेतना, नवोदित कवियों को प्रेरणा, संगठन शक्ति की महत्ता, नूतन प्रेरणा, सर्वधर्म आदर, सांस्कृतिक सनातन दृष्टिकोण, सांस्कृतिक परम्परा, मीडिया की चुनौती, विमर्श, प्रवासी भारतीयों की पुण्य भूमि भारत, आज की युवा पीढ़ी की छटपटाहट, सेवा संगठन एक मौसम, संगठन की समाप्ति आत्महत्या, सांस्कृतिक वर्षा, तत्परता, परहित कामना, भारत एक आध्यात्मिक देश, निर्भय होकर कर्म करें,

वृद्धावस्था का समाधान, सेवाकार्यों के मूल आधार, संस्कार सिंचन, एक–एक रुपया प्रति परिवार से एकत्र करके सेवा कार्य करना, महिला आश्रम, काल चेतना आदि के कथ्य उजागर किये गये हैं।

भारतीय जीवन दर्शन के अन्तर्गत पुरुषार्थ को ही जीवन दर्शन के रूप में मान्यता दी गई है। हिन्दू जीवन दर्शन ने समाज में मानव जीवन के चार उद्देश्य स्वीकार किए हैं– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। आपने शासन सत्ता से कोसों दूर रहकर सेवा की महिमा एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को स्थापित किया हैं। उनकी दृष्टि मे सच्चा धर्म वही है जो मनुष्य को मनुष्य से प्रेम की सीख दे। इसी सर्वव्यापी प्रेम के कारण मनुष्य मात्र की महत्ता उनकी दृष्टि में बड़ी थी। आज निराशा के गहन कुहासे में उनके प्रेमभाव के ये विचार आशा रूपी आलोक की तीव्र और तीखी किरणें हैं, जिनसे पारिवारिक विघटन, संत्रास और घृणा में डूबा संसार आज भी बहुत कुछ प्रेम का प्रकाश पा सकता है। मनुष्य के पिछड़ेपन और विकास का मूल कारण उसके विचार होते हैं। उन्होंने गौ–सेवा को अर्थ, स्वास्थ्य, सेवा धर्म और मोक्ष मंगल कामना से जोड़ दिया। आज वैश्विकरण की अंधी दौड़ में मानव ने प्रकृति का इतना दोहन किया है कि ग्लोबल वार्मिंग की समस्या से समूचा विश्व जूझ रहा है। वैश्विक मंचों से प्रकृति संरक्षण की बातें तो होती हैं, पर कथनी और करनी में कहीं भी एकता दिखाई नहीं देती। आपके गद्य साहित्य के कथ्य में प्रकृति के इसी रक्षार्थ भाव को देखा जाता है। चारण नारियों ने बैल को नाथ से, ऊँट को नकेल से, घोड़े को लगाम से, हाथी को अंकुश से, सिंह को चाबुक से, किसी को पांव से, किसी को सींग से वश में करके प्रेम से ऐसा पालतू बनाया कि फिर तो ये प्राणी सामाजिक जीवन के अस्तित्व का आधार बन गए। चारण साहित्य हमें सिखाता है कि स्वतन्त्रता की रक्षा हेतु हमें लड़ना भी पड़ता है, मरना भी पड़ता है। इस परम्परा को इन कवियों ने जीवंत बनाए रखा है। देश रक्षा का युद्ध दानव, असुर, यवन, शक, हूण, अरबी, पठान, मुगलों आदि के खिलाफ शुरू हुआ युद्ध अंग्रेजों के शासन काल में भी जारी रहा। चारणों ने यहाँ हमेशा ही परदेशी हमलावरों के खिलाफ मुकाबले

की जोत को जलाए रखा। इस बात के साक्षी झंवर और साका है। हजारों वर्षों से इस धरती के पुत्र और पुत्रियों ने चारण के बिड़दाने से देश की रक्षा के लिए बलिदान करने की होड़ सी लगाए रखी है। गाँव–गाँव और ढाणी ढाणी में जुझारू वीरों के त्याग और बलिदान की यश गाथाएं, जीवित समाधी, निशान रूप सहित मंदिर, देवल इस बात के साक्षी हैं।

आज गाँधीजी के सभी अनुयाईयों ने उनके मूल सिद्धातों को भुला दिया है। सभी सत्ता सुंदरी की चाह में साम, दाम, दंड, भेद की नीति पर चल रहे हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा कि जिसने सेवा धर्म अपना लिया वह सारे बंधनों से मुक्त हो गया। सभी मनुष्य भाई–भाई हैं। सभी मनुष्य एक जाति के हैं। श्रेष्ठता सेवा से होती है, जन्म से नहीं। उन्होंने मनुष्य को मनुष्य की सेवा मनुष्य की हैसियत से ही करने की बात कही तथा धर्मगत, जातिगत, रंगगत, भौगोलिक सीमागत, वंशगत, संस्कारगत, विश्वासगत और शास्त्रगत विषमताओं के जाल को छिन्न–भिन्न करने के लिए अदम्य साहस के साथ संपूर्ण विश्व को अपनी कर्मस्थली बनाकर नई परंपरा डाली। इस विराट सेवा आंदोलन के सबसे प्रमुख आधुनिक बोध के कृतीनेता के रूप में उनका सेवाकार्य आज के दिग्भ्रमित व टूटे हुए मनुष्य को जोड़कर एक जीवंत भविष्य देता है। वह विश्व शांति की मंगलमय कामना है।

चतुर्थ अध्याय में भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का शिल्प में भाषा वैशिष्टय में शैली, शिल्प परिभाषा एवं स्वरूप, गद्य साहित्य का शैलीगत अध्ययन, शैली का स्वरूप, वर्णनात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, संवादात्मक शैली, काव्यात्मक शैली, वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग, आँचलिकता, पूर्वदीप्ति, साक्षात्कार शैली आदि का वर्णन है। रचना प्रक्रिया में राजस्थानी भाषा का प्रयोग, संस्कृत भाषा के वाक्य, शब्द विधान, संस्कृत शब्द(तत्सम् शब्द), अंग्रेजी शब्द, फारसी शब्द, अरबी शब्द, तुर्की शब्द, पुर्तगाली शब्द, द्विरुक्त शब्द, ध्वन्यार्थक शब्द, जोड़े के साथ आये सादृश्य शब्द, विशेषण, कहावतें(लोकोक्तियां), मुहावरों का प्रयोग, काव्य पंक्तियाँ व

गीत, वाक्य विन्यास, हिन्दी–अंग्रेजी वाक्य, पूर्ण अंग्रेजी वाक्य, घोषणाओं से युक्त वाक्यों पर शोध किया गया है। इसमें भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य के अभिव्यक्ति पक्ष का अध्ययन करने के पश्चात् निष्कर्ष है कि इनका अनेक भाषाओं पर अधिकार है। राजस्थानी, गुजराती, भोजपुरी, बंगाली, हिन्दी आदि भाषाओं पर इनकी बखूबी पकड़ है। आपको हिन्दी साहित्य में अद्वितीय महारथ हासिल है। इनका गद्य साहित्य हिन्दी का विशुद्ध गद्य है। जान बूझकर बनाई गई भाषा पर सामौर का सख्त ऐतराज जाना–पहचाना है। यद्यपि विन्यास या लहजे में वक्रता विदग्धता उनका अपना कौशल है। इनके गद्य साहित्य में भाषा के अनेक सृजनात्मक प्रयोग प्रस्तुत है। शब्द योजना में वैविध्य है। प्रसंग के अनुसार भिन्न–भिन्न शब्द योजना का प्रयोग करके आपने संवादों में पैनापन और गहनता ला दी है। गद्य साहित्य में वाक्य रचना के अन्तर्गत विविध पद्धतियाँ प्रयुक्त हैं। अधिकांश वाक्य संगठित, प्रवाहमय और प्रभावशाली हैं, जिनसे वाक्य संरचना में लेखक की सशक्तता का बोध होता है। लेखक ने अपने गद्य साहित्य की भाषा का सौन्दर्य बढ़ाने के लिए विविध भाषा उपकरणों का प्रयोग किया है, जिसमें वे सफल हुए हैं। गद्य की अभिव्यक्ति को कम शब्दों में सारगर्भित एवं प्रभावपूर्ण ढंग से कहने के प्रयोजन से गद्य साहित्य की भाषा में शेरोशायरी, कहावतों, मुहावरों, काव्य पंक्तियों का प्रयोग किया है। गद्य साहित्य में विषयवस्तु, उद्देश्य तथा मूल संवेदना के अनुरूप ही एक विशिष्ट भाषा का आविष्कार किया है। इनके गद्य साहित्य में शैलीगत प्रयोगों का वैविध्य दिखाई देता है। भाषा के साथ–साथ कथा साहित्य में प्रसंग या परिस्थिति के अनुसार भिन्न–भिन्न प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है, जैसे– वर्णनात्मक, संवादात्मक, काव्यात्मक, फ्लैशबैक, आत्मकथात्मक शैली आदि का प्रयोग करके भाषा को सुगमता से प्रवाहमान, संप्रेषणीय एवं संवेदन बनाया है।

सामौर ने शैली को अभिनव प्रयोग द्वारा समृद्ध किया है। शैली की विविधता, मौलिकता, प्रस्तुतीकरण का अनूठा अंदाज एवं अभिनव रूप के कारण इनके साहित्य का कलापक्ष अत्यंत प्रभावी बना है। जिसके आधार पर हम कह सकते हैं कि शिल्प

की दृष्टि से भी यह गद्य साहित्य सफलता के उच्चतम् शिखर पर पहुँचा है। यद्यपि इनके साहित्य का शिल्प–सौष्ठव उनका लक्ष्य नहीं है तथापि इन विधाओं के शिल्प के प्रति वे पर्याप्त सजग हैं। आपने अपने साहित्य में वैज्ञानिक शब्दावली को भी स्थान दिया हैं। 'राजस्थानी शक्ति काव्य' में शरीर के संदर्भ में लिखते हैं कि– ''वैज्ञाानिक मान्यता के अनुसार भी कण–कण में शक्ति निहित है। लोक में भी पदार्थों की शक्ति गति से मापी जाती है। चलने–फिरने, भार उठाने, कार्य करने, सोचने, समझने का सामर्थ्य या गति ही शक्ति कहलाती है। गति या शक्ति सभी जड़ या चेतनों में होती है। एक परमाणु के विखण्डन से इतनी ऊर्जा उत्पन्न होती है कि उससे बड़े से बड़ा देश नष्ट हो सकता है। हमारा शुक्र जीव कणों से बना है। जिन्हें कोष कहा जाता है। प्रत्येक जीवकण में भी गति होती है। ये व्यवस्थित रूप में एक दूसरे के प्रति आकृष्ट और विकृष्ट होते हैं। इसी प्रकार जड़ पदार्थों का प्रत्येक कण अणु और परमाणु भी अनेक विधुत कणों से बनता है। विधुत दो प्रकार का होता है– पोजिटिव और नेगेटिव। पोजिटिव के चारों ओर नेगेटिव एक सैकेण्ड में एक लाख अस्सी हजार मील की रफ्तार से गतिमान है। इसी प्रकार परमाणु, प्रभाणु, कर्षाणु तथा सर्गाणु के सम्बन्ध में समझना चाहिए तथा इससे आगे वाणी भी मौन हो जाती है। आधिभौतिक(मेटा फिजिकल) पृष्ठभूमि में देखें तो पुरुष प्रकृति का चित्रण वराह तन्त्र में मिलता है जिसके अनुसार स्त्री में गर्मी–सर्दी, बीमारी आदि सहन करने की शक्ति पुरुष से चौगुनी ज्यादा होती है। उसके 121 नाड़ियाँ पुरुष से ज्यादा हैं। इस धरती पर जितने भी कार्य होते हैं वे नेगेटिव चार्ज(रिसीवर) के माध्यम से ही सम्पन्न होते हैं– खाना, पीना, देखना, सुनना, बोलना, विचारना आदि। इसी प्रकार सामौर ने गणितीय सिद्धान्त को भी साहित्य में जगह दी है– पॉजिटिव 5 × नेगेटिव 2 = $10X^5$(पंच तत्त्व)=50 + ईथर = शक्ति।'' जिसके कारण आपके गद्य साहित्य की भाषा अत्यंत प्रभावशाली बन गई है।

पंचम अध्याय भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में जीवन मूल्य में आदर्शवादिता, राष्ट्रीयता, सामाजिकता, नैतिकता के अतर्गत मानव मूल्यों का

पारिभाषिक विवेचन, मानव मूल्यों में परिवर्तन, जीवन मूल्य का अर्थ एवं समानार्थी शब्द, मूल्य शब्द की व्युत्पत्ति, संस्कृत, पाश्चात्य एवं हिन्दी विद्वानों की मूल्य विषयक मान्यताएँ, मूल्य और जीवन मूल्य, मूल्य और मानव मूल्य, मूल्य और तथ्य, मूल्य और आदर्श, मूल्य और नॉर्म, मूल्य और वर्जनाएँ, मूल्य और नैतिकता, जीवन मूल्य : अभिप्राय, जीवन मूल्य : परिभाषा, जीवन मूल्य, स्वरूप और महत्त्व, जीवन–मूल्य : संरचना और प्रभावक आधार, जैविक आधार, शारीरिक संरचना, मूल प्रवृत्तियाँ–संवेग, प्रेरणा, सहानुभूति, अभिरुचि, तर्क, पराजैविक आधार, सामाजिक आधार, प्राकृतिक आधार, मानविकी आधार–धर्म, दर्शन, विज्ञान, शिक्षा, साहित्य और कला, जीवन मूल्यों का वर्गीकरण और संक्रमण–मूल्यों का वर्गीकरण, जैविक मूल्य (शारीरिक मूल्य), पराजैविक मूल्य (सामाजिक तथा मानविकी मूल्य), पराजैविक सामाजिक मूल्य, पराजैविक मानवीय मूल्य, मूल्यों का वर्ग संक्रमण, जीवन मूल्य और साहित्य–साहित्य और जीवन मूल्यों का परस्पर संबन्ध, साहित्यिक मूल्यों की रचना प्रक्रिया पर जीवन मूल्यों का प्रभाव, जीवन मूल्यों के संक्रमण पर साहित्य–प्रदत्त मूल्यों का प्रभाव, साहित्य और मूल्य सम्बन्ध : विभिन्न विद्वानों के अनुसार, गद्य और जीवन मूल्य, सामौर के गद्य साहित्य में जीवन मूल्य–आदर्शवादिता, राष्ट्रीयता, सामाजिकता, नारी स्वाभिमान, आतिथ्य सत्कार, नैतिकता पर प्रकाश डाला है।

मानव मूल्यों के गिरते स्तर को भंवर सिंह सामौर ने अपने साहित्य में एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया है। आज आदर्शवादिता, राष्ट्रीयता, सामाजिकता और नैतिकता जैसे जीवन मूल्यों में बदलाव आने लगा है। संघर्षपूर्ण स्थिति में परिवार टूटते जा रहे हैं। वैश्वीकरण की अंधी दौड़ के मानव ने अपने आप को बिकाऊ बना लिया है। मूल्य संक्रमण के इस दौर में राजनीतिक परिस्थितियां भी कम जिम्मेदार नहीं है। 'यथा राजा तथा प्रजा' की पारम्परिक उक्ति के अनुसार नीतिहीन सत्ता केन्द्रित राजनीति ही सारे नैतिक अवमूल्यन की जड़ है। राजनीति के क्षेत्र में हमारे देश को बहुत संत्रास भोगना पड़ा है। प्रजातन्त्र के नाम पर कुर्सी हथियाने के हथकण्डे, चुनाव प्रचार के समय किए गए वायदे, नोटों के बदले वोट

की राजनीति, दलदल और राजनीतिक दांव पेंच, रुपयों के बल पर बनती और टूटती सरकारें, राजनीतिक परिवेश में व्याप्त अनीति और अनाचार की कुछ तस्वीरें हैं जो भारतीय राष्ट्रवाद को कमजोर बनाती है। सामौर के साहित्य में इन पर करारी चोट की गई है। राष्ट्रप्रेम को स्पष्ट करते हुए सामौर लिखते हैं कि धरती पर संकट आये, मनुष्यता पर संकट आए, स्त्रियों की इज्जत पर संकट आए तो चाहे राजा हो, चाहे रंक हो सभी अपने प्राणों की बाजी लगाकर इन तीनों संकटों को टालते हैं। जीते जागते ये संकट नहीं आने देते हैं।

भारत शांति का उपासक रहा है, परन्तु आत्मरक्षार्थ स्वाधीनता तथा सिद्धान्तों के अस्तित्व की अक्षुण्णता के लिए किये जाने वाले युद्ध में भारतीय जन मानस को आदर्शों के प्रति जागरुक रखना भारतीय साहित्यकारों का ही कर्तव्य था। वे साहित्य के माध्यम से देश को नई प्रेरणा देकर राष्ट्र के प्रति गौरव भावना के प्रसार से जन मन तथा सीमा पर खाई में जूझने वाले सैनिकों को नई दृष्टि प्रदान कर मूल्यवान कार्य करते रहे हैं।

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में सामाजिक मूल्यों का आशय व्यक्ति की सामाजिकता का उन्नयन करने वाली जीवन दृष्टियों से है। साथ ही मनुष्य की सामूहिकता, जातीय सुरक्षा, सहानुभूति तथा सन्तानोत्पत्ति आदि मूल प्रवृत्तियों की तुष्टि से संबंधित उन प्रतिमानों से है, जो मनुष्य की सामाजिकता के उत्थान हेतु आवश्यक होते हैं। सामाजिक मूल्य के तौर पर अतिथि सम्मान को बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। आपने समाज की सामूहिकता पर बल दिया है। नैतिक मूल्यों में दया, त्याग, पवित्रता, सत्य आदि शाश्वत मूल्य हैं। समाज, राज्य तथा धर्म के द्वारा स्वीकृत व्यवहार ही मूल्य के अन्तर्गत आते हैं। नैतिकता के लिए नीति की शिक्षा नहीं, धर्म की शिक्षा अपेक्षित है।

षष्ठ अध्याय– भंवर सिंह सामौर का गद्य साहित्य में योगदान के अंतर्गत गद्य साहित्य लेखन, निबंध एवं जीवनी लेखन, राजस्थानी भाषा साहित्य, लोकदेवी

साहित्य, लोकपूज्य देवियां, चारण देवियों की ऐतिहासिक परम्परा, समाज में लोक देवियों की भूमिका एवं महत्त्व, सामाजिक शक्ति का निर्माण एवं प्रतिनिधित्व, चारण समाज, राष्ट्र निर्माण में चारणों का योगदान, चारण का शाब्दिक अर्थ, चारणों का भौगोलिक विस्तार, चारणों के मुख्य भेद, देवी के उपासक, शक्ति आदोलन का इतिहास, राजस्थानी शक्ति काव्य विश्व साहित्य में बेजोड़, पशुपालन युग का विकास, मूल मंत्र पुरुषार्थ एवं लोकहित, प्रकृति संरक्षण का महत् संदेश, शेखावाटी के चारणों के साहित्य का इतिहास, शेखावाटी के यशस्वी चारण, अद्वितीय राष्ट्र प्रेम, चूरू के चारण साहित्य का इतिहास चूरू मंडल के यशस्वी चारण, प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के आंदोलन का इतिहास, आऊवा का धरना, शक्ति आंदोलन का इतिहास, प्राचीन राजस्थानी काव्य, निबंध लेखन योगदान में चारण बड़ी अमोलक चीज (निबंध संग्रह) जीवनी लेखन में योगदान में युगान्तरकारी संन्यासी(जीवनी), स्वतंत्रता का महत्त्व, हमारे साहित्य निर्माता रावत सारस्वत(जीवनी),मीणा जाति का इतिहास, राजस्थानी भाषा साहित्य में योगदान, शंकरदान सामौर (जीवनी), मरण–त्यूंहार, संस्कृति री सनातन दीठ, लोक नीति काव्य, साहित्येत्तर कार्य, अनुवाद, वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग आदि के योगदान को मुखरित किया है।

किसी नयी विधा को लेकर साहित्य इतिहास का लेखन करना अत्यंत कठिन कार्य है। भंवर सिंह सामौर की प्रथम कृति इतिहास लेखन के रूप में लोक पूज्य देवियां है। इनका प्रथम इतिहास लेखन ही गहन शोध व अध्ययन से विवेचित किया गया है। सम्पूर्ण तथ्य प्रामाणिक हैं। आज तक इस प्रकार का दूसरा इतिहास नहीं लिखा गया। अतः इस अछूते एवं नवीन विषय पर इतिहास लेखन करके अपना विशेष योगदान दिया है। राष्ट्र निर्माण में चारणों का योगदान रहा है। ये लोग युद्ध क्षेत्र में सदैव राजा के साथ रहते थे तथा अपनी ओजस्वी वाणी से राजा को युद्ध क्षेत्र में डटे रहने का हौसला प्रदान करते थे। चारण समाज को सामाजिक चेतना का वाहक, सामुदायिक जीवन शैली का प्रतीक, समता स्वतन्त्रता का पर्याय, सामाजिक जीवन में संघर्ष का साथी, संस्कारों के निर्माता आदि संज्ञाओं से भी

विभूषित किया जाता है। हमारे राष्ट्र के निर्माण में चारणों के योगदान को नहीं भुलाया जा सकता है। शक्ति काव्य में जिस आदर व श्रद्धा से स्त्री जीवन की अभिव्यक्ति की गई है वह विश्व साहित्य में बेजोड़ है। स्त्री की शक्ति रूप में पूजा मातृ रूप में वन्दना, वीरांगना के रूप में प्रशस्ति, मार्ग निर्देशिका के रूप में अनुसरण, बहिन के रूप में प्रेरणा तथा गृहलक्ष्मी के रूप में स्वागत की अभिव्यक्ति की गई है। अवसर आने पर वह चण्डी का रूप धारण कर जौहर की ज्वाला का वरण कर शक्ति के अजस्र स्रोत का प्रतीक बन जाती थी। मन वचन कर्म से करुणा का विस्तार स्वावलम्बी जीवन, सत्य में आस्था, सहिष्णुता, धैर्य, निडरता, शरणागत, वात्सल्य, दानशीलता, आत्मबलिदान की भावना आदि उच्च आदर्शों की रक्षार्थं अनुपम वीरता के साथ मर मिटने की भावना इन देवियों में निरंतर स्त्री चरित्र की विशेषताओं के रूप में प्रवाहमान है।

रावत सारस्वत के योगदान से हम मीणा जनजाति के गौरवशाली इतिहास का ज्ञान प्राप्त करते हैं। मीणा इस भूमि के सपूत ही नहीं बल्कि इस देश की प्राचीनतम और आदिम जातियों में से एक हैं। ऐतिहासिक व पुरातात्विक प्रमाण इस बात के साक्षी हैं कि मीणा जनजाति इस देश के मूल निवासी हैं तथा यह एक शासक कौम भी रही है। यह जाति एक बहादुर व स्वच्छन्द प्रकृति की जीवट वाली कौम है जो कभी टूटी नहीं, कभी झुकी नहीं। इन्हें वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, बौद्ध व जैन ग्रन्थ आदि में भी (मत्स्य जाति, आदिम जनजातियों) को किसी न किसी रूप में उल्लेखित किया है।

मीणा शब्द संस्कृत के मीन अर्थात् मछली से आया है मीन से इसकी उत्पत्ति कई अर्थों में महत्वपूर्ण है। विष्णु के दशावतारों में मत्स्यावतार सर्वप्रथम है। विष्णु के अवतार जीवन की उत्पत्ति व विकास को दर्शाते हैं और इनमें मत्स्यावतार या मछली सर्वप्रथम जल से जीवन की उत्पत्ति की ओर इंगित करती है, इस प्रकार 'मीणा' जनजाति का 'मीन' से सम्बन्ध इसकी सबसे प्राचीनता का द्योतक हो सकता है।

प्रागैतिहासिक शैल चित्रों में मछली का चित्र अंकन मिलता है। हड़प्पा व मोहन जोदड़ो संस्कृति के मृदपात्रों, मुद्राओं पर भी मछली का अंकन मिलता है। सिन्धु लिपि में भी 'मत्स्य' के समान चिह्न मिलता है। 'शेखावाटी के यशस्वी चारण' में आपने चारणों की महत्ती भूमिका का उल्लेख है कि जब समाज के संघर्षी सूर वीरों को समाज भूल जाता है तो उसकी पराकाष्ठा की यशस्वी बातें स्मरण कराकर चारण ही उसे समाज में स्मरणीय बनाते हैं। इस पुस्तक में शंकरदान सामौर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का वर्णन है। मरण–त्यूंहार में बताया है कि युद्ध की घड़ियों में सच्चे कलाकार, साहित्यकार और बुद्धिजीवी का कर्तव्य है कि वह मनोबल को ऊँचा रखने के साथ ही उदात्त भावनाओं, त्याग, शौर्य, वीरत्व को जागृत करें। संस्कृति री सनातन दीठ में संस्कृति के महत्त्व एवं समाज में उनके योगदान को रेखांकित किया गया है। संस्कृति की सनातन दीठ ही व्यक्ति और उसके जीवन को वर्तमान, भूत और भविष्य को एक साथ जीवित रखने में सहायक है। लोक नीति काव्य में लोकतान्त्रिक व्यवस्था में लोक को साक्षर करने के लिए लोक साहित्य का महत्त्व स्वयं सिद्ध है।

साहित्येत्तर कार्यों में लोक भारती भवन बोबासर, चूरू के माध्यम से लोकहित में अनेकानेक योगदान दिए हैं। आपने पुस्तकालय आंदोलन चलाया, कोई भूखा नहीं सोये, समाज सेवा शिविरों की शुरूवात की। राजस्थानी लोक वाचिक परम्परा के संरक्षण हेतु राष्ट्रीय साहित्य अकादमी नई दिल्ली और रूपायन संस्थान बोरून्दा के सहयोग से 3 मार्च से 7 मार्च 2002 में एक राष्ट्रीय कार्यशाला का आयोजन लोक भारती भवन बोबासर में किया। इस कार्यशाला में 21 घण्टे की सीडी सैट और लगभग डेढ़ घण्टे की एक फिल्म भी बनाई गई। जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर के इलेक्ट्रॉनिक मीडिया रिसर्च सेन्टर और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के सहयोग से लोक भारती भवन बोबासर के नाम पर परम्परा की जीवन्त विरासत का प्रतीक नाम से एक डोक्यूमेन्ट्री फिल्म भी बनवाई थी। यह फिल्म संसार भर में चर्चित रही। लोक भारती भवन बोबासर के माध्यम से

राजस्थान और गुजरात के लगभग 50 गाँव और शहरों में पुस्तकालय स्थापना के लिए पुस्तकों के सैट वितरित किये हैं। राजस्थानी रसधार के नाम से दो खण्डों में राजस्थानी दोहे सम्पादित किए हैं। एक पुस्तक दूहा कथा कोश नाम से सम्पादित की है। अनुवाद में भर्तृहरि के श्रृंगार शतक का राजस्थानी भाषा में सिणगार सतक नाम से अनुवाद किया है। गुजरात के सुप्रसिद्ध गुजराती कवि जयन्त पाठक की कविता की पुस्तक 'अनुनय' का राजस्थानी भाषा में 'अरज' नाम से अनुवाद किया है। गुजराती कवि जगदीश जोशी की पुस्तक 'वमल नां वन' का राजस्थानी में 'वमल रा वन' नाम से अनुवाद कर सामौर ने राजस्थानी कवियों में अपनी ख्याति अर्जित की। आपके यात्रा वृत्तांत और संस्मरण भी बहुत ही लोकप्रिय है। कोलकाता, हैदराबाद, हरिद्वार, गुजरात और आबू पर्वत का यात्रा वृत्तांत अत्यंत ही मार्मिक हैं। आपके कविता संकलनों में समाज, राजनीति, धर्म आदि की विद्रूपताओं पर सार्थक व्यंग्य किया गया है। कविता के क्षेत्र में आपने महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है।

अंत में आपने इस सारगर्भित तथ्य को वैश्विक धरातल पर पहुँचाया है और लक्षित किया है– विश्व के सभी लोगों को मेरा यही कहना है कि वैर मत करो। प्रेम करो। शोषण मत करो। सेवा करो। अच्छा बोलो। दुखियों का दुख बाँटने से दुखः हलका होता है और सुख में शामिल होने से सुख में वृद्धि होती है। सबको सुखी बनाने का प्रयास करो। आप भी सुखी होंगे। आतंकवाद की विभिषिका में जलती विश्व धरा पर सामौर का समदर्शी सिद्धांत कल भी प्रासंगिक था, आज भी प्रासंगिक है, और युगों–युगों तक प्रासंगिक रहेगा।

शोध संक्षेपण

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का अनुशीलन

प्रथम अध्याय में भंवर सिंह सामौर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया हैं। इसमें चारण समाज की प्रमुख परम्पराएं, वंश भास्कर का स्वर्णिम पृष्ठ, उनके कुल की गौरव गाथा वर्णित है। भंवर सिंह सामौर का वंश वृक्ष, जन्म एवं माता–पिता, हस्त रेखा विशेषज्ञ की उनके प्रति भविष्यवाणी, शिक्षा एवं नियुक्ति, विवाह, परिवार, गुरुजन, सहपाठी साथियों का विवेचन किया गया है। आपकी चारित्रिक विशेषताओं में– श्रेष्ठ शिक्षक, बहुमुखी प्रतिभा के धनी, लेखक निर्देशक एवं अभिनेता, सादा जीवन, सार्वमांगलिक परिकल्पना के काव्यकार, स्पष्ट मृदुभाषी श्रेष्ठ वक्ता, साहसी निडर एवं दृढ़संकल्पी, आस्थावान, देवी उपासक, नई सोच नई दृष्टि के जनक, साहित्य में शब्द यज्ञ के सारथी आदि विशेषताओं को अभिव्यक्त किया गया है। उनके सन्दर्भ में विविध विद्वानों के कथनों की काव्यमय प्रस्तुति को सप्रमाण बताया है। जीवन परिस्थितियों में चारणों की जुझारु परम्परा, सामाजिक परिवेश, परिवेश एवं प्रभाव, सम्मान की विस्तृत विवेचना की गई है।

भंवर सिंह सामौर का कृतित्व में– साहित्य सृजन की प्रेरणा, गद्य साहित्य का सृजन संसार, लोक पूज्य देवियां, चारण बड़ी अमोलक चीज, युगान्तरकारी संन्यासी, राजस्थानी शक्ति काव्य, शेखावाटी के यशस्वी चारण, चूरू मंडल के यशस्वी चारण, आऊवा का धरना, प्राचीन राजस्थानी काव्य, हमारे साहित्य निर्माता रावत सारस्वत, शंकरदान सामौर, मरण–त्यूंहार, संस्कृति री सनातन दीठ, लोक नीति काव्य, साहित्येत्तर कार्य, अनुवाद आदि साहित्यिक कृतियों की विषय वस्तु पर प्रकाश डाला गया है।

महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण ने 'वंश भास्कर' में हरसूर सामौर और उनकी अगली पीढ़ियों का विस्तारपूर्वक इतिहास प्रस्तुत किया है। अठ्ठारह सौ सत्तावन की क्रांति के वीर जन कवि शंकरदान सामौर भंवर सिंह सामौर के पूर्वज थे। आपका

जन्म चूरू जिले की सुजानगढ़ तहसील के बोबासर गाँव में 15 अगस्त 1943 ई. को हुआ। इनके पिता श्री उजीणदान सामौर और माता नान्हीं कंवर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। आपका विवाह बठोठ (सीकर) में कुसुम कंवर के साथ सम्पन्न हुआ। आपका कॉलेज व्याख्याता में चयन हुआ और राजकीय लोहिया महाविद्यालय चूरू में नियुक्ति हुई।

आप सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक और औपनिषदिक आभा के रचनाधर्मी हैं। वे भारतीय प्रज्ञा के प्रतिनिधि गद्यकार और सर्वमांगलिक परिकल्पना के काव्यकार हैं। हिन्दी नवलेखन में वे एक गरिमामय अभिजात शैली के प्रवर्तक सिद्ध हुए हैं। सामौर का व्यक्तित्व उनकी साहित्यिक शैली बनता गया। वह लगातार नवीन विषयों की खोज करते हैं एवं सामाजिक सरोकारों से सरलता और स्वतंत्र लेखन की खोज में सदैव आगे बढ़ते रहे हैं।

द्वितीय अध्याय– आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य और भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का वैशिष्ट्य में आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य का स्वरूप और विकास, भंवर सिंह सामौर की गद्य दृष्टि के अन्तर्गत हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा, हिन्दी गद्य का उद्‌भव एवं विकास, प्रारम्भिक गद्य रचनाएं, भारतेन्दु युग में गद्य का विकास, द्विवेदी युग मे गद्य का विकास, हिन्दी निबन्ध विधा का विकास– भारतेन्दु युग (1873 ई.– 1900 ई.), द्विवेदी युग (1900 ई.– 1920 ई.), शुक्ल युग (1920 ई.– 1940 ई.), शुक्लोत्तर युग (1940 ई. के उपरान्त), हिंदी साहित्य का जीवनी–साहित्य, भंवर सिंह सामौर की गद्य दृष्टि– सामाजिक दृष्टि में– सेवाकार्य, युवाओं की समस्याएँ एवं समाधान, उपेक्षित वृद्धों को सम्मान, जन्मदात्री, पोषणकर्मी को आश्रय, पशुपालन युग के प्रतीक पुरूष, समाज के सारथी, समाज एवं सत्ता के सेतु, लोकहित में समाज निर्माण, चारण समाज अमूल्य रत्न, धार्मिक दृष्टि में– धर्म एवं सम्प्रदाय, धर्माचार्य, आध्यात्मिक दृष्टि, मनुष्य केवल मनुष्य, संगठन में आस्था और विश्वास, अहिंसा मार्ग के हिमायती शैक्षिक दृष्टि में– अज्ञानता का विरोध, लोक

साक्षरता एक अभियान, अनेवाद की महत्ता, आर्थिक दृष्टि, स्वास्थ्य जीवन में सर्वोपरि, नैतिकता व्यक्तित्व का मूलाधार, आदर्श मानवीय जीवन का नियामक, वैज्ञानिक तर्क शक्ति, वैचारिक सार, सांस्कृतिक दृष्टि में– ईश्वर के प्रति आस्थिक भाव, गंगाजल की पावनता, गोदान जीविका का आधार, राजनीतिक दृष्टि में– राजा से भी महान् कविराजा, व्यंग्यात्मकता, स्वतंत्रता के प्रति दृष्टि, गुलामी व स्वतन्त्रता में भेद, हर सांस देश हित में, भय से मुक्ति, सामरिक चिन्तन, जीवदया भाव, प्रकृति संरक्षक, वृक्षों की रक्षा, दूर दृष्टि वसुधैव कटुम्बकम् भाव की लोकमंगलकारी दृष्टि पर प्रकाश डाला है।

सामाजिक दृष्टि का मूल आधार धर्म, संस्कृति, परम्परा एवं इतिहास की भूमि पर आधारित है जिसका प्रचार समस्त विश्व में है। उनके अनुसार विविध सेवा कार्यक्रमों की लम्बी सूची है जैसे 'कोई भूखा ना सोए' से लेकर 'नेत्र शिविर', 'बवासीर निर्मूलन', 'स्वास्थ्य सेवा', 'आयुर्वेद केन्द्र', 'सद् साहित्य प्रकाशन', 'कार्यकर्त्ता प्रशिक्षण', 'असहाय सहायता' आदि तक भी रूकती नहीं है। उनका सेवा मार्ग सत्संग से संगठन की ओर होता हुआ सेवा तक पहुँचता है। उनके अनुसार सेवा योग है अर्थात् सेवा धर्म है। उन्होंने देखा कि विश्व भर में भारतीय वृद्ध बहुत ही उपेक्षित हैं। उन्हें कोई पूछने वाला नहीं है। आपने वृद्धों की समस्या समाधान हेतु वृद्धों को लाकर भोजन करवाना या बस में भोजन ले जाकर भोजन कराने का मार्ग दिखाया। निराश्रित स्त्रियों के लिए भी एक आश्रम स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त किया। धार्मिक दृष्टि में प्रतिपादित किया है कि धर्म किसी से बैर रखना नहीं सिखाता। इसलिए गाँधीजी वाली सर्वधर्म प्रार्थना को अपनी प्रार्थना में स्थान दिया। वे सभी धर्मों का आदर करते थे। आध्यात्मिक दृष्टि में विश्व में भारत का बड़ा सम्मान है, क्योंकि भारत ने वेद, उपनिषद्, रामायण, गीता, महाभारत, राम और कृष्ण, गौतम व गाँधीजी को जन्म दिया। शैक्षिक दृष्टि में वह मैकाले ने जो लकीर खींच दी उस लकीर को जो केवल अंग्रेंजों के ऑफिसों में बाबू बनकर काम करने हेतु दी जाती थी। उसको तोड़ डालने का आगाज करते हैं। वह लोकतान्त्रिक

व्यवस्था में लोक को साक्षर करने के लिए लोक साहित्य का महत्त्व स्वयं सिद्ध करते हैं। आर्थिक दृष्टि में ज्ञान प्राप्त होने के बाद आपने अनुभव किया कि ''बिना पैसे (धन) के भी साधारण ही नहीं अच्छा जीवन चल सकता है। आप के अनुसार धन का सदुपयोग दान करके समाज का उत्थान करने में है। इस दानरूपी जीवन दर्शन के आधार पर वह स्वस्थ समाज के विकास में निजी धन के योगदान की नींव रखना चाहते हैं। अहिंसक दृष्टि में किसी भी प्रकार के जीव को हानि पहुँचाना हिंसा है। हिंसा केवल मात्र शस्त्रों से नहीं होती, कठोर वचन, ईर्ष्या, द्वेष आदि भावों से भी होती है। सामरिक दृष्टि में बताया है कि गीता ने इस विश्व को एक पवित्र कर्म भूमि माना है। धर्म के अतर्गत कार्य करने वाला व्यक्ति ही श्रेष्ठ है। पुण्य की प्राप्ति के लिए पाप का नाश करना परम कतर्व्य है। पाप के नाश के लिए धर्म युद्ध आवश्यक है। चारण बड़ी अमोलक चीज निबंध संग्रह व चारण साहित्य हमें सिखाता है कि वीरता, स्वतन्त्रता की रक्षा हेतु हमें लड़ना भी पड़ता है, मरना भी पड़ता है। इस परम्परा को इन कवियों ने जींवत बनाए रखा है।

दूर दृष्टि में एक चिंतन को जगाया है। 1992 में आजाद होने वाला मॉरीशस आज एक लोक–कल्याणकारी राज्य है। यहाँ शिक्षा मुफ्त है। यहाँ चिकित्सा मुफ्त है। वृद्धावस्था पेंशन है। विधवाओं की अनेक प्रकार से सहायता की जाती है। वहाँ कोई बिना घर का नहीं हैं। वहाँ कोई बेकार नहीं है। भारत तो उससे पहले 1947 में आजाद हुआ था अतः यहाँ भी ऐसी व्यवस्थाएँ होनी चाहिए। आज भारत में बेरोजगारी सबसे बड़ी समस्या है।

तृतीय अध्याय– भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का कथ्य में जीवन दर्शन एवं समाज में– धर्मावतार युगान्तरकारी संन्यासी के जीवन का मूल मंत्र प्रेमभाव, सहज सेवा दर्शन, सहज सेवायोग, लोकसेवा, कंचनमुक्ति, मोक्ष, निष्काम भाव से लोक संग्रह, अभिनव प्रयोग में गंगाजल वितरण, गोदान उत्सव, रामायण और गीता का वितरण, सर्वे भवन्तु सुखिन की विश्व मंगल और मानवतावादी भावों को प्रकट किया

है। प्रकृति चित्रण में– सहज प्राकृतिक जीवन, प्राकृतिक जीवन शैली, नीलगाय, कुरजा, मुर्गों, ऊँटनियों आदि वन्य जीवों की रक्षा, पशुपालन व कृषि कार्य की महत्ता, मॉरीशस जलपरियों का देश, रेती के प्राकृतिक बिछौने का देश, स्वर्ग की रचना का प्रेरक मॉरीशस, बारा राष्ट्रीय उद्यान एवं मर्चीशन प्रपात का प्राकृतिक सौंदर्य के संरक्षण की महत्ता प्रतिपादित की है। राष्ट्रीयता में– जन्मभूमि से प्रेम, स्वतन्त्रता की रक्षा, अठ्ठारह सौ सत्तावन की क्रांति में क्रांतिवीर शंकरदान सामौर का योगदान, राजस्थानी शक्ति काव्य, युद्ध नायक शेखावाटी के यशस्वी चारण, वीर प्रसूता भूमि शेखावाटी, स्वतंत्रता संग्राम का आगाज चूरू मंडल के यशस्वी चारण, शौर्य रूपी संजीवनी शक्ति के प्रेरक चूरू के योद्धा, आत्मोत्सर्ग की पावन भूमि आऊवा, प्राचीन राजस्थानी काव्य का परिचय, रावत सारस्वत का अद्वितीय व्यक्तित्व व कृतित्व, पुस्तक सबसे बड़ा स्मारक है यह तथ्य उजागर किए हैं। व्यंग्य में– प्रेम के नाम से पापाचार, मैकाले की शिक्षा गुलामी में खींची लकीर, धर्माचार्य तोते, अपनी–अपनी डफली और अपना–अपना राग पर आधारित व्यंग्य पर कटाक्ष को दर्शाया गया है। आधुनिक बोध में– भारतीय चिंतन एवं क्रिया में युगांतर, विश्व शांति की कामना, वर्तमान विज्ञान पर आधुनिक बोध, तुलनात्मक आधुनिक बोध, हर व्यक्ति का कर्म महान्, लोक पूज्य देवियां आधुनिक बोध की प्रतिनिधि में नारी की महिमा को अभिव्यक्त किया है। समकालीन चिंतन धाराएँ एवं विमर्श में– लोक साक्षरता का महायज्ञ, समकालीन चिंतन, समकालीन चिंतन और युद्ध–काव्य, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, मरण–त्यूंहार, सैनिकों को नई दृष्टि व प्रेरणा प्रदान करना, समकालीन विमर्श मानव चेतना, नवोदित कवियों को प्रेरणा, संगठन शक्ति की महत्ता, नूतन प्रेरणा, सर्वधर्म आदर, सांस्कृतिक सनातन दृष्टिकोण, सांस्कृतिक परम्परा, मीडिया की चुनौती, विमर्श प्रवासी भारतीयों की पुण्य भूमि भारत, आज की युवा पीढ़ी की छटपटाहट, सेवा संगठन एक मौसम, संगठन की समाप्ति आत्महत्या, सांस्कृतिक वर्षा, तत्परता, परहित कामना, भारत एक आध्यात्मिक देश, निर्भय होकर कर्म करें, वृद्धावस्था का समाधान, सेवाकार्यों के मूल आधार, संस्कार सिंचन, एक–एक रुपया

प्रति परिवार से एकत्र करके सेवा कार्य करना, महिला आश्रम, काल चेतना आदि के कथ्य उजागर किये गये हैं।

भारतीय जीवन दर्शन के अन्तर्गत पुरुषार्थ को ही जीवन दर्शन के रूप में मान्यता दी गई है। हिन्दू जीवन दर्शन ने समाज में मानव जीवन के चार उद्देश्य स्वीकार किए हैं— धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। आपने शासन सत्ता से कोसों दूर रहकर सेवा की महिमा एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को स्थापित किया हैं। उनकी दृष्टि मे सच्चा धर्म वही है जो मनुष्य को मनुष्य से प्रेम की सीख दे। इसी सर्वव्यापी प्रेम के कारण मनुष्य मात्र की महत्ता उनकी दृष्टि में बड़ी थी। आज निराशा के गहन कुहासे में उनके प्रेमभाव के ये विचार आशा रूपी आलोक की तीव्र और तीखी किरणें हैं, जिनसे पारिवारिक विघटन, संत्रास और घृणा में डूबा संसार आज भी बहुत कुछ प्रेम का प्रकाश पा सकता है। मनुष्य के पिछड़ेपन और विकास का मूल कारण उसके विचार होते हैं। उन्होंने गौ—सेवा को अर्थ, स्वास्थ्य, सेवा धर्म और मोक्ष मंगल कामना से जोड़ दिया। आज वैश्विकरण की अंधी दौड़ में मानव ने प्रकृति का इतना दोहन किया है कि ग्लोबलवार्मिंग की समस्या से समूचा विश्व जूझ रहा है। वैश्विक मंचों से प्रकृति संरक्षण की बातें तो होती हैं, पर कथनी और करनी में कहीं भी एकता दिखाई नहीं देती। सामौर के गद्य साहित्य के कथ्य में प्रकृति के इसी रक्षार्थ भाव को देखा जाता है। चारण नारियों ने बैल को नाथ से, ऊँट को नकेल से, घोड़े को लगाम से, हाथी को अंकुश से, सिंह को चाबुक से, किसी को पांव से, किसी को सींग से वश में करके प्रेम से ऐसा पालतू बनाया कि फिर तो ये प्राणी सामाजिक जीवन के अस्तित्व का आधार बन गए। चारण साहित्य हमें सिखाता है कि स्वतन्त्रता की रक्षा हेतु हमें लड़ना भी पड़ता है, मरना भी पड़ता है। इस परम्परा को इन कवियों ने जीवंत बनाए रखा है। देश रक्षा का युद्ध दानव, असुर, यवन, शक, हूण, अरबी, पठान, मुगलों आदि के खिलाफ शुरू हुआ युद्ध अंग्रेजों के शासन काल में भी जारी रहा। चारणों ने यहाँ हमेशा ही परदेशी हमलावरों के खिलाफ मुकाबले की जोत को जलाए रखा। इस बात के साक्षी झंवर और साका है। हजारों

वर्षों से इस धरती के पुत्र और पुत्रियों ने चारण के बिड़दाने से देश की रक्षा के लिए बलिदान करने की होड़ सी लगाए रखी है। गाँव–गाँव और ढाणी ढाणी में जुझारू वीरों के त्याग और बलिदान की यश गाथाएं, जीवित समाधी, निशान रूप सहित मंदिर, देवल इस बात के साक्षी हैं।

आज गाँधीजी के सभी अनुयाईयों ने उनके मूल सिद्धातों को भुला दिया है। सभी सत्ता सुंदरी की चाह में साम, दाम, दंड, भेद की नीति पर चल रहे हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा कि जिसने सेवा धर्म अपना लिया वह सारे बंधनों से मुक्त हो गया। सभी मनुष्य भाई–भाई है। सभी मनुष्य एक जाति के हैं। श्रेष्ठता सेवा से होती है, जन्म से नहीं। उन्होंने मनुष्य को मनुष्य की सेवा मनुष्य की हैसियत से ही करने की बात कही तथा धर्मगत, जातिगत, रंगगत, भौगोलिक सीमागत, वंशगत, संस्कारगत, विश्वासगत और शास्त्रगत विषमताओं के जाल को छिन्न–भिन्न करने के लिए अदम्य साहस के साथ संपूर्ण विश्व को अपनी कर्मस्थली बनाकर नई परंपरा डाली। इस विराट सेवा आंदोलन के सबसे प्रमुख आधुनिक बोध के कृतीनेता के रूप में उनका सेवाकार्य आज के दिग्भ्रमित व टूटे हुए मनुष्य को जोड़कर एक जीवंत भविष्य देता है। वह विश्व शांति की मंगलमय कामना है।

चतुर्थ अध्याय में भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य का शिल्प में भाषा वैशिष्टय में शैली, शिल्प परिभाषा एवं स्वरूप, गद्य साहित्य का शैलीगत अध्ययन, शैली का स्वरूप, वर्णनात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, संवादात्मक शैली, काव्यात्मक शैली, वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग, आँचलिकता, पूर्वदीप्ति, साक्षात्कार शैली आदि का वर्णन है। रचना प्रक्रिया में राजस्थानी भाषा का प्रयोग, संस्कृत भाषा के वाक्य, शब्द विधान, संस्कृत शब्द(तत्सम् शब्द), अंग्रेजी शब्द, फारसी शब्द, अरबी शब्द, तुर्की शब्द, पुर्तगाली शब्द, द्विरुक्त शब्द, ध्वन्यार्थक शब्द, जोड़े के साथ आये सादृश्य शब्द, विशेषण, कहावतें(लोकोक्तियां), मुहावरों का प्रयोग, काव्य पंक्तियाँ व गीत, वाक्य विन्यास, हिन्दी–अंग्रेजी वाक्य, पूर्ण अंग्रेजी वाक्य, घोषणाओं से युक्त वाक्यों

पर शोध किया गया है। इसमें भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य के अभिव्यक्ति पक्ष का अध्ययन करने के पश्चात् निष्कर्ष है कि इनका अनेक भाषाओं पर अधिकार है। राजस्थानी, गुजराती, भोजपुरी, बंगाली, हिन्दी आदि भाषाओं पर इनकी बखूबी पकड़ है। आपको हिन्दी साहित्य में अद्वितीय महारथ हासिल है। इनका गद्य साहित्य हिन्दी का विशुद्ध गद्य है। जान बूझकर बनाई गई भाषा पर सामौर का सख्त ऐतराज जाना–पहचाना है। यद्यपि विन्यास या लहजे में वक्रता विदग्धता उनका अपना कौशल है। इनके गद्य साहित्य में भाषा के अनेक सृजनात्मक प्रयोग प्रस्तुत हैं। शब्द योजना में वैविध्य है। प्रसंग के अनुसार भिन्न–भिन्न शब्द योजना का प्रयोग करके आपने संवादों में पैनापन और गहनता ला दी है। गद्य साहित्य में वाक्य रचना के अन्तर्गत विविध पद्धतियाँ प्रयुक्त है। अधिकांश वाक्य संगठित, प्रवाहमय और प्रभावशाली हैं, जिनसे वाक्य संरचना में लेखक की सशक्तता का बोध होता है। लेखक ने अपने गद्य साहित्य की भाषा का सौन्दर्य बढ़ाने के लिए विविध भाषा उपकरणों का प्रयोग किया है, जिसमें वे सफल हुए हैं। गद्य की अभिव्यक्ति को कम शब्दों में सारगर्भित एवं प्रभावपूर्ण ढंग से कहने के प्रयोजन से गद्य साहित्य की भाषा में शेरोशायरी, कहावतों, मुहावरों, काव्य पंक्तियों का प्रयोग किया है। गद्य साहित्य में विषयवस्तु, उद्देश्य तथा मूल संवेदना के अनुरूप ही एक विशिष्ट भाषा का आविष्कार किया है। इनके गद्य साहित्य में शैलीगत प्रयोगों का वैविध्य दिखाई देता है। भाषा के साथ–साथ कथा साहित्य में प्रसंग या परिस्थिति के अनुसार भिन्न–भिन्न प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है, जैसे– वर्णनात्मक, संवादात्मक, काव्यात्मक, फ्लैशबैक, आत्मकथात्मक शैली आदि का प्रयोग करके भाषा को सुगमता से प्रवाहमान, संप्रेषणीय एवं संवेदन बनाया है।

सामौर ने शैली को अभिनव प्रयोग द्वारा समृद्ध किया है। शैली की विविधता, मौलिकता, प्रस्तुतीकरण का अनूठा अंदाज एवं अभिनव रूप के कारण इनके साहित्य का कलापक्ष अत्यंत प्रभावी बना है। जिसके आधार पर हम कह सकते हैं कि शिल्प की दृष्टि से भी यह गद्य साहित्य सफलता के उच्चतम् शिखर पर पहुँचा है। यद्यपि

इनके साहित्य का शिल्प–सौष्ठव उनका लक्ष्य नहीं हैं तथापि इन विधाओं के शिल्प के प्रति वे पर्याप्त सजग हैं। आपने अपने साहित्य में वैज्ञानिक शब्दावली को भी स्थान दिया हैं। 'राजस्थानी शक्ति काव्य' में शरीर के संदर्भ में लिखते हैं कि– ''वैज्ञाानिक मान्यता के अनुसार भी कण–कण में शक्ति निहित है। लोक में भी पदार्थों की शक्ति गति से मापी जाती है। चलने–फिरने, भार उठाने, कार्य करने, सोचने, समझने का सामर्थ्य या गति ही शक्ति कहलाती है। गति या शक्ति सभी जड़ या चेतनों में होती है। एक परमाणु के विखण्डन से इतनी ऊर्जा उत्पन्न होती है कि उससे बड़े से बड़ा देश नष्ट हो सकता है। हमारा शुक्र जीव कणों से बना है। जिन्हें कोष कहा जाता है। प्रत्येक जीवकण में भी गति होती है। ये व्यवस्थित रूप में एक दूसरे के प्रति आकृष्ट और विकृष्ट होते हैं। इसी प्रकार जड़ पदार्थों का प्रत्येक कण अणु और परमाणु भी अनेक विधुत कणों से बनता है। विधुत दो प्रकार का होता है– पोजिटिव और नेगेटिव। पोजिटिव के चारों ओर नेगेटिव एक सैकेण्ड में एक लाख अस्सी हजार मील की रफ्तार से गतिमान है। इसी प्रकार परमाणु, प्रभाणु, कर्षाणु तथा सर्गाणु के सम्बन्ध में समझना चाहिए तथा इससे आगे वाणी भी मौन हो जाती है। आधिभौतिक(मेटा फिजिकल) पृष्ठभूमि में देखें तो पुरुष प्रकृति का चित्रण वराह तन्त्र में मिलता है जिसके अनुसार स्त्री में गर्मी–सर्दी, बीमारी आदि सहन करने की शक्ति पुरुष से चौगुनी ज्यादा होती है। उसके 121 नाड़ियाँ पुरुष से ज्यादा हैं। इस धरती पर जितने भी कार्य होते हैं वे नेगेटिव चार्ज(रिसीवर) के माध्यम से ही सम्पन्न होते हैं– खाना, पीना, देखना, सुनना, बोलना, विचारना आदि। इसी प्रकार सामौर ने गणितीय सिद्धान्त को भी साहित्य में जगह दी है– पॉजिटिव 5 × नेगेटिव 2 = $10X^5$(पंच तत्त्व) =50 + ईथर = शक्ति।'' जिसके कारण आपके गद्य साहित्य की भाषा अत्यंत प्रभावशाली बन गई है।

पंचम अध्याय भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में जीवन मूल्य में आदर्शवादिता, राष्ट्रीयता, सामाजिकता, नैतिकता के अतर्गत मानव मूल्यों का पारिभाषिक विवेचन, मानव मूल्यों में परिवर्तन, जीवन मूल्य का अर्थ एवं समानार्थी शब्द, मूल्य शब्द की

व्युत्पत्ति, संस्कृत, पाश्चात्य एवं हिन्दी विद्वानों की मूल्य विषयक मान्यताएँ, मूल्य और जीवन मूल्य, मूल्य और मानव मूल्य, मूल्य और तथ्य, मूल्य और आदर्श, मूल्य और नॉर्म, मूल्य और वर्जनाएँ, मूल्य और नैतिकता, जीवन मूल्य : अभिप्राय, जीवन मूल्य : परिभाषा, जीवन मूल्य, स्वरूप और महत्त्व, जीवन–मूल्य : संरचना और प्रभावक आधार, जैविक आधार, शारीरिक संरचना, मूल प्रवृत्तियाँ– संवेग, प्रेरणा, सहानुभूति, अभिरुचि, तर्क, पराजैविक आधार, सामाजिक आधार, प्राकृतिक आधार, मानविकी आधार–धर्म, दर्शन, विज्ञान, शिक्षा, साहित्य और कला, जीवन मूल्यों का वर्गीकरण और संक्रमण–मूल्यों का वर्गीकरण, जैविक मूल्य (शारीरिक मूल्य), पराजैविक मूल्य (सामाजिक तथा मानविकी मूल्य), पराजैविक सामाजिक मूल्य, पराजैविक मानवीय मूल्य, मूल्यों का वर्ग संक्रमण, जीवन मूल्य और साहित्य–साहित्य और जीवन मूल्यों का परस्पर संबन्ध, साहित्यिक मूल्यों की रचना प्रक्रिया पर जीवन मूल्यों का प्रभाव, जीवन मूल्यों के संक्रमण पर साहित्य–प्रदत्त मूल्यों का प्रभाव, साहित्य और मूल्य सम्बन्ध : विभिन्न विद्वानों के अनुसार, गद्य और जीवन मूल्य, सामौर के गद्य साहित्य में जीवन मूल्य– आदर्शवादिता, राष्ट्रीयता, सामाजिकता, नारी स्वाभिमान, आतिथ्य सत्कार, नैतिकता पर प्रकाश डाला है।

मानव मूल्यों के गिरते स्तर को भंवर सिंह सामौर ने अपने साहित्य में एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया है। आज आदर्शवादिता, राष्ट्रीयता, सामाजिकता और नैतिकता जैसे जीवन मूल्यों में बदलाव आने लगा है। संघर्षपूर्ण स्थिति में परिवार टूटते जा रहे हैं। वैश्वीकरण की अंधी दौड़ के मानव ने अपने आप को बिकाऊ बना लिया है। मूल्य संक्रमण के इस दौर में राजनीतिक परिस्थितियां भी कम जिम्मेदार नहीं है। 'यथा राजा तथा प्रजा' की पारम्परिक उक्ति के अनुसार नीतिहीन सत्ता केन्द्रित राजनीति ही सारे नैतिक अवमूल्यन की जड़ है। राजनीति के क्षेत्र में हमारे देश को बहुत संत्रास भोगना पड़ा है। प्रजातन्त्र के नाम पर कुर्सी हथियाने के हथकण्डे, चुनाव प्रचार के समय किए गए वायदे, नोटों के बदले वोट की राजनीति, दलदल और राजनीतिक दांव पेंच, रुपयों के बल पर बनती और

टूटती सरकारें, राजनीतिक परिवेश में व्याप्त अनीति और अनाचार की कुछ तस्वीरें हैं जो भारतीय राष्ट्रवाद को कमजोर बनाती है। सामौर के साहित्य में इन पर करारी चोट की गई है। राष्ट्रप्रेम को स्पष्ट करते हुए सामौर लिखते हैं कि धरती पर संकट आये, मनुष्यता पर संकट आए, स्त्रियों की इज्जत पर संकट आए तो चाहे राजा हो, चाहे रंक हो सभी अपने प्राणों की बाजी लगाकर इन तीनों संकटों को टालते हैं। जीते जागते ये संकट नहीं आने देते हैं।

भारत शांति का उपासक रहा है, परन्तु आत्मरक्षार्थ स्वाधीनता तथा सिद्धान्तों के अस्तित्व की अक्षुण्णता के लिए किये जाने वाले युद्ध में भारतीय जन मानस को आदर्शों के प्रति जागरुक रखना भारतीय साहित्यकारों का ही कर्तव्य था। वे साहित्य के माध्यम से देश को नई प्रेरणा देकर राष्ट्र के प्रति गौरव भावना के प्रसार से जन मन तथा सीमा पर खाई में जूझने वाले सैनिकों को नई दृष्टि प्रदान कर मूल्यवान कार्य करते रहे हैं।

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में सामाजिक मूल्यों का आशय व्यक्ति की सामाजिकता का उन्नयन करने वाली जीवन दृष्टियों से है। साथ ही मनुष्य की सामूहिकता, जातीय सुरक्षा, सुहानुभूति तथा सन्तानोत्पत्ति आदि मूल प्रवृत्तियों की तुष्टि से संबंधित उन प्रतिमानों से है, जो मनुष्य की सामाजिकता के उत्थान हेतु आवश्यक होते हैं। सामाजिक मूल्य के तौर पर अतिथि सम्मान को बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। आपने समाज की सामूहिकता पर बल दिया है। नैतिक मूल्यों में दया, त्याग, पवित्रता, सत्य आदि शाश्वत मूल्य हैं। समाज, राज्य तथा धर्म के द्वारा स्वीकृत व्यवहार ही मूल्य के अन्तर्गत आते हैं। नैतिकता के लिए नीति की शिक्षा नहीं, धर्म की शिक्षा अपेक्षित है।

षष्ठ अध्याय– भंवर सिंह सामौर का गद्य साहित्य में योगदान के अंतर्गत गद्य साहित्य लेखन, निबंध एवं जीवनी लेखन, राजस्थानी भाषा साहित्य, लोकदेवी साहित्य, लोकपूज्य देवियां, चारण देवियों की ऐतिहासिक परम्परा, समाज में लोक

देवियों की भूमिका एवं महत्त्व, सामाजिक शक्ति का निर्माण एवं प्रतिनिधित्व, चारण समाज, राष्ट्र निर्माण में चारणों का योगदान, चारण का शाब्दिक अर्थ, चारणों का भौगोलिक विस्तार, चारणों के मुख्य भेद, देवी के उपासक, शक्ति आदोलन का इतिहास, राजस्थानी शक्ति काव्य विश्व साहित्य में बेजोड़, पशुपालन युग का विकास, मूल मंत्र पुरुषार्थ एवं लोकहित, प्रकृति संरक्षण का महत् संदेश, शेखावाटी के चारणों के साहित्य का इतिहास, शेखावाटी के यशस्वी चारण, अद्वितीय राष्ट्र प्रेम, चूरू के चारण साहित्य का इतिहास चूरू मंडल के यशस्वी चारण, प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के आंदोलन का इतिहास, आऊवा का धरना, शक्ति आंदोलन का इतिहास, प्राचीन राजस्थानी काव्य, निबंध लेखन योगदान में चारण बड़ी अमोलक चीज (निबंध संग्रह) जीवनी लेखन में योगदान में युगान्तरकारी संन्यासी(जीवनी), स्वतंत्रता का महत्त्व, हमारे साहित्य निर्माता रावत सारस्वत(जीवनी), मीणा जाति का इतिहास, राजस्थानी भाषा साहित्य में योगदान, शंकरदान सामौर (जीवनी), मरण–त्यूंहार, संस्कृति री सनातन दीठ, लोक नीति काव्य, साहित्येत्तर कार्य, अनुवाद, वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग आदि के योगदान को मुखरित किया है।

किसी नयी विधा को लेकर साहित्य इतिहास का लेखन करना अत्यंत कठिन कार्य है। भंवर सिंह सामौर की प्रथम कृति इतिहास लेखन के रूप में लोक पूज्य देवियां है। इनका प्रथम इतिहास लेखन ही गहन शोध व अध्ययन से विवेचित किया गया है। सम्पूर्ण तथ्य प्रामाणिक हैं। आज तक इस प्रकार का दूसरा इतिहास नहीं लिखा गया। अतः इस अछूते एवं नवीन विषय पर इतिहास लेखन करके अपना विशेष योगदान दिया है। राष्ट्र निर्माण में चारणों का योगदान रहा है। ये लोग युद्ध क्षेत्र में राजा के सदैव साथ रहते थे तथा अपनी ओजस्वी वाणी से राजा को युद्ध क्षेत्र में डटे रहने का हौसला प्रदान करते थे। चारण समाज को सामाजिक चेतना का वाहक, सामुदायिक जीवन शैली का प्रतीक, समता स्वतन्त्रता का पर्याय, सामाजिक जीवन में संघर्ष का साथी, संस्कारों के निर्माता आदि संज्ञाओं से भी विभूषित किया जाता है। हमारे राष्ट्र के निर्माण में चारणों के योगदान को नहीं

भुलाया जा सकता है। शक्ति काव्य में जिस आदर व श्रद्धा से स्त्री जीवन की अभिव्यक्ति की गई है वह विश्व साहित्य में बेजोड़ है। स्त्री की शक्ति रूप में पूजा मातृ रूप में वन्दना, वीरांगना के रूप में प्रशस्ति, मार्ग निर्देशिका के रूप में अनुसरण, बहिन के रूप में प्रेरणा तथा गृहलक्ष्मी के रूप में स्वागत की अभिव्यक्ति की गई है। अवसर आने पर वह चण्डी का रूप धारण कर जौहर की ज्वाला का वरण कर शक्ति के अजस्र स्रोत का प्रतीक बन जाती थी। मन वचन कर्म से करुणा का विस्तार स्वावलम्बी जीवन, सत्य में आस्था, सहिष्णुता, धैर्य, निडरता, शरणागत, वात्सल्य, दानशीलता, आत्मबलिदान की भावना आदि उच्च आदर्शों की रक्षार्थं अनुपम वीरता के साथ मर मिटने की भावना इन देवियों में निरंतर स्त्री चरित्र की विशेषताओं के रूप में प्रवाहमान है।

रावत सारस्वत के योगदान से हम मीणा जनजाति के गौरवशाली इतिहास का ज्ञान प्राप्त करते हैं। मीणा इस भूमि के सपूत ही नहीं बल्कि इस देश की प्राचीनतम और आदिम जातियों में से एक हैं। ऐतिहासिक व पुरातात्विक प्रमाण इस बात के साक्षी हैं कि मीणा जनजाति इस देश के मूल निवासी हैं तथा यह एक शासक कौम भी रही है। यह जाति एक बहादुर व स्वच्छन्द प्रकृति की जीवट वाली कौम है जो कभी टूटी नहीं, कभी झुकी नहीं। इन्हें वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, बौद्ध व जैन ग्रन्थ आदि में भी (मत्स्य जाति, आदिम जनजातियों) को किसी न किसी रूप में उल्लेखित किया है।

मीणा शब्द संस्कृत के मीन अर्थात् मछली से आया है मीन से इसकी उत्पत्ति कई अर्थों में महत्वपूर्ण है। विष्णु के दशावतारों में मत्स्यावतार सर्वप्रथम है। विष्णु के अवतार जीवन की उत्पत्ति व विकास को दर्शाते हैं और इनमें मत्स्यावतार या मछली सर्वप्रथम जल से जीवन की उत्पत्ति की ओर इंगित करती है, इस प्रकार 'मीणा' जनजाति का 'मीन' से सम्बन्ध इसकी सबसे प्राचीनता का द्योतक हो सकता है। प्रागैतिहासिक शैल चित्रों में मछली का चित्र अंकन मिलता है। हड़प्पा व मोहन

जोदड़ों संस्कृति के मृदपात्रों, मुद्राओं पर भी मछली का अंकन मिलता है। सिन्धु लिपि में भी 'मत्स्य' के समान चिह्न मिलता है। 'शेखावाटी के यशस्वी चारण' में सामौर चारणों की महत्ती भूमिका का उल्लेख है कि जब समाज के संघर्षी सूर वीरों को समाज भूल जाता है तो उसकी पराकाष्ठा की यशस्वी बातें स्मरण कराकर चारण ही उसे समाज में स्मरणीय बनाते हैं। इस पुस्तक में शंकरदान सामौर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का वर्णन है। मरण–त्यूंहार में बताया है कि युद्ध की घड़ियों में सच्चे कलाकार, साहित्यकार और बुद्धिजीवी का कर्तव्य है कि वह मनोबल को ऊँचा रखने के साथ ही उदात्त भावनाओं, त्याग, शौर्य, वीरत्व को जागृत करें। संस्कृति री सनातन दीठ में संस्कृति के महत्त्व एवं समाज में उनके योगदान को रेखांकित किया गया है। संस्कृति की सनातन दीठ ही व्यक्ति और उसके जीवन को वर्तमान, भूत और भविष्य को एक साथ जीवित रखने में सहायक है। लोक नीति काव्य में लोकतान्त्रिक व्यवस्था में लोक को साक्षर करने के लिए लोक साहित्य का महत्त्व स्वयं सिद्ध है।

साहित्येत्तर कार्यों में लोक भारती भवन बोबासर, चूरू के माध्यम से लोकहित में अनेकानेक योगदान दिए हैं। आपने पुस्तकालय आंदोलन चलाया, कोई भूखा नहीं सोये, समाज सेवा शिविरों की शुरूवात की। राजस्थानी लोक वाचिक परम्परा के संरक्षण हेतु राष्ट्रीय साहित्य अकादमी नई दिल्ली और रूपायन संस्थान बोरून्दा के सहयोग से 3 मार्च से 7 मार्च 2002 में एक राष्ट्रीय कार्यशाला का आयोजन लोक भारती भवन बोबासर में किया। इस कार्यशाला में 21 घण्टे की सीडी सैट और लगभग डेढ़ घण्टे की एक फिल्म भी बनाई गई। जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर के इलेक्ट्रॉनिक मीडिया रिसर्च सेन्टर और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के सहयोग से लोक भारती भवन बोबासर के नाम पर परम्परा की जीवन्त विरासत का प्रतीक नाम से एक डोक्यूमेन्ट्री फिल्म भी बनवाई थी। यह फिल्म संसार भर में चर्चित रही। लोक भारती भवन बोबासर के माध्यम से राजस्थान और गुजरात के लगभग 50 गाँव और शहरों में पुस्तकालय स्थापना के

लिए पुस्तकों के सैट वितरित किये हैं। राजस्थानी रसधार के नाम से दो खण्डों में राजस्थानी दोहे सम्पादित किए हैं। एक पुस्तक दूहा कथा कोश नाम से सम्पादित की है। अनुवाद में भर्तृहरि के श्रृंगार शतक का राजस्थानी भाषा में सिणगार सतक नाम से अनुवाद किया है। गुजरात के सुप्रसिद्ध गुजराती कवि जयन्त पाठक की कविता की पुस्तक 'अनुनय' का राजस्थानी भाषा में 'अरज' नाम से अनुवाद किया है। गुजराती कवि जगदीश जोशी की पुस्तक 'वमल नां वन' का राजस्थानी में 'वमल रा वन' नाम से अनुवाद कर सामौर ने राजस्थानी कवियों में अपनी ख्याति अर्जित की। आपके यात्रा वृत्तांत और संस्मरण भी बहुत ही लोकप्रिय है। कोलकाता, हैदराबाद, हरिद्वार, गुजरात और आबू पर्वत का यात्रा वृत्तांत अत्यंत ही मार्मिक हैं। आपके कविता संकलनों में समाज, राजनीति, धर्म आदि की विद्रूपताओं पर सार्थक व्यंग्य किया गया है। कविता के क्षेत्र में आपने महत्वपूण योगदान प्रदान किया है।

उपसंहार में सभी अध्यायों का सार बताया गया है। इसमें सारगर्भित तथ्यों को दर्शाया है। सामौर श्रेष्ठ शिक्षक हैं। शिक्षक समदर्शी होते हैं अतः उन्होंने स्थान–स्थान पर इस भावना को वैश्विक धरातल पर पहुँचाया है और लक्षित किया है– विश्व के सभी लोगों को मेरा यही कहना है कि वैर मत करो। प्रेम करो। शोषण मत करो। सेवा करो। अच्छा बोलो। दुखियों का दुख बाँटने से दुखः हल्का होता है और सुख में शामिल होने से सुख में वृद्धि होती है। सबको सुखी बनाने का प्रयास करो। आप भी सुखी होंगे। आतंकवाद की विभिषिका में जलती विश्व धरा पर सामौर का समदर्शी सिद्धांत कल भी प्रासंगिक था, आज भी प्रासंगिक है, और युगों–युगों तक प्रासंगिक रहेगा।

आधार ग्रन्थ सूची

लोक पूज्य देविया चारण

चारण बड़ी अमोलक चीज चारण साहित्य

युगान्तरकारी सन्यासी

आऊवा का धरणा

हमारे साहित्य निर्माता रावत सारस्वत

शेखावाटी के यशस्वी चारण

चूरू मण्डल के यशस्वी चारण

शंकरदान सामौर

मरण त्यौहार

लोकनीति काव्य

प्राचीन राजस्थानी काव्य

राजस्थानी शक्ति काव्य

संस्कृति री सनातन दीठ

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. साहित्य में गद्य की नई विविध विधाऍं
2. साहित्यिक निबंध– गणपति चंद्रगुप्त
3. समकालीन हिन्दी आलोचना– सं. परमानन्द श्रीवास्तव
4. आधुनिक हिन्दी काव्य– डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास– डॉ. नगेन्द्र
6. आज का हिन्दी साहित्य– प्रकाशचन्द्र गुप्त
7. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ– शिवकुमार शर्मा
8. समकालीन गद्य– शकुन्तला सिंह
9. आधुनिक कविता : प्रकृति और परिवेश– डॉ. हरिचरण शर्मा
10. साहित्य संगीत और कला– कोमल कोठारी
11. हिन्दी विश्वकोश– नगेंद्रनाथ बसु
12. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास– नागरी प्रचारिणी सभा
13. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास– गणपति चंन्द्र गुप्त
14. आधुनिक साहित्य– नन्ददुलारे वाजपेयी
15. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ– नामवर सिंह
16. आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धांत– डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त
17. आधुनिक हिन्दी काव्य प्रवृत्तियाँ– करुणापति त्रिपाठी
18. राजभाषा के बढ़ते कदम– त्रिलोकचन्द्र भट्ट
19. हिन्दी साहित्य कोश भाग– सं. धीरेन्द्र वर्मा
20. हिन्दी साहित्य कोश भाग– सं. धीरेन्द्र वर्मा .
21. हिन्दी साहित्य, प्रथम खण्ड– सं. धीरेन्द्र वर्मा एवं ब्रजेश्वर वर्मा
22. हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड– धीरेन्द्र वर्मा
23. हिन्दी भाषा का विकासात्मक परिचय और व्याकरणिक स्वरूप– सतीश शर्मा
24. डिंगल में वीररस– डॉ. मोतीलाल मेनारिया

25. हिन्दी साहित्य का इतिहास– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
26. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (प्रथम भाग)– सं. राजबली पाण्डेय .
27. प्रकृति और काव्य– रघुवंश
28. हिस्ट्र ऑफ राजस्थानी लिट्रेचर– डॉ. हीरालाल माहेश्वरी
29. दिनकर– सं. सावित्री सिन्हा
30. कविता का व्यापक परिपेक्ष्य– सं. डॉ. हेतु भारद्वाज
31. राजस्थान लेखक परिचय कोश– सं. मोहन लाल गुप्ता
32. राजस्थानी भाषा एवं साहित्य– डॉ. हीरालाल माहेश्वरी
33. राजस्थानी साहित्य का इतिहास– बी. एल. माली
34. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि– रामधारी सिंह दिनकर
35. आधुनिक कविता की भाषा, प्रथम खण्ड, भाग 1–2 – बृजकिशोर चतुर्वेदी
36. आधुनिक राजस्थानी साहित्य एक शताब्दी– शांति भारद्वाज
37. राजस्थानी भाषा एवं साहित्य– डॉ. मोतीलाल मेनारिया
38. राजस्थानी साहित्य और संस्कृति– सं. मनोहर प्रभाकर
39. आधुनिक राजस्थानी साहित्य, प्रेरणा स्रोत ओर प्रवृतियां– डॉ. किरण नाहटा
40. आधुनिक भार– श्री हरिप्रसाद राय
41. आधुनिक हिन्दी कवियों की काव्य कला– डॉ. प्रेमनारायण टंडन
42. आधुनिक राजस्थानी कहानी और लोक जीवन– चेतन स्वामी
43. पुस्तक समीक्षा का इतिहास– डॉ. श्रीमति संतोश संघी
44. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प– कैलाश बाजपेई
45. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ– डॉ. नगेन्द्र
46. आधुनिक हिन्दी–काव्य शिल्प– डॉ. मोहन अवस्थी, हिन्दी परिषद्
47. आधुनिक हिन्दी काव्य– डॉ. राजेन्द्रप्रसाद मिश्र
48. आधुनिक हिन्दी–काव्य में परम्परा तथा प्रयोग– डॉ. गोपालदास सारस्वत
49. आधुनिक काव्य में सौन्दर्य भावना– कुमारी शकुन्तला शर्मा
50. आधुनिक प्रतिनिधि कवि और उनका काव्य– जीवन प्रकाश जोशी

51. आधुनिक हिंदी कवियों के काव्य सिद्धांत– डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त
52. आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकार विधान– डॉ. जगदीश नारायण त्रिपाठी
53. चारण साहित्य परम्परा– सं. डॉ. श्यामसिंह रत्नावत एवं डॉ. कृष्णगोपाल शर्मा
54. साहित्य की समस्याएँ– शिवदान सिंह चौहान
55. हिन्दी कथाकार– इन्द्रनाथ मदान
56. हिन्दी कविता में युगान्तर– डॉ. सुधीन्द्र
57. हिन्दी का सामयिक साहित्य– विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
58. हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि– विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
59. आधुनिक कवि– विश्वम्भर मानव
60. कवि समीक्षा– प्रो. श्यामलाकांत वर्मा
61. काव्य चिन्तन– डॉ. नगेन्द्र
62. काव्य–धारा (पुस्तक पत्रिका)– सम्पादक शिवदान सिंह चौहान
63. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास– रामस्वरूप चतुर्वेदी
64. उपन्यास स्वरूप और संवेदना– राजेन्द्र यादव
65. दिनकर और पड़िहार काव्य का तुलनात्मक अध्ययन– डॉ. गीता सामौर
66. अन्तरज्वाला– हनुमानमल बरोड़ 'अज्ञेय'
67. न टूटे न झुके– बैजनाथ पंवार
68. ज्यों की त्यों धर दीनी चदरियाँ– बैजनाथ पंवार
69. राजस्थानी साहित्यः मीमांसा– डॉ. माधोसिंह इन्दा
70. काव्य–विवेचन– प्रो. सुरेशचन्द्र गुप्त
71. भारतीय संस्कृति– डॉ. लल्लन जी गोपाल तथा डॉ. ब्रजनाथ सिंह यादव
72. भारतीय संस्कृति– डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र
73. भारतीय संस्कृति
74. लोक–दृष्टि और हिंदी साहित्य
75. विचार और विश्लेषण– डॉ. नगेन्द्र
76. विमर्श और निष्कर्ष– प्रो. सरनाम सिंह शर्मा

77. किस्तूरी मिरग– चेतन स्वामी
78. राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग प्रथम– राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मंदिर
79. राजस्थान का हिन्दी साहित्य संकलन– राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
80. आधुनिक राजस्थानी साहित्य एक अध्ययन– बी.एल. माली
81. राजस्थानी साहित्य का इतिहास– बी. एल. माली
82. संस्कृति रो सोरम– डॉ. शक्तिदान कविया
83. राजस्थानी साहित्य का अनुशीलन– डॉ. शक्तिदान कविया
84. आधुनिक राजस्थानी साहित्य– भूपतिराम साकरिया
85. मरुधर महिमा– सं. शरद देवड़ा
86. राजस्थान स्वतंत्रता के पहले एवं बाद– सं. चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय
87. राजस्थानी भाषा एवं साहित्य– डॉ. मोतीलाल मेनारिया
88. राजस्थानी साहित्य और संस्कृति– सं. मनोहर प्रभाकर
89. वर्तमान राजस्थान– रामनारायण चौधरी
90. राजस्थान के कवि– सं. रावत सारस्वत
91. वीर सतसई– सं. शंभुसिंह मनोहर
92. आधुनिक राजस्थान– डॉ. रघुवीर सिंह
93. राजस्थानी भाषा– डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी
94. राजस्थानी भाषा और साहित्य– नरोतमदास स्वामी
95. राजस्थानी साहित्य एक परिचय– नरोतमदास स्वामी
96. राजस्थानी साहित्य का महत्त्व– सं. रामदेव चोखानी
97. हिन्दी व्याकरण– कामताप्रसाद
98. आधुनिक हिन्दी शब्दकोश– गोविन्द चातक
99. राजभाषा हिन्दी– अंग्रेजी शब्दकोश– नारायणदत पालीवाल
100. व्यावहारिक हिन्दी– प्रक्रिया और स्वरूप
101. एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका– 1976, अशोक नागर
102. एडवान्सड लर्नर्स डिक्सनरी, इंग्लिश हिन्दी इंग्लिस
103. मॉडर्न टेकनिक ऑफ इंग्लिश ट्रान्सलेशन– डॉ. बी. बी. जैन

104. ऑक्सफोर्ड इंग्लिश हिन्दी शब्दकोश, 2003
105. डायमण्ड हिन्दी–इंग्लिश डिक्शनरी– गिरिराज शरण अग्रवाल
106. रेपिडेक्स इंग्लिश हिन्दी डिक्शनरी– एम आर पुस्तक महल,
107. केम्ब्रिज फ्रेजल वर्बस डिक्शनरी– 2009, केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस
108. वृहद् अनुवाद चन्द्रिका– चन्द्रधर नोटियाल
109. लघु सिंद्धांत कौमुदी– डॉ. अरक नाथ चौधरी
110. संस्कृत व्याकरण रचना कौमुदी– डॉ. अरक नाथ चौधरी, रुपनारायण ़त्रिपाठी

ISSN : 2250-3080

अरावली उद्घोष

सामाजिक साहित्यिक शोध पत्रिका

वर्ष : 31 दिसम्बर- 2017 अंक : 117

UGC Approved Refereed Journal No. 64683

बी.पी. वर्मा पथिक को आदिवासियों के सर्वागींण उन्नयन के लिए प्रथम बहुजन साहित्य सम्मान

आदिवासियों के सर्वागींण उन्नयन के लिए कार्य करने वाले स्व. बी.पी वर्मा 'पथिक' को एक सजग कवि, चिंतक, पत्रकार, समाज शास्त्री, इतिहास विज्ञ और सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में उनकी सेवाओं तथा योगदान के लिए जयपुर में आयोजित दो दिवसीय बहुजन साहित्य महोत्सव में प्रथम बहुजन साहित्य सम्मान प्रदान किया गया। यह सम्मान उनकी सुपुत्री श्रीमती विमला वर्मा ने पूर्व केन्द्रीय मंत्री अरविन्द नेताम व डॉ. संजय पासवान के हाथों ग्रहण किया। साथ में हैं अरावली उद्घोष के सम्पादक डॉ. जनक सिंह मीणा व प्रभाव पोस्ट के संपादक इंजि. राजकुमार मल्होत्रा।

सम्पादक - डॉ. जनक सिंह मीणा

संस्थापक : स्व. बी.पी. 'वर्मा' पथिक ISSN: 2250-3080 जुलाई, 1988 से सतत प्रकाशित

UGC Approved Refereed Journal No. 64683

अरावली उद्घोष

सामाजिक साहित्यिक जनचेतना की शोध पत्रिका

31 वर्ष दिसम्बर, 2017 क्रमांक-117

प्रबन्धन
सर्वथा अवैतनिक एवं अव्यावसायिक
श्री धर्मसिंह एवं श्रीमती विमला वर्मा

✦

त्रैमासिक
साल भर में 4 अंक
सामान्यतः जनवरी, अप्रैल, जुलाई, अक्टूबर में प्रकाश्य

✦

सहयोग राशि
(व्यक्तिगत)

सदस्य (5 वर्ष)	:	550 रुपये
सहयोगी सदस्य (आजीवन)	:	2000 रुपये
वरिष्ठ सहयोगी सदस्य (आजीवन)	:	5000 रुपये

✦

संस्थागत एवं पुस्तकालय

वार्षिक सदस्यता	:	500 रुपये
आजीवन सदस्यता	:	5000 रुपये

- सारे भुगतान मनिऑर्डर या बैंक ड्राफ्ट द्वारा 'अरावली उद्घोष' के नाम से ही किये जायें।

संस्थापक
स्व. बी.पी. वर्मा 'पथिक'

✦

सम्पादक
डॉ. जनक सिंह मीना
मो. 9672751940
ई मेल- jsmeena2020@gmail.com

✦

अतिथि सम्पादक
शंकरलाल मीणा

सम्पादक मण्डलः हरिराम मीणा,
प्रो. एस.के.मीणा डॉ. रमेश चंद मीणा,
डॉ. कुलदीपसिंह मीणा,

सभी प्रकार का पत्र-व्यवहार करने और धन राशि भेजने का पता:
अरावली उद्घोष
सी-3/175, सेक्टर-3, चित्रकूट, गाँधी पथ,
जयपुर- 302021, मोबाइल : 9413388166
वेबसाइट- www.arawaliudghosh.com

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक श्रीमती विमला वर्मा की ओर से हिंगलाज ऑफसेट प्रिंटर्स, 28 ओल्ड स्टेडियम जोधपुर से मुद्रित व 448 टीचर्स कॉलोनी, अम्बामाता, उदयपुर से प्रकाशित, सम्पादक: डॉ. जनकसिंह मीना

"अरावली उद्घोष" में प्रकाशित लेखों/ रचनाओं में व्यक्त विचार/ तथ्य लेखकों के अपने हैं। सम्पादक तथा सम्पादक मण्डल से इनकी सहमति होना आवश्यक/अनिवार्य नहीं है और न ही सम्पादक/ सम्पादक मण्डल इसके लिए उत्तरदायी है।

आगामी अंक (क्रमांक 118) अप्रेल 2018 में प्रकाशित होगा

आदिवासी विमर्श पर केन्द्रित संदर्भित शोध पत्रिका

कहाँ क्या है?

सम्पादकीय	:	(आबू पर्वत के गुरु शिखर से)-संपादकीय : सच उस झूंठ को कहते हैं, जो अभी तक पकड़ में नहीं आया: शंकरलाल मीणा	03
आलेख	:	1. डॉ. भीमराव अम्बेडकर: सामाजिक न्याय की आर्थिक एवं व्यवहारिक पहल: प्रो. डा. राज किशोर प्रसाद	12
	:	2. दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में भारतीय समाज:अजय कुमार 'अजेय'	17
	:	3. डॉ. अम्बेडकर बिना ब्राह्मण हुए विद्वान: बाबूलाल चांवरिया	25
	:	4. लोकतन्त्र के आयाम:कृष्ण कुमार यादव	27
	:	5. भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में नारी :भानीराम मेघवाल	30
	:	6. स्वच्छ भारत, एक चुनौती: बून्दी जिले के सन्दर्भ में अनुभवमूलक अध्ययन: डॉ. अनिल कुमार पारीक, ममता कुमारी तिवाड़ी	34
	:	7. आदिवासी साहित्य में विस्थापन और अस्मिता पर मंडराता संकट : हनुमान सहाय मीना	39
	:	8. नारी विमर्श और महादेवी वर्मा : सुश्री प्रेरणा गौड	41
	:	9 'धार' आदिवासी हिन्दी उपन्यास में प्रतिरोधी स्त्री: नीलम मीणा	45
	:	10. भूमण्डलीकरण के दौर में भाषाओं पर बढ़ता खतरा:आकांक्षा यादव	49
	:	11. आरक्षण के खिलाफ नया षड़यन्त्र: चन्दनमल नवल	53
	:	12. तय करें, कि हम किस ओर हैं।...: अलीक	55
	:	13. आदिवासी हिन्दी उपन्यासों में लोकजीवन:रकमकेश मीना	59
	:	14. वर्तमान समाज में बहुजन नारी का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन: योगिता रानी	64
विविध	:	1. कचरा-प्रबंधन हेतु प्रस्ताव : संजु प्रताप एवं मुनेन्द्र कुमार प्रताप गार्वेज क्लीनिंग के वास्ते	66
	:	2. जोधपुर की अक्षिता को सबसे कम उम्र में राष्ट्रीय बाल पुरस्कार पाने का गौरव	68
कहानी	:	आदिवासियत:रमेश चंद मीणा	69
	:	शराफत: कृष्णकुमार यादव	73
	:	जांच: देवेन्द्र कुमार मिश्रा	76
कविता	:	गिरते पत्तों की व्यथा: डॉ. मीरा रामनिवास-24, जीवन सार क्या लिया क्या दिया: अलीक- 58, लड़कियां- अशोकसिंह, 62, पंछियों की दुनिया: डॉ. मीरा रामनिवास-75, संवैधानिक खेल का यह तमाशा, अलीक- 78, कड़ी मेहनत में कभी बैल... कभी घोड़ा, अलीक-79	
चिट्ठी-पत्री	:	युगेश शर्मा	79

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में नारी

भानीराम मेघवाल

वर्तमान बदलते हुए सन्दर्भों को साहित्य आत्मसात करते हुए हमें नवीन परवर्तित मूल्यों की जानकारी प्रदान करता है। साहित्य ही एक ऐसा साधन है, जिसकी सहायता से हम अपने समय के समाज को देखते हैं और परखते हैं। क्योंकि इसमें पल-पल बदलते हुए समय सन्दर्भों का आंकलन होता है। साहित्य और समाज अन्योन्याश्रित हैं। समाज का प्रतिबिम्ब साहित्य में दिखाई पड़ता है। समाज की धुरी के स्त्री और पुरुष दो पहिये हैं। जब स्त्री शब्द जेहन में आता है तो अनेक भाव तरंग आंखों के सामने तरंगायित होने लगते हैं। कभी शक्ति, भक्ति, नीति, मर्यादा, सभ्यता और संस्कृति की संरक्षिका और पोषिका रूप ध्यान हो आता है, तो कभी उसका शोषित, दीन-हीन, प्रताड़ित, द्वंद्व युक्त अशक्त, अपमानित, तिरस्कृत, विक्षिप्त और टूटा हुआ प्रेम में छला हुआ रूप सामने आता है, तो कभी स्वतंत्रता को स्वच्छन्दता मायने में अपनाने के लिये विद्रोही रूप, भौतिकता की प्राकाष्टा, हृदयहीन एवं अपने नैसर्गिक गुणों को खोता और अन्तःहीन खालीपन लिये नारी का वो रूप सामने आता है जिसे समाज भिन्न- भिन्न रूपों में भूनता रहा, भूनता आया है। नारी के सन्दर्भ में विरोधाभासी धाराणायें भारतीय समाज में व्याप्त रही है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की आधार नारी का स्वरूप प्रत्येक युग में बदलता रहा है। वैदिक काल में ''यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता:'' कहकर नारी के समाज में सम्मान और महत्व को उजागर किया गया है, वहीं भक्ति काल में नारी को मानव समाज को पथभ्रष्ट करने वाली कामिनी, माया, मोहिनी आदि के रूप में चित्रित किया गया है। तो रीतिकाल में नारी को अत्यन्त ही शोषित, पीड़ित व दासी के रूप में चित्रित करते हुए तुलसीदास ने लिखा है कि- ''ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी। सकल ताड़न के अधिकारी।'' इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि नारी का भारतीय समाज में विभिन्न कालों में स्वरूप और सम्मान सदैव परिवर्तित रहा है। वर्तमान में राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में नारी अपनी अलग ही पहचान बना रही है व पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी नजर आ रही है।

भारत में नारी जागरण पर आधारित साहित्य सृजन की झलक बीसवीं सदी के उतरार्द्ध में दिखाई देती है। यद्यपि आदिकाल से लेकर स्त्री लेखन का स्त्री विद्रोह का स्वर मुखरित होता रहा है तथापि एक आन्दोलन के रूप में स्त्री मुक्ति को लक्ष्य बनाकर लिखे गये साहित्य की शुरुआत सन् सत्तर के बाद ही दिखाई देती है, इसका मूल कारण नारी के अपने स्वत्व की पहचान ही है। यह स्वत्व बोध नारी शिक्षा का ही परिणाम है। शिक्षा के परिणाम स्वरूप नारी अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुई है। नारी अपने गुलाम मानसिकता वाली छवि, सती साध्वी या पति प्रमेश्वरी को तोड़कर स्वतंत्र वजूद स्थापित करने के लिये कशमसाहट कर रही है इसे नारी मुक्ति के लिये स्त्री ने लेखन प्रारम्भ किया यह स्त्री लेखन ही उसको काफी हद तक शक्ति प्रदान कर रहा है। सन् सत्तर के बाद का स्त्री लेखन नारी को आत्म पहचान और आत्मबल प्रदान करने वाला है इस लेखन परम्परा में कृष्णा शोबती मैत्रयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, चित्रा मुदगल, नासिरा शर्मा, महादेवी वर्मा, उषा प्रियवंदा,

गीतांजली श्री, प्रभा खेतान, मनु भंडारी, डॉ. नमीता सिंह, अमृता प्रीतम, ममता कालिया आदि ने अपनी लेखनी द्वारा सामाजिक रुढिवादिता के प्रति विद्रोह, नारी मन का असंतोष, पुरुष अहम् को झेलता अन्तर्मन, वर्तमान के प्रति आशा-निराशा के भाव बखूबी प्रकट किये हैं। सामाजिक व राजनीतिक चिंतन, आर्थिक और दैहिक शोषण से स्वतंत्रता की आकांक्षा, समाज के बंधन नकारती विद्रोही स्त्री रचना के विषयवस्तु के रूप में पर्दापण कर रही है। साथ ही नारी की उस संवेदना, नाजुकता, सूक्ष्म मधुरता को व्यक्त कर रही है जो एक नारी जीवन के हर मोड़, हर पड़ाव पर अनुभव करती है।

भंवर सिंह सामौर के गद्य साहित्य में नारी संघर्ष, अन्तर्द्वंद्व, स्वाभिमान, जीवन शक्ति व आत्मशक्ति को ढूंढने के प्रयास, दायित्वों का निर्वहन, मानवीय और सामाजिक मूल्यों की सुरक्षा में व्यक्तित्व को विलीन करने वाला स्वरूप चित्रित हुआ है। नारी को सर्वाधिक सशक्त रूप संकल्पशील नारी के रूप में चित्रित किया गया है। इस स्त्री लेखन ने स्त्री से संबन्धित बहुत से ऐसे मिथक जो स्त्री के उपहास के लिये रचे गये थे को निर्भय होकर बिना किसी अपराध बोध के तोड़ने में काफी हद तक सफलता प्राप्त की है।

सामौर द्वारा रचित कृत्ति 'लोक पूज्य देवियां' पूर्णत: महिला शक्ति पर केन्द्रित है। इस कृत्ति में सामौर ने स्त्री के स्वाभिमान, प्रकृति प्रेम, पशु-पक्षी के प्रति प्रेम को बड़े ही मार्मिक ढंग से चित्रित किया है। सामौर के साहित्य में स्त्री के तीन रूप चित्रित किए हैं। उत्पादिका के रूप में माता, विहारिणी के रूप में बहिन एवं विनाशिका के रूप में पत्नी की स्थापना की है, जो महाशक्ति के रूप में महालक्ष्मी, महासरस्वती एवं महाकाली बनकर विकसित हुई। स्त्री को शक्ति का अवतार माना जाता है। महाशक्ति के रूप में हिंगलाज की पूजा सर्वत्र की जाती हैं। हिंगलाज के दर्शनार्थ आग का दरिया पार करते हुए लोग पूजा अर्चना कर अपनी आस्था प्रकट करते हैं। इसी के अवतार क्रम में माना जाता है कि जब आठवीं शताब्दी में समस्त भारतभर में हूणों ने जो आंतक मचा रखा था, का आवड़ देवी ने बावन हूण आतताईयों का वध करके राजस्थान में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत में शान्ति स्थापित की, जो नारी के सबला रूप को दर्शाता है, अर्थात् आतताईयों से लोहा लेने में भी नारी पीछे नहीं है।

नारी सदैव आत्मसंघर्ष की स्थिति से गुजरती रही है। पुरुष समाज में नारी को दोयम दर्जे का प्राणी मानकर उसके साथ दोहरे मापदण्ड अपनाकर उसका शोषण किया है, नारी इन सभी सामाजिक बन्धनों को तोड़कर पुरुष के बराबर खड़ी नजर आ रही है। स्त्री लेखन में यह स्पष्ट किया गया है कि पुरुष ने नारी को कमजोर, कोमल, अबला आदि कहकर उसकी मानसिकता को उसके अधीन अथवा उस पर निर्भर रहने को मजबूर किया है लेकिन स्त्री वास्तव में अबला कहाँ है?, वह कमजोर कहाँ है?, वह तो पुरुष की हर सफलता, हर कार्य के पीछे एक विशाल पहाड़ की भांति खड़ी नजर आ रही है जिसकी बदौलत पुरुष अपने कार्य में सिद्धी प्राप्त करता है, इसलिये नारी अबला कहाँ है? नारी में इतनी सहनशक्ति और कष्टों से गुजरने की क्षमता है वह तो अपने आप में ही दुर्गा है, देवी है, शक्ति है। सिन्ध के ऊमर सूमरा के राज्य के शासक ने आवड़ के रूप सौन्दर्य पर मोहित होकर विवाह का प्रस्ताव रखा तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया। आवड़ देवी की बहिन खड़ियार पर वल्लभ जी के राजा शिलादित्य सप्तम् ने मुग्ध होकर विवाह की इच्छा व्यक्त की तो खेड़ियार देवी ने उनके साम्राज्य का ही अन्त कर दिया।

कामहा देवी के रूप सौन्दर्य पर जाम लक्खा ने मोहित होकर उसे भाभी कहा तथा पहले खीरा, फिर दूध तथा फिर पानी मांगा। अंगुली से छूने का प्रयास किया तो भस्म हो गया। कामे ही ने सिर्फ इतना ही कहा था कि 'मोरो लागै रै थारै दैवर। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय भी स्त्री विवाह अथवा स्त्रीत्व के सन्दर्भ में अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती थी, जो आज भी भारतीय परिपेक्ष्य में खरा

उतरता है।

नरहा शाखा के चारण की पुत्री बिरवड़ी ने अपनी पाक कला के बल पर जूनागढ़ के राव नवघण को सेना सहित एक ही कूल्हड़ी में भोजन पकाकर खिलाया था, जिसकी बदौलत वह अन्नपूर्णा के रूप में विख्यात हुई। यही नहीं इन्होंने महाराणा हम्मीर को लौटते समय अपने पुत्र सहित पाँच सौ घोड़ों की सहायता करके चितौड़ को पुन: विजित करने में महत्वपूर्ण योगदान देकर राष्ट्रीय भावना का परिचय दिया।

देवलदेवी के गायों के प्रति प्रेम का साक्षी समस्त संसार है कि उसने पाबूजी को अपनी काळमी घोड़ी देकर गायों की रक्षा की थी! देवल चारणी और पाबूजी के गीत राजस्थान के बच्चे-बच्चे की जुबान पर आज भी सुना जा सकता है।

जीव हिंसा के प्रति देशनोक की करणी देवी ने अपने नगर में मनाही के लिए कसाई के निवास का प्रतिबन्ध लगाया था। पुनसरी देवी ने कान्हा राठौड़ के शिकार से अपनी गोद में आए खरगोस को बचाकर शरणागत की रक्षा का कर्त्तव्य निभाया। उसने खरगोस की जान बचाकर जानवरों के प्रति प्रेम का परिचय दिया।

बाईस देवियों ने माधवपुर के राजा से रोझ (नीलगाय) की रक्षार्थ अपने प्राणों की आहुति देकर पशुओं के प्रति स्त्रियों के प्रेम को चरितार्थ किया है। इसी प्रकार सोनबाई के माध्यम से पक्षियों के प्रति प्रेम को व्यक्त किया है कि छत्रावा के पास बहती नदी के किनारे कुरंज पक्षियों की डार चुग्गा-पानी करती हुई जलक्रीड़ा कर रही थी, तब उसी समय मांगरोल का शासक शिकार करने के लिए आता दिखाई दिया। सोन बाई ने ये सोचकर कि मेरी आँखों के सामने इतने सारे प्राणियों का शिकार होगा तो उसने तुरन्त पानी में उतरकर कुरंज पक्षियों को उड़ा दिया तो शासक ने कहा कि जिन्दा जला दूंगा। सोनबाई ने जवाब दिया कि यही रास्ता देख रही हूँ। मैं जीते जी आँखों के सामने जीव हिंसा नहीं होने दूंगी। यह सुनकर मांगरोल दरबार ने रंग देते हुए चरण छूकर कहा माँ तेरे तो सभी सन्तानवत है।

नारी वात्सल्य की प्रतिमूर्ति होती है। नारी के मर्म का आज भी वात्सल्य रूप का संसार ऋणी है। इस सन्दर्भ में नारी का स्थान संसार में कोई नहीं ले पाया है। नारी न सिर्फ अपने पुत्र के प्रति वात्सल्य का भाव रखती है बल्कि पशुओं से भी वैसा ही व्यवहार करती है। सामौर के साहित्य में एक प्रसंग धनबाई के सन्दर्भ में आता है कि एक बार एक कुत्तिया पिल्लों को जन्म देते ही मर जाती है तो धनबाई ने एक स्तन का दूध अपने पुत्र को तथा दूसरे स्तन का कुत्तिया के पिल्लों को स्तनपान करवाकर पशुओं के प्रति वात्सल्य को प्रकट किया है।

नारी कभी भी किसी का अहित नहीं चाहती है। वह पक्षियों के प्रति भी उतनी ही संवेदनशील है जितनी कि मानवता के प्रति। बेचरा देवी के ओरण में मुर्गे मुक्त रूप से विचरण करना पक्षी प्रेम को दर्शाता है। कहा जाता है कि पाटन की चढ़ाई के बाद किसी मुस्लिम सुल्तान के सिपाहियों ने मुर्गे मारकर खा लिए थे तो बेचरा देवी ने अपने सत् के बल पर उन्हें ऐसा चमत्कार दिखाया कि प्रात:काल मुर्गे उनके पेट से निकलकर बांग देने लगे थे। इस सन्दर्भ में सामौर ने लिखा है कि-

''मुसलमानां पकड़ मुरगा, खायग्या हरखाय,
तिके बोल्या हर तड़के, म्लेच्छ पेटां माय,
तो बतलाय जी बतलाय, बांने बचरा बतलाय।''

सामौर के साहित्य में नारी को देवी के रूप में व्यक्त करने के पीछे यही उद्देश्य समाहित है कि नारी अपने जीवनकाल में सामाजिक परम्परा की जीवन्तता के प्रति संवेदनशील होकर जीवनसंघर्ष में जूझने के लिए महान से महान त्याग ही नहीं बल्कि साम्राज्यों के उथल-पुथल में भी योगदान देने में पीछे नहीं है। नारी आसुरी प्रवृत्तियों से जूझती हुई व्यक्ति, समाज व बड़े से बड़े यौद्धा से लोहा लेने के लिए भी तत्पर रहती है।

इस प्रकार उपरोक्त शोध पत्र के माध्यम से मैं कहना

और सन्देश देना चाहूंगा कि नारी समाज आज वैश्वीकरण की दौड़ में पुरुष से किसी भी स्तर पर कम नहीं है। पुरुष समाज को नारी की अस्मिता को पहचानना होगा कि नारी अलग नहीं, वह उसमें समायी हुई वह शक्ति है जिसका शब्द और अर्थ के बल पर बखान नहीं किया जा सकता, जिसके बदलते भिन्न रूपों, गुणों को अनुभूत और सहानुभूत किया जा सकता है। आज पुरुष समाज को अपने अलगाववादी नजरियें को त्याग कर नारी की भावनाओं का सम्मान करना होगा। उसके त्याग कल्याण के ऋण को चुकाना होगा। उसे समाज में यथेष्ट स्थान देना होगा। नारी समाज को भी चाहिये कि पुरुष की भावनाओं को सत्य की कसौटी पर कसकर नारीवाद नहीं बल्कि मानववाद को अपनाकर सर्वेतोन्मुखी विकास की ओर अग्रसर होना है।

संपर्कः शोधार्थी पीएचडी (हिन्दी)
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
मो.न. 9799329291

○○○

वंचित एवं आदिवासियों का मुख्यधारा से जुड़ावः जल, जंगल और जमीन

1950 के दशक में विश्व के अधिकांश देशों से औपनिवेशिक शासन का खात्मा हो गया। पूरे विश्व में स्वतंत्रता की लहर ने नया संदेश दिया।

वर्तमान में हर व्यक्ति की स्वतंत्रता और उसके जीविकोपार्जन के अधिकारों व साधनों पर बहस चलने लगी है परन्तु समाज में एक ऐसा समुदाय भी है जिस पर सरकार का ध्यान नहीं पहुंच पाता। सरकारें विकास के नाम पर आदिवासियों, दलितों और गरीबों से जल, जंगल और जमीन छीनने के षड्यंत्र में लगी है।

भारत के आदिवासी बहुल राज्यों में उनको जंगल से खदेड़ा जा रहा है। सदियों से जो लोग जिस जमीन पर अपना जीवन यापन कर रहे हैं वहां से उनको बेदखल किया जा रहा है। लेकिन सच्चाई यह है कि जंगल ही इनके जीवन और आजीविका का अन्तिम और मुख्य साधन रहा है।

प्राकृतिक संसाधनों के दोहन पर आदिवासियों के हक पर डाका डाला जा रहा है। भू-विस्थापित परिवार की महिलाओं की स्थिति बेहद खराब है।

इस तरह वनोत्पादों पर परस्पर आश्रित समूचे जनजातीय समाज को हाशिए पर और गरीबी के दलदल में धकेल दिया गया, जहाँ न तो आजीविका थी, न आवाज और न ही आत्म सम्मान, पूर्ण एवं आत्मनिर्भर जीवन का अहसास ही बचा रह सका था।

इस प्रकार वंचित एवं आदिवासियों का मुख्यधारा से जुड़ाव जल, जंगल और जीवन से दूर नहीं किया जा सकता है।

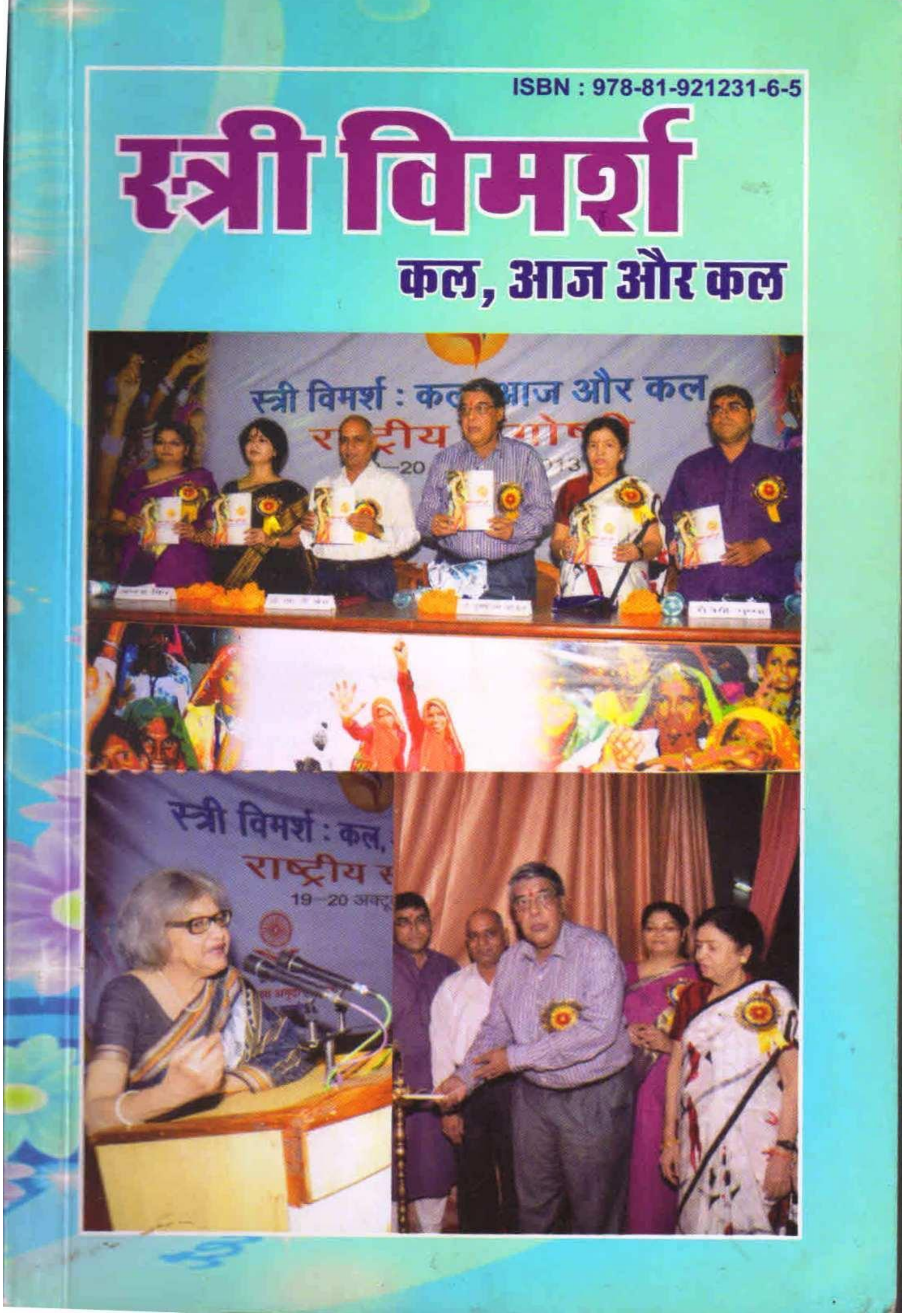
ISBN : 978-81-921231-6-5
स्त्री विमर्श
कल, आज और कल

स्त्री विमर्श

कल, आज और कल

आयोजक
हिन्दी विभाग
राजकीय लोहिया महाविद्यालय
चूरू (राज.)

प्रायोजक
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग
मध्य क्षेत्रीय कार्यालय
भोपाल

संरक्षक
डॉ. एम.डी. गोरा

सम्पादक
डॉ. मंजु शर्मा
श्रीमती संतोष बलाई
डॉ. गीता सामौर
उम्मेद गोठवाल

मूल्य : 400/- रुपये
ISBN : 978-81-921231-6-5

प्रकाशक :
हिन्दी विभाग
राजकीय लोहिया महाविद्यालय, चूरू (राज.)

© हिन्दी विभाग

प्रथम संस्करण : 2014

मुद्रक : अग्रवाल प्रिण्टर्स, चूरू

---

49 स्त्री विमर्श : दशा, दिशा और संभावना 236
— श्रीमती कविता पंसारी

50. "स्त्री विमर्श का वर्तमान स्वरूप और कमलेश्वर का कथा साहित्य" 240
— सुरेश गर्ग

51. साहित्य में स्त्री विमर्श 'संस्कृत साहित्य के संदर्भ में 244
— डॉ. चित्रा इन्दोरिया

52. साहित्य में स्त्री विमर्श : आधुनिक हिन्दी उपन्यासों के विशेष संदर्भ में 248
— सुश्री रंजना सींवर

53. नारी विमर्श के मुद्दे और 'दिव्या' 252
— डॉ. गीता कपिल

54. प्रिन्ट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के समक्ष स्त्री — रमाकान्त 257

55. नारी मुक्ति का आन्दोलन : ध्रुवस्वामिनी — डॉ. ममता खांडल 260

56. मानवाधिकार एवं साहित्य में स्त्री विमर्श — डॉ. अंजु बाला सीमार 263

57. भारतीय स्त्री आत्मकथाओं में विद्रोह का स्वर — प्रो. मीनाक्षी श्रीवास्तव 267

58. बाजारीकरण और भूमण्डलीकरण का जाल और स्त्री–विमर्श 270
— धनेश कुमार मीणा

59. डॉ. अम्बेडकर का चिन्तन एवं दलित महिला — भागीरथ लाल मेघवाल 272

60. अल्पना मिश्र की कहानियों में स्त्री चेतना— मिथिलेश कुमारी 275

61. डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में स्त्री.चेतना 279
— रवीन्द्र कुमार मीणा

62. स्त्री अस्मिता की तलाश : ऐतिहासिक उपन्यास 286
— रघुवीर सिंह

63. राष्ट्रकवि दिनकर की स्त्री–चेतना — डॉ. राजेन्द्र प्रसाद खीचड 289

64. स्त्री — विमर्श का दृढ़ आधार : अनामिका की कविताएं 293
— डॉ. नीतू परिहार

65. दलित साहित्य में स्त्री चित्रण — भानीराम मेघवाल 300

66. सामाजिक मुद्दे एवं खाप पंचायतें : हरियाणा राज्य के धरातलीय यथार्थ का विवेचन एवं विश्लेषण — डॉ. विनिता, सुमन कुमारी 304

67. भारतीय साहित्य में स्त्री विमर्श : अतीत और वर्तमान 311
— डॉ. श्यामा सिंह

68. स्त्री विमर्श और समकालीन हिन्दी कहानी 315
— डॉ. सुमन पलासिया

69. आधी दुनिया नारीः फिर क्यों वह बेचारी 322
— कल्याणसिंह चारण, कु. प्रभा चारण

70. दलित–स्त्री का जीवन्त दस्तावेज़ — 'शिकंजे का दर्द' के सन्दर्भ में 326
— डॉ. विजय कुमार प्रधान
— सुश्री नूतन कुमारी

दलित साहित्य में स्त्री चित्रण

– भानीराम मेघवाल

साहित्य समाज का दर्पण होता है। मनुष्य के क्रियाकलापों, विचारों, भावनाओं आदि का इसमें चित्रण होता है। मानव समाज का अभिन्न अंग है। मानव समाज स्त्री और पुरुष दोनों से मिलकर बना होता है। ये दोनों एक–दूसरे के पूरक है। एक के बिना समाज एवं सृष्टि की कल्पना तक व्यर्थ है। फिर भी पितृसतात्मक परिवार प्रथा का बाहुल्य होने के कारण मनुष्य ने स्त्री को सदैव अनेक बन्धनों में जकड़ कर अपने अधीन रखा है। भारतीय समाज भी प्रारम्भ में वर्ण व्यवस्था में फिर धीरे–धीरे जाति व्यवस्था में परिवर्तित हो गया। जाति व्यवस्था के बन्धन इतने कठोर हो गए कि इस सामाजिक प्राणी को भी अलग–अलग मर्यादाओं में बनना पड़ा। इसी परिपेक्ष्यों में दलित जातियों को समाज में सबसे निम्न स्थान प्रदान करके उसे स्त्री की भांति हासियें पर धकेल दिया गया। यह वर्ग सवर्ण जातियों की आकांक्षाओं पर खरा उतरता गया वैसे–वैसे इस वर्ग की वफादारी का सवर्ण वर्ग लाभ उठाता गया अर्थात् शोषण करता गया। ठीक यही स्थिति नारी वर्ग की भी है अर्थात् नारी ने भी पुरुष की हर आकांक्षा पर खरी उतरने की पूर्ण निष्ठा से कोशिश की है। वह पुरुष का कंधे से कंधा मिलाकर साथ देती रही है लेकिन स्वार्थी पुरुष समाज ने इसे सदैव अपने अधीन रखने की चेष्टा की है।

इस दलित साहित्य लेखन के आन्दोलन के परिपेक्ष्य में हमें यह नजर अंदाज नहीं करना चाहिये कि इसका भी एक ऐतिहासिक महत्व है। ऐतिहासिक युग (40 वर्षों का समय) के सन्दर्भ में हमें यह याद रखना चाहिये कि ऐतिहासिक परिवर्तन में सदैव स्त्री का हाथ रहा है अर्थात् औरतों की प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष भागीदारी को नकारा नहीं जा सकता है। औरतों की कमजोरी अर्थात् तरक्की से ही परिवर्तन संभव हुआ है। मनुष्य मुक्ति का स्वाभाविक पैमाना अथवा मानक ज्ञात करने के लिए यह देखना आवश्यक है कि नारी की स्वतन्त्रता किस सीमा तक पहुंच चुकी है ?

हम यह जानते है कि पितृसतात्मक परिवार प्रथा में नारी सदैव शोषण, दमन और समन आदि की शिकार हुई है। जिसमें पुरुष सदैव सवर्ण वर्ग का ही सर्वोपरी रहा है। लेकिन दलित साहित्य सदैव वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था और लिंग भेद आदि को नकारता रहा है। यह साम्यव्यवस्था पर आधारित समाज में स्त्री के समान अधिकारों का पक्षधर रहा है। दलित साहित्य लेखन के शुरूआती दौर में स्त्री को भी दलित मानने पर जोर दिया गया लेकिन सवर्ण वर्ग की स्त्री को नहीं क्योंकि सवर्ण वर्ग की स्त्री दलित स्त्री से ही नहीं बल्कि पुरुष के साथ भी कठोरता से पेश आती है। उसे हीन और घृणित दृष्टि से देखती है। फिर भी उसे स्त्री वर्ग के सन्दर्भ में आज भी मतैक्य नहीं है कि किस वर्ग की स्त्री को दलित माना जाए। लेकिन जब शोषण, दमन अथवा शमन की बात आती है कि इससे पीड़ित वर्ग ही दलित है तो स्त्री वर्ग भी स्वतः ही इस वर्ग में शामिल हो जाती है। कार्ल मार्क्स ने लिखा है कि यदि बुर्जुआ वर्ग महिलाएं ''परजीवी की परजीवी'' है तो सर्वहारा वर्ग की ''गुलामों की गुलाम''। अतः इस आधार पर स्त्री दलित वर्ग में ही आती है।

राजेन्द्र यादव का भी कहना है कि वर्ण व्यवस्था शुद्र और स्त्रियों को एक समान नजरियों से देखती है अतः यह स्त्री वर्ग भी दलित वर्ग में ही आता है। लेकिन दलित लेखन के विचारकों का मत है कि जो अपमान, तिरस्कार, घृणा, नफरत, शोषण आदि शुद्र को सहन करने पड़े है उनसे सवर्ण वर्ग की स्त्री सदैव अछूती ही रही है। इसी परिपेक्ष्य में ओम प्रकाश वाल्मिकी की कहानी 'शवयात्रा' प्रांसगिक है कि इसमें दलित वर्ग भी दो वर्गों में बंटा हुआ है तथा आपस में लड़ रहा है। ठीक उसी प्रकार स्त्री समाज में भी वर्ग हो सकते है। स्त्री के सन्दर्भ में उनका कहना है कि स्त्री दलितों में भी दलित है क्योंकि स्त्री दोहरे अभिशाप से पीड़ित है इसके लिए पुरातनपंथी विचारधाराएं जिम्मेदार है इसमें स्त्री को एक तरफ दूसरे दर्जे का नागरिक ही नहीं बल्कि पांव की जूती समझा गया है वाल्मिकी का मानना है कि यही स्थिति शुद्र वर्ग के साथ है। इस कथन से स्त्री समाज को कुछ दिलासा मिलती है कि उसकी मुक्ति अर्थात् स्वतंत्रता, समानता की बात की जा रही है। दलित लेखन में एक वर्ग विशेष तक सिमटकर रह जाने अथवा अन्य वर्ग के सामिप्य को न पाने तक यह सपना अधूरा ही रह जाता है। अतः इसी परिपेक्ष्य में जब सौन्दर्य के मानक बदलने के सन्दर्भ में बात उठती है तो प्रेमचन्द स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण बदलने की बात कहते है इनका मानना है कि जो समाज,वर्ग दासता की जितनी दीवारों के भीतर जकड़ा हुआ है उसी अनुपात और क्रम में मुक्ति के क्षेत्र में उससे अधिक स्थान मिलना चाहिए।

राजेन्द्र यादव दलित साहित्य को काफी व्यापक दायरे में देखते हैं, वे स्त्रियों, पिछड़ी जातियों को भी दलित वर्ग में शामिल करते है। लेकिन डॉ. श्योराजसिंह इसे तर्क संगत नहीं मानते है इनका मानना है कि सामाजिक स्तर जातिगत भेदभाव के जो लोग शिकार हुए है, उन पर जो जुल्म ढाए गए उनकी छटपटाहट ही शब्दगत होकर दलित साहित्य बन रही है। यहां इस साहित्य को रिड्यूस करके देखा गया सौन्दर्यशास्त्र में वाल्मिकी लिखते हैं कि दलित साहित्यकार की दृष्टि में हर इंसान और उसकी पीड़ा और उसके सुख–दुख महत्वपूर्ण है उसमें दलित हो या स्त्री उसके प्रति रागात्मक तादात्म्य स्थापित करना दलित साहित्य का प्रमुख प्रयोजन है।

पितृसतात्मक समाज स्त्री की अस्मिता को लेकर मौन है पितृसतात्मक परिवार में स्त्री को समाज विघटन, सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों के विघटन का जिम्मेदार ठहराया गया है। समाज स्त्री की स्वतंत्रता पक्षधर नहीं है। क्योंकि दलित समाज में स्त्री की स्वतंत्रता ने ही इसे समाज के एक हासिये पर धकेल दिया है। इसके पीछे दूसरा तर्क यह भी है कि अर्थ प्रधान समाज में दलित समाज की स्थिति कमजोर है इस स्थिति को मजबूती प्रदान करने हेतु दलित समाज की स्त्री ने अपने उच्छृंखल स्वभाव के बल पर पुरुष को पीछे धकेल दिया है। स्त्री कार्य करने हेतु चाहर दीवारी के बन्धनों से निकलकर बाहरी दुनिया मे कार्य करना चाहती है जहां वह अन्य समाज के लोगों के साथ सम्बन्ध स्थापित कर अपने समाज से किनारा कर लेती है जिससे तलाकनामा, खांप पंचायते, देह–शोषण जैसी समस्याएं उभरकर सामने आती है। डॉ. विमल कीर्ति

ने स्त्री मुक्ति तथा दलित मुक्ति के सम्बन्ध में लिखा है कि स्त्री का दलितपन स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों में है और दलित की गुलामी का सम्बन्ध सामाजिक सम्बन्धों अर्थात् हिन्दु धर्म है। स्त्री का दलितपन भौतिक विकास के साथ शिक्षा और आर्थिक विकास के साथ खत्म हो जाता है। जबकि दलित समाज का दलितत्व केवल भौतिक विकास से खत्म नहीं होगा। बल्कि हिन्दुत्व के खिलाफ संघर्ष के परिणामस्वरूप होगा।

दलित कथाकारों की कहानियों में चर्चित कहानी 'सुनीता' में भी स्त्री–पुरुष भेदभाव को दर्शाया गया है कि पुरुष प्रधान समाज में नारी को शिक्षा, अर्थ, भौतिक सुविधा से वंचित रखा है। रजत रानी मीनू में स्त्री समस्या पर दलित लेखन की कहानियों स्त्री सोच को व्यक्त करते हुए लिखा है कि ये कहानियां संदेश देती है कि दलित स्त्रियां बेहद चरित्रवान होती है। पुरुष हर समाज के प्रतिवर्ग वफादार होते है पूर्ण निष्ठा और ईमानदारी से कार्य करते है तो फिर दलित लेखन में स्त्री को इतना उपेक्षित क्यों वर्णित किया गया है

धर्मवीर भारती ने स्त्री समाज पर चिन्तन प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि "वह धरती की सबसे अधिक इतनी कमजोर प्राणी है कि वह अकेली नहीं रह सकती है। जब वह अकेली होती है तो आफत आती है। जिससे देश का नैतिक अधःपतन होता है। स्त्रियां पतियों पर जबरदस्त आर्थिक दबाव डालती है इसलिए पति बेईमान हो जाते है जिससे भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, मुनाफाखोरी, दलाली बढती है जिससे बसे–बसाये घर उजड़ जाते है।

डॉ. एन. सी. तिवारी दलित चेतना पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते है कि 'महिला चाहे वह दलित वर्ग की हो या किसी अन्य वर्ग की, वह नियन्त्रण के अभाव में उच्छृंखल हो सकती है। राजेन्द्र यादव का कहना है कि जो जितना दबा कुचला गुलाम है, उसका आदर्श आदमी उतनी ही निरकुंश, अत्याचारी, अमानवीय है। वही छूट मिलते ही यह दलित आदमी बनने की उतावलापन में मालिक का प्रतिरुप बन जाता है। धर्मवीर भारती लिखते है कि दलित समाज लगभग तीन हजार वर्षों से मातृसतात्मक होने के कारण पितृसतात्मक सता से हारा है अर्थात् वह गुलाम रहा है क्योंकि इनके घरों में स्त्रियां ही सर्वोपरी होती है। अतः दलित समाज को पहले पितृसतात्मक व्यवस्था अपनानी होगी। दलित को इससे दो प्रकार की पराजय का शिकार होना पड़ा अर्थात् घर से बाहर सवर्ण जातियों से तथा भीतर मातृसतात्मक (स्त्री) से दलित समाज के अपनी स्त्रियों की गुलामी से मुक्ति पानी चाहिये ताकि वह समाज उन्नति की ओर अग्रसर हो सकें। धर्मवीर भारती की नजरों में स्त्री शोषक, स्वामिनी, निठल्ली और उच्छृंखल है जबकि पुरुष सर्वगुण सम्पन्न है जो कि स्त्री समाज के साथ सरासर अन्याय है।

भीमसेन सन्तोष की कहानी 'ममता और समता' में ब्राह्मण वर्ग की उर्मिला व दलित वर्ग के रवि का चित्रण इस तथ्य को स्पष्ट कर देता है। सूरजभान चौहान की कहानी 'चेता का उपकार' ओमप्रकाश बाल्मिकी की कहानी 'ग्रहण' आदि इसके ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत करती है। चन्द्रभान प्रसाद की कहानी 'चमरिया मैया का श्राप' देखकर

ऐसा लगता है कि दलित साहित्य वास्तव में ही हिन्दी साहित्य से अलग होगा क्योंकि उसमें बजबजाती घृणा होगी लेकिन ऐसा कहीं नहीं है।

'समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन' का सम्पादन करने वाली रजनी तिलक और रजनी अनुरागी ने दलित और स्त्री जैसे केन्द्रीय विमर्शों की मौजूदगी के समानान्तर दलित महिला आन्दोलन जैसी तीसरी धारा के विकसित होने का साक्ष्य प्रस्तुत किया है। सुरेश चन्द्र का कविता संग्रह 'हम उन्हे अच्छे नहीं लगते' में भी उत्पीड़न के विविध रुपों यथा (जेण्डर, जाति, वर्ग आदि) से एक साथ संघर्ष करने पर बल दिया गया है। हनुमान बरोड़ 'अज्ञेय' का कहानी संग्रह 'एक अजनबी लड़की' व उपन्यास 'अन्तरज्वाला' में स्त्री कें विविध रुपों को चित्रित किया गया है।

बड़े नामों की किचिंत गैर मौजूदगी के बावजूद भी वर्तमान में निरन्तर दलित साहित्य की पुस्तकों ने गुणवता के विकास क्रम को बनाये रखा है। दलित साहित्य के लेखकों की एक अगली कतार निर्मित होती दिख रही है। जिन्हे अपनी गुरुतर जिम्मेदारी का बखूबी अहसास है और जीवन से जुड़े गम्भीर प्रश्नों पर वैचारिक स्पष्टता के साथ ही अन्य उत्पीड़न समूहों के प्रति संवेदनशीलता को इन लेखकों की विशेषता के रुप में चित्रित किया जा सकता है। यह एक आशाप्रद संकेत है।

– शोधार्थी, कोटा विश्वविद्यालय कोटा

● ● ●